॥ श्रीहरिः ॥

610

व्रत-परिचय

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

व्रत-परिचय

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

पं० हनूमान शर्मा

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

सभी देशों तथा धर्मोंमें व्रतका महत्त्वपूर्ण स्थान है। व्रतसे मनुष्यकी अन्तरात्मा शुद्ध होती है। इससे ज्ञानशक्ति, विचारशक्ति, बुद्धि, श्रद्धा, मेधा, भक्ति तथा पवित्रताकी वृद्धि होती है; अकेला एक उपवास सैकड़ों रोगोंका संहार करता है, नियमतः व्रत तथा उपवासोंके पालनसे उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घजीवनकी प्राप्ति होती है—यह सर्वथा निर्विवाद है।

‘**व्रियते स्वर्गं व्रजन्ति स्वर्गमनेन वा**’—जिससे स्वर्गमें गमन अथवा स्वर्गका वरण होता हो (पृषोदरादि)—इस अर्थमें ‘व्रत’ शब्दकी निरुक्ति होती है। ‘निरुक्त’ में व्रतका अर्थ सत्कर्मानुष्ठान तथा उस क्रियासे निवृत्ति कहा गया है।[1] अमरसिंह आदि कोषनिर्माताओं, निबन्धकारों तथा दूसरे व्याख्याताओंने व्रतका अर्थ उपवासादि पुण्य नियमोंका ग्रहण बतलाया है।

‘**नियमो व्रतमस्त्री तच्चोपवासादि पुण्यकम्**’

‘शब्दरत्नावली’ कार संयम और नियमको व्रतका समानार्थक मानते हैं। वाराहपुराणमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और सरलताको मानसिक व्रत; एकभुक्त, नक्तव्रत, निराहारादिको

---

१. व्रतमिति कर्मनाम—वृणोतीति सतः। अत्र स्कन्दस्वामी—कर्तरि सत् इति कृतव्याख्यानम्⋯⋯⋯व्रतं कर्मोच्यते। कस्माद् वारयते तद्धि संकल्पपूर्वकं प्रवृत्तिरूपमग्नि-होत्रादिकर्मप्रत्यवायं वारयतीति पुरुषः प्रवर्तमानो निवर्तमानश्च व्रतेनाभिसम्बन्धस्तेनाव्रतेन निर्वायत इति व्रतस्यैव प्राधान्याद्धेतुकर्तृत्वेन विवध्यते वृणातेर्धातोः (स्वा० उ०) पृषिरंजिभ्यां कित् (उ० ३। १०८) इति विधीयमानस्तच्प्रत्ययो बाहुलकाद् भवति कित्वाद् गुणाभावो यणादेशः। वारयतेर्वा तत्—इत्यत्र लुगिति लुगपि बाहुलकात्। व्रते भाजदेवः इतिक्षीरस्वामी। व्रत्यते वर्ज्यते सर्वभोगोऽत्र इति सुबोधिनीकारः, व्रतेर्धातोः ‘पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण’ (३। ३। ११८) इति घः प्रत्ययः। व्रतिश्च वर्जनार्थः। ‘अथा वयमादित्यव्रते तव’ (ऋ० सं० १। २। १५। ५) ‘ब्राह्मणा व्रतचारिणः’ (ऋ० सं० ५। ७। ३। १) इति च निगमो ‘अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि’ (वा० सं० १। ५) इत्यादौ व्रतशब्दे निवृत्तिकर्मता।

कायिक व्रत तथा मौन एवं हित, मित, सत्य, मृदु भाषणको वाचिक व्रत कहा गया है।[1]

इतिहास-पुराणोंमें जिस तपस्याका इतना महत्त्व बतलाया गया है, वह भी वेदोक्त कृच्छ्र-चान्द्रायणादि उपवासोंके अतिरिक्त कुछ दूसरा नहीं है।

'तत्र तपो नाम विध्युक्तकृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः शरीरशोषणम्'

(शाण्डिल्योप० १।२)

वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।
शरीरशोषणं यत् तत् तप इत्युच्यते बुधैः॥

(श्रीजाबालदर्शनोप० २।३)[2]

कूर्मपुराणमें व्रतोपवाससे भगवान् विष्णु तथा भगवान् शिवकी प्राप्ति कही गयी है।

व्रतोपवासैर्नियमैर्होमैर्ब्राह्मणतर्पणैः।
तेषां वै रुद्रसायुज्यं जायते तत्प्रसादतः॥

गरुडपुराण कहता है कि राजर्षि धुन्धुमारको व्रतोंसे १०० पुत्रोंकी प्राप्ति हुई, राजा दशरथको सदा व्रत करते रहनेसे साक्षात् परमात्मा ही पुरुषोत्तम राजराजेन्द्र श्रीरामके रूपमें पुत्र बनकर आये, महाराज जनक भी व्रती थे। आदित्यपुराणमें व्रतोंसे दुःख-दारिद्र्य एवं रोगोंके नाशकी बात कही गयी है।

व्रतोपवासान् खलु यो विधत्ते दारिद्र्यपाशं स भिनत्ति चाशु।
व्रतोपवासेषु रतस्य पुंसश्चैवापदः शान्तिमुशन्ति तज्ज्ञाः॥

---

१. अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्मषम्।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि व्रतचारिणाम्॥
एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासादिकं च यत्।
तत् सर्वं कायिकं पुंसां व्रतं भवति नान्यथा॥

२. अधिक जाननेके लिये देखिये अमरकोष ३।३।२३२; वाल्मीकि० १।१।१ की तिलकटीका; महानारायणोप० ७९; वायुपुराण ५९।४१; नारदपुराण ३३।७५; महा० शा० प० १६१।१०; अनु० प० १०३।३ इत्यादि।

संक्षेपमें व्रत हिंदू-संस्कृति एवं धर्मके प्राण हैं; व्रतोंपर वेद, धर्मशास्त्रों, पुराणों तथा वेदांगोंमें बहुत कुछ कहा गया है। व्रतराज, व्रतार्क, व्रतकौस्तुभ, जयसिंहकल्पद्रुम, मुक्तकसंग्रह, हेमाद्रिव्रतखण्ड आदि बीसों विशाल निबन्धग्रन्थ तो केवल व्रतोंपर लिखे गये हैं। आजसे १५ वर्ष पूर्व पं० श्रीहनूमानजी शर्माने इन सभी ग्रन्थोंका सार लेकर तथा अन्य वाचस्पत्य आदि कोषोंके सहारे अद्भुत सामग्रियोंका संग्रह करके व्रत-परिचय नामका एक लम्बा लेख लिखा था, जो 'कल्याण' में वर्षोंतक धारावाहिक लेखके रूपमें प्रकाशित हुआ था। सभी प्रकारके पाठकोंने उसे बड़ा पसंद किया और तबसे कई लोगोंका निरन्तर आग्रह बना रहा कि इसे पुस्तकरूपमें अलगसे अवश्य प्रकाशित किया जाय। कई कारणों तथा प्रेसकी व्यस्ततासे वह अबतक रुका रहा। भगवत्कृपासे अब वह इच्छा पूर्ण हो पायी।

व्रत-परिचयके लेखक पं० श्रीहनूमानजी शर्मा बड़े उच्चकोटिके विद्वान्, शास्त्रानुरागी तथा धर्मपरायण व्यक्ति थे। अत्यन्त वृद्ध हो जानेपर भी उन्होंने एक बार इसे पुनः देख लेने तथा यत्र-तत्र यत्किंचित् संशोधन-परिवर्धन कर देनेकी कृपा की थी। खेद है यह पुस्तक उक्त पण्डितजीके जीवनकालमें प्रकाशित न हो पायी। कुछ दिन पूर्व उनका देहान्त हो गया।

व्रतकथा-प्रेमियों तथा विद्वान् ब्राह्मणोंकी उपयोगिताके लिये परिशिष्टमें कुछ मूल आवश्यक कथाएँ दे दी गयी हैं। यदि कोई उपयोगी कथा या व्रतका परिचय छूट गया हो तो विद्वान् पाठक हमें सूचना दें; हम उनके सुझावका स्वागत करेंगे।

भाद्र-संकष्ट-चतुर्थी
सं० २०१३
गीताप्रेस

प्रार्थी—
जानकीनाथ शर्मा

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

वैशाखके व्रत

(कृष्णपक्ष)

(शुक्लपक्ष)

ज्येष्ठके व्रत

(कृष्णपक्ष)

(शुक्लपक्ष)

आषाढ़के व्रत

(कृष्णपक्ष)

(शुक्लपक्ष)

विषय	पृष्ठ-संख्या

श्रावणके व्रत

(कृष्णपक्ष)

(शुक्लपक्ष)

विषय	पृष्ठ-संख्या

भाद्रपदके व्रत

(कृष्णपक्ष)

विषय	पृष्ठ-संख्या

कार्तिकके व्रत

(कृष्णपक्ष)

(शुक्लपक्ष)

विषय	पृष्ठ-संख्या

मार्गशीर्षके व्रत

(कृष्णपक्ष)

(शुक्लपक्ष)

पौषके व्रत

(कृष्णपक्ष)

(शुक्लपक्ष)

विषय	पृष्ठ-संख्या

माघके व्रत

(कृष्णपक्ष)

(शुक्लपक्ष)

फाल्गुनके व्रत

(कृष्णपक्ष)

(शुक्लपक्ष)

परिशिष्ट

(१) अधिमासव्रत

(२) संक्रान्तिव्रत

(३) अयनव्रत

(४) पक्षव्रत

(५) वारव्रत

(पापोंसे होनेवाले सब प्रकारके रोग और कष्टोंको दूर करनेवाले व्रत)

लोकहितकर व्रत

पाँच पुत्रप्रद व्रत

कथाएँ

॥ श्रीहरि: ॥

व्रत-परिचय

पूर्वांग

व्रतोंसे अनेक अंशोंमें प्राणिमात्रका और विशेषकर मनुष्योंका बड़ा भारी उपकार होता है। तत्त्वदर्शी महर्षियोंने इनमें विज्ञानके सैकड़ों अंश संयुक्त कर दिये हैं। ग्रामीण या देहाती मनुष्यतक इस बातको जानते हैं कि अरुचि, अजीर्ण, उदरशूल, मलावरोध, सिरदर्द और ज्वर-जैसे स्वत:सम्भूत साधारण रोगोंसे लेकर कोढ़, उपदंश, जलोदर, अग्निमान्द्य, क्षतक्षय और राजयक्ष्मा-जैसी असाध्य या प्राणान्तक महाव्याधियाँ भी व्रतोंके प्रयोगसे निर्मूल हो जाती हैं और अपूर्व तथा स्थायी आरोग्यता प्राप्त होती है।

यद्यपि रोग भी पाप हैं और ऐसे पाप व्रतोंसे दूर होते ही हैं, तथापि कायिक, वाचिक, मानसिक और संसर्गजनित पाप, उपपाप और महापापादि भी व्रतोंसे दूर होते हैं। उनके समूल नाशका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि व्रतारम्भके पहले पापयुक्त प्राणियोंका मुख हतप्रभ रहता है और व्रतकी समाप्ति होते ही वह सूर्योदयके कमलकी तरह खिल जाता है।

भारतमें व्रतोंका सर्वव्यापी प्रचार है। सभी श्रेणीके नर-नारी सूर्य-सोम-भौमादिके एकभुक्तसाध्य व्रतसे लेकर एकाधिक कई दिनोंतकके अन्नपानादिवर्जित कष्टसाध्य व्रतोंतकको बड़ी श्रद्धासे करते हैं। इनके फल और महत्त्व भी प्राय: सर्वज्ञात हैं। फिर भी यह सूचित कर देना अत्युक्ति न होगा कि 'मनुष्योंके कल्याणके लिये व्रत स्वर्गके सोपान अथवा संसार-सागरसे तार देनेवाली प्रत्यक्ष नौका है।'

व्रतोंके प्रभावसे मनुष्योंकी आत्मा शुद्ध होती है। संकल्पशक्ति बढ़ती

है। बुद्धि, विचार, चतुराई या ज्ञानतन्तु विकसित होते हैं। शरीरके अन्तस्तलमें परमात्माके प्रति भक्ति, श्रद्धा और तल्लीनताका संचार होता है। व्यापार-व्यवसाय, कला-कौशल, शास्त्रानुसंधान और व्यवहार-कुशलताका सफल सम्पादन उत्साहपूर्वक किया जाता है और सुखमय दीर्घ जीवनके आरोग्य-साधनोंका स्वतः संचय हो जाता है। ऐसा दूसरा कौन-सा साधन है जिसके करनेसे एकसे ही अनेक लाभ हों।

यही सब सोचकर संक्षेपमें व्रतोंका यह परिचय लिखा जाता है, इससे व्रतसम्बन्धी प्रायः सभी बातोंपर परिचय प्राप्त होगा, व्रतोंकी विधि, उनके परिणाम आदिका पता लगेगा, जिससे व्रतोंमें श्रद्धा होगी और व्रतोंसे लाभ उठानेकी प्रवृत्ति बढ़ेगी। यह अवश्य ध्यान रहना चाहिये कि पूर्वांगमें जो विधि-विधान या नियमादि दिये हैं, वे सब आगेके व्रतोंके लिये उपयोगी हैं। अतः व्रत करनेवालोंको चाहिये कि वे व्रतारम्भके पहले इनका मनन अवश्य कर लिया करें।

(१) मनुष्योंके हितके लिये तपोधन महर्षियोंने अनेक साधन नियत किये हैं, उनमें एक साधन व्रत भी है।

(२) 'निरुक्त' में व्रतको कर्म सूचित किया है और 'श्रीदत्त' ने अभीष्ट कर्ममें प्रवृत्त होनेके संकल्पको व्रत बतलाया है। इनके सिवा अन्य आचार्योंने पुण्यप्राप्तिके लिये किसी पुण्य तिथिमें उपवास करने या किसी उपवासके कर्मानुष्ठानद्वारा पुण्य संचय करनेके संकल्पको व्रत सूचित किया है।

(३) मनुष्य-जीवनको सफल करनेके कामोंमें व्रतकी बड़ी महिमा मानी गयी है। 'देवल' का कथन है कि व्रत और उपवासके नियम-पालनसे शरीरको तपाना ही तप है*। व्रत अनेक हैं और अनेक व्रतोंके प्रकार भी अनेक हैं। यहाँ उनका कुछ उल्लेख किया जाता है।

---

* वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।
शरीरशोषणं यत् तत् तप इत्युच्यते बुधैः॥

(४) लोकप्रसिद्धिमें व्रत और उपवास दो हैं और ये कायिक, वाचिक, मानसिक, नित्य, नैमित्तिक, काम्य, एकभुक्त, अयाचित, मितभुक्, चान्द्रायण और प्राजापत्यके रूपमें किये जाते हैं। इनके निम्नलिखित प्रकार हैं।

(५) वास्तवमें व्रत और उपवास दोनों एक हैं, अन्तर यह है कि व्रतमें भोजन किया जा सकता है और उपवासमें निराहार रहना पड़ता है। इनके कायिकादि तीन भेद हैं—(१) शस्त्राघात, मर्माघात और कार्यहानि आदिजनित हिंसाके त्यागसे 'कायिक', (२) सत्य बोलने और प्राणिमात्रमें निर्वैर रहनेसे 'वाचिक' और (३) मनको शान्त रखनेकी दृढ़तासे 'मानसिक' व्रत होता है।

(६) पुण्यसंचयके एकादशी आदि 'नित्य' व्रत, पापक्षयके चान्द्रायणादि 'नैमित्तिक' व्रत और सुख-सौभाग्यादिके वटसावित्री आदि 'काम्य' व्रत माने गये हैं। इनमें द्रव्यविशेषके भोजन और पूजनादिकी साधनाके द्वारा साध्य व्रत 'प्रवृत्तिरूप' होते हैं और केवल उपवासादि करनेके द्वारा साध्य व्रत 'निवृत्तिरूप' हैं। इनका यथोचित उपयोग फल देता है।

(७) एकभुक्त व्रतके—स्वतन्त्र, अन्यांग और प्रतिनिधि तीन भेद हैं। (१) दिनार्ध व्यतीत होनेपर 'स्वतन्त्र' एकभुक्त होता है, (२) मध्याह्नमें 'अन्यांग' किया जाता है और (३) 'प्रतिनिधि' आगे-पीछे भी हो सकता है।

(८) 'नक्तव्रत' रातमें किया जाता है। उसमें यह विशेषता है कि गृहस्थ रात्रि होनेपर उस व्रतको करें और संन्यासी तथा विधवा सूर्य रहते हुए।

(९) 'अयाचित व्रत' में बिना माँगे जो कुछ मिले उसीको निषेध काल बचाकर दिन या रातमें जब अवसर हो तभी (केवल एक बार) भोजन करे और 'मितभुक्' में प्रतिदिन दस ग्रास (या

एक नियत प्रमाणका) भोजन करे। अयाचित और मितभुक् दोनों व्रत परम सिद्धि देनेवाले हैं।

(१०) चन्द्रकी प्रसन्नता, चन्द्रलोककी प्राप्ति अथवा पापादिकी निवृत्तिके लिये 'चान्द्रायण' व्रत किया जाता है। यह चन्द्रकलाके समान बढ़ता और घटता है। जैसे शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको एक, द्वितीयाको दो और तृतीयाको तीन, इस क्रमसे बढ़ाकर पूर्णिमाको पन्द्रह ग्रास भोजन करे। फिर कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको चौदह, द्वितीयाको तेरह और तृतीयाको बारहके उत्क्रमसे घटाकर चतुर्दशीको एक और अमावास्याको निराहार रहनेसे एक चान्द्रायण होता है। यह 'यवमध्य' चान्द्रायण है*। इसका दूसरा प्रकार यह है—

(११) शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको चौदह, द्वितीयाको तेरह और तृतीयाको बारहके उत्क्रमसे घटाकर पूर्णिमाको एक और कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको एक, द्वितीयाको दो और तृतीयाको तीनके क्रमसे बढ़ाकर चतुर्दशीको चौदह ग्रास भोजन करे और अमावास्याको निराहार रहे। यह दूसरा चान्द्रायण है। इसको 'पिपिलिकातनु' चान्द्रायण कहते हैं।

(१२) प्राजापत्य बारह दिनोंमें होता है। उसमें व्रतारम्भके पहले तीन दिनोंमें प्रतिदिन बाईस ग्रास भोजन करे। फिर तीन दिनतक प्रतिदिन छब्बीस ग्रास भोजन करे। उसके बाद तीन दिन आपाचित (पूर्ण पकाया हुआ) अन्न चौबीस ग्रास भोजन करे और फिर तीन दिन सर्वथा निराहार रहे। इस प्रकार बारह दिनमें एक 'प्राजापत्य' होता है। ग्रासका प्रमाण जितना मुँहमें आ सके, उतना है।

(१३) उपर्युक्त व्रत मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, योग,

---

* क्योंकि जैसे जौ आदि-अन्तमें पतला और मध्यमें मोटा होता है, उसी प्रकार एक ग्राससे आरम्भ कर पंद्रह ग्रास बीचमें कर पुनः घटाते हुए एक ग्रासपर समाप्त होता है। यवमध्य चान्द्रायण बराबर किसी मासकी शुक्ल प्रतिपदासे ही शुरू किया जाता है।

करण, समय और देवपूजासे सहयोग रखते हैं। यथा—वैशाख, भाद्रपद, कार्तिक और माघके 'मास' व्रत। शुक्ल और कृष्णके 'पक्ष' व्रत। चतुर्थी, एकादशी और अमावास्या आदिके 'तिथि' व्रत। सूर्य, सोम और भौमादिके 'वार' व्रत। श्रवण, अनुराधा और रोहिणी आदिके 'नक्षत्र' व्रत। व्यतीपातादिके 'योग' व्रत। भद्रा आदिके 'करण' व्रत और गणेश, विष्णु आदिके 'देव' व्रत स्वतन्त्र व्रत हैं।

(१४) बुधाष्टमी—सोम, भौम, शनि, त्रयोदशी और भानुसप्तमी आदि 'तिथि-वार' के, चैत्र शुक्ल नवमी भौम, पुष्य मेषार्क और मध्याह्नकी 'रामनवमी' तथा भाद्रपद कृष्णपक्ष अष्टमी बुधवार रोहिणी सिंहार्क और अर्धरात्रिकी 'कृष्णजन्माष्टमी' आदिके सामूहिक व्रत हैं। कुछ व्रत ऐसे हैं, जिनमें उपर्युक्त तिथि-वारादिके विभिन्न सहयोग यदा-कदा प्राप्त होते हैं। इन सबके उपयोगी वाक्योंका यत्किंचित् दिग्दर्शन अथवा अनुसंधान आगे किया गया है, विशेष विधान हर महीनेमें व्रतोंके साथ बतलाया जायगा।

(१५) यह अवश्य स्मरण रहना चाहिये कि 'व्रत-परिचय' व्रतराज, व्रतार्क, मासस्तबक, जयसिंह-कल्पद्रुम और मुक्तकसंग्रह आदि प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधारसे लिखा गया है और इसके प्रमाणवाक्य भी उक्त ग्रन्थोंसे ही उद्धृत किये गये हैं—जो उनमें भी अति प्राचीन कालके श्रुति, स्मृति, पुराण और धर्मशास्त्रोंसे लिये हुए हैं और उनमेंसे अधिकांश ग्रन्थ इस समय कुछ तो अस्त-व्यस्त या रूपान्तरित हो गये हैं और कुछ सर्वथा नष्टप्राय या दुष्प्राप्य हैं। व्रतोंका बहुत ज्यादा वर्णन पुराणोंमें है, परंतु हस्तलिखित और मुद्रित पुराणोंमें कइयोंमें इतना अन्तर हो गया कि बहुत-से व्रत जो ब्रह्म, विष्णु या वराहादि पुराणोंमें बतलाये जाते हैं, वे उनमें मिलते ही नहीं। अतएव 'व्रत-परिचय' में प्रत्येक वाक्यके साथ जो नाम दिये गये हैं, वे सब उपर्युक्त ग्रन्थोंके ही हैं और विशेषज्ञ उनके मूल ग्रन्थोंको देखनेकी अपेक्षा

उपर्युक्त संग्रह-ग्रन्थोंमें ही देख सकते हैं। पृष्ठ-संख्या इस कारण नहीं दी है कि बहुत-से वाक्य एक ही ग्रन्थमें अनेक जगह आये हैं।

तिथ्यादिका निर्णय

(१६) सूर्योदयकी तिथि यदि दोपहरतक न रहे तो वह 'खण्डा'[१] होती है, उसमें व्रतका आरम्भ और समाप्ति दोनों वर्जित हैं और सूर्योदयसे सूर्यास्तपर्यन्त रहनेवाली तिथि 'अखण्डा'[२] होती है। यदि गुरु और शुक्र अस्त न हुए हों तो उसमें व्रतका आरम्भ अच्छा है। जिस व्रतसम्बन्धी[३] कर्मके लिये शास्त्रोंमें जो समय नियत है, उस समय यदि व्रतकी तिथि मौजूद हो तो उसी दिन उस तिथिके द्वारा व्रतसम्बन्धी कार्य ठीक समयपर करना चाहिये। तिथिका क्षय और वृद्धि व्रतका निश्चय करनेमें कारण नहीं हैं।

(१७) जो तिथि व्रतके[४] लिये आवश्यक नक्षत्र और योगसे युक्त हो, वह यदि तीन मुहूर्त हो तो वह भी श्रेष्ठ होती है। जन्म[५] और मरणमें तथा व्रतादिकी पारणामें तात्कालिक तिथि ग्राह्य है; किंतु बहुत-से व्रतोंकी पारणामें विशेष निर्णय किया जाता है, वह यथास्थान दिया है। जिस[६] तिथिमें सूर्य उदय या अस्त हो, वह तिथि स्नान-दान-जपादिमें सम्पूर्ण उपयोगी होती है। पूर्वाह्ण[७] देवोंका, मध्याह्न

---

१. उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद् दिनमध्यगा।
सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम्॥ (हेमाद्रि व्रतखण्ड सत्यव्रत)

२. खखण्डव्यापिमार्तण्डा यद्यखण्डा भवेत् तिथिः।
व्रतप्रारम्भणं तस्यामनस्तगुरुशुक्रयुक्॥ (हेमाद्रि वृद्ध वसिष्ठ)

३. कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः।
तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥ (वृद्ध याज्ञवल्क्य)

४. या तिथिर्ऋक्षसंयुक्ता या च योगेन नारद।
मुहूर्त्तत्रयमात्रापि सापि सर्वा प्रशस्यते॥ (गोभिल)

५. पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता॥ (नारदीय)

६. यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।
सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु॥ (देवल)

७. पूर्वाह्णो वै देवानां मध्याह्नो मनुष्याणामपराह्णः पितॄणाम्॥ (श्रुति)

मनुष्योंका और अपराह्ण पितरोंका समय है। जिसका जो समय हो, उसका पूजनादि कर्म उसी समयमें करना चाहिये।

(१८) आजके सूर्योदयसे कलके सूर्योदयतक एक दिन होता है। उसके दिन और रात्रि दो भाग हैं। पहले भाग (दिन)-में प्रातःसंध्या और मध्याह्नसंध्या तथा दूसरे भाग (रात्रि)-में सायाह्न और निशीथ हैं। इनके अतिरिक्त पूर्वाह्ण[1], मध्याह्न, अपराह्ण और सायाह्नरूपमें चार भाग माने हैं। व्यासजीने दिनभरके पाँच भाग निश्चित किये हैं।

(१९) सूर्योदयसे तीन-तीन मुहूर्तके प्रातःकाल, संगव, मध्याह्न, अपराह्ण और सायाह्न—ये पाँच भाग हैं। त्रिंशद्घटी प्रमाणके दिनमानका पंद्रहवाँ हिस्सा एक मुहूर्त होता है। यदि दिनमान ३४ घड़ीके हों, तो सवा दो और २६ के हों, तो पौने दोका मुहूर्त होता है। निर्णयमें मुहूर्त और उपर्युक्त दिनविभाग आवश्यक होते हैं।

(२०) प्रदोषकाल[2] सूर्यास्तके बाद दो घड़ीतक माना गया है और उषःकाल सूर्योदयसे पहले रहता है। दानादिमें[3] पूर्वाह्ण देवोंका, मध्याह्न मनुष्योंका, अपराह्ण पितरोंका और सायाह्न राक्षसोंका समय है। अतः यथायोग्य कालमें दानादि देनेसे यथोचित फल मिलता है।

(२१) व्रतके[4] अधिकारी कौन हैं? इस विषयमें धर्मशास्त्रोंकी आज्ञा है कि जो अपने वर्णाश्रमके आचार-विचारमें रत रहते हों, निष्कपट, निर्लोभ, सत्यवादी, सम्पूर्ण प्राणियोंका हित चाहनेवाले, वेदके

---

१. पूर्वाह्णः प्रथमं सार्धं मध्याह्नः प्रहरं तथा।
आतृतीयादपराह्णः सायाह्नश्च ततः परम्॥ (गोभिल)

२. प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते। (तिथ्यादि तत्त्वम्)

३. पूर्वाह्णो दैविकः कालो मध्याह्नश्चापि मानुषः।
अपराह्णः पितॄणां तु सायाह्नो राक्षसः स्मृतः॥ (व्यास)

४. निजवर्णाश्रमाचारनिरतः शुद्धमानसः।
अलुब्धः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः॥

अनुयायी, बुद्धिमान् तथा पहलेसे निश्चय करके यथावत् कर्म करनेवाले हों ऐसे मनुष्य व्रताधिकारी होते हैं।

(२२) उपर्युक्त गुणसम्पन्न[१] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री और पुरुष सभी अधिकारी हैं। केवल सौभाग्यवती स्त्रियोंके लिये यह[२] लिखा है कि पतिकी सेवाके सिवा उनके लिये न कोई यज्ञ है, न व्रत है और न उपासना है। वे पतिकी सेवासे ही स्वर्गादि अभीष्ट लोकोंमें जा सकती हैं। फिर भी वे चाहें तो पतिकी अनुमतिसे करें; क्योंकि[३] पत्नी पतिकी आज्ञा माननेवाली होती है। अतः उसके लिये पतिका व्रत ही कल्याणकारी है। अस्तु, शास्त्रकारोंकी व्रतादिके विषयमें यह आज्ञा है कि उनका आरम्भ श्रेष्ठ समयमें किया जाय।

(२३) बृहस्पति[४] और शुक्रका अस्त तथा अस्त होनेके पहलेके तीन दिन वृद्धत्वके और उदय होनेके बादके तीन दिन बालत्वके व्रतारम्भमें वर्जित हैं। ऐसे अवसरमें व्रतादिका आरम्भ और उत्सर्ग नहीं करना चाहिये। इनके सिवा भद्रादि कुयोग और मलमासादि भी त्याज्य हैं। किसी भी व्रतके आरम्भमें सोम[५], शुक्र, बृहस्पति और बुधवार हों तो सब कामोंमें सफलता प्राप्त कराते हैं और इनके साथ अश्विनी,[६] मृगशिरा, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा, अनुराधा और रेवती नक्षत्र, प्रीति, सिद्धि, साध्य, शुभ, शोभन और आयुष्मान् योग हों तो सब प्रकारका सुख देते हैं।

---

१. पूर्वं निश्चयमाश्रित्य यथावत्कर्मकारकः।
अवेदनिन्दको धीमानधिकारी व्रतादिषु॥ (स्कन्दपुराण)

२. नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
भर्तृशुश्रूषयैवैता लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि॥ (स्कन्दपुराण)

३. पत्नी पत्युरनुज्ञाता व्रतादिष्वधिकारिणी। (व्यास)

४. अस्तगे च गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे।
उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत्॥ (गार्ग्य)

५. सोमशुक्रगुरुसौम्यवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः। (रत्नमाला)

६. हस्तमैत्रमृगपुष्यत्र्युत्तरा अश्विपौष्णशुभयोगसौख्यदाः। (मुक्तकसंग्रह)

(२४) व्रत करनेवाला व्रतके आरम्भके पहले दिन मुण्डन कराये और शौच-स्नानादि नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर आगामी दिनमें जो व्रत किया जाय, उसके उपयोगी व्यवस्था करे। मध्याह्नमें एकभुक्त व्रत करके रात्रिमें सोत्साह शयन करे। दूसरे दिन उषःकालमें (सूर्योदयसे दो मुहूर्त पहले) उठकर शौच-स्नानादि करके प्रातःकालका[१] भोजन बिना किये ही सूर्य और व्रतके देवताको अपनी अभिलाषा निवेदन करके व्रतका आरम्भ करे।

(२५) आरम्भमें[२] गणपति, मातृका और पंचदेवका पूजन करके नान्दीश्राद्ध करे और व्रत-देवताकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाकर उसका पंचोपचार, दशोपचार या षोडशोपचार पूजन करे। मास, पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्रादिमें जिसका व्रत हो उसका अधिष्ठाता ही 'व्रतका[३] देवता' होता है। अतः प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीयादिके यथाक्रम अग्नि, ब्रह्मा, गौरी आदि और अश्विनी, भरणी, कृत्तिकादिके नासत्य (अश्विनीकुमार), यम और अग्नि आदि तथा वारोंके सूर्य, सोम, भौमादि अधिष्ठाता हैं।

(२६) उपर्युक्त प्रकारसे (जिस अवधिका व्रत हो उस अवधितक) यथाविधि व्रत करके उसके समाप्त होनेपर वित्तानुसार उद्यापन[४] करे। उद्यापन किये बिना व्रत निष्फल होता है। कौन व्रत किस प्रकार किया जाता है, किस व्रतकी कितनी अवधि होती है और किस व्रतका कैसा उद्यापन किया जाता है—ये सब बातें आगे प्रत्येक व्रतके साथ संयुक्त की जायँगी और वहीं उनके विधि-विधानादि बतलाये जायँगे।

---

१. अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाऽऽचम्य समाहितः।
सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत्॥ (देवल)

२. व्रतारम्भे मातृपूजां नान्दीश्राद्धं च कारयेत्॥ (शातातप)

३. स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः
पूज्याः सुवर्णमय्याद्या दानं दद्याद् द्विजानपि॥ (पृथ्वीचन्द्रोदय)

४. कुर्यादुद्यापनं चैव समाप्तौ यदुदीरितम्।
उद्यापनं विना यत्तु तद्व्रतं निष्फलं भवेत्॥ (नन्दिपुराण)

(२७) व्रतीको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि व्रत आरम्भ करनेके बाद यदि क्रोध[१], लोभ, मोह या आलस्यवश उसे अधूरा छोड़ दे तो तीन दिनतक अन्नका त्याग करके फिर उस व्रतका आरम्भ करे।

(२८) व्रतके समय बार-बार[२] जल पीने, दिनमें सोने, ताम्बूल चबाने और स्त्री-सहवास करनेसे व्रत बिगड़ जाता है। व्रतके[३] दिनोंमें स्तेय (चोरी) आदिसे वर्जित रहकर क्षमा, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निहोत्र और संतोषके काम करने उचित और आवश्यक हैं।

(२९) जल[४], फल, मूल, दूध, हवि, ब्राह्मणकी इच्छा, ओषधि और गुरु (पूज्यजनों)-के वचन—इन आठसे व्रत नहीं बिगड़ते। होमावशिष्ट[५] खीर, भिक्षाका अन्न, सत्तू (सेके हुए जौका चूर्ण), कण (गोरैड़ या तृणपुष्प), यावक (जौ), शाक (तोरों, ककड़ी, मेथी आदि), गोदुग्ध, दही, घी, मूल, आम, अनार, नारंगी और कदलीफल आदि खानेयोग्य हविष्य हैं।

---

१. क्रोधात् प्रमादाल्लोभाद् वा व्रतभंगो भवेद् यदि।
दिनत्रयं न भुंजीत············॥ (गरुड)
············पुनरेव व्रती भवेत्॥ (वायुपुराण)

२. असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलभक्षणात्।
उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्॥ (विष्णु)

३. क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहवनं संतोषः स्तेयवर्जनम्॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्थितः॥ (भविष्यपुराण)

४. अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥ (पद्मपुराण)

५. चरुभैक्ष्यसक्तुकणयावकशाकपयोदधिघृतमूलफलादीनि।
हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि॥ (गौतम)

(३०) व्रतमें गन्ध[1], पुष्प, माला, वस्त्र और व्रतयोग्य अलंकारादि ग्राह्य हैं। व्रत-पूजा या हवनादिमें केवल[2] एक वस्त्र (धोती आदि) पहनकर या बहुत वस्त्र धारणकर मन्त्रादिके जप करना या होमादि करना उचित नहीं। व्रत करनेवाला पुरुष हो या सुवासिनी (स्त्री) हो, सम्पूर्ण व्रतोंमें लाल[3] वस्त्र और सुगन्धित सफेद पुष्प धारण करे। वर्णभेदसे ब्राह्मणोंके[4] सफेद, क्षत्रियोंके मजीठ-जैसे, वैश्योंके पीले और शूद्रोंके नीले अथवा बिना रंगके वस्त्र अनुकूल होते हैं और धोती त्रिकच्छ[5] (जिसमें नीचेका पल्ला पृष्ठपर और आगेके पल्लेका ऊपरका हिस्सा नाभिके नीचे और नीचेका हिस्सा बायें पसवाड़ेमें लगाया जाता है) उत्तम मानी गयी है। ऐसी धोती बाँधनेवाले ब्राह्मण मुनि होते हैं। इसके अतिरिक्त ध्वजप्रयुक्त, ग्रन्थियुक्त और यवनोंके समान दोनों पल्ले खुली हुई धोती वर्जित है।

(३१) व्रत करनेवाले मोहवश बिना आचमन किये क्रिया करें, तो उनका व्रत वृथा होता है। नहाते-धोते, खाते-पीते, सोते, छींक लेते समय और गलियोंमें घूमकर आनेपर आचमन[6] किया हुआ हो तो भी दुबारा

---

१. गन्धालंकारवस्त्राणि पुष्पमालानुलेपनम्। (वृद्धशातातप)

२. नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवासाकुलोऽपि वा।

३. सर्वेषु तूपवासेषु पुमान् वाथ सुवासिनी।
धारयेद् रक्तवस्त्राणि कुसुमानि सितानि च॥ (विष्णुधर्म)

४. ब्राह्मणस्य सितं वस्त्रं मांजिष्ठं नृपतेः स्मृतम्।
पीतं वैश्यस्य शूद्रस्य नीलं मलवदिष्यते॥ (मनु)

५. वामकुक्षौ च नाभौ च पृष्ठे चैव यथाक्रमम्।
त्रिकच्छेन समायुक्तो द्विजोऽसौ मुनिरुच्यते॥ (याज्ञवल्क्य)

६. स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे।
आचान्तः पुनराचामेद् वासो विपरिधाय च॥ (याज्ञवल्क्य)
संहतांगुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः।
मुक्तांगुष्ठकनिष्ठेन शेषेणाचमनं चरेत्॥ (नागदेव)

आचमन करे। यदि जल न मिले तो दक्षिण कर्णका स्पर्श कर ले, आचमन लेते समय दाहिने हाथकी अंगुलियोंको मिलाकर सीधी करे और उनमेंसे कनिष्ठा तथा अँगूठेको अलग रखकर आचमन करे अथवा—दाहिने[१] हाथके पोरुओंको बराबर करके हाथको गौके कान-जैसा बनाकर आचमन करे। (लोक-व्यवहारमें आचमनादिके भूल जानेपर दाहिना कान छुआ करते हैं।)

(३२) अधोवायुके[२] निकल जाने, आक्रन्द (रोने), क्रोध करने, बिल्ली और चूहेसे छू जाने, जोरसे हँसने और झूठ बोलनेपर जलस्पर्श करना आवश्यक होता है। उपवासमें[३] और श्राद्धमें दतौन नहीं करना चाहिये। यदि अधिक आवश्यक हो तो जलके बारह कुल्ले करें—अथवा आमके पल्लव,[४] जल या अँगुलीसे दाँतोंको साफ कर लें। व्रत[५] करनेवालेको बैल, ऊँट और गदहेकी सवारी नहीं करनी चाहिये।

(३३) बहुत[६] दिनोंमें समाप्त होनेवाले व्रतका पहले संकल्प कर लिया हो तो उसमें जन्म और मरणका सूतक नहीं लगता। इसी

---

१. आयतं पर्वणां कृत्वा गोकर्णाकृतिवत् करम्।
एतेनैव विधानेन द्विजो ह्याचमनं चरेत्॥ (भारद्वाज)

२. अधोवायुसमुत्सर्गे आक्रन्दे क्रोधसम्भवे।
मार्जारमूषकस्पर्शे प्रहासेऽनृतभाषणे॥
निमित्तेष्वेषु सर्वेषु कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत्। (बृहस्पति)

३. उपवासे तथा श्राद्धे न खादेद् दन्तधावनम्। (स्मृत्यन्तर)
अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तिथौ तथा।
अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद् दन्तधावनम्॥ (व्यास)

४. पर्णोदकेनांगुल्या वा दन्तान् धावयेत्.....। (स्मृत्यर्थसार)

५. गोयानमुष्ट्रयानं च कथंचिदपि नाचरेत्।
खरयानं च सततं व्रते चाप्युपसंकरम्॥ (स्मृत्यन्तर)

६. बहुकालिकसंकल्पो गृहीतश्च पुरा यदि।
सूतके मृतके चैव व्रतं तन्नैव दुष्यति॥ (शुद्धितत्त्व—विष्णु)

प्रकार किसी[१] कामनाके व्रतमें सूतक आ जाय, तो दान और पूजनके सिवा व्रतमें बाधा नहीं आती। कई व्रत ऐसे हैं, जिनमें दान, व्रत और पूजन तीनों होते हैं। यथा—गणेश-चतुर्थी, अनन्त-चतुर्दशी और अर्कसप्तमी आदिमें व्रतेश्वरकी पूजा, वायन आदिका दान और अभीष्टका व्रत तीनों हैं। ऐसे व्रतोंमें अशौच आनेपर व्रत करता रहे—दान और पूजा न करे। इसी प्रकार—

(३४) बड़े व्रतका[२] प्रारम्भ करनेपर स्त्री रजस्वला हो जाय, तो उससे भी व्रतमें कोई रुकावट नहीं होती। अशौचके माननेमें सपिण्ड, साकुल्य और सगोत्र—इन तीनोंका निश्चय आवश्यक होता है। तीन पीढ़ीतक सपिण्ड, दस पीढ़ीतक साकुल्य और इससे आगे सगोत्र पीढ़ी माने जाते हैं। इनमें सामान्यरूपसे सपिण्डमें दस दिन, साकुल्यमें तीन दिन और सगोत्रमें एक दिन अथवा स्नानमात्र सूतक रहता है। लम्बे व्रतोंमें इससे बाधा नहीं होती।

(३५) व्रतमें[३], तीर्थयात्रामें, अध्ययनकालमें तथा विशेषकर श्राद्धमें दूसरेका अन्न लेनेसे जिसका अन्न होता है, उसीको उसका पुण्य प्राप्त हो जाता है। आपत्ति अथवा असामर्थ्यवश यात्रा और व्रतादि धर्मकार्य अपनेसे न हो सके तो पति[४], पत्नी, ज्येष्ठ पुत्र, पुरोहित, भाई या मित्रको प्रतिहस्तक

---

१. काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके।
तत्र काम्यव्रतं कुर्याद् दानार्चनविवर्जितम्॥ (कूर्मपुराण)

२. प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद् रजो भवेत्।
न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन॥ (सत्यव्रत)

३. व्रते च तीर्थेऽध्ययने श्राद्धेऽपि च विशेषतः।
परान्नभोजनाद् देवि यस्यान्नं तस्य तत्फलम्॥ (टोडरानन्द)

४. भर्ता पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी सखापि च।
यात्रायां धर्मकार्येषु कर्तव्याः प्रतिहस्तकाः॥ (मदनरत्न, प्रभासखण्ड)
पुत्राद् वा कारयेदाद्याद् ब्राह्मणाद् वापि कारयेत्। (वायुपुराण)

(प्रतिनिधि या एवजी) बनाकर उनसे करावे। उपर्युक्त प्रतिनिधि प्राप्त न हो तो वह काम ब्राह्मणसे हो सकता है।

(३६) प्रातः-सायं[१] (संध्या) और संधियोंमें, जप, भोजन और दतौनमें, मूत्र और पुरीषके त्यागमें, पितृकार्य तथा देवकार्यमें और दान, योग तथा गुरुके समीपमें मौन रहनेसे मनुष्यको स्वर्ग मिलता है— '**मौनं सर्वार्थसाधकम्।**' दान[२], होम, आचमन, देवार्चन, भोजन, स्वाध्याय और पितृतर्पण—ये 'प्रौढपाद' (ऊकड़ू) बैठकर न करे। प्रौढपाद[३] तीन प्रकारका होता है, एक यह कि पाँवोंके तलवे आसनपर रखकर—दोनों घुटने मिलाके पींडियोंको जाँघोंसे लगाकर बैठे। दूसरा—दोनों घुटने आसनपर लगाकर एड़ियोंपर आरूढ़ हो और तीसरा यह है कि दोनों पैर सीधे फैलाकर जाँघें आसनपर लगावे। ये तीनों ही निषिद्ध हैं।

(३७) कन्या[४], शय्या (सुख-शय्या), मकान, गौ और स्त्री—ये एकहीको देने चाहिये; बहुतोंको देनेपर हिस्सा होनेसे पाप लगता है। व्रतमें रहकर प्राणरक्षाके अर्थसे जल पीवे। फल, मूल, दूध, जौ, यज्ञशिष्ट तथा हवि खाय; रोग-पीड़ामें वैद्यकी बतलायी हुई औषध ले और ब्राह्मणकी अभिलाषा सिद्ध करे तो अति शीघ्र और गुरुके वचनसे करे। दीर्घ या

---

१. संध्ययोरुभयोर्जप्ये भोजने दन्तधावने।
पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः।
गुरूणां संनिधौ दाने योगे चैव विशेषतः।
एषु मौनं समातिष्ठन् स्वर्गं प्राप्नोति मानुषः॥ (अंगिरा)

२. दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम्।
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥ (शाट्यायन)

३. आसनारूढपादस्तु जान्वोर्वा जंघयोस्तथा।
कृतावसिक्थको यश्च प्रौढपादः स उच्यते॥ (शाट्यायन)

४. कन्या शय्या गृहं चैव देयं यद् गोस्त्रियादिकम्।
एका एकस्य दातव्या न बहुभ्यः कथंचन॥ (कात्यायन)

अदीर्घ सभी व्रतोंकी पारणासे पूर्ति और उद्यापनसे समाप्ति जाननी चाहिये। कदाचित् ये दोनों न किये जायँ, तो व्रत निष्फल हो जाता है।

(३८) पारणाका निर्णय और उद्यापनका विधान आगे प्रत्येक व्रतके साथ दिये गये हैं। इनके सिवा विशेष बातें धर्मशास्त्रोंसे जानी जा सकती हैं। व्रतोंमें बहुत-से व्रत ऐसे हैं जो व्रत, पूजा और दान—तीनोंके सहयोगसे सम्पन्न होते हैं। उनके विषयके कुछ आवश्यक वाक्य यहाँ देते हैं।

(१) 'ब्राह्मण'[1] शान्त, संत, सुशील, अक्रोधी और प्राणिमात्रका हित करनेवाला श्रेष्ठ होता है।

(२) 'ब्राह्मणके[2] कर्म' अग्निहोत्र, तपश्चर्या, सत्यवाक्य, वेदाज्ञाका पालन, अतिथि-सत्कार और वैश्वदेव-साधन मुख्य हैं।

(३) 'यज्ञोपवीत'[3] त्रैवर्णिकोंके और विशेषकर ब्राह्मणोंके स्वरूपज्ञानका आदर्श और धर्म-कर्मादिका साधन है। यह सूत, रेशम, गोबाल (सुरगौके रोम), सन, वल्कल और तृणपर्यन्तसे निर्माण किया जाता है। इनसे बने हुए यज्ञोपवीत कार्यानुसार उपयुक्त होते हैं। सूतका सर्वप्रधान है। उसके बनानेके लिये सूतके धागेको वामावर्तसे तिगुना करके दक्षिणावर्तसे नौगुना करे और उसे त्रिसर बनाकर गाँठ लगावे।

(४) 'यज्ञोपवीत'[4] धारण करते समय '**यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं०**'

---

१. शान्तः सन्तः सुशीलश्च सर्वभूतहिते रतः।
क्रोधं कर्तुं न जानाति स वै ब्राह्मण उच्यते॥ (धन्वन्तरि)

२. अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते॥ (अंगिरा)

३. कार्पासक्षौमगोबालशणवल्कतृणादिभिः । (हरिहरभाष्य)
वामावर्तं त्रिगुणितं कृत्वा प्रदक्षिणावर्तं नवगुणं विधाय तदेवं त्रिसरं कृत्वा ग्रन्थिं विदध्यात्। (ह० ह०)

४. यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥ (ब्रह्मकर्म०)

का उच्चारण करे और विसर्जनके समय '**एतावद्दिनपर्यन्तं०**' से क्षमा माँगे। बायें कंधेपर यज्ञोपवीत रहनेसे सव्य और दायेंपर रहनेसे अपसव्य होता है तथा दोनोंके बदले गलेमें रहनेसे कण्ठीवत् हो जाता है। मूत्रादिके त्यागनेमें इसे कर्णस्थ रखना आवश्यक है और इसके बिना मल-मूत्रका त्याग करना निषिद्ध माना गया है।

(५) 'यज्ञोपवीत' को स्वाभाविक रूपमें बायें कंधेके ऊपर और दाहिने हाथके नीचे नाभितक लटकाये रखना चाहिये। नित्य-कर्मादिमें दो वस्त्र (धोती और गमछा) एवं दो यज्ञोपवीत (एक नित्यका और एक कार्यका) रखना चाहिये। यदि गमछा न हो तो तीन यज्ञोपवीत होने चाहिये। धारण किये हुए यज्ञोपवीतको चार मास हो जायँ या जन्म-मरणादिका सूतक आ जाय तो उसे बदल देना चाहिये।[१]

(६) 'कलश'[२] सोने, चाँदी, ताँबे या (छेदरहित) मिट्टीका और सुदृढ़ उत्तम माना गया है। वह मंगलकार्योंमें मंगलकारी होता है।

(७) 'जल'[३] नदी आदिका बहता हुआ 'ब्राह्मण', सरोवर आदिका बँधा हुआ 'क्षत्रिय', कूपादिका ढँका हुआ 'वैश्य' और घरके बर्तनोंमें रखा हुआ 'शूद्र' वर्ण माना गया है। अतः व्रतोपवासादिमें पवित्र जल लेना आवश्यक है।

(८) 'दुग्धत्रितय'[४] में दूध, दही और घी हैं। ये गौके उत्तम,

एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्म त्वं धारितं मया।
जीर्णत्वात् त्वं परित्यक्तो गच्छ सूत्र यथासुखम्॥ (आह्निक)

१. सूतके मृतके चैव गते मासचतुष्टये।
नवयज्ञोपवीतानि धृत्वा पूर्वाणि संत्यजेत्॥ (मुक्तक)

२. हैमो वा राजतस्ताम्रो मृण्मयो वापि ह्यव्रणः। (कर्मप्रदीप)

३. प्रवाहितं ब्रह्मतोयं क्षात्रतोयं सरोवरम्।
कूपोदकं वैश्यतोयं गृहभाण्डेषु शूद्रवत्॥ (मुक्तक)

४. पयो दधि घृतं गव्यं दुग्धत्रितयमिष्यते। (गौतम)

महिषीके मध्यम और बकरी आदिके निकृष्ट होते हैं। रोगादिमें यथायोग्य सब उपयोगी हैं।

(९) 'मधुरत्रय'[१] में घी, दूध और शहद मुख्य हैं।

(१०) 'मधुपर्क'[२] दही एक भाग, शहद दो भाग और घी एक भाग मिलानेसे होता है।

(११) 'कालत्रय'[३] प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल हैं।

(१२) 'कालचतुष्टय'[४]—रात्रि व्यतीत होते समय ५५ घड़ीपर 'उषःकाल', ५७ पर 'अरुणोदय', ५८ पर 'प्रातःकाल' और ६० पर 'सूर्योदय' होता है। इसके पहले पाँच घड़ीका 'ब्राह्ममुहूर्त' ईश्वर-चिन्तनका है।

(१३) 'वेद' ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—ये चार वेद[५] हैं।

(१४) 'उपवेद' आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व और स्थापत्य—ये उनके यथाक्रम उपवेद और ईति, धृति, शिवा और शक्ति—ये योषिता हैं।

(१५) 'चतुःसम'[६]—कपूर, चन्दन, कस्तूरी और केसर—ये चारों समान भागमें होनेपर 'चतुःसम' कहलाते हैं।

(१६) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण 'चातुर्वर्ण्य'[७] हैं।

(१७) 'पंचदेव'[८]—सूर्य, गणेश, शक्ति, शिव और विष्णु आराध्य

---

१. आज्यं क्षीरं मधु तथा मधुरत्रयमुच्यते। (कात्यायन)
२. दधिमधुघृतानि विषमभागमिलितानि मधुपर्कः। (कर्मप्रदीप)
३. प्रातर्मध्याह्नसायाह्नास्त्रयः कालाः। (श्रुति)
४. पंच पंच उषःकालः सप्तपंचारुणोदयः।
अष्ट पंच भवेत् प्रातस्ततः सूर्योदयः स्मृतः॥ (विष्णु)
५. ऋग्यजुःसामाथर्वाणि ।
आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं शिल्पकं तथा॥ (मुक्तक)
६. कर्पूरं चन्दनं दर्पः कुंकुमं च चतुःसमम्। (गृह्यपरिशिष्ट)
७. ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः सुप्रसिद्धाः।
८. आदित्यो गणनाथश्च देवी रुद्रश्च केशवः। (वाचस्पति)

हैं। इनकी गणना विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और शक्ति—इस क्रमसे भी की जाती है। इनकी प्रदक्षिणामें एक गणेशजीके, दो सूर्यके, तीन शक्तिके, चार विष्णुके और आधी शिवके नियत हैं।

(१८) 'पंचोपचार'[१]—गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य अर्पण करनेसे पंचोपचार पूजा होती है।

(१९) 'पंचनदी'[२]—भागीरथी, यमुना, सरस्वती, गोदावरी और नर्मदा—ये पाँच मुख्य नदियाँ हैं।

(२०) 'पंचपल्लव'[३]—पीपल, गूलर, अशोक (आशोपालो), आम और वट—इनके पत्ते पंचपल्लव हैं।

(२१) 'पंचपुष्प'[४] —चमेली, आम, शमी (खेजड़ा), पद्म (कमल) और करवीर (कनेर)-के पुष्प—पंचपुष्प हैं।

(२२) 'पंचगन्ध'[५] —चूर्ण किया हुआ, घिसा हुआ, दाहसे खींचा हुआ, रससे मथा हुआ और प्राणीके अंगसे पैदा हुआ (कस्तूरी)—ये पंचगन्ध हैं।

(२३) 'पंचगव्य'[६] —ताँबेके वर्ण-जैसी गौका गोमूत्र '**गायत्री**' से ८ भाग, लाल गौका गोबर '**गन्धद्वारां०**' से १६ भाग, सफेद गौका दूध

---

१. गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं पंच ते क्रमात्॥ (जाबालि)

२. भागीरथी समाख्याता यमुना च सरस्वती।
किरणा धूतपापा च पंचनद्यः प्रकीर्तिताः॥ (वाचस्पति)

३. अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः। (ब्रह्माण्डपुराण)

४. चम्पकाम्रशमीपद्म करवीरं च पंचमम्। (देवीपुराण)

५. चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा दाहकर्षित एव वा।
रसः सम्मर्दजो वापि प्राण्यंगोद्भव एव वा॥ (कालीपुराण)

६. गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। (पाराशर)
ताम्रारुणश्वेतकृष्णनीलानामाहरेद् गवाम्॥
(वीरमित्रोदय—स्कन्दपुराण)

'**आप्यायस्व०**' से १२ भाग, काली गौका दही '**दधि क्राव्णो०**' से १० भाग और नीली गौका घी '**तेजोऽसि शुक्र०**' से ८ भाग लेकर मिलाने और फिर उन्हें छान लेनेसे पंचगव्य होता है। इस प्रकारसे तैयार किये हुए पंचगव्यको '**यत् त्वगस्थिगतं पापं०**' से तीन बार पीवे, तो देहके सम्पूर्ण पाप-ताप, रोग और वैर-भाव नष्ट हो जाते हैं।

(२४) 'पंचामृत'[१]—गौके दूध, दही और घीमें चीनी और शहद मिलाकर छाननेसे पंचामृत बनता है और इसका यथाविधि उपयोग करनेसे शान्ति मिलती है।

(२५) 'पंचरत्न'[२]—सोना, हीरा, नीलमणि, पद्मराग और मोती—ये पाँच रत्न हैं।

(२६) 'पंचांग'[३] तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करणका ज्ञापक है। इससे व्रतादि निश्चय होते हैं।

(२७) 'षट्कर्म'[४] —१—स्नान, २—संध्या-जप, ३—होम, ४—पठनपाठन, ५—देवार्चन और ६—वैश्वदेव तथा अतिथि-सत्कार— ये छः कर्म हैं। द्विजातिमात्रके लिये इनका करना परम आवश्यक है।

अष्ट षोडश अर्कांशा दश अष्ट क्रमेण च। (नृसिंह)
गायत्र्या गन्धद्वारां च आप्यायदधिक्रावण:।
तेजोऽसिशुक्रमन्त्रैश्च पंचगव्यमकारयेत्॥ (स्कन्द)
यत् त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके।
प्राशनात् पंचगव्यस्य दहत्वग्निरिवेन्धनम्॥ (ब्रह्मकर्म)

१. गव्यमाज्यं दधि क्षीरं माक्षिकं शर्करान्वितम्। (धन्वन्तरि)
२. कनकं हीरकं नीलं पद्मरागश्च मौक्तिकम्। (बृहन्निघण्टु)
३. तिथिवारं च नक्षत्रं योगं करणमेव च।
पंचांगमिति विख्यातं .... (धर्मसार)
४. स्नानं संध्या जपो होम: स्वाध्यायो देवतार्चनम्।
वैश्वदेवातिथेयश्च षट् कर्माणि .... ॥ (पराशर)

(२८) 'षडंग'[१]—हृदय, मस्तक, शिखा, दोनों नेत्र, दोनों भुजा और परस्पर कर-स्पर्श षडंग हैं।

(२९) 'वेद[२]-षडंग'—कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, शिक्षा और ज्यौतिष—ये छः शास्त्र वेदके अंग हैं।

(३०) 'सप्तर्षि'[३]—कश्यप, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, जमदग्नि, वसिष्ठ और विश्वामित्र—ये सप्तर्षि हैं।

(३१) 'सप्तगोत्र'[४]—पिता, माता, पत्नी, बहिन, पुत्री, फूआ और मौसी—ये सात गोत्र (कुटुम्ब) हैं।

(३२) 'सप्तमृद्'[५]—हाथी-घोड़ेके चलनेका रास्ता, संकुचित मार्ग, दीमक, सरिता-संगम, गोशाला और राजद्वारमें प्रवेश करनेकी जगह—इन स्थानोंकी मृत्तिका सप्तमृद् हैं।

(३३) 'सप्तधान्य'[६]—जौ, गेहूँ, धान, तिल, काँगनी, श्यामाक (सावाँ) और देवधान्य—ये सप्तधान्य हैं।

(३४) 'सप्तधातु'[७]—सोना, चाँदी, ताँबा, आरकूट, लोहा, राँगा और सीसा—ये सप्तधातु हैं।

---

१. वक्षः शिरः शिखा बाहू नेत्रम् अस्त्राय फट् इति॥ (मुक्तक)

२. शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तच्छन्दोज्योतींषि वेदषडंगानि। (कारिका)

३. कश्यपोऽथ भरद्वाजो गौतमश्चात्रिरेव च।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रो……॥ (वाचस्पति)

४. पितुर्मातुश्च भार्याया भगिन्या दुहितुस्तथा।
पितृष्वसामातृष्वस्रोर्गोत्राणां सप्तकं स्मृतम्॥ (धाता)

५. गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्ध्रदगोकुलात्।
राजद्वारप्रवेशाच्च मृदमानीय निःक्षिपेत्॥ (स्मृतिसंग्रह)

६. यवगोधूमधान्यानि तिलाः कंगुस्तथैव च।
श्यामाकं देवधान्यं च सप्तधान्यमुदाहृतम्॥ (स्मृत्यन्तर)

७. सुवर्णं राजतं ताम्रमारकूटं तथैव च।
लौहं त्रपु तथा सीसं धातवः सप्त कीर्तिताः॥ (भविष्यपुराण)

(३५) 'अष्टांग[1] अर्घ्य'—जल, पुष्प, कुशाका अग्रभाग, दही, अक्षत, केसर, दूर्वा और सुपारी—इन आठ पदार्थोंसे अर्घ्य सम्पादन किया जाता है।

(३६) 'अष्ट[2] महादान'—कपास, नमक, घी, सप्तधान्य, सुवर्ण, लौह, पृथ्वी और गौ—ये महादान हैं।

(३७) 'नवरत्न'[3]—माणिक, मोती, मूँगा, सुवर्ण, पुखराज, हीरा, इन्द्रनील, गोमेद और वैदूर्यमणि—ये नवरत्न हैं। इनके धारण करने या दान देनेसे सूर्यादिकी प्रसन्नता बढ़ती है।

(३८) 'दशौषधि'[4]—कूट, जटामांसी, दोनों हलदी, मुरा, शिलाजीत, चन्दन, बच, चम्पक और नागरमोथा—ये दस द्रव्य सर्वौषधिके हैं।

(३९) 'दस[5] दान'—गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घी, वस्त्र, धान्य, गुड़, चाँदी और लवण—ये दस दान हैं।

(४०) 'नमस्कार'[6]—अभिवादनके समय जो मनुष्य दूर हो, जलमें

---

१. दधिदूर्वाकुशाग्रैश्च कुसुमाक्षतकुंकुमैः।
सिद्धार्थोदकपूगैश्च अष्टांगं ह्यर्घ्यमुच्यते॥ (पूजापद्धति)

२. कार्पासं लवणं सर्पिः सप्तधान्यं सुवर्णकम्।
लौहं चैव क्षितिर्गावो महादानानि चाष्ट वै॥ (दानखण्ड)

३. माणिक्यं मौक्तिकं चैव प्रवालं हेम पुष्पकम्।
वज्रं नीलं च गोमेदं वैदूर्यं नवरत्नकम्॥ (दानखण्ड)

४. कुष्टं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम्।
वचाचम्पकभुस्ताश्च सर्वौषध्यो दश स्मृताः॥ (छन्दोगपरिशिष्ट)

५. गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च।
रौप्यं लवणमित्याहुर्दश दानान्यनुक्रमात्॥ (कर्मसमुच्चय)

६. दूरस्थं जलमध्यस्थं धावन्तं मदगर्वितम्।
क्रोधवन्तं चाशुचिकं नमस्कारं विवर्जयेत्॥

हो, दौड़ रहा हो, धनसे गर्वित हो, नहाता हो, मूढ़ हो या अपवित्र हो तो ऐसी अवस्थामें उसे नमस्कार नहीं करना चाहिये। अस्तु।

(४१) इस प्रकारके आचार-विचार, व्रत-उपवास, पूजा-पाठ और हरिस्मरण—ये सब स्वर्गीय सुख प्राप्त होनेके प्रधान साधन हैं।

(४२) 'यक्षकर्दम'[१]—व्रतादिमें पंचगव्यादिके समान इसका भी उपयोग होता है। यह दो प्रकारसे बनता है। एक केशर, अगर, कस्तूरी और कंकोल—इन चार ओषधियोंके समान भाग लेकर कर्दम बनावे। दूसरेमें कस्तूरी २ भाग, केशर २ भाग, चन्दन ३ भाग और हरिद्रा १ भाग लेकर कर्दम बनावे।

(४३) 'शतकर्दम'—शान्तिसारादिमें शतौषधि (सौ ओषधियों)-के नाम बताये हैं। उन्हींसे शतकर्दम बनता है। सौ कर्णिकाका कमल-पुष्प होता है। मतान्तरमें उसीको शतकर्दम बतलाया है।

(४४) 'ब्रह्मकूर्च'[२]—यज्ञादिमें पंचगव्यादिका हवन ब्रह्मकूर्चसे ही किया जाता है। यह आगेके भागमें गाँठवाली सात हरी दर्भा (दाभ)-से बनता है।

पुष्पहस्तो वारिहस्तस्तैलाभ्यंगो जलस्थितः।
आशीःकर्त्ता नमस्कर्त्ता उभयोर्नरकं भवेत्॥ (कर्मलोचन)

१. (क) 'यक्षकर्दम'—कर्पूरागरुकस्तूरीकंकोलैर्यक्षकर्दमः। (अमरकोश)
(ख) 'यक्षकर्दम'—कस्तूरिकाया द्वौ भागौ द्वौ भागौ कुंकुमस्य च॥
चन्दनस्य त्रयो भागाः शशिनस्त्वेक एव हि। (प्रतिष्ठाप्रकाश)

२. अहोरात्रोषितो भूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः।
पंचगव्यं पिबेत्प्रातर्ब्रह्मकूर्चविधिः स्मृतः॥ (प्रायश्चित्तविवेक)

चैत्रके व्रत

कृष्णपक्ष

आरम्भका निवेदन—प्रत्येक प्रयोजनके सभी व्रत मास[१], पक्ष और तिथि–वारादिके सहयोगसे सम्पन्न होते हैं। मास चार प्रकारके माने गये हैं। वे सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र नामोंसे प्रसिद्ध हैं। उनमें सूर्यसंक्रान्तिके आरम्भसे उसकी समाप्तिपर्यन्तका 'सौर'[२], सूर्योदयसे सूर्योदय–पर्यन्तके एक दिन–जैसे ३० दिनका 'सावन'[३], शुक्ल और कृष्णपक्षका 'चान्द्र'[४] और अश्विनीके आरम्भसे रेवतीके अन्ततकके चन्द्रभोगका 'नाक्षत्र'[५] मास होता है। ये सब प्रयोजनके अनुसार पृथक्–पृथक् लिये जाते हैं—यथा विवाहादिमें[६] 'सौर', यज्ञादिमें 'सावन'[७], श्राद्ध आदिमें 'चान्द्र'[८] और नक्षत्रसत्र (नक्षत्र–सम्बन्धी यज्ञ, यथा श्लेषा–मूलादिजन्मशान्ति)–में 'नाक्षत्र'[९] लिया जाता है।..... मास–गणनामें वैशाख आदिकी अपेक्षा सर्वप्रथम चैत्र क्यों लिया गया? इसका कारण यह है कि सृष्टिके आरम्भ (अथवा ज्योतिर्गणनाके प्रारम्भ)–में चन्द्रमा चित्रापर था—(और चित्रा

---

१. मस्यन्ते परिमीयन्ते चन्द्रवृद्धिक्षयादिना। (मदनरत्न)

२. अर्कसंक्रान्त्यवधिः सौरः।

३. त्रिंशद्दिनः सावनः।

४. पक्षयुक्तश्चान्द्रः। (माधवीय)

५. सर्वर्क्षपरिवर्तैस्तु नाक्षत्रो मास उच्यते। (विष्णु)

६. सौरो मासो विवाहादौ।

७. यज्ञादौ सावनः स्मृतः।

८. आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते। (गर्ग)

९. नक्षत्रसत्राण्यन्यानि नाक्षत्रे च प्रशस्यते। (विष्णु)

चैत्रीको प्रायः[१] होती ही है;) इस कारण अन्य महीनोंकी अपेक्षा चैत्र पहला महीना माना गया है और इसके पीछे वैशाख आदि आते हैं। इस सम्बन्धमें यह भी ज्ञातव्य है कि जिस प्रकार चैत्रीको चित्रा होना सम्भव माना गया है, उसी प्रकार वैशाखीको विशाखा, ज्येष्ठीको ज्येष्ठा, आषाढ़ीको पूर्वाषाढ़ा, श्रावणीको श्रवण, भाद्रीको पूर्वा-भाद्रपद, आश्विनीको अश्विनी, कार्तिकीको कृत्तिका, मार्गशीर्षीको मृगशिरा, पौषीको पुष्य, माघीको मघा और फाल्गुनीको पूर्वाफाल्गुनी होना भी सम्भव सूचित किया गया है। .....प्रत्येक मासके शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष हैं। इनका उपयोग लोकव्यवहारमें दक्षिण प्रान्तमें शुक्ल और कृष्ण और अन्य प्रान्तोंमें कृष्ण और शुक्लके क्रमसे करते हैं। वास्तवमें वह व्रतोत्सवादिमें[२] शुक्लसे और तिथिकृत्यादिमें[३] कृष्णसे प्रारम्भ किया जाता है।......

(१) गौरीव्रत (व्रतविज्ञान)—यह चैत्र कृष्ण प्रतिपदासे चैत्र शुक्ल द्वितीयातक किया जाता है। इसको विवाहिता और कुमारी दोनों प्रकारकी स्त्रियाँ करती हैं। इसके लिये होलीकी भस्म और काली मिट्टी—इनके मिश्रणसे गौरीकी मूर्ति बनायी जाती है और प्रतिदिन प्रातःकालके समय समीपके पुष्पोद्यानसे फल, पुष्प, दूर्वा और जलपूर्ण कलश लाकर उसको गीत-मन्त्रोंसे पूजती हैं। यह व्रत विशेषकर अहिवातकी रक्षा और पतिप्रेमकी वृद्धिके निमित्त किया जाता है।

(२) होलामहोत्सव (पुराणसमुच्चय-मुक्तकसंग्रह)—यह उत्सव होलीके दूसरे दिन चैत्र कृष्ण प्रतिपदाको होता है। लोकप्रसिद्धिमें इसे धुरेडी, छारंडी, फाग या बोहराजयन्ती कहते हैं। नागरिक नर-नारी

---

१. 'चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि। (बृहन्नारदीय)

२. व्रतोत्सवे च शुक्लादि।

३. कृष्णादि तिथिकर्माणि। (ब्रह्म)

इसे रंग, गुलाल, गोष्ठी, परिहास और गायन-वादनसे और देहातीलोग धूल-धमासा, जलक्रीडा और धमाल आदिसे सम्पन्न करते हैं। आजकल इस उत्सवका रूप बहुत विकृत और उच्छृंखलतापूर्ण हो गया है। लोगोंको सभ्यताके साथ भगवद्भावसे भरे हुए गीत आदि गाकर यह उत्सव मनाना चाहिये। इस उत्सवके चार उद्देश्य प्रतीत होते हैं—(१) जनता जानती है कि होलीके जलानेमें प्रह्लादके निरापद निकल जानेके हर्षमें यह उत्सव सम्पन्न होता है। (२) शास्त्रोंमें इस दिन इसी रूपमें 'नवान्नेष्टि' यज्ञ घोषित किया गया है, अतः नवप्राप्त नवान्नके सम्मानार्थ यह उत्सव किया जाता है। (३) यज्ञकी समाप्तिमें भस्मवन्दन और अभिषेक किया जाता है, किंतु ये दोनों कृत्य विशेषकर कुत्सित रूपमें होते हैं। (४) वैसे माघ शुक्ल पंचमीसे चैत्रशुक्ल पंचमीपर्यन्तका वसन्तोत्सव स्वतः होता ही है।

(३) संकष्टचतुर्थीव्रत (भविष्यपुराण)—यदि निकट भविष्यमें किसी अमिट संकटकी शंका हो या पहलेसे ही संकटापन्न[१] अवस्था बनी हुई हो तो उसके निवारणके निमित्त संकटचतुर्थीका व्रत करना चाहिये। यह सभी महीनोंमें कृष्ण चतुर्थीको किया जाता है। इसमें चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थी ली जाती है। यदि वह दो दिन चन्द्रोदय-व्यापिनी[२] हो तो प्रथम दिनका व्रत करे। व्रतीको चाहिये कि वह उक्त चतुर्थीको प्रातःस्नानादि करनेके अनन्तर दाहिने हाथमें गन्ध, अक्षत, पुष्प और जल लेकर '**मम वर्तमानागामिसकलसंकटनिरसन-पूर्वकसकलाभीष्टसिद्धये संकटचतुर्थीव्रतमहं करिष्ये**' यह संकल्प करके दिनभर मौन रहे और सायंकालके समय पुनः स्नान करके चौकी या वेदीपर '**तीव्रायै, ज्वालिन्यै, नन्दायै, भोगदायै,**

---

१. यदा संक्लेशितो मर्त्यो नानादुःखैश्च दारुणैः।
तदा कृष्णे चतुर्थ्यां वै पूजनीयो गणाधिपः॥ (भविष्यपुराण)

२. चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते।
मध्याह्नव्यापिनी चेत् स्यात् परतश्चेत् परेऽहनि॥ (बृहस्पति)

कामरूपिण्यै, उग्रायै, तेजोवत्यै, सत्यायै च दिक्षु विदिक्षु, मध्ये विघ्ननाशिन्यै सर्वशक्तिकमलासनायै नमः' इन मन्त्रोंसे पीठपूजा करनेके बाद वेदीके बीचमें स्वर्णादिनिर्मित गणेशजीका—१ '**गणेशाय नमः**' से आवाहन, २ '**विघ्ननाशिने नमः**' से आसन, ३ '**लम्बोदराय नमः**' से पाद्य, ४ '**चन्द्रार्धधारिणे नमः**' से अर्घ्य, ५ '**विश्वप्रियाय नमः**' से आचमन, ६ '**ब्रह्मचारिणे नमः**' से स्नान, ७ '**कुमारगुरवे नमः**' से वस्त्र, ८ '**शिवात्मजाय नमः**' से यज्ञोपवीत, ९ '**रुद्रपुत्राय नमः**' से गन्ध, १० '**विघ्नहर्त्रे नमः**' से अक्षत, ११ '**परशुधारिणे नमः**' से पुष्प, १२ '**भवानीप्रीतिकर्त्रे नमः**' से धूप, १३ '**गजकर्णाय नमः**' से दीपक, १४ '**अघनाशिने नमः**' से नैवेद्य (आचमन), १५ '**सिद्धिदाय नमः**' से ताम्बूल और १६ '**सर्वभोगदायिने नमः**' से दक्षिणा अर्पण करके '**षोडशोपचारपूजन**' करे और कर्पूर अथवा घीकी बत्ती जलाकर नीराजन करे। इसके पीछे दूर्वाके दो अंकुर लेकर '**गणाधिपाय नमः** २, **उमापुत्राय नमः** २, **अघनाशाय नमः** २, **एकदन्ताय नमः** २, **इभवक्त्राय नमः** २, **मूषकवाहनाय नमः** २, **विनायकाय नमः** २, **ईशपुत्राय नमः** २, **सर्वसिद्धिप्रदाय नमः** २, **कुमारगुरवे नमः** २ और '**गणाधिप नमस्तेऽस्तु उमापुत्राघनाशन। एकदन्तेभवक्त्रेति तथा मूषकवाहन। विनायकेशपुत्रेति सर्वसिद्धि-प्रदायक। कुमारगुरवे तुभ्यं पूजयामि प्रयत्नतः**' इनमें आरम्भसे १० मन्त्रोंद्वारा दो-दो और अन्तके पूरे मन्त्रसे एक दूर्वा अर्पण करके '**यज्ञेन यज्ञ०**' से मन्त्र-पुष्पांजलि अर्पण करे और '**संसारपीडाव्यथितं हि मां सदा संकष्टभूतं सुमुख प्रसीद। त्वं त्राहि मां मोचय कष्टसंघान्नमो नमो विघ्नविनाशनाय॥**' से नमस्कार करके '**श्रीविप्राय नमस्तुभ्यं साक्षाद्देवस्वरूपिणे। गणेशप्रीतये तुभ्यं मोदकान् वै ददाम्यहम्॥**' से मोदक, सुपारी, मूँग और दक्षिणा रखकर वायन (बायना) दे।⋯⋯इसके बाद चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाका गन्ध-

पुष्पादिसे विधिवत् पूजन करके '**ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषां पते। नमस्ते रोहिणीकान्त गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' से चन्द्रमाको अर्घ्य देकर '**नभोमण्डलदीपाय शिरोरत्नाय धूर्जटेः। कला-भिर्वर्धमानाय नमश्चन्द्राय चारवे॥**' से प्रार्थना करे। फिर '**गणेशाय नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धिप्रदायक। संकष्टं हर मे देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' से गणेशजीको तीन अर्घ्य देकर—'**तिथीनामुत्तमे देवि गणेशप्रियवल्लभे। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वसिद्धिप्रदायिके॥**' से तिथिको अर्घ्य दे। पीछे सुपूजित गणेशजीका '**आयातस्त्वमुमापुत्र ममानुग्रहकाम्यया। पूजितोऽसि मया भक्त्या गच्छ स्थानं स्वकं प्रभो॥**' से विसर्जन कर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और स्वयं तैलवर्जित एक बार भोजन करे।''''हाँ, यह व्रत तो गणेशजीका है, फिर इसमें चन्द्रमाका प्राधान्य क्यों माना गया है? तो इस विषयमें ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि पार्वतीने गणेशजीको प्रकट किया, उस समय इन्द्र-चन्द्रादि सभी देवताओंने आकर उनका दर्शन किया; किंतु शनिदेव दूर रहे। कारण यह था कि उनकी दृष्टिसे प्रत्येक प्राणी और पदार्थके टुकड़े हो जाते थे। परंतु पार्वतीके रुष्ट होनेसे शनिने गणेशजीपर दृष्टि डाली। फल यह हुआ कि गणेशजीका मस्तक उड़कर अमृतमय चन्द्रमण्डलमें चला गया।''''दूसरी कथा यह है कि पार्वतीने अपने शरीरके मैलसे गणेशजीको उत्पन्न करके उनको द्वारपर बैठा दिया। जब थोड़ी देर बाद शिवजी आकर अंदर जाने लगे, तब गणेशजीने उनको नहीं जाने दिया। तब उन्होंने अनजानमें अपने त्रिशूलसे उनका मस्तक काट डाला और वह चन्द्रलोकमें चला गया। इधर पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये शिवजीने हाथीके सद्योजात बच्चेका मस्तक मँगवाकर गणेशजीके जोड़ दिया। विज्ञानियोंका विश्वास है कि गणेशजीका असली मस्तक चन्द्रमामें है और इसी सम्भावनासे चन्द्रमाका दर्शन किया जाता है।'' यह व्रत ४ या १३ वर्षतक करनेका है। अतः अवधि समाप्त होनेपर इसका उद्यापन करे। उसमें सर्वतोभद्रमण्डलपर

कलश स्थापन करके उसपर गणेशजीकी स्वर्णमयी मूर्तिका पूजन करे। ऋतुकालके गन्ध-पुष्पादि धारण कराये। उसी जगह चाँदीके चन्द्रमाका अर्चन करे। नैवेद्यमें '**इक्षवः सक्तवो रम्भाफलानि चिमटास्तथा। मोदका नारिकेलानि लाजा द्रव्याष्टकं स्मृतम्॥**' का ग्रहण करे। घी, तिल, शर्करा और बिजोरेके टुकड़ोंको एकत्र करके इनका यथाविधि हवन करे। इसके पीछे २१ मोदक लेकर १ गणंजय, २ गणपति, ३ हेरम्ब, ४ धरणीधर, ५ महागणाधिपति, ६ यज्ञेश्वर, ७ शीघ्रप्रसाद, ८ अभंगसिद्धि, ९ अमृत, १० मन्त्रज्ञ, ११ किन्नाम, १२ द्विपद, १३ सुमंगल, १४ बीज, १५ आशापूरक, १६ वरद, १७ शिव, १८ कश्यप, १९ नन्दन, २० सिद्धिनाथ और २१ ढुण्ढिराज—इन नामोंसे एक-एक मोदक अर्पण करे। इसके अतिरिक्त गोदान, शय्यादान आदि देकर और ब्राह्मणभोजन कराकर स्वयं भोजन करे। उक्त २१ मोदकोंमें १ गणेशजीके लिये छोड़ दे, १० ब्राह्मणोंको दे और दस अपने लिये रखे।'''''कथाका सार यह है कि प्राचीन कालमें मयूरध्वज नामका राजा बड़ा प्रभावशाली और धर्मज्ञ था। एक बार उसका पुत्र कहीं खो गया और बहुत अनुसंधान करनेपर भी न मिला। तब मन्त्रिपुत्रकी धर्मवती स्त्रीके अनुरोधसे राजाके सम्पूर्ण परिवारने चैत्र कृष्ण चतुर्थीका बड़े समारोहसे यथाविधि व्रत किया। तब भगवान् गणेशजीकी कृपासे राजपुत्र आ गया और उसने मयूरध्वजकी आजीवन सेवा की।

(४) शीतलाष्टमी (स्कन्दपुराण)—इस देशमें शीतलाष्टमीका व्रत केवल चैत्र कृष्ण अष्टमीको होता है; किंतु स्कन्दपुराणमें चैत्रादि ४ महीनोंमें इस व्रतके करनेका विधान है। इसमें पूर्वविद्धा अष्टमी* ली जाती है। व्रतीको चाहिये कि अष्टमीको शीतल जलसे प्रातःस्नानादि करके '**मम गेहे शीतलारोगजनितोप-द्रवप्रशमनपूर्वकायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धये शीतलाष्टमी-**

* व्रतमात्रेऽष्टमी कृष्णा पूर्वा शुक्लाष्टमी परा। (माधव)

व्रतं करिष्ये।' यह संकल्प करे। तदनन्तर सुगन्धयुक्त गन्ध-पुष्पादिसे शीतलाका पूजन करके प्रत्येक प्रकारके मेवे, मिठाई, पूआ, पूरी, दाल-भात, लपसी और रोटी-तरकारी आदि कच्चे-पक्के, सभी शीतल पदार्थ (पहले दिनके बनाये हुए) भोग लगाये और शीतलास्तोत्रका पाठ करके रात्रिमें जागरण और दीपावली करे। नैवेद्यमें यह विशेषता[१] है कि चातुर्मासी व्रत हो तो—१ चैत्रमें शीतल पदार्थ, २ वैशाखमें घी और शर्करासे युक्त सत्तू, ३ ज्येष्ठमें पूर्व दिनके बनाये हुए अपूप (पूए) और ४ आषाढ़में घी और शक्कर मिली हुई खीरका नैवेद्य अर्पण करे। इस प्रकार करनेसे व्रतीके कुलमें दाहज्वर, पीतज्वर, विस्फोटक, दुर्गन्धयुक्त फोड़े, नेत्रोंके समस्त रोग, शीतलाकी फुंसियोंके चिह्न और शीतलाजनित सर्वदोष दूर होते हैं और शीतला सदैव संतुष्ट रहती है। शीतलास्तोत्रमें[२] शीतलाका जो स्वरूप बतलाया है, वह शीतलाके रोगीके लिये बहुत हितकारी है। उसमें बतलाया है कि 'शीतला दिगम्बरा है, गर्दभपर आरूढ़ रहती है, शूप, मार्जनी (झाड़ू) और नीमके पत्तोंसे अलंकृत होती है और हाथमें शीतल जलका कलश रखती है।' वास्तवमें शीतलाके रोगीके सर्वांगमें दाहयुक्त फोड़े होनेसे वह बिलकुल नग्न हो जाता है। 'गर्दभपिण्डी' (गधेकी लीद)-की गन्धसे फोड़ोंकी पीड़ा कम होती है। शूपके काम (अन्नकी सफाई आदि) करने

---

१. भक्षयेद् वटकान् पूपांश्चैत्रे शीतजलान्वितान्।
वैशाखे सक्तुकं तावत् साज्यं शर्करयान्वितम्॥
एवं या कुरुते नारी व्रतं वर्षचतुष्टयम्।
तत्कुले नोपसर्पन्ति गलगण्डग्रहादयः॥
विष्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते।
शीतले ज्वरदग्धस्य पूतगन्धगतस्य च॥
प्रणष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम्। (स्कन्द०)

२. वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम्।
मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम्॥ (शीतलास्तोत्र)

और झाड़ू लगानेसे बीमारी बढ़ जाती है, अतः इन कामोंको सर्वथा बंद रखनेके लिये शूप और झाड़ू बीमारके समीप रखते हैं। नीमके पत्तोंसे शीतलाके फोड़े सड़ नहीं सकते और शीतल जलके कलशका समीप रखना तो आवश्यक है ही।

(५) **संतानाष्टमी** (विष्णुधर्मोत्तर)—यह व्रत भी चैत्र कृष्ण अष्टमीको ही किया जाता है। इसमें प्रातःस्नानादिके बाद श्रीकृष्ण और देवकीका गन्धादिसे पूजन करे और मध्याह्नमें सात्त्विक पदार्थोंका भोग लगाये।

(६) **कृष्णैकादशी** (नानापुराणस्मृति)—यह व्रत चैत्रादि सभी महीनोंके शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें किया जाता है[१]। फल दोनोंका ही समान है। शुक्ल और कृष्णमें कोई विशेषता नहीं है। जिस प्रकार शिव और विष्णु दोनों आराध्य हैं, उसी प्रकार कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षोंकी एकादशी उपोष्य है[२]। विशेषता यह है कि पुत्रवान् गृहस्थ शुक्ल एकादशी और वानप्रस्थ, संन्यासी तथा विधवा दोनोंका व्रत करें तो उत्तम होता है[३]। इसमें शैव और वैष्णवका भेद भी आवश्यक नहीं; क्योंकि जो जीवमात्रको[४] समान समझे, निजाचारमें रत रहे और अपने प्रत्येक कार्यको विष्णु और शिवके अर्पण करता रहे, वही शैव और वैष्णव होता है। अतः दोनोंके श्रेष्ठ बर्ताव एक होनेसे शैव और वैष्णवोंमें अपने-आप ही अभेद हो जाता है। इस

---

१. एकादशी सदोपोष्या पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः। (सनत्कुमार)

२. यथा विष्णुः शिवश्चैव तथैवैकादशी स्मृता। (वराहपुराण)

३. विधवाया वनस्थस्य यतेश्चैकादशीद्वये।
उपवासो गृहस्थस्य शुक्लायामेव पुत्रिणः॥ (कालादर्श)

४. समात्मा सर्वभूतेषु निजाचारादविप्लुतः।
विष्णवर्पिताखिलाचारःस हि वैष्णव उच्यते।(शैवःखलूच्यते)॥ (स्कन्द)

सर्वोत्कृष्ट प्रभावके कारण ही शास्त्रोंमें एकादशीका महत्त्व[१] अधिक माना गया है।·····इसके शुद्धा और विद्धा—ये दो भेद हैं। दशमी आदिसे विद्ध हो, वह 'विद्धा' और अविद्ध हो वह 'शुद्धा' होती है। इस व्रतको शैव, वैष्णव और सौर—सब करते हैं[२]। वेधके विषयमें बहुतोंके विभिन्न मत हैं। उनको शैव, वैष्णव और सौर पृथक्-पृथक् ग्रहण करते हैं। (१) सिद्धान्तरूपसे उदयव्यापिनी ली जाती है। परंतु उसकी उपलब्धि सदैव नहीं होती। इस कारण (२) कोई पहले दिनकी ४५ घड़ी दशमीको त्यागते हैं। (३) कोई ५५ घड़ीका वेध निषिद्ध मानते हैं। (४) कई दशमी और द्वादशीके योगकी एकादशीको त्यागकर द्वादशीका व्रत करते हैं। (५) कई एकादशीको ही उपोष्य बतलाते हैं। (६) मत्स्यपुराणके मतानुसार क्षय एकादशी निषिद्ध होती है। (७) जिस दिन दशमी अनुमान १।१५, एकादशी ५७।२२ और द्वादशी १।२३ हो उस दिन एकादशीका क्षय हो जाता है। (८) किसीके मतमें दशमी ४५ से जितनी ज्यादा हो उतना ही ज्यादा बुरा वेध होता है। यथा ४५ का 'कपाल', ५२ का 'छाया', ५३ का 'ग्रासाख्य', ५४ का 'सम्पूर्ण', ५५ का 'सुप्रसिद्ध', ५६ का 'महावेध', ५७ का 'प्रलयाख्य', ५८ का 'महाप्रलयाख्य', ५९ का 'घोराख्य' और ६० का 'राक्षसाख्य' वेध होता है। ये सब साम्प्रदायिक वेध हैं और (९) वैष्णवोंमें ४५ तथा ५५ का वेध त्याज्य होता है···एकादशीके

---

१. संसाराख्यमहाघोरदुःखिनां सर्वदेहिनाम्।
एकादश्युपवासोऽयं निर्मितं परमौषधम्॥ (वसिष्ठ)
एकादशीं परित्यज्य योऽन्यद्व्रतमुपासते
स करस्थं महारत्नं त्यक्त्वा लोष्ठं हि याचते॥ (स्मृत्यन्तर)
अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यपूर्णाशीतिवत्सरः।
एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि॥ (कात्यायन)

२. वैष्णवो वाथ शैवो वा सौरोऽप्येतत् समाचरेत्। (सौरपुराण)

१ उन्मीलिनी, २ वंजुली, ३ त्रिस्पृशा, ४ पक्षवर्धिनी, ५ जया, ६ विजया, ७ जयन्ती और ८ पापनाशिनी—ये आठ भेद और हैं। इनमें त्रिस्पृशा (तीनोंको स्पर्श[1] करनेवाली) एकादशी (यथा सूर्योदयमें एकादशी, तत्पश्चात् द्वादशी और दूसरे सूर्योदयमें त्रयोदशी हो वह) महाफल देनेवाली मानी गयी है।····एकादशीके नित्य और काम्य दो भेद हैं। निष्काम की जाय, वह 'नित्य' और धन-पुत्रादिकी प्राप्ति अथवा रोग-दोषादिकी निवृत्तिके निमित्त की जाय, वह 'काम्य' होती है। नित्यमें मलमास या शुक्रास्तादिकी मनाही नहीं; किंतु काम्यमें शुभ समय होनेकी आवश्यकता है। व्रतविधि सकाम और निष्काम दोनोंकी एक है। यदि असामर्थ्य अथवा आपत्ति[2] आदि अमिट कारणोंसे नित्य व्रत न किया जा सके तो एकभक्त, नक्तव्रत, अयाचित अथवा दूसरेके द्वारा व्रत हो जाय तो कोई दोष नहीं। यद्यपि दिनक्षय[3], सूर्यसंक्रान्ति और चन्द्रादित्यके ग्रहणमें व्रत करना वर्जित है; किंतु एकादशीके नित्य व्रतके लिये ऐसे अवसरमें भी फल-मूलादिसे परिहार कर लेनेकी आज्ञा है। यदि एकादशीके नित्य व्रतके दिन (माता-पिता आदिका) नैमित्तिक श्राद्ध आ जाय तो श्राद्ध और उपवास दोनों करे; किंतु श्राद्धीय भोजनको (जिसे पुत्रको भी करना चाहिये) दाहिने हाथमें लेकर सूँघ ले और गौको खिलाकर स्वयं उपवास रखे[4]।····व्रतके दूसरे दिन पारण

---

१. अरुणोदय आद्या स्याद् द्वादशी सकलं दिनम्।
अन्ते त्रयोदशी प्रातस्त्रिस्पृशा सा हरेः प्रिया॥ (ब्रह्मवैवर्त०)

२. एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च।
उपवासेन दानेन न निर्द्वादशिको भवेत्॥ (मार्कण्डेय)

३. दिनक्षयेऽर्कसंक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रसमन्वितः॥ (मत्स्यपुराण)

४. उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम्॥ (कात्यायन)

किया जाता है। उस दिन यदि द्वादशी बहुत कम हो और नित्य कर्मके पूर्ण करनेमें देर लगे तो प्रातःकाल और मध्याह्नकालके दोनों काम उषःकालमें कर ले। यदि संकटवश पारण न हो सके तो केवल जल पीकर पारण करे। इनके अतिरिक्त अन्य विधान आगे वैशाखादिके व्रतोंमें यथास्थान दिये गये हैं।·····एकादशीका व्रत करनेवालेको चाहिये कि वह प्रथमारम्भका व्रत मलमासादिमें न करे। गुरु-शुक्रके उदयके चैत्र, वैशाख, माघ या मार्गशीर्षकी एकादशीसे आरम्भ करके श्रद्धा, भक्ति और सदाचारसहित सदैव करता रहे। व्रतके (दशमी, एकादशी और द्वादशी—इन) तीन दिनोंमें कांस्यपात्र, मसूर, चने, मिथ्याभाषण, शाक, शहद, तेल, मैथुन, द्यूत और अत्यम्बुपान— इनका सेवन न करे।····व्रतके पहले दिन (दशमीको) और दूसरे दिन (द्वादशीको) हविष्यान्न (जौ, गेहूँ, मूँग, सेंधा नमक, काली मिर्च, शर्करा और गोघृत आदि)-का एक बार भोजन करे। दशमीकी रातमें एकादशीके व्रतका स्मरण रखे और एकादशीको प्रातः-स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर '**मम कायिकवाचिकमानसिकसांसर्गिकपातकोपपातक-दुरितक्षयपूर्वकश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्तये श्रीपरमेश्वर-प्रीतिकामनया विजयैकादशीव्रतमहं करिष्ये**' यह संकल्प करके जितेन्द्रिय होकर श्रद्धा, भक्ति और विधिसहित भगवान्का पूजन करे। उत्तम प्रकारके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदि अर्पण करके नीराजन करे। तत्पश्चात् जप, हवन, स्तोत्रपाठ और मनोहर गायन-वादन और नृत्य करके प्रदक्षिणा और दण्डवत् करे। इस प्रकार भगवान्की सेवा और स्मरणमें दिन व्यतीत करके रात्रिमें कथा, वार्ता, स्तोत्रपाठ अथवा भजन आदिके साथ जागरण करे। फिर द्वादशीको पुनः पूजन करनेके पश्चात् पारण करे* ।····यद्यपि

---

* स्नात्वा सम्यग् विधानेन सोपवासो जितेन्द्रियः।
सम्पूज्य विधिवद् विष्णुं श्रद्धया सुसमाहितः॥

एकादशीका उपवास अस्सी वर्षकी आयु होनेतक करते रहना आवश्यक है; किंतु असामर्थ्यादिवश सदैव न बन सके तो उद्यापन करके समाप्त करे। उद्यापनमें सर्वतोभद्रमण्डलपर सुवर्णादिका कलश स्थापन करके उसपर भगवान्‌की स्वर्णमयी मूर्तिका शास्त्रोक्त-विधिसे पूजन करे। घी, तिल, खीर और मेवा आदिसे हवन करे। दूसरे दिन द्वादशीको प्रातःस्नानादिके पीछे गोदान, अन्नदान, शय्यादान, भूयसी आदि देकर और ब्राह्मण-भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। ब्राह्मण-भोजनके लिये २६ द्विजदम्पतियोंको सात्त्विक पदार्थोंका भोजन कराके सुपूजित और वस्त्रादिसे भूषित २६ कलश (प्रत्येकको एक-एक) दे।·····चैत्र कृष्ण एकादशी 'पापमोचिनी' है। यह पापोंसे मुक्त करती है। च्यवनऋषिके उत्कृष्ट तपस्वी पुत्र मेधावीने मंजुघोषाके संसर्गसे अपना सम्पूर्ण तप-तेज खो दिया था, किंतु पिताने उससे चैत्र कृष्ण एकादशीका व्रत करवाया। तब उसके प्रभावसे मेधावीके सब पाप नष्ट हो गये और वह यथापूर्व अपने धर्म-कर्म, सदनुष्ठान और तपश्चर्यामें संलग्न हो गया।

(७) वारुणीयोग*—(वाचस्पति-निबन्ध)—यह पुण्यप्रद महायोग तीन प्रकारका होता है। पहला चैत्र कृष्ण त्रयोदशीको वारुण नक्षत्र

पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैः परैः।
उपचारैर्बहुविधैर्जपहोमप्रदक्षिणैः॥
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गीतवाद्यमनोहरैः।
दण्डवत् प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमैः॥
गीतैर्वाद्यैः संस्तवैश्च पुराणश्रवणादिभिः।
एवं सम्पूज्य विधिवद् रात्रौ कृत्वा प्रजागरम्॥
याति विष्णोः परं स्थानं नरो नास्त्यत्र संशयः। (ब्रह्मपुराण)

* चैत्रासिते वारुणऋक्षयुक्ता त्रयोदशी सूर्यसुतस्य वारे।
योगे शुभे सा महती महत्या गंगाजलेऽर्कग्रहकोटितुल्या॥ (त्रिस्थलीसेतु)

(शतभिषा) हो तो 'वारुणी', दूसरा उसी दिन शतभिषा और शनिवार हो तो 'महावारुणी' और तीसरा शतभिषा, शनिवार और शुभ योग हो तो 'महामहावारुणी' होता है। इस योगमें गंगादि तीर्थस्थानोंमें स्नान, दान और उपवासादि करनेसे शतशः सूर्यग्रहणोंके समान फल होता है। उस दिनका पुण्यकाल पंचांगसे ज्ञात हो सकता है। (उदाहरणार्थ तीनों योग इस प्रकार हैं। चैत्र कृष्ण त्रयोदशी १३। ७, शतभिषा १७। ५—इस दिन प्रातः १३। ७ तक 'वारुणी'; चैत्र कृष्ण १३ शनिवार ५। १५, शतभिषा ३०। ३२—इस दिन ५। १५ तक महावारुणी और चैत्र कृष्ण १३ शनिवार ५०। ५५, शतभिषा २२। २० और शुभयोग १३। ७—इस दिन पूर्वाह्णमें १३ घड़ी ७ पलतक महामहावारुणी मानना चाहिये। त्रयोदशीमें नक्षत्रादि जितनी देर रहें उतनी घड़ीतक वारुणी आदि रहते हैं।)

(८) **प्रदोषव्रत** (स्कन्दपुराण)—यह व्रत शिवजीकी प्रसन्नता और प्रभुत्वकी प्राप्तिके प्रयोजनसे प्रत्येक मासके कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षोंमें त्रयोदशीको किया जाता है। शिवपूजन और रात्रि-भोजनके अनुरोधसे इसे 'प्रदोष[१]' कहते हैं। इसका समय सूर्यास्तसे दो घड़ी रात बीतनेतक[२] है। जो मनुष्य प्रदोषके समय परमेश्वर (शिवजी)-के चरण-कमलका अनन्य मनसे आश्रय लेता है उसके धन-धान्य, स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव और सुख-सम्पत्ति सदैव बढ़ते रहते हैं[३]। यदि कृष्ण पक्षमें सोम और शुक्ल पक्षमें शनि हो तो उस प्रदोषका विशेष फल

१. शिवपूजानक्तभोजनात्मकं प्रदोषम्। (हेमाद्रि)

२. प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते। (माधव)
प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकात्रयमिष्यते। (गौड़ग्रन्थ)

३. ये वै प्रदोषसमये परमेश्वरस्य कुर्वन्त्यनन्यमनसोऽङ्घ्रिसरोजसेवाम्।
नित्यं प्रवृद्धधनधान्यकलत्रपुत्रसौभाग्यसम्पदधिकास्त इहैव लोकाः॥
(स्कन्द०)

होता है[१]। कृष्ण-प्रदोषमें प्रदोषव्यापिनी परविद्धा त्रयोदशी ली जाती है[२]। उस दिन सूर्यास्तके समय पुनः स्नान करके शिवमूर्तिके समीप पूर्व या उत्तरमुख होकर बैठे और हाथमें जल, फल, पुष्प और गन्धाक्षत लेकर '**मम शिवप्रसादप्राप्तिकामनया प्रदोषव्रतांगीभूतं शिवपूजनं करिष्ये**' यह संकल्प करके भालपर भस्मके भव्य तिलक और गलेमें रुद्राक्षकी माला धारण करे। उत्तम प्रकारके गन्ध, पुष्प और बिल्व-पत्रादिसे उमा-महेश्वरका पद्धतिके अनुसार पूजन करे। यदि साक्षात् शिवमूर्तिका सांनिध्य प्राप्त न हो सके तो भीगी हुई चिकनी मिट्टीको '**हराय नमः**' से ग्रहण करके '**महेश्वराय नमः**' से कुक्कुटाण्ड अथवा करांगुष्ठके प्रमाणकी मूर्ति बनाये। फिर '**शूलपाणये नमः**' से प्रतिष्ठा और '**पिनाकपाणये नमः**' से आवाहन करके '**शिवाय नमः**' से स्नान कराये और '**पशुपतये नमः**' से गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य अर्पण करे। तत्पश्चात् '**जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभंजन। जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो॥ प्रसीद मे महाभाग संसारार्तस्य खिद्यतः। सर्वपापक्षयं कृत्वा रक्ष मां परमेश्वर॥**' से प्रार्थना करके '**महादेवाय नमः**' से पूजित मूर्तिका विसर्जन करे[३]।.....इस व्रतकी पूर्ण अवधि २१ वर्षकी है, परंतु समय और सामर्थ्य न हो तो उद्यापन करके इसका विसर्जन करे। विशेष विधान आगे वैशाखादिके व्रतोंसे जान सकते हैं।

---

१. यदा त्रयोदशी कृष्णा सोमवारेण संयुता।
यदा त्रयोदशी शुक्ला मन्दवारेण संयुता॥
तदातीव फलं प्राप्तं धनपुत्रादिकं लभेत्। (हेमाद्रि)

२. शुक्लत्रयोदशी पूर्वा परा कृष्णा त्रयोदशी। (माधव)
यदा तु कृष्णपक्षे परविद्धा न लभ्यते तदा पूर्वविद्धा ग्राह्या। (वसिष्ठ)

३. हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक्।
शिवः पशुपतिश्चैव महादेवेति पूजयेत्॥ (शिवपूजा)

(९) केदारदर्शन (पृथ्वीचन्द्रोदय)—चैत्र कृष्ण चतुर्दशीको केदारनाथका ध्यान और मानसोपचार पूजन करके व्रत करे और बन सके तो गंगास्नान करके एकभुक्त व्रत करे तो इस व्रतके करनेसे केदारनाथके दर्शनोंके समान फल होता है और जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

(१०) चैत्री अमा (हेमाद्रि)—चैत्र कृष्ण अमावस्याको प्रातः-स्नानादिके पीछे यथासामर्थ्य अन्न, गौ, सुवर्ण और वस्त्रादिका दान, पितरोंका श्राद्ध और देवताओंके समीप जप-ध्यान और पूजन करके ब्राह्मण-भोजन कराये तो बहुत पुण्य होता है। यदि इस दिन सोम, भौम अथवा गुरुवार हो तो ऐसे योगके दान-पुण्य, ब्राह्मण-भोजन और व्रतसे सूर्यग्रहणके समान फल होता है।

(११) वह्निव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—यह चैत्र कृष्ण अमावस्याको किया जाता है। इसमें परविद्धा अमा लेनी चाहिये। व्रतके पहले दिन (चैत्र कृष्ण चतुर्दशीको) नित्यके स्नानादिसे निवृत्त होकर अग्निदेवकी सुवर्णनिर्मित मूर्तिका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और अमावस्याको '**ॐ अग्नये स्वाहा**' इस मन्त्रसे तिल, घी और शर्कराका हवन करे। इस प्रकार वर्षपर्यन्त करनेके पश्चात् वह्निकी मूर्ति ब्राह्मणको दे दे।

(१२) पितृव्रत (विष्णुधर्म)—चैत्र कृष्ण प्रतिपदासे अमावस्यातक प्रभास्वर, बर्हिषद्, अग्निष्वात्त, क्रव्याद, भूत, आज्यपति और सुकालिन् नामके पितरोंका पूजन करनेसे पित्रीश्वर प्रसन्न होते हैं।

शुक्लपक्ष

(१) संवत्सर (अनुसंधानमंजूषा)—यह चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको पूजित होता है। इसमें मुख्यतया ब्रह्माजीका और उनकी निर्माण की हुई सृष्टिके प्रधान-प्रधान देवी, देवताओं, यक्ष-राक्षस, गन्धर्वों, ऋषि-मुनियों, मनुष्यों, नदियों, पर्वतों, पशु-पक्षियों और कीटाणुओंका ही नहीं—रोगों और उनके उपचारोंतकका पूजन किया

जाता है। इससे यह स्वतः सूचित होता है कि संवत्सर सर्वप्रधान, महामान्य[१] है। संवत्सर उसे कहते हैं जिसमें मासादि भलीभाँति[२] निवास करते रहें। इसका दूसरा अर्थ है बारह महीनेका 'कालविशेष'। यही श्रुतिका[३] वाक्य भी है। जिस प्रकार महीनोंके चान्द्रादि तीन भेद हैं उसी प्रकार संवत्सरके भी सौर, सावन[४] और चान्द्र— ये तीन भेद हैं। परंतु अधिमाससे चान्द्रमास १३ हो जाते हैं। ऐसा होनेसे संवत्सर १२ महीनेका नहीं रहता, १३ का हो जाता है। इसका स्मृतिकारोंने यह समाधान किया है कि 'बादरायणने अधिमासको ३०-३० दिनके दो महीने नहीं माने[५], ६० दिनका एक महीना माना है।' इसलिये संवत्के बारह महीने ही हो जाते हैं। फिर भी १३ महीने माने जायँ तो दूसरे श्रुति-वाक्यके[६] अनुसार १३ मासका भी संवत्सर होता है। ज्योतिःशास्त्रके अनुसार संवत्सरके सौर, सावन, चान्द्र, बार्हस्पत्य और नाक्षत्र—ये ५ भेद हैं। परंतु धर्म-कर्म और लोक-व्यवहारमें[७] चान्द्र संवत्सरकी प्रवृत्ति ही विख्यात है। ···चान्द्र संवत्सरका प्रारम्भ चैत्र शुक्ल[८] प्रतिपदासे होता है। इसपर कोई यह पूछ सकते हैं कि जब चान्द्रमास

---

१. कालः सृजति भूतानि कालः संहरति प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥
अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमरः।
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वान्महेश्वरः॥ (विष्णुधर्मोत्तर)

२. स च संवत्सरः सम्यग् वसन्त्यस्मिन् मासादयः। (स्मृतिसार)

३. द्वादश मासाः संवत्सरः। (श्रुति)

४. चान्द्रसावनसौराणां त्रयः संवत्सरा अपि। (ब्रह्मसिद्धान्त)

५. षष्ट्या तु दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः। (स्मृत्यन्तर)

६. अति त्रयोदशमासः। (श्रुति)

७. स्मरेत् सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा।
नान्यं यस्माद्वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता॥ (आर्ष्टिषेण)

८. चान्द्रोऽब्दो मधुशुक्लगप्रतिपदारम्भः। (दीपिका)

कृष्ण प्रतिपदासे प्रारम्भ होते हैं तो संवत्सर शुक्लसे क्यों होता है। इसका समाधान यह है कि कृष्णके आरम्भमें मलमास आनेकी सम्भावना रहती है और शुक्लमें नहीं रहती। इस कारण संवत्सरकी प्रवृत्ति शुक्ल प्रतिपदासे ही अनुकूल होती है। इसके सिवा ब्रह्माजीने सृष्टिका[1] आरम्भ इसी शुक्ल प्रतिपदाको किया था और इसी दिन मत्स्यावतारका[2] आविर्भाव तथा सत्ययुगका आरम्भ हुआ था। इस महत्त्वको मानकर भारतके महामहिम सार्वभौम सम्राट् विक्रमादित्यने भी अपने संवत्सरका आरम्भ (आजसे प्रायः दो हजार वर्ष पहले) चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको ही किया था।''इसमें संदेह नहीं कि विश्वके यावन्मात्र संवत्सरोंमें शालिवाहन शक और विक्रम-संवत्सर—ये दोनों सर्वोत्कृष्ट हैं। परंतु शकका विशेषकर गणितमें प्रयोजन होता है और विक्रम-संवत्का इस देशमें गणित, फलित, लोक-व्यवहार और धर्मानुष्ठानोंके समय-ज्ञान आदिमें अमिट रूपसे उपयोग और आदर किया जाता है। प्रारम्भमें प्रतिपदा[3] लेनेका यह प्रयोजन है कि ब्रह्माजीने जब सृष्टिका आरम्भ किया, उस समय इसको 'प्रवरा' (सर्वोत्तम) तिथि सूचित किया था और वास्तवमें यह प्रवरा है भी। इसमें धार्मिक, सामाजिक, व्यावहारिक और राजनीतिक आदि अधिक महत्त्वके अनेक काम आरम्भ किये जाते हैं। इसमें संवत्सरका पूजन, नवरात्र-घट-स्थापन, ध्वजारोपण, तैलाभ्यंग-स्नान, वर्षेशादिका फलपाठ, पारिभद्रका पत्र-प्राशन और प्रपास्थापन आदि लोकप्रसिद्ध और विश्वोपकारक अनेक काम होते हैं। इसके

---

१. चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि। (ब्रह्मपुराण)

२. कृते च प्रभवे चैत्रे प्रतिपच्छुक्लपक्षगा।
रेवत्यां योगविष्कम्भे दिवा द्वादशनाडिकाः॥
मत्स्यरूपकुमार्यां च अवतीर्णो हरिः स्वयम्। (स्मृतिकौस्तुभ)
ग्रन्थान्तरेषु चैत्रशुक्लतृतीयायां मत्स्यावतारः संसूचितः॥

३. तिथीनां प्रवरा यस्माद् ब्रह्मणा समुदाहृता।
प्रतिपद्यापदे पूर्वे प्रतिपत् तेन सोच्यते। (भविष्योत्तर)

द्वारा सनातनी जनतामें सर्वत्र ही संवत्सरका महोत्सव[१] मनाया जाता है।

(२) संवत्सरपूजन (ब्रह्माण्डपुराण)—यह चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको किया जाता है। यदि चैत्र अधिक मास हो तो दूसरे चैत्रमें करना चाहिये। इसमें 'सम्मुखी[२]' (सर्वा-व्यापिनी) प्रतिपदा ली जाती है। ज्यौतिष शास्त्रके अनुसार उस दिन उदयमें जो वार हो, वही उस वर्षका राजा[३] होता है। यदि उदयव्यापिनी दो दिन हो या दोनों दिनोंमें ही न हो तो पहले दिन जो वार हो वह वर्षेश होता है। चैत्र मलमास हो तो पूजनादि सभी काम शुद्ध चैत्रमें करने चाहिये। मलमासमें कृष्ण पक्षके काम पहले महीनेमें और शुक्लपक्षके काम दूसरेमें करने चाहिये। यथा शीतलापूजन प्रथम चैत्रमें और नवरात्र तथा गौरीपूजन दूसरे चैत्रमें होते हैं……चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको प्रातः स्नानादि नित्यकर्म करनेके पश्चात् हाथमें गन्ध, अक्षत, पुष्प और जल लेकर '**मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य स्वजनपरिजनसहितस्य वा आयुरारोग्यैश्वर्यादिसकलशुभफलोत्तरोत्तराभिवृद्ध्यर्थं ब्रह्मादिसंवत्सरदेवतानां पूजनमहं करिष्ये**' यह संकल्प करके नवनिर्मित समचौरस चौकी या बालूकी वेदीपर श्वेत वस्त्र बिछाये और उसपर हरिद्रा अथवा केसरसे रँगे हुए अक्षतोंका अष्टदल कमल बनाकर उसपर सुवर्णनिर्मित मूर्ति स्थापन करके '**ॐ ब्रह्मणे नमः**' से ब्रह्माजीका आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल,

---

१. प्राप्ते नूतनवत्सरे प्रतिगृहं कुर्याद् ध्वजारोपणं
स्नानं मंगलमाचरेद् द्विजवरैः साकं सुपूजोत्सवैः।
देवानां गुरुयोषितां च विभवालंकारवस्त्रादिभिः
सम्पूज्यो गणकः फलं च शृणुयात् तस्माच्च लाभप्रदम्॥ (उत्सवचन्द्रिका)

२. प्रतिपत्सम्मुखी कार्या या भवेदापराह्णिकी। (स्कन्दपुराण)

३. चैत्रे सितप्रतिपदि यो वारोऽर्कोदये स वर्षेशः।
उदयद्वितये पूर्वो नोदययुगलेऽपि पूर्वः स्यात्॥ (ज्योतिर्निबन्ध)

नीराजन, नमस्कार, पुष्पांजलि और प्रार्थना—इन उपचारोंसे पूजन करे। इसी प्रकार **१ कालाय, २ निमेषाय, ३ त्रुट्यै, ४ लवाय, ५ क्षणाय, ६ काष्ठायै, ७ कलायै, ८ सुषुम्णायै, ९ नाडिकायै, १० मुहूर्ताय, ११ निशाभ्यः, १२ पुण्यदिवसेभ्यः, १३ पक्षाभ्याम्, १४ मासेभ्यः, १५ षड्ऋतुभ्यः, १६ अयनाभ्याम्, १७ संवत्सरपरिवत्सरेडावत्सरानुवत्सरवत्सरेभ्यः, १८ कृतयुगादिभ्यः, १९ नवग्रहेभ्यः, २० अष्टाविंशतियोगेभ्यः, २१ द्वादशराशिभ्यः, २२ करणेभ्यः, २३ व्यतीपातेभ्यः, २४ प्रतिवर्षाधिपेभ्यः, २५ विज्ञातेभ्यः, २६ सानुयात्रकुलनागेभ्यः, २७ चतुर्दशमनुभ्यः, २८ पंचपुरन्दरेभ्यः, २९ दक्षकन्याभ्यः, ३० देव्यै, ३१ सुभद्रायै, ३२ जयायै, ३३ भृगुशास्त्राय, ३४ सर्वास्त्रजनकाय, ३५ बहुपुत्रपत्नीसहिताय, ३६ बृद्ध्यै, ३७ ऋद्ध्यै, ३८ निद्रायै, ३९ धनदाय, ४० गुह्यकस्वामिने, ४१ नलकूबरयक्षेभ्यः, ४२ शंखपद्मनिधिभ्याम्, ४३ भद्रकाल्यै, ४४ सुरभ्यै, ४५ वेदवेदान्तवेदांगविद्यासंस्थायिभ्यः, ४६ नागयक्षसुपर्णेभ्यः, ४७ गरुडाय, ४८ अरुणाय, ४९ सप्तद्वीपेभ्यः, ५० सप्तसमुद्रेभ्यः, ५१ सागरेभ्यः, ५२ उत्तरकुरुभ्यः, ५३ ऐरावताय, ५४ भद्राश्वकेतुमालाय, ५५ इलावृताय, ५६ हरिवर्षाय, ५७ किम्पुरुषेभ्यः, ५८ भारताय, ५९ नवखण्डेभ्यः, ६० सप्तपातालेभ्यः, ६१ सप्तनरकेभ्यः, ६२ कालाग्निरुद्रशेषेभ्यः, ६३ हरये क्रोडरूपिणे, ६४ सप्तलोकेभ्यः, ६५ पंचमहाभूतेभ्यः, ६६ तमसे, ६७ तमःप्रकृत्यै, ६८ रजसे, ६९ रजःप्रकृत्यै, ७० प्रकृतये, ७१ पुरुषाय, ७२ अभिमानाय, ७३ अव्यक्तमूर्तये, ७४ हिमप्रमुखपर्वतेभ्यः, ७५ पुराणेभ्यः, ७६ गंगादिसप्तनदीभ्यः, ७७ सप्तमुनिभ्यः, ७८ पुष्करादितीर्थेभ्यः, ७९ वितस्तादिनिम्नगाभ्यः, ८० चतुर्दशदीर्घाभ्यः, ८१ धारिणीभ्यः, ८२ धात्रीभ्यः,**

८३ विधात्रीभ्यः, ८४ छन्दोभ्यः, ८५ सुरभ्यैरावणाभ्याम्, ८६ उच्चैःश्रवसे, ८७ ध्रुवाय, ८८ धन्वन्तरये, ८९ शस्त्रास्त्राभ्याम्, ९० विनायककुमाराभ्याम्, ९१ विघ्नेभ्यः, ९२ शाखाय, ९३ विशाखाय, ९४ नैगमेयाय, ९५ स्कन्दगृहेभ्यः, ९६ स्कन्दमातृभ्यः, ९७ ज्वराय; रोगपतये, ९८ भस्मप्रहरणाय, ९९ ऋत्विग्भ्यः, १०० वालखिल्याय, १०१ काश्यपाय, १०२ अगस्तये, १०३ नारदाय, १०४ व्यासादिभ्यः, १०५ अप्सरोभ्यः, १०६ सोमपदेवेभ्यः, १०७ असोमपदेवेभ्यः, १०८ तुषितेभ्यः, १०९ द्वादशादित्येभ्यः, ११० सगणैकादशरुद्रेभ्यः, १११ दशपुण्येभ्यो विश्वेदेवेभ्यः, ११२ अष्टवसुभ्यः, ११३ नवयोगिभ्यः, ११४ द्वादशभृगुभ्यः, ११५ द्वादशांगिरोभ्यः, ११६ तपस्विभ्यः, ११७ नासत्यदस्राभ्याम्, ११८ अश्विभ्याम्, ११९ द्वादशसाध्येभ्यः, १२० द्वादशपौराणेभ्यः, १२१ एकोनपंचाशद्मरुद्गणेभ्यः, १२२ शिल्पाचार्याय विश्वकर्मणे, १२३ सायुधसवाहनेभ्योऽष्टलोकपालेभ्यः, १२४ आयुधेभ्यः, १२५ वाहनेभ्यः, १२६ वर्मभ्यः, १२७ आसनेभ्यः, १२८ दुन्दुभिभ्यः, १२९ देवेभ्यः, १३० दैत्यराक्षसगन्धर्वपिशाचेभ्यः, १३१ सप्तभेदेभ्यः, १३२ पितृभ्यः, १३३ प्रेतेभ्यः, १३४ सुसूक्ष्मदेवेभ्यः, १३५ भावगम्येभ्यः और **१३६ बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने नमः परमात्मविष्णुमावाहयामि स्थापयामि**— इस प्रकार उपर्युक्त सम्पूर्ण देवताओंका पृथक्-पृथक् अथवा एकत्र यथाविधि पूजन करके '**भगवंस्त्वत्प्रसादेन वर्षं क्षेममिहास्तु मे। संवत्सरोपसर्गा मे विलयं यान्त्वशेषतः॥**' से प्रार्थना करे और विविध प्रकारके उत्तम और सात्त्विक पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको भोजन करानेके बाद एक बार स्वयं भोजन करे। पूजनके समय नवीन पंचांगसे उस वर्षके राजा, मन्त्री, सेनाध्यक्ष, धनाधिप, धान्याधिप, दुर्गाधिप, संवत्सर-निवास और फलाधिप आदिके फल

श्रवण[1] करे। निवास-स्थानोंको ध्वजा, पताका, तोरण और बंदनवार आदिसे सुशोभित करे। द्वारदेश और देवीपूजाके स्थानमें सुपूजित घट स्थापन करे। पारिभद्रके[2] कोमल पत्तों और पुष्पोंका चूर्ण करके उनमें काली मिर्च, नमक, हींग, जीरा और अजमोद मिलाकर भक्षण करे और सामर्थ्य हो तो 'प्रपा[3]' (पौसरे)-का स्थापन करे। निम्बपत्र-भक्षण और प्रपाके प्रारम्भकी प्रार्थना टिप्पणीके मन्त्रोंसे करे। इस प्रकार करनेसे राजा, प्रजा और साम्राज्यमें वर्षपर्यन्त व्यापक शान्ति रहती है।

(३) तिलकव्रत (भविष्योत्तर)—यह व्रत चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको किया जाता है। इसके निमित्त नदी या तालाबके तटपर जाकर अथवा घरपर ही पटवासकके चूर्णसे संवत्सरकी मूर्ति लिखकर उसका '**संवत्सराय नमः**', '**चैत्राय नमः**', '**वसन्ताय नमः**' आदि नाम-मन्त्रोंसे पूजन करके विद्वान् ब्राह्मणका अर्चन करे। उस समय ब्राह्मण '**संवत्सरोऽसि०**[4]' मन्त्र पढ़े। तब '**भगवंस्त्वत्प्रसादेन वर्षं क्षेममिहास्तु मे। संवत्सरोपसर्गो मे विलयं यात्वशेषतः॥**' से प्रार्थना करे और दक्षिणा दे। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल प्रतिपदाको वर्षभर करे तो भूत-प्रेत-पिशाचादिकी बाधाएँ शान्त हो जाती हैं।

(४) आरोग्यव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—यह भी इसी प्रतिपदाको किया जाता है। इसके निमित्त पहले दिन व्रत करके प्रतिपदाको एक चौकीपर

---

१. शकवत्सरभूपमन्त्रिणां रसधान्येश्वरमेघपातिनाम्।
श्रवणात् पठनाच्च वै नृणां शुभतां यात्यशुभं सहाश्रिया॥ (ज्योतिर्निबन्ध)

२. पारिभद्रस्य पत्राणि कोमलानि विशेषतः।
सपुष्पाणि समादाय चूर्णं कृत्वा विधानतः॥
मरिचं लवणं हिंगु जीरकेण च संयुतम्।
अजमोदयुतं कृत्वा भक्षयेद् रोगशान्तये॥ (पंचांगपारिजात)

३. प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता।
अस्याः प्रदानात् पितरस्तृप्यन्तु च पितामहाः॥ (दानचन्द्रिका)

४. संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीडावत्सरोऽसि अनुवत्सरोऽसि वत्सरोऽसि। (यजुर्वेद)

अनेक प्रकारके कमल बिछाकर उनमें सूर्यका ध्यान करे। श्वेत वर्णके सुगन्धित गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे। दही, चीनी, घी, पूए, दूध, भात और फल आदि अर्पण करे। वह्नि और ब्राह्मणको तृप्त करे। फिर सम्पूर्ण सामग्रीका एक-एक ग्रास भक्षण करे और शेषको त्याग दे। उसके बाद ब्राह्मणकी आज्ञा हो तब फिर भोजन करे। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल प्रतिपदाको वर्षपर्यन्त व्रत और शिव-दर्शन करे तो सदैव आरोग्य रह सकता है।

(५) **विद्याव्रत** (विष्णुधर्मोत्तर)—चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको एक वेदीपर अक्षतोंका अष्टदल बनाकर उसके मध्यमें ब्रह्मा, पूर्वमें ऋक्, दक्षिणमें यजुः, पश्चिममें साम, उत्तरमें अथर्व, अग्निकोणमें षट्शास्त्र, नैर्ऋत्यमें धर्मशास्त्र, वायव्यमें पुराण और ईशानमें न्यायशास्त्रको स्थापन करे तथा उन सबका नाम-मन्त्रसे आवाहनादि पूजन करके व्रत रखे। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल प्रतिपदाको १२ महीने करके गोदान करे और फिर उसी प्रकार १२ वर्षतक यथावत् करता रहे तो वह महाविद्वान् बन सकता है।

(६) **नवरात्र** (नानाशास्त्र-पुराणादि)—ये चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघकी शुक्ल प्रतिपदासे नवमीतक नौ दिनके होते हैं; परंतु प्रसिद्धिमें चैत्र और आश्विनके नवरात्र ही मुख्य माने जाते हैं। इनमें भी देवीभक्त आश्विनके नवरात्र अधिक करते हैं। इनको यथाक्रम वासन्ती और शारदीय कहते हैं। इनका आरम्भ चैत्र और आश्विन शुक्ल प्रतिपदाको होता है। अतः यह प्रतिपदा 'सम्मुखी[१]' शुभ होती है। नवरात्रोंके आरम्भमें अमायुक्त[२] प्रतिपदा अच्छी नहीं। ......आरम्भमें घटस्थापनके समय यदि चित्रा और वैधृति[३] हों तो उनका त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि चित्रामें धनका[४] और वैधृतिमें

---

१. 'प्रतिपत्सम्मुखी कार्या या भवेदापराह्णिकी॥' (स्कन्द)
२. 'अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपत् पूजने मम।' (देवीभागवत)
३. 'प्रारभ्यं नवरात्रं स्याद्धित्वा चित्रां च वैधृतिम्।' (देवीभागवत)
४. 'वैधृतौ पुत्रनाशः स्याच्चित्रायां धननाशनम्।' (रुद्रयामल)

पुत्रका नाश होता है।''''घटस्थापनका समय 'प्रातःकाल[१]' है। अतः उस दिन चित्रा या वैधृति रात्रितक रहें (और रात्रिमें नवरात्रोंका स्थापन[२] या आरम्भ होता नहीं,) तो या तो वैधृत्यादिके आद्य[३] तीन अंश त्यागकर चौथे अंशमें करे या मध्याह्नके समय[४] (अभिजित् मुहूर्तमें) स्थापन करे। स्मरण रहे कि देवीका आवाहन[५], प्रवेशन, नित्यार्चन और विसर्जन—ये सब प्रातःकालमें शुभ होते हैं। अतः उचित समयका अनुपयोग न होने दे।''''स्त्री हो या पुरुष, सबको नवरात्र करना चाहिये। यदि कारणवश स्वयं न[६] कर सकें तो प्रतिनिधि (पति-पत्नी, ज्येष्ठ पुत्र, सहोदर या ब्राह्मण) द्वारा करायें।''''नवरात्र नौ रात्रि पूर्ण होनेसे पूर्ण होता है। इसलिये यदि इतना समय न मिले या सामर्थ्य न हो तो सात[७], पाँच, तीन या एक दिन व्रत करे और व्रतमें भी उपवास, अयाचित, नक्त या एकभुक्त—जो बन सके यथासामर्थ्य वही कर ले।'''''यदि नवरात्रोंमें घटस्थापन करनेके बाद सूतक[८] हो जाय तो कोई दोष नहीं, परंतु पहले हो जाय तो पूजनादि स्वयं

---

१. भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दश नाडिकाः।
प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु॥ (विष्णुधर्म)

२. 'न च कुम्भाभिषेचनम्।' (रुद्रयामल)

३. 'त्याज्या अंशास्त्रयस्त्वाद्यास्तुरीयांशे तु पूजनम्।' (भविष्य)

४. सम्पूर्णा प्रतिपद्ध्येव चित्रायुक्ता यदा भवेत्।
वैधृत्या वापि युक्ता स्यात् तदा माध्यन्दिने रवौ॥
अभिजित्तु मुहूर्तं यत् तत्र स्थापनमिष्यते। (रुद्रयामल)

५. प्रातरावाहयेद् देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत्।
प्रातः प्रातश्च सम्पूज्य प्रातरेव विसर्जयेत्॥ (देवीपुराण)

६. 'स्वयं वाप्यन्यतो वापि पूजयेत् पूजयीत वा।' (पूजापंकजभास्कर)

७. अथात्र नवरात्रं च सप्तपंचत्रिकादि वा।
एकभक्तेन नक्तेनायाचितोपोषितैः क्रमात्॥ (दीक्षित)

८. व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे।
प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥ (विष्णु)

न करे।.....चैत्रके नवरात्रमें शक्तिकी उपासना[१] तो प्रसिद्ध ही है; साथ ही शक्तिधरकी उपासना भी की जाती है। उदाहरणार्थ एक ओर देवीभागवत, कालिकापुराण, मार्कण्डेयपुराण, नवार्णमन्त्रके पुरश्चरण और दुर्गापाठकी शतसहस्रायुतचण्डी आदि होते हैं तो दूसरी ओर श्रीमद्भागवत, अध्यात्म-रामायण, वाल्मीकीय रामायण, तुलसीकृत रामायण, राममन्त्र-पुरश्चरण, एक-तीन-पाँच-सात दिनकी या नवाह्निक अखण्ड रामनामध्वनि और रामलीला आदि किये जाते हैं। यही कारण है कि ये 'देवी-नवरात्र' और 'राम-नवरात्र' नामोंसे प्रसिद्ध हैं।.....नवरात्रका प्रयोग प्रारम्भ करनेके पहले सुगन्धयुक्त तैलके उद्वर्तनादिसे मंगलस्नान करके नित्यकर्म करे और स्थिर शान्तिके पवित्र स्थानमें शुभ मृत्तिकाकी वेदी बनाये। उसमें जौ और गेहूँ—इन दोनोंको मिलाकर बोये। वहीं सोने, चाँदी, ताँबे या मिट्टीके कलशको यथाविधि स्थापन करके गणेशादिका पूजन और पुण्याहवाचन करे और पीछे देवी (या देव)-के समीप शुभासनपर पूर्व (या उत्तर) मुख बैठकर '**मम महामायाभगवती (वा मायाधिपति भगवत्) प्रीतये (आयुर्बलवित्तारोग्यसमादरादिप्राप्तये वा) नवरात्रव्रतमहं करिष्ये।**' यह संकल्प करके मण्डलके मध्यमें रखे हुए कलशपर सोने, चाँदी, धातु, पाषाण, मृत्तिका या चित्रमय मूर्ति विराजमान करे और उसका आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, नीराजन, पुष्पांजलि, नमस्कार और प्रार्थना आदि उपचारोंसे पूजन करे। इसके बाद यदि सामर्थ्य हो तो नौ दिनतक नौ (और यदि सामर्थ्य न हो तो सात, पाँच, तीन या एक) कन्याओंको देवी मानकर उनको गन्ध-पुष्पादिसे अर्चित करके भोजन कराये और फिर आप भोजन करे। व्रतीको चाहिये कि उन दिनोंमें भूशयन, मिताहार, ब्रह्मचर्यका पालन, क्षमा, दया,

---

* 'त्रिकालं पूजयेद् देवीं जपस्तोत्रपरायणः।' (देवीभागवत)

उदारता एवं उत्साहादिकी वृद्धि और क्रोध, लोभ, मोहादिका त्याग रखे। इस प्रकार नौ रात्रि व्यतीत होनेपर दसवें दिन प्रातःकालमें विसर्जन करे तो सब प्रकारके विपुल सुख-साधन सदैव प्रस्तुत रहते हैं और भगवान् (या भगवती) प्रसन्न होते हैं।

(७) पंचरात्र (भविष्यपुराण)—ये व्रत नवरात्रोंके अन्तर्गत किये जाते हैं। विशेषता यह है कि इनमें पंचमीको एकभुक्त व्रत करे, षष्ठीको नक्तव्रत रखे, सप्तमीको अयाचित भोजन करे, अष्टमीको अन्नवर्जित उपवास रखे और नवमीको पारण करे तो इससे देवीकी प्रसन्नता बढ़ती है।

(८) बालेन्दुव्रत (विष्णुधर्म)—यह चैत्र शुक्ल द्वितीयाको किया जाता है। इस दिन सूर्यास्तके समय शुद्ध जलसे स्नान करके चावलोंका बालेन्दु-मण्डल बनाये अथवा चन्द्रदर्शनके समय उसीमें बालेन्दु-मण्डलकी कल्पना करके आकाशस्थ चन्द्रमाका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे। ईख, गुड़, अक्षत, सुपारी और सैन्धव अर्पण करे और '**बालचन्द्रमसे नमः**' इस मन्त्रसे आहुति देकर भोजन करे। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल द्वितीयाको एक वर्षतक करनेसे सुख और भाग्यकी वृद्धि होती है। इसमें तैलपक्व पदार्थ खानेकी मनाही है।

(९) नेत्रव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—यह भी इसी द्वितीयाको किया जाता है। इसके लिये सूर्य-चन्द्रस्वरूप अश्विनीकुमारोंकी मूर्ति बनवाकर उनका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे। ब्रह्मचर्यसे रहे। ब्राह्मणोंको सोने-चाँदीकी दक्षिणा दे और गौके दहीमें गौका घी मिलाकर भोजन करे। यह व्रत १२ वर्षतक किया जाता है और इसके करनेसे नेत्रोंकी ज्योति और मुख-मण्डलकी आभा बढ़ती है।

(१०) दोलनोत्सव (व्रतरत्न)—चैत्र शुक्ल तृतीयाको प्रातःकालके समय जानकीनाथ रामचन्द्रभगवान्‌का राजोपचार पूजन करके उनको पालनेमें विराजमान कर झुलाये और इसी प्रकार सुरेश्वर और रमापतिको दोलारूढ़ करके उनके दर्शन करे तो सब पाप दूर होते हैं।

(११) गौरीतृतीया (व्रतोत्सवसंग्रह)—यह भी इसी दिन (चैत्र शुक्ल तृतीयाको) किया जाता है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ उस दिन प्रातः-स्नान करके उत्तम रंगीन वस्त्र (लाल धोती आदि) धारण करके शुद्ध स्थानमें २४ अंगुलकी सम-चौरस वेदी बनायें और उसपर केसर, चन्दन और कपूरसे मण्डल बनाकर उसमें सोने या चाँदीकी मूर्ति स्थापन करके अनेक प्रकारके फल, पुष्प, दूर्वा और गन्धादिसे पूजन करें। उसी जगह गौरी, उमा, लतिका, सुभगा, भगमालिनी, मनोन्मना, भवानी, कामदा, भोगवर्द्धिनी और अम्बिका—इनको भी गन्ध-पुष्पादिसे चर्चित और सुशोभित करे और भोजनमें केवल एक बार दूध पीये तो पति-पुत्रादिका अखण्ड सुख प्राप्त होता है।

(१२) ईश्वर-गौरी (व्रतोत्सव)—इसी दिन (चैत्र शुक्ल तृतीयाको) काष्ठादिकी पूर्वनिर्मित शिव-गौरीकी मूर्तियोंको स्नान कराके उत्तम प्रकारके वस्त्र और आभूषणादिसे भूषितकर पूजन करे और डोल, पालने या सिंहासनादिमें उनको सावधानीके साथ विराजमान करके सायंकालके समय विविध प्रकारके गाजे-बाजे, लवाजमे, सौभाग्यवती स्त्रियों और सत्पुरुषोंके समारोहके साथ उनको नगरसे बाहर किसी पुष्पोद्यान या सरोवरके तटपर स्थापित करे और वहाँ कुछ कालतक क्रीड़ा-कौतुकादिकी कला प्रदर्शन करानेके पीछे उनको उसी प्रकार वापस लाकर यथास्थान स्थापित कर दे। इस प्रकार प्रतिवर्ष करते रहनेसे नगर, ग्राम और उपबस्ती आदिमें सर्वत्र ही उद्योग, उत्साह, आरोग्यता और सर्वसौख्य बढ़ते हैं।

(१३) गौरीविसर्जन (व्रतोत्सव)—यह भी चैत्र शुक्ल तृतीयाको होता है। होलीके दूसरे दिन (चैत्र कृष्ण प्रतिपदा)-से जो कुमारी और विवाहिता बालिकाएँ प्रतिदिन गनगौर पूजती हैं, वे चैत्र शुक्ल द्वितीया (सिंजारे)-के दिन किसी नद, नदी, तालाब या सरोवरपर जाकर अपनी पूजी हुई गनगौरोंको पानी पिलाती हैं और दूसरे दिन सायंकालके समय

उनका विसर्जन कर देती हैं। यह व्रत विवाहिता लड़कियोंके लिये पतिका अनुराग उत्पन्न करानेवाला और कुमारिकाओंको उत्तम पति देनेवाला है।

(१४) श्रीव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—यह चैत्र शुक्ल पंचमीको किया जाता है। इसलिये तृतीयाको अभ्यंग-स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करे। माला आदि भी सफेद ले और व्रतमें संलग्न रहे। घी, दही और भातका भोजन करे। चतुर्थीको स्नान करके व्रत रखे और पंचमीको प्रातःस्नानादिके पश्चात् लक्ष्मीका पूजन करे। पूजनमें धान्य, हलदी, अदरख, गन्ने, गुड़ और लवण आदि अर्पण करके कमलके पुष्पोंका लक्ष्मीसूक्तसे हवन करे। यदि कमल न मिलें तो बेलके टुकड़ोंका और वे भी न हों तो केवल घीका हवन करे और पद्मिनी (कमलोंवाली तलाई)-में स्नान करके सुवर्णका दान करे तो 'श्री' (लक्ष्मी)-की प्राप्ति होती है।

(१५) लक्ष्मीव्रत (भविष्योत्तर)—यह भी इसी दिन (चैत्र शुक्ल पंचमीको) किया जाता है। इसमें लक्ष्मीका पूजन और व्रत करके सुवर्णके बने हुए कमलका दान करे तो सब प्रकारके दुःख दूर होते हैं।

(१६) सौभाग्यव्रत (भविष्योत्तर)—यह भी चैत्र शुक्ल पंचमीको होता है। इसमें पृथ्वीका, पंचमीका और चन्द्रमाका गन्धादिसे पूजन करके एक बार भोजन करे तो आयु और ऐश्वर्य दोनों बढ़ते हैं।

(१७) कुमारव्रत (कालोत्तर)—यह चैत्र शुक्ल षष्ठीको किया जाता है। उस दिन मयूरपर बैठे हुए स्वामिकार्तिककी सुवर्णके समान मूर्ति बनवाकर उसका पूजन करे। आचार्यको वस्त्र और सुवर्ण दे। उपवास रखे और सद्वैद्यकी सम्मतिके अनुसार ब्राह्मीका रस और घी पिये। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल पंचमीको एक वर्षपर्यन्त करनेसे महाबुद्धिमान् होता है। शास्त्रोंका आशय सहज ही समझमें आ सकता है और शास्त्रार्थमें स्फुरणाशक्तिका भलीभाँति विकास होता है।

(१८) मोदनव्रत (हेमाद्रि)—यह चैत्र शुक्ल सप्तमीको किया जाता

है। उस दिन प्रातःस्नानादि करके सूर्यनारायणका पूजन करे। ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराये और आप भी एक बार उसीका भोजन करे।

(१९) **नामसप्तमी** (भविष्यपुराण)—यह व्रत चैत्र शुक्ल सप्तमीसे वर्षपर्यन्त होता है और चैत्रादि १२ महीनोंमें सूर्यके १२ नामोंसे यथाक्रम पूजन किया जाता है। यथा—१ चैत्रमें धाता, २ वैशाखमें अर्यमा, ३ ज्येष्ठमें मित्र, ४ आषाढ़में वरुण, ५ श्रावणमें इन्द्र, ६ भाद्रपदमें विवस्वान्, ७ आश्विनमें पर्जन्य, ८ कार्तिकमें पूषा, ९ मार्गशीर्षमें अंशुमान्, १० पौषमें भग, ११ माघमें त्वष्टा और १२ फाल्गुनमें जिष्णु नामसे यथाविधि पूजन करके एकभुक्त व्रत करे तो आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी अपूर्व वृद्धि होती है।

(२०) **सूर्यव्रत** (विष्णुधर्मोत्तर)—यह भी चैत्र शुक्ल सप्तमीको ही होता है। इसके लिये एकान्तके मकानको लीपकर या धोकर स्वच्छ करे और उसके मध्यमें वेदी बनाकर उसपर अष्टदल कमल लिखे और कमलके प्रत्येक दलमें निम्नलिखित मूर्ति स्थापित करे। यथा—पूर्वके दलपर दो ऋतुकारक 'गन्धर्व', आग्नेय पत्रपर दो ऋतुकारक 'गन्धर्व', दक्षिण दलपर दो 'अप्सराएँ', नैर्ऋत्यके दलपर दो 'राक्षस', पश्चिमके दलपर ऋतुकारक दो 'महानाग', वायव्यके दलपर दो 'यातुधान', उत्तरके दलपर दो 'ऋषि' और ईशानके दलपर एक 'ग्रह' स्थापन करके उन सबका यथाक्रम पृथक्-पृथक् गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यसे पंचोपचार पूजन करके सूर्यके निमित्त घीकी १०८ आहुतियाँ दे और अन्य सबके निमित्त आठ-आठ आहुतियाँ दे तथा प्रत्येकके निमित्त एक-एक ब्राह्मणको भोजन कराये। इस प्रकार शुक्ल पक्षकी प्रत्येक सप्तमीको एक वर्षतक करे तो उसको सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

(२१) **अशोककलिकाप्राशनव्रत** (कृत्यरत्नावली, कूर्मपुराण)—यह चैत्र शुक्ल अष्टमीको किया जाता है। उस दिन

प्रातःस्नानादि करनेके अनन्तर अशोक (आशापाला)–के वृक्षका पूजन करके उसके पुष्प अथवा कोमल पत्तोंकी आठ कलिकाएँ लेकर उनसे शिवजीका पूजन करे और '**त्वामशोक नमाम्येनं मधुमाससमुद्भवम्। शोकार्तः कलिकां प्राश्य मामशोकं सदा कुरु॥**' से आठ कलिकाएँ भक्षण करके व्रत करे तो वह शोकरहित रहता है। यदि उस दिन बुधवार हो या पुनर्वसु हो या दोनों हों तो व्रतीको किसी प्रकारका शोक नहीं होता।

(२२) भवानीव्रत (भविष्यपुराण)—चैत्र शुक्ल अष्टमीको भवानीका प्रादुर्भाव हुआ था, अतः उस दिन देवीका पूजन करके अपूप आदिका भोग लगाये और व्रत करे।

(२३) रामनवमी (विष्णुधर्मोत्तर)—इस व्रतकी चारों जयन्तियोंमें गणना है। यह चैत्र शुक्ल नवमीको किया जाता है। इसमें मध्याह्नव्यापिनी शुद्धा तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन मध्याह्नव्यापिनी हो या दोनों दिनोंमें ही न हो तो पहला व्रत करना चाहिये। इसमें अष्टमीका वेध हो तो निषेध[१] नहीं, दशमीका वेध वर्जित है।..... यह व्रत नित्य[२], नैमित्तिक और काम्य—तीन प्रकारका है। नित्य होनेसे इसे निष्काम भावना रखकर आजीवन किया जाय तो उसका अनन्त औरअमिट फल होता है और किसी निमित्त या कामनासे किया जाय तो उसका यथेच्छ फल मिलता है। भगवान् रामचन्द्रका जन्म[३] हुआ, उस समय चैत्र शुक्ल नवमी, गुरुवार,

---

१. अष्टम्या नवमी विद्धा कर्तव्या फलकांक्षिभिः।
न कुर्यान्नवमी तात दशम्या तु कदाचन॥ (दीक्षित)

२. नित्यं नैमित्तिकं काम्यं व्रतं वेति विचार्यते।
निष्कामानां विधानात्तु तत् काम्यं तावदिष्यते॥ (रामार्चन)

३. श्रीरामश्चैत्रमासे दिनदलसमये पुष्यभे कर्कलग्ने
जीवेन्दोः कीटराशौ मृगभगतकुजे ज्ञे झषे मेषगेऽर्के।
मन्दे जूकेऽङ्गनायां तमसि शफरिगे भार्गवेये नवम्यां
पंचोच्चे चावतीर्णो दशरथतनयः प्रादुरासीत् स्वयम्भूः॥ (रामचन्द्रजन्मपत्री)

पुष्य (या दूसरे मतसे पुनर्वसु), मध्याह्न और कर्क लग्न था। उत्सवके दिन ये सब तो सदैव आ नहीं सकते, परंतु जन्मर्क्ष कई बार आ जाता है; अतः वह हो तो उसे अवश्य लेना चाहिये।.....जो मनुष्य रामनवमीका भक्ति और विश्वासके साथ व्रत करते हैं, उनको महान् फल मिलता है।.....व्रतीको चाहिये कि व्रतके पहले दिन (चैत्र शुक्ल अष्टमीको) प्रातःस्नानादिसे निश्चिन्त होकर भगवान् रामचन्द्रका स्मरण करे। दूसरे दिन (चैत्र शुक्ल नवमीको) नित्यकृत्यसे अति शीघ्र निवृत्त होकर '**उपोष्य नवमी त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव। तेन प्रीतो भव त्वं भो संसारात् त्राहि मां हरे॥**' इस मन्त्रसे भगवान्के प्रति व्रत करनेकी भावना प्रकट करे और '**मम भगवत्प्रीतिकामनया (वामुकफल-प्राप्तिकामनया) रामजयन्तीव्रतमहं करिष्ये**' यह संकल्प करके काम-क्रोध-लोभ-मोहादिसे वर्जित होकर व्रत करे।.....तत्पश्चात् मन्दिर अथवा अपने मकानको ध्वजा-पताका, तोरण और बंदनवार आदिसे सुशोभित करके उसके उत्तर भागमें रंगीन कपड़ेका मण्डप बनाये और उसके अंदर सर्वतोभद्रमण्डलकी रचना करके उसके मध्यभागमें यथाविधि कलश-स्थापन करे। कलशके ऊपर रामपंचायतन (जिसके मध्यमें राम-सीता, दोनों पार्श्वोंमें भरत और शत्रुघ्न, पृष्ठ-प्रदेशमें लक्ष्मण और पादतलमें हनुमान्जी)-की सुवर्णनिर्मित मूर्ति स्थापन करके उसका आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करे। व्रतराज, व्रतार्क, जयसिंहकल्पद्रुम और विष्णुपूजन आदिमें वैदिक और पौराणिक दोनों प्रकारकी पूजनविधि है। उसके अनुसार पूजन करे।....उस[१] दिन दिनभर

---

* चैत्रे मासि नवम्यां तु शुक्लपक्षे रघूत्तमः।
प्रादुरासीत् पुरा ब्रह्मन् परब्रह्मैव केवलम्॥
तस्मिन् दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा।
तत्र जागरणं कुर्याद् रघुनाथपरो भुवि॥
उपोषणं जागरणं पितृनुद्दिश्य तर्पणम्।
तस्मिन् दिने तु कर्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः॥ (रामार्चनचन्द्रिका)

भगवान्‌का भजन–स्मरण, स्तोत्रपाठ, दान–पुण्य, हवन, पितृश्राद्ध और उत्सव करे और रात्रिमें उत्तम प्रकारके गायन–वादन–नर्तन (रामलीला) और चरित्र–श्रवणादिके द्वारा जागरण करे तथा दूसरे दिन (दशमीको) पारण करके व्रतका विसर्जन करे। सामर्थ्य हो तो सुवर्णकी मूर्तिका दान और ब्राह्मण–भोजन कराये तथा इस प्रकार प्रतिवर्ष करता रहे।

(२४) मातृकाव्रत (विष्णुधर्म)—यह भी इसी दिन (चैत्र शुक्ल नवमीको) होता है। इसमें भैरव और चौंसठ योगिनियोंका सफेद रंगके गन्ध–पुष्पादिसे पूजन किया जाता है।

(२५) शुक्लैकादशी (नानापुराणस्मृति)—इसको चैत्र शुक्ल एकादशीके दिन पूर्वोक्त प्रकारसे करना चाहिये। व्रतके पहले दिन (दशमीके मध्याह्नमें) जौ, गेहूँ और मूँग आदिका एक बार भोजन करके भगवान्‌का स्मरण करे। दूसरे दिन (एकादशीको) प्रातःस्नानादि करके '**ममाखिलपापक्षयपूर्वकपरमेश्वरप्रीतिकामनया कामदैकादशीव्रतं करिष्ये**' यह संकल्प करके रात्रिके समय भगवान्‌को दोलारूढ करे और उनके सम्मुख जागरण करे। फिर दूसरे दिन पारण करे तो सब प्रकारके पाप दूर होते हैं।……इसका कथासार यह है कि प्राचीन कालमें सुवर्ण और रत्नोंसे सुशोभित भोगिपुर नगरके पुण्डरीक राजाके ललित और ललिता नामके गन्धर्व–गन्धर्विणी गायन–विद्यामें बड़े प्रवीण थे। एक दिन राजाके बुलानेपर ललित कार्यवश नहीं आया, तब राजाने उसको राक्षस बना दिया। इसपर ललिता बहुत दुःखी हुई और ऋष्यशृंगकी आज्ञासे उसने कामदाका व्रत करके पतिको पूर्वरूपमें प्राप्त किया।

(२६) मदनद्वादशी (मत्स्यपुराण)—यह व्रत चैत्र शुक्ल द्वादशीको किया जाता है। उस दिन गुड़के जलसे स्नान करके एक वेदीपर चावलोंसे भरा हुआ कलश स्थापन करे और उसके ऊपर ताँबेके पात्रमें गुड़ और सुवर्णकी मूर्ति रखकर उसका गन्ध–पुष्पादिसे पूजन करे। साथ ही अनेक

प्रकारके फल, पुष्प, ईख और नैवेद्य अर्पण करे तथा उनमेंसे एक फल लेकर उसको भक्षण करे। इस प्रकार १३ महीने करे तो उसको पुत्र-शोक नहीं होता।

(२७) मदनपूजा (धर्मशास्त्रसमुच्चय)—यह व्रत चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको किया जाता है। उस दिन स्नान करके उत्तम कपड़ेपर मदनदेवकी मनोमोहक मूर्ति अंकित करे और उसका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके घीसे बनाये हुए मोदकारी मोदकोंका '**नमो रामाय कामाय कामदेवस्य मूर्तये। ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राणां नमः क्षेमकराय वै॥**' से नैवेद्य अर्पण करे और रात्रिमें जागरण करके दूसरे दिन पारण करे तो पति-पुत्रादिका अखण्ड सुख होता है।

(२८) प्रदोषव्रत (व्रतविज्ञान)—यह अतिप्रशस्त सर्वाचरणीय श्रेष्ठ व्रत प्रत्येक मासकी शुक्ल और कृष्ण त्रयोदशीको किया जाता है। कृष्णका विधान पहले लिखा ही जा चुका है, उसीके अनुसार शुक्लका व्रत करना चाहिये। विशेषता यह है कि संतानके लिये 'शनिप्रदोष', ऋणमोचनके लिये 'भौमप्रदोष' और शान्तिरक्षाके लिये 'सोमप्रदोष' अधिक फलदायी हैं। इनके सिवा आयु और आरोग्यकी वृद्धिके लिये 'अर्कप्रदोष' उत्तम होता है। व्रतीको चाहिये कि उस दिन सूर्यास्तके समय पुनः स्नान करके शिवजीका पूजन करे और '**भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमते। रुद्राय नीलकण्ठाय शर्वाय शशिमौलिने॥ उग्रायोग्राघनाशाय भीमाय भयहारिणे। ईशानाय नमस्तुभ्यं पशूनां पतये नमः॥**' से प्रार्थना करके भोजन करे।

(२९) चैत्री पूर्णिमा (पुराणसमुच्चय)—प्रत्येक मासकी पूर्णिमाको पूर्ण चन्द्रमाका और तत्प्रकाशक सूर्यका तथा विष्णुरूप सत्यनारायणका व्रत किया जाता है। यह पूर्णिमा चन्द्रोदयव्यापिनी ली जाती है। इसमें देवपूजन, दान-पुण्य, तीर्थ-स्नान और पुराण-श्रवणादि करनेसे पूर्ण फल मिलता है।

यदि इस दिन चित्रा हो तो विचित्र वस्त्रोंका दान करनेसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है।

(३०) तिथीशपूजन (धर्मानुसंधान)—यह व्रत प्रतिपदादि प्रत्येक तिथिके स्वामीका पूजन करनेसे सम्पन्न होता है। विधान यह है कि प्रातः-स्नानादिके पीछे वेदी या चौकीपर रक्त वस्त्र बिछाकर उसपर अक्षतोंका अष्टदल बनाये। उसके मध्यमें जिस दिन जो तिथि हो, उसके स्वामीकी सुवर्णमयी मूर्तिका पूजन करे। तिथियोंके स्वामी क्रमशः प्रतिपदाके 'अग्निदेव', द्वितीयाके 'ब्रह्मा', तृतीयाकी 'गौरी', चतुर्थीके 'गणेश', पंचमीके 'सर्प', षष्ठीके 'स्वामिकार्तिक', सप्तमीके 'सूर्य', अष्टमीके 'शिव' (भैरव), नवमीकी 'दुर्गा', दशमीके 'अन्तक' (यमराज), एकादशीके 'विश्वेदेवा', द्वादशीके 'हरि' (विष्णु), त्रयोदशीके 'कामदेव', चतुर्दशीके 'शिव', पूर्णिमाके 'चन्द्रमा' और अमाके 'पितर' हैं। इनका व्रत और पूजन प्रतिदिन करते रहनेसे हर्ष, उत्साह और आरोग्यकी वृद्धि होती है।

(३१) हनुमद्व्रत (उत्सवसिन्धु-व्रतरत्नाकर)—यह व्रत हनुमान्‌जीकी जन्मतिथिका है। जिन पंचांगोंके आधारसे व्रतोंका निर्णय किया जाता है, उनमें हनुमान्‌जीकी जन्मतिथि किसीमें कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी और किसीमें चैत्र शुक्ल पूर्णिमा है। किसी भी देवताकी अधिकृति या जन्मतिथि एक होती है, परंतु हनुमान्‌जीकी दो मानते हैं। यह विशेषता है। इस विषयके ग्रन्थोंमें इन दोनोंके उल्लेख अवश्य हैं, परंतु आशयोंमें भिन्नता है। पहला 'जन्मदिन' है और दूसरा 'विजयाभिनन्दन' का महोत्सव। ......'उत्सवसिन्धु'* में लिखा है कि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी, भौमवारको स्वाती नक्षत्र और मेषलग्नमें अंजनीके गर्भसे हनुमान्‌जीके रूपमें स्वयं शिवजी उत्पन्न हुए थे।

* ऊर्जस्य चासिते पक्षे स्वात्यां भौमे कपीश्वरः।
मेषलग्नेऽञ्जनीगर्भाच्छिवः प्रादुरभूत् स्वयम्॥ (उत्सवसिन्धु)

'व्रतरत्नाकर'[१] में भी यही है कि कार्तिक कृष्णकी भूततिथि (चतुर्दशी)-को मंगलवारके दिन महानिशामें अंजनादेवीने हनुमान्‌जीको जन्म दिया था। दूसरे वाक्यकी अपेक्षा पहलेमें स्वाती नक्षत्र और मेषलग्न विशेष है। परंतु कार्तिकीको कृत्तिका होनेसे कृष्ण चतुर्दशीको चित्रा या स्वातीका होना असम्भव नहीं। ......इनके विपरीत 'हनुमदुपासनाकल्पद्रुम'[२] नामक ग्रन्थमें, जो एक महाविद्वान्‌का संकलन किया हुआ है, चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, मंगलवारके दिन मूँजकी मेखलासे युक्त, कौपीनसे संयुक्त और यज्ञोपवीतसे भूषित हनुमान्‌जीका उत्पन्न होना लिखा है। साथमें यह विशेष लिखा है कि 'कैकेयीके हाथसे[३] चील्हके द्वारा आयी हुई यज्ञकी खीर खानेसे अंजनाके हनुमान्‌जी उत्पन्न हुए। अस्तु।' ......रामचरित्रके अन्वेषणमें वाल्मीकीय रामायण अधिक मान्य है। उसमें हनुमान्‌जीकी जन्मकथा (किष्किन्धाकाण्ड सर्ग ६६ और उत्तरकाण्ड सर्ग ३५ में) पूर्णरूपसे लिखी गयी है। उससे ज्ञात होता है कि अंजनीके उदरसे हनुमान्‌जी उत्पन्न हुए। भूखे होनेसे ये आकाशमें उछल गये और उदय होते हुए सूर्यको फल समझकर उनके समीप चले गये। उस दिन पर्वतिथि (अमावास्या) होनेसे सूर्यको ग्रसनेके

---

१. कार्तिकस्यासिते पक्षे भूतायां च महानिशि।
भौमवारेऽञ्जना देवी हनुमन्तमजीजनत्॥ (व्रतरत्नाकर)

२. चैत्रे मासि सिते पक्षे पौर्णमास्यां कुजेऽहनि।
मौंजीमेखलया युक्तः कौपीनपरिधारकः॥ (ह० क०)

३. कैकेयीहस्ततः पिण्डं जहार चिल्हिपक्षिणी।
गच्छन्त्याकाशमार्गेण तदा वायुर्महानभूत्॥
तुण्डात् प्रगलिते पिण्डे वायुर्नीत्वांजनांजलौ।
क्षिप्तवान् स्थापितं पिण्डं भक्षयामास तत्क्षणात्॥
नवमासगते पुत्रं सुषुवे सांजना शुभम्।
(हनुमदुपासनाकल्पद्रुम; आनन्द रा० सारकां०)

लिये राहु[1] आया था। परंतु वह इनको दूसरा राहु मानकर भागने लगा, तब इन्द्रने अंजनीपुत्रपर वज्रका प्रहार किया, उससे उनकी ठोडी टेढ़ी हो गयी। इसीसे ये हनुमान् कहलाये। इस अंशमें चैत्र या कार्तिकका नाम नहीं है। सम्भव है कल्पभेद या भ्रान्तिवश अन्य ग्रन्थोंमें चैत्र लिखा गया हो।''''हनुमान्‌जीका एक जन्मपत्र भी है, उसमें तिथि चतुर्दशी, वार मंगल, नक्षत्र चित्रा और मास अनिर्दिष्ट है। कुण्डलीमें सूर्य, मंगल, गुरु, भृगु और शनि—ये उच्चके हैं और ये ४, १, ७, ३ और १० इन स्थानोंमें यथाक्रम बैठे हैं। इन सबके देखनेसे यह तथ्य निकलता है कि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिमें हनुमान्‌जीका जन्म हुआ था और चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको सीताकी खोज, राक्षसोंके उपमर्दन, लंकाके दहन और समुद्रके उल्लंघन आदिमें हनुमान्‌जीके विजयी होने और निरापद वापस लौटनेके उपलक्ष्यमें हर्षोन्मत्त वानरोंने मधुवनमें हर्ष मनाया था और उससे सभी नर-वानर सुखी हुए थे। इस कारण उक्त दोनों दिनोंमें व्रत और उत्सव किया जाय तो '**अधिकस्याधिकं फलम्**' तो होगा ही।'''''इस व्रतमें तात्कालिक (रात्रिव्यापिनी) तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो तो दूसरा व्रत करना चाहिये। व्रतीका कर्तव्य है कि वह हनुमज्जन्मदिनके व्रत-निमित्त धनत्रयोदशी (का० कृ० १३)-की रात्रिमें राम-जानकी और हनुमान्‌जीका स्मरण करके पृथ्वीपर शयन करे तथा रूपचतुर्दशी (का० कृ० १४)-को अरुणोदयसे पहले उठकर राम-जानकी और हनुमान्‌जीका पुनः स्मरण करके प्रातःस्नानादिसे जल्दी निवृत्त हो ले। तत्पश्चात् हाथमें जल लेकर—'**ममाखिलानिष्टनिरसन-**

---

* यमेव दिवसं ह्येष ग्रहीतुं भास्करं प्लुतः।
तमेव दिवसं राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम्॥
अद्याहं पर्वकाले तु जिघृक्षुः सूर्यमागतः।
अथान्यो राहुरासाद्य जग्राह सहसा रविम्॥ (वाल्मीकीय रामायण)

पूर्वकसकलाभीष्टसिद्धये तेजोबलबुद्धिविद्याधनधान्यसमृद्ध्यायुरा-रोग्यादिवृद्धये च हनुमद्व्रतं तदंगीभूतपूजनं च करिष्ये।' यह संकल्प करके हनुमान्‌जीकी पूर्वप्रतिष्ठित प्रतिमाके समीप पूर्व या उत्तरमुख बैठकर अति नम्रताके साथ '**अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्। सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥**' से प्रार्थना करे और फिर उनका यथाविधान षोडशोपचार पूजन करे। स्नानमें समीप हो तो नदीका और न हो तो श्रीजल मिला हुआ कूपोदक, वस्त्रोंमें लाल कौपीन और पीताम्बर, गन्धमें केसर मिला हुआ चन्दन, मूँजका यज्ञोपवीत, पुष्पोंमें शतपत्र (हजारा), केतकी, कनेर और अन्य पीले पुष्प, धूपमें अगर-तगरादि, दीपकमें गोघृतपूर्ण बत्ती और नैवेद्यमें घृतपक्व अपूप (पूआ) अथवा आटेको घीमें सेंककर गुड़ मिलाये हुए मोदक और केला आदि फल अर्पण करे तथा नीराजन, नमस्कार, पुष्पांजलि और प्रदक्षिणाके बाद '**मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्। वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि॥**' से प्रार्थना करके प्रसाद वितरण करे और सामर्थ्य हो तो ब्राह्मणभोजन कराकर स्वयं भोजन करे। रात्रिके समय दीपावली, स्तोत्रपाठ, गायन-वादन या संकीर्तनसे जागरण करे।......यदि किसी कार्य-सिद्धिके लिये व्रत करना हो तो मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशीको प्रातःस्नानादि करके एक वेदीपर अक्षत-पुंजसे १३ कमल बनाये। उनपर जलपूर्ण पूजित कलश स्थापन करके उसके ऊपर लगाये हुए पीले वस्त्रपर १३ कमलोंमें १३ गाँठ लगा हुआ नौ सूतका पीला डोरा रखे। फिर वेदीका पूजन करके उपर्युक्त विधिसे अथवा पद्धतिके क्रमसे हनुमान्‌जीका पूजन और जप, ध्यान, उपासना आदि करे तथा ब्राह्मणभोजनादिके पीछे स्वयं भोजन कर व्रतको पूर्ण करे तो सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध होते हैं।......कथा-सार यह है कि सूर्यके वरसे सुवर्णके बने हुए सुमेरुमें केसरीका राज्य था। उसके अति सुन्दरी अंजना नामकी स्त्री थी। एक बार उसने शुचिस्नान करके सुन्दर वस्त्राभूषण धारण

किये। उस समय पवनदेवने उसके कर्णरन्ध्रमें प्रवेशकर आते समय आश्वासन दिया कि तेरे सूर्य, अग्नि एवं सुवर्णके समान तेजस्वी, वेद-वेदांगोंका मर्मज्ञ, विश्ववन्द्य महाबली पुत्र होगा। ''''''ऐसा ही हुआ। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीकी महानिशामें अंजनाके उदरसे हनुमान्‌जी उत्पन्न हुए। दो प्रहर बाद सूर्योदय होते ही उन्हें भूख लगी। माता फल लाने गयी, इधर वनके वृक्षोंमें लाल वर्णके बालक सूर्यको फल मानकर हनुमान्‌जी उसको लेनेके लिये आकाशमें उछल गये। उस दिन अमा होनेसे सूर्यको ग्रसनेके लिये राहु आया था, किंतु इनको दूसरा राहु मानकर भाग गया। तब इन्द्रने हनुमान्‌जीपर वज्र-प्रहार किया। उससे इनकी ठोडी टेढ़ी हो गयी, जिससे ये हनुमान् कहलाये। इन्द्रकी इस धृष्टताका दण्ड देनेके लिये इन्होंने प्राणिमात्रका वायुसंचार रोक दिया। तब ब्रह्मादि सभी देवोंने अलग-अलग इन्हें वर दिये। ब्रह्माजीने अमितायुका, इन्द्रने वज्रसे हत न होनेका, सूर्यने अपने शतांश तेजसे युक्त और सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ होनेका, वरुणने पाश और जलसे अभय रहनेका, यमने यमदण्डसे अवध्य और पाशसे नाश न होनेका, कुबेरने शत्रुमर्दिनी गदासे निःशंक रहनेका, शंकरने प्रमत्त और अजेय योद्धाओंसे जय प्राप्त करनेका और विश्वकर्माने मयके बनाये हुए सभी प्रकारके दुर्बोध्य और असह्य, अस्त्र, शस्त्र तथा यन्त्रादिसे कुछ भी क्षति न होनेका वर दिया। ''''''इस प्रकारके वरोंके प्रभावसे आगे जाकर हनुमान्‌जीने अमित पराक्रमके जो काम किये, वे सब हनुमान्‌जीके भक्तोंमें प्रसिद्ध हैं और जो अश्रुत या अज्ञात हैं, वे अनेक प्रकारकी रामायणों, पद्म, स्कन्द और वायु आदि पुराणों एवं उपासना-विषयके अगणित ग्रन्थोंसे ज्ञात हो सकते हैं। ऐसे विश्ववन्द्य महाबली और श्रीरामचन्द्रके अनन्य भक्त हनुमान्‌जीके जप, ध्यान, उपासना, व्रत और उत्सव आदि करनेसे सब प्रकारके संकट दूर होते हैं। देवदुर्लभ पद, सम्मान और सुख प्राप्त होते हैं तथा राम-जानकी और हनुमान्‌जीके प्रसन्न होनेसे उपासकका कल्याण होता है। एवमस्तु।

वैशाखके व्रत

कृष्णपक्ष

(१) **वैशाखस्नान**—चैत्र शुक्ल पूर्णिमासे वैशाख शुक्ल पूर्णिमातक प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व किसी तीर्थस्थान नदी या कुआँ, बावली, सरोवर अथवा अपने घरपर ही शुद्ध जलसे स्नान करे और नित्यकृत्यके अतिरिक्त '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' या '**हरे राम हरे राम०**' मन्त्रका यथाशक्ति जप करके एक बार भोजन करे। इकतीस दिनतक ऐसा क्रम रखनेसे अनेक प्रकारके रोग और दोष दूर होते हैं एवं प्रभाव तथा पुण्य बढ़ता है।

(२) **संकष्टचतुर्थी**—यह व्रत प्रत्येक महीनेकी कृष्ण चतुर्थीको किया जाता है। इसमें चन्द्रोदयतक रहनेवाली चतुर्थी ग्रहण की जाती है। यदि दो दिन ऐसी चतुर्थी हो तो '**मातृविद्धा प्रशस्यते**' के अनुसार तृतीयासे युक्त व्रत करना चाहिये। उस दिन सायंकालके समय स्नान करके गणेशजीका पूजन करे और चन्द्रोदय होनेपर उन्हें अर्घ्य दे।

(३) **चण्डिकानवमी**—यह व्रत वैशाखके दोनों पक्षोंमें नवमीको किया जाता है। उस दिन प्रातःस्नानके पश्चात् लाल धोती पहनकर सुगन्धयुक्त पुष्पादिसे चण्डिका देवीका पूजन करे और पुष्पांजलि अर्पण कर उपवास रखे। इस व्रतका सविधि अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य हंस, कुन्द और चन्द्रमाके समान गौरवर्ण एवं ध्रुवके समान तेजस्वी दिव्य स्वरूप धारणकर उत्तम विमानपर आरूढ़ हो देवलोकमें आदर पाता है।*

(४) **कृष्णैकादशी**—वैशाख कृष्णकी एकादशीका नाम वरूथिनी

---

* हंसकुन्देन्दुसंकाशस्तेजसा ध्रुवसंनिभः।
विमानवरमारूढो देवलोके महीयते॥ (निर्णयामृते भविष्योत्तरे)

है। इसका व्रत करनेसे सब प्रकारके पाप-ताप दूर होते हैं, अनन्त शान्ति मिलती है और स्वर्गादि उत्तम लोक प्राप्त होते हैं। व्रतीको चाहिये कि वह दशमीको हविष्यान्नका एक बार भोजन करे। कांस्यपात्र[1], मांस और मसूरादि ग्रहण न करे। फिर एकादशीको उपवास करे, उस दिन जूआ[2] और निद्रा आदिका त्याग रखे। रात्रिमें भगवन्नाम-स्मरणपूर्वक जागरण करे और द्वादशीको मांस[3]-कांस्यादिका परित्याग करके यथाविहित पारणा करे। (वास्तवमें द्यूतक्रीड़ा आदिका तथा मांस आदिका सदा ही त्याग करना चाहिये)।

(५) **प्रदोषव्रत**—यह सुप्रसिद्ध व्रत है। प्रत्येक मासकी कृष्ण-शुक्ल त्रयोदशीको किया जाता है। इसका विशेष विवरण वैशाख शुक्लमें देखिये। व्रतीको चाहिये कि वह व्रतके दिन सूर्यास्तके समय पुनः स्नान करके शिवजीके समीप बैठकर उनका भक्तिसहित पूजन करे और सूर्यास्तसे दो या तीन घड़ी रात्रि व्यतीत होनेसे पहले ही भोजन करके शिवका स्मरण करे।

(६) **अमाव्रत**—अमावास्या पर्वतिथि है। इसमें दान, पुण्य, जप, तप और व्रत करनेसे बहुत फल होता है। विशेषरूपसे इस तिथिको श्राद्ध करनेसे पितृगण प्रसन्न होते हैं।

शुक्लपक्ष

(१) **अक्षयतृतीया**—वैशाख शुक्ल तृतीयाको अक्षयतृतीया कहते हैं। यह सनातनधर्मियोंका प्रधान त्यौहार है। इस दिन दिये हुए

---

१. कांस्यं मांसं मसूरान्नं चणकं कोद्रवांस्तथा।
शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने।
वैष्णवो व्रतकर्ता च दशम्यां दश वर्जयेत्॥

२. द्यूतक्रीडां च निद्रां च ताम्बूलं दन्तधावनम्।
परापवादपैशुन्यं स्तेयं हिंसां तथा रतिम्।
क्रोधं चानृतवाक्यं च एकादश्यां विवर्जयेत्॥

३. मांसादिकं च पूर्वोक्तं द्वादश्यामपि वर्जयेत्। (भविष्योत्तरपुराणे)

दान और किये हुए स्नान, होम, जप आदि सभी कर्मोंका फल अनन्त[१] होता है—सभी अक्षय हो जाते हैं; इसीसे इसका नाम अक्षया[२] हुआ है। इसी तिथिको नर-नारायण, परशुराम और हयग्रीव-अवतार हुए थे; इसलिये इस दिन उनकी जयन्ती मनायी जाती है तथा इसी दिन त्रेतायुग भी आरम्भ हुआ था। अतएव इसे मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करना चाहिये। परंतु परशुरामजी प्रदोषकालमें प्रकट हुए थे; इसलिये यदि द्वितीयाको मध्याह्नसे पहले तृतीया आ जाय तो उस दिन अक्षयतृतीया, नर-नारायण-जयन्ती, परशुराम-जयन्ती और हयग्रीव-जयन्ती सब सम्पन्न की जा सकती हैं और यदि द्वितीया अधिक हो तो परशुराम-जयन्ती दूसरे दिन होती है। यदि इस दिन गौरीव्रत भी हो तो '**गौरी विनायकोपेता**' के अनुसार गौरीपुत्र गणेशकी तिथि चतुर्थीका सहयोग अधिक शुभ होता है। अक्षयतृतीया बड़ी पवित्र और महान् फल देनेवाली तिथि है। इसलिये इस दिन सफलताकी आशासे व्रतोत्सवादिके अतिरिक्त वस्त्र, शस्त्र और आभूषणादि बनवाये अथवा धारण किये जाते हैं तथा नवीन स्थान, संस्था एवं समाज आदिका स्थापन या उद्घाटन भी किया जाता है। ज्योतिषीलोग आगामी वर्षकी तेजी-मंदी जाननेके लिये इस दिन सब प्रकारके अन्न, वस्त्र आदि व्यावहारिक वस्तुओं और व्यक्तिविशेषोंके नामोंको तौलकर एक सुपूजित स्थानमें रखते हैं और दूसरे दिन फिर तौलकर उनकी न्यूनाधिकतासे भविष्यका शुभाशुभ मालूम करते हैं। अक्षयतृतीयामें तृतीया तिथि, सोमवार और रोहिणी नक्षत्र ये तीनों हों तो बहुत श्रेष्ठ माना जाता है। किसानलोग उस दिन चन्द्रमाके अस्त होते समय रोहिणीका आगे जाना अच्छा और पीछे रह जाना बुरा मानते हैं।

---

१. स्नात्वा हुत्वा च दत्त्वा च जप्त्वानन्तफलं लभेत्। (भारते)

२. यत्किंचिद् दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु।
तत् सर्वमक्षयं यस्मात् तेनेयमक्षया स्मृता॥ (भविष्ये)

अक्षयतृतीयाव्रत—इस दिन उपर्युक्त तीनों जयन्तियाँ एकत्र होनेसे व्रतीको चाहिये कि वह प्रातःस्नानादिसे निवृत्त होकर '**ममाखिलपापक्षयपूर्वकसकलशुभफलप्राप्तये भगवत्प्रीतिकामनया देवत्रयपूजनमहं करिष्ये**' ऐसा संकल्प करके भगवान्‌का यथाविधि षोडशोपचारसे पूजन[१] करे। उन्हें पंचामृतसे स्नान करावे, सुगन्धित पुष्पमाला पहनावे और नैवेद्यमें नर-नारायणके निमित्त सेके हुए जौ या गेहूँका 'सत्तू', परशुरामके निमित्त कोमल ककड़ी और हयग्रीवके निमित्त भीगी हुई चनेकी दाल अर्पण करे। बन सके तो उपवास तथा समुद्रस्नान[२] या गंगास्नान करे और जौ[३], गेहूँ, चने, सत्तू, दही-चावल ईखके रस और दूधके बने हुए खाद्य पदार्थ (खाँड़, मावा, मिठाई आदि) तथा सुवर्ण एवं जलपूर्ण कलश, धर्मघट, अन्न[४], सब प्रकारके रस और ग्रीष्म-ऋतुके उपयोगी वस्तुओंका दान करे तथा पितृश्राद्ध करे और ब्राह्मणभोजन भी करावे। यह सब यथाशक्ति करनेसे अनन्त फल होता है।

परशुराम-जयन्ती—परशुरामजीका जन्म वैशाख शुक्ल तृतीयाको रात्रिके प्रथम प्रहरमें हुआ था, अतः यह प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य होती है। यदि दो दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो दूसरा व्रत करना चाहिये।

---

१. यः पश्यति तृतीयायां कृष्णं चन्दनभूषितम्।
वैशाखस्य सिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम्॥ (विष्णुधर्मोत्तरे)

२. युगादौ तु नरः स्नात्वा विधिवल्लवणोदधौ।
गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ (पृथ्वीचन्द्रोदये सौरपुराणे)

३. यवगोधूमचणकान् सक्तु दध्योदनं तथा।
इक्षुक्षीरविकारांश्च हिरण्यं च स्वशक्तितः॥
उदकुम्भान् सकरकान् सन्नान् सर्वरसैः सह।
ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते॥ (भविष्योत्तरे)

४. गन्धोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुम्भं फलान्वितम्।
पितृभ्यः सम्प्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु॥ (वि० ध०)

व्रतके दिन प्रातः-स्नानके अनन्तर '**मम ब्रह्मत्वप्राप्तिकामनया परशुरामपूजनमहं करिष्ये**' यह संकल्प करके सूर्यास्ततक मौन रखे और सायंकालमें पुनः स्नान करके परशुरामजीका पूजन करे तथा '**जमदग्निसुतो वीर क्षत्रियान्तकर प्रभो। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया परमेश्वर॥**' इस मन्त्रसे अर्घ्य देकर रात्रिभर राममन्त्रका जप करे।

गौरीपूजा—यह भी वैशाख शुक्ल तृतीयाको ही की जाती है। इस दिन पार्वतीका प्रीतिपूर्वक पूजन करके धातु या मिट्टीके कलशमें जल, फल, पुष्प, गन्ध, तिल और अन्न भरकर '**एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः॥**' यह उच्चारण करके उसे दान करे।

(२) पुत्र-प्राप्तिव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—यह व्रत वैशाख शुक्ल पंचमीसे प्रारम्भ होकर वर्षभरमें पूर्ण होता है। आरम्भमें पंचमीको उपवास करके षष्ठीको स्कन्द-कुमार-विशाख और गुहका पूजन करे, इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल पंचमी और षष्ठीको वर्षपर्यन्त करता रहे तो पुत्रार्थीको पुत्र, धनार्थीको धन और स्वर्गार्थीको स्वर्ग प्राप्त होता है। यह शिवजीका बतलाया हुआ व्रत है।

(३) निम्बसप्तमी (भविष्योत्तर)—वैशाख शुक्ल सप्तमीको स्नानादि नित्यकर्म करके अक्रोध और जितेन्द्रिय रहकर नीमके पत्ते ग्रहण करे और '**निम्बपल्लव भद्रं ते सुभद्रं तेऽस्तु वै सदा। ममापि कुरु भद्रं वै प्राशनाद् रोगहा भव॥**' इस मन्त्रसे एक-एक पत्ता खाकर पृथ्वीपर शयन करे तथा अष्टमीको सूर्यनारायणका पूजन करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उसके बाद स्वयं भोजन करे।

(४) कमलसप्तमी (पद्मपुराण)—इस व्रतके लिये सुवर्णका कमल और सूर्यकी मूर्ति बनवाकर वैशाख शुक्ल सप्तमीको वेदीपर कमल और कमलपर सूर्यकी मूर्ति स्थापित करे एवं

उनका यथाविधि पूजन करके '**नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे। दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते॥**' इस श्लोकसे प्रार्थना करके सूर्यास्तके समय एक जलका घड़ा, एक गौ और उक्त कमलादि ब्राह्मणोंको दान करे तथा दूसरे दिन उनको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल सप्तमीको एक वर्ष करे तो सब प्रकारका सुख प्राप्त होता है।

(५) शर्करासप्तमी (पद्मपुराण)—यह भी वैशाख शुक्ल सप्तमीको ही होता है। इसके लिये उक्त सप्तमीको सफेद तिलोंके जलसे स्नान करके सफेद वस्त्र धारण करे। एक वेदीपर कुंकुमसे अष्टदल लिखकर '**ॐ नमः सवित्रे**' इस मन्त्रसे उसका पूजन करे। फिर उसपर खाँड़से भरा हुआ और सफेद वस्त्रसे ढँका हुआ सुवर्णयुक्त कोरा कलश स्थापित करके '**विश्वदेवमयो यस्माद्वेदवादीति पठ्यसे। त्वमेवामृतसर्वस्वमतः पाहि सनातन॥**' (पद्मपुराण)—इस मन्त्रसे यथाविधि पूजन करे और दूसरे दिन ब्राह्मणोंको घृत और शर्करामिश्रित खीरका भोजन कराकर वह घड़ा दान करे। इससे आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है।

(६) वैशाखी अष्टमी (निर्णयामृत)—इसके निमित्त वैशाख शुक्ल अष्टमीको आमके रससे स्नान करके अपराजिता देवीको उशीर और जटामासीके जलसे स्नान करावे। फिर पंचगन्ध* (जायफल, पूगफल, कपूर, कंकोल और लौंग)-का लेपन करे और गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके घी, शक्कर तथा खीरका भोग लगावे। स्वयं उपवास करे और दूसरे दिन नवमीको ब्राह्मण-भोजन कराकर भोजन करे तो समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेके समान फल होता है।

(७) श्रीजानकी-नवमी—वैष्णवोंके मतानुसार वैशाख शुक्ल

---

* कंकोलपूगकर्पूरं जातीफललवंगके।
सुगन्धपंचकं प्रोक्तमायुर्वेदप्रकाशके॥ (देवीपुराणे)

नवमीको भगवती जानकीका प्रादुर्भाव हुआ था। अतएव इस दिन व्रत रहकर उनका जन्मोत्सव तथा पूजन करना चाहिये। **पुष्यान्वितायां तु कुजे नवम्यां श्रीमाधवे मासि सिते हलाग्रतः। भुवोऽर्चयित्वा जनकेन कर्षणे सीताविरासीद् व्रतमत्र कुर्यात्॥** (वै० मता० भा० ७९)

(८) वैशाखशुक्लैकादशी (कूर्मपुराण)—इस व्रतके नियम-विधान और निर्णय कृष्ण एकादशीकी भाँति हैं। इसका नाम मोहिनी है। इससे मोहजाल और पापसमूह दूर होते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने इस व्रतको सीताजीकी खोज करते समय किया था। उनके पीछे कौण्डिन्यके कहनेसे धृष्टबुद्धिने और श्रीकृष्णके कहनेसे युधिष्ठिरादिने किया। इस समय भी सनातनधर्मावलम्बी इस व्रतको बड़ी श्रद्धासे करते हैं। इसकी एक कथा है, उससे ज्ञात होता है कि मनुष्यका किस प्रकार कुसंगसे पतन और सुसंगसे सुधार हो जाता है। प्राचीन कालमें सरस्वतीके तटवर्ती भद्रावती नगरीमें द्युतिमान् राजाके १ सुमन, २ सुद्युम्न, ३ मेधावी, ४ कृष्णाती और ५ धृष्टबुद्धि—ये पाँच पुत्र हुए थे। इनमें धृष्टबुद्धिका वेश्या आदिके कुसंगसे पतन हो गया और वह धन-धान्य-सम्मान तथा गृह आदिसे हीन होकर हिंसावृत्तिमें लग गया। इस दुर्गतिसे उसने अनेक अनर्थ किये। अन्तमें कौण्डिन्यने बतलाया कि तुम मोहिनी एकादशीका व्रत करो, उससे तुम्हारा उद्धार होगा। यह सुनकर उसने वैसा ही किया और इस व्रतके प्रभावसे पूर्ववत् सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर अन्तमें स्वर्गमें गया।

(९) मधुसूदनपूजा (महाभारत-दानधर्म)—वैशाख शुक्ल द्वादशीको भगवान् मधुसूदनका पूजन करके व्रत करे तो उससे 'अग्निष्टोम' के समान फल होता है।* यदि इस दिन बृहस्पति और मंगल सिंहराशिके और सूर्य मेषका हो तथा हस्त नक्षत्र और व्यतीपात

---

* वैशाखमासि द्वादश्यां पूजयेन्मधुसूदनम्।
अग्निष्टोममवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति॥ (महाभारते दानधर्मे)

हो तो इस सुयोगमें अन्न, वस्त्र, सुवर्ण, गौ और पृथ्वीका दान देनेसे सब प्रकारके पाप दूर होकर देवत्व, इन्द्रत्व, नृपतित्व और आरोग्य प्राप्त होता है।[१]

(१०) कामदेवव्रत (मदनरत्न-विष्णुधर्मोत्तर)—कामदेवकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाकर वैशाख शुक्ल त्रयोदशीको उसका पूजन करके उपवास करे और दूसरे दिन ब्राह्मणभोजन कराकर पूजा-सामग्रीसहित मूर्तिका दान करके भोजन करे। इस प्रकार वर्षभर प्रत्येक शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको करनेसे सब प्रकारके रोगादिकी निवृत्ति और आरोग्यादिकी प्रवृत्ति होती है।

(११) पुत्रादिप्रद प्रदोषव्रत (मदनरत्न-निर्णयामृत)—यद्यपि प्रदोषव्रत प्रत्येक त्रयोदशीको होता है और इसके नियम आदि ऊपर दिये जा चुके हैं, तथापि कामनाभेदसे इसमें यह विशेषता[२] है कि (१) यदि पुत्रप्राप्तिकी कामना हो तो शुक्लपक्षकी जिस त्रयोदशीको शनिवार हो, उससे आरम्भ करके वर्षपर्यन्त या फल प्राप्त होनेतक व्रत करे। (२) ऋण-मोचनकी कामना हो तो जिस त्रयोदशीको भौमवार हो उससे आरम्भ करे। (३) सौभाग्य और स्त्रीकी समृद्धिकी कामना हो तो जिस त्रयोदशीको शुक्रवार हो,

---

१. पंचाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद् यदि शुक्लपक्षे।
पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः॥
अस्मिंस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्वं परिहाय पापम्।
सुरत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः॥ (हेमाद्रौ)

२. यदा त्रयोदशी शुक्ला मन्दवारेण संयुता।
आरब्धव्यं व्रतं तत्र संतानफलसिद्धये॥
ऋणप्रमोचनार्थं तु भौमवारेण संयुता।
सौभाग्यस्त्रीसमृद्ध्यर्थं शुक्रवारेण संयुता॥
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं भानुवारेण संयुता।
(मदनरत्न-निर्णयामृतान्तर्गतस्कन्दपुराणवचनानि)

उससे आरम्भ करे। (४) अभीष्ट-सिद्धिकी कामना हो तो जिस त्रयोदशीको सोमवार हो, उससे आरम्भ करे और यदि (५) आयु, आरोग्यादिकी कामना हो तो जिस त्रयोदशीको रविवार हो, उससे आरम्भ करके प्रत्येक शुक्ल-कृष्ण त्रयोदशीको एक वर्षतक करे। व्रतके दिन प्रातःस्नानादि करके '**मम पुत्रादिप्राप्ति-कामनया प्रदोषव्रतमहं करिष्ये।**' यह संकल्प करके सूर्यास्तके समय पुनः स्नान करे और शिवजीके समीप बैठकर वेदपाठी ब्राह्मणके आज्ञानुसार '**भवाय भवनाशाय०**[१]' इस मन्त्रसे प्रार्थना करके षोडशोपचारसे पूजन करे। नैवेद्यमें सेके हुए जौका सत्तू, घी और शक्करका भोग लगावे। इसके बाद वहीं आठों दिशाओंमें आठ दीपक रखकर प्रत्येकके स्थापनमें आठ बार नमस्कार करे। इसके बाद '**धर्मस्त्वं वृषरूपेण०**[२]' से वृष (नन्दीश्वर)-को जल और दूर्वा खिला-पिलाकर उसका पूजन करे और उसको स्पर्श करके '**ऋणरोगादि०**[३]' इस पूरे मन्त्रसे शिव, पार्वती और नन्दिकेश्वरकी प्रार्थना करे। यह व्रत विशेषकर स्त्रियोंके करनेका है

---

१. भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमते।
रुद्राय नीलकण्ठाय शर्वाय शशिमौलिने॥
उग्रायोग्राघनाशाय भीमाय भयहारिणे।
ईशानाय नमस्तुभ्यं पशूनां पतये नमः॥

२. धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक।
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन॥

३. ऋणरोगादिदारिद्र्यपापक्षुदपमृत्यवः।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरान्तानि यानि च।
अण्डमाश्रित्य तिष्ठन्ति प्रदोषे गोवृषस्य तु॥
स्पृष्ट्वा तु वृषणौ तस्य शृंगमध्ये विलोक्य च।
पुच्छं च ककुदं चैव सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(मदनरत्न-निर्णयामृतान्तर्गतस्कन्दपुराणवचनानि)

और वृषके पुच्छ और श्रृंग आदिके स्पर्श करनेसे अभीष्टसिद्धि होती है।

(१२) नृसिंह-जयन्तीव्रत (वराह और नृसिंहपुराण)—यह व्रत वैशाख शुक्ल चतुर्दशीको किया जाता है। इसमें प्रदोषव्यापिनी चतुर्दशी लेनी चाहिये। यदि दो दिन ऐसी चतुर्दशी हो अथवा दोनों ही दिन न हो तो भी (मदनतिथि) त्रयोदशीका संसर्ग बचानेके विचारसे दूसरे दिन ही उपवास करना चाहिये। यह अवश्य स्मरण रहे कि दैवयोग अथवा सौभाग्यवश किसी दिन पूर्वविद्धामें शनि, स्वाती[1], सिद्धि और वणिजका संयोग हो तो उसी दिन व्रत करना चाहिये। व्रतके दिन प्रातःकालमें सूर्यादिको व्रत करनेकी भावना निवेदन करके ताँबेके पात्रमें जल ले और '**नृसिंह देवदेवेश तव जन्मदिने शुभे। उपवासं करिष्यामि सर्वभोगविवर्जितः॥**' इस मन्त्रसे संकल्प करके मध्याह्नके समय नदी आदिपर जाकर क्रमशः तिल, गोमय, मृत्तिका और आँवले मलकर पृथक्-पृथक् चार बार स्नान करे। इसके बाद शुद्ध स्नान करके वहीं नित्यकृत्य करे। फिर घर आकर क्रोध, लोभ, मोह, मिथ्याभाषण, कुसंग और पापाचार आदिका सर्वथा त्याग करके ब्रह्मचर्यसहित उपवास करे। सायंकालमें एक वेदीपर अष्टदल बनाकर उसपर सिंह, नृसिंह और लक्ष्मीकी सोनेकी मूर्ति स्थापित करके वेदमन्त्रोंसे प्राण-प्रतिष्ठापूर्वक उनका षोडशोपचारसे (अथवा पौराणिक[2]

---

१. स्वातीनक्षत्रसंयोगे शनिवारे महद्व्रतम्।
सिद्धियोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा॥
पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः।
सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं हत्याकोटिविनाशनम्॥ (नृसिंहपुराणे)

२. चन्दनं शीतलं दिव्यं चन्द्रकुंकुममिश्रितम्।
ददामि तव तुष्ट्यर्थं नृसिंह परमेश्वर॥ (इति गन्धम्)
कालोद्भवानि पुष्पाणि तुलस्यादीनि वै प्रभो।
पूजयामि नृसिंह त्वां लक्ष्म्या सह नमोऽस्तु ते॥ (इति पुष्पम्)

मन्त्रोंसे पंचोपचारसे) पूजन करे। रात्रिमें गायन-वादन, पुराणश्रवण या हरिसंकीर्तनसे जागरण करे। दूसरे दिन फिर पूजन करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वजनोंसहित स्वयं भोजन करे। इस प्रकार प्रतिवर्ष करते रहनेसे नृसिंहभगवान् उसकी सब जगह रक्षा करते हैं और यथेच्छ धन-धान्य देते हैं। नृसिंहपुराणमें इस व्रतकी कथा है। उसका सारांश यह है—जब हिरण्यकशिपुका संहार करके नृसिंहभगवान् कुछ शान्त हुए, तब प्रह्लादजीने पूछा कि 'भगवन्! अन्य भक्तोंकी अपेक्षा मेरे प्रति आपका अधिक स्नेह होनेका क्या कारण है?' तब भगवान्‌ने कहा कि 'पूर्वजन्ममें तू विद्याहीन, आचारहीन वासुदेव नामका ब्राह्मण था। एक बार मेरे व्रतके दिन (वैशाख शुक्ल चतुर्दशीको) विशेष कारणवश तूने न जल पिया, न भोजन किया, न सोया और ब्रह्मचर्यसे रहा। इस प्रकार स्वतःसिद्ध उपवास और जागरण हो जानेके प्रभावसे तू भक्तराज प्रह्लाद हुआ।'

(१३) कदलीव्रत (हेमाद्रि)—यह व्रत विशेषरूपसे गुजरातमें किया जाता है। यह वैशाख, माघ और कार्तिक—किसी भी महीनेमें हो सकता है। इसमें पूर्वाह्णव्यापिनी चतुर्दशी ली जाती है। उस दिन शुद्ध मृत्तिकाकी वेदीपर स्वस्तिक बनाकर उसपर

कालागरुमयं धूपं सर्वदेवसुवल्लभम्।
करोमि ते महाविष्णो सर्वकामसमृद्धये॥ (इति धूपम्)
दीपः पापहरः प्रोक्तस्तमोराशिविनाशनः।
दीपेन लभ्यते तेजस्तस्माद् दीपं ददामि ते॥ (इति दीपम्)
नैवेद्यं सौख्यदं चारुभक्ष्यभोज्यसमन्वितम्।
ददामि ते रमाकान्त सर्वपापक्षयं कुरु॥ (इति नैवेद्यम्)
उक्तप्रकारेण पंचोपचारविधिना देवं सम्पूज्य—
नृसिंहाच्युत देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते।
अनेनार्घ्यप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः॥ (इति विशेषार्घ्यं दद्यात्)

मूल और पत्तोंसहित सुन्दर केलेका पेड़ स्थापित करे तथा उसे पवित्र जलसे सींचकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यसे पूजन करे। इस प्रकार जबतक उसके फल न आवें, तबतक प्रतिदिन करता रहे। यदि किसी देशमें केला न मिले तो सोनेका बनवाकर उसका वर्षभर पूजन करे। उसके बाद उद्यापन करके व्रत समाप्त करे और पूजामें चढ़ायी हुई सामग्री आचार्यको दे।

(१४) वैशाखी व्रत (भविष्य०, आदित्य०, जाबालि०)— वैशाखी पूर्णिमा बड़ी पवित्र तिथि है। इस दिन दान-धर्मादिके अनेक कार्य किये जाते हैं। अतः यह उदयसे उदयपर्यन्त हो तो विशेष श्रेष्ठ होती है। अन्यथा कार्यानुसार लेनी चाहिये। इस दिन (१) धर्मराजके निमित्त जलपूर्ण कलश और पकवान देनेसे गोदानके समान फल होता है। (२) यदि पाँच या सात ब्राह्मणोंको शर्करासहित तिल दे तो सब पापोंका क्षय हो जाता है। (३) इस दिन शुद्ध भूमिपर तिल फैलाकर उसपर पूँछ और सींगोंसहित काले मृगका चर्म बिछावे और उसे सब प्रकारके वस्त्रोंसहित दान करे तो अनन्त फल होता है। (४) यदि तिलोंके जलसे स्नान करके घी, चीनी और तिलोंसे भरा हुआ पात्र विष्णुभगवान्‌को निवेदन करे और उन्हींसे अग्निमें आहुति दे अथवा तिल और शहदका दान करे, तिलके तेलके दीपक जलावे, जल और तिलोंका तर्पण करे अथवा गंगादिमें स्नान करे तो सब पापोंसे निवृत्त होता है। (५) यदि इस दिन एक समय भोजन करके पूर्णिमा, चन्द्रमा अथवा सत्यनारायणका व्रत करे तो सब प्रकारके सुख, सम्पदा और श्रेयकी प्राप्ति होती है।

ज्येष्ठके व्रत

कृष्णपक्ष

(१) संकष्टचतुर्थीव्रत (भविष्योत्तर)— ज्येष्ठकृष्णा चतुर्थीको, जो चन्द्रोदयतक रहनेवाली हो, प्रातःस्नानादि नित्यकर्म करके व्रतके संकल्पसे दिनभर मौन रहे। सायंकालमें पुनः स्नान करके गणेशजीका और चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाका पूजन करे तथा शंखमें दूध, दूर्वा, सुपारी और गन्धाक्षत लेकर '**ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषां पते। नमस्ते रोहिणीकान्त गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' इस मन्त्रसे चन्द्रमाको, '**गौरीसुत नमस्तेऽस्तु सततं मोदकप्रिय। सर्वसंकटनाशाय गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' इस मन्त्रसे गणेशजीको और '**तिथीनामुत्तमे देवि गणेशप्रियवल्लभे। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वसिद्धिप्रदायिके॥**' इस मन्त्रसे चतुर्थीको अर्घ्य दे तथा वायन दान करके भोजन करे।

(२) कृष्णैकादशीव्रत (ब्रह्माण्डपुराण)—एकादशीका व्रत करनेवाला दशमीको जौ, गेहूँ और मूँगके पदार्थका एक बार भोजन करे। एकादशीको प्रातःस्नानादि करके उपवास रखे और द्वादशीको पारण करके भोजन करे। इस एकादशीका नाम 'अपरा' है। इसके व्रतसे अपार पाप दूर होते हैं। जो लोग सद्वैद्य होकर गरीबोंका इलाज नहीं करते, षट्शास्त्री होकर बिना माँ-बापके बच्चोंको नहीं पढ़ाते, सद्व्रत राजा होकर भी गरीब प्रजाको कभी नहीं सँभालते, सबल होकर भी अपाहिजको आपत्तिसे नहीं बचाते और धनवान् होकर भी आपद्ग्रस्त परिवारोंको सहायता नहीं देते, वे नरकमें जानेयोग्य पापी होते हैं। किंतु अपराका व्रत ऐसे व्यक्तियोंको भी निष्पाप करके वैकुण्ठमें भेज देता है।*

---

* अपरासेवनाद् राजन् विपाप्मा भवति ध्रुवम्।
कूटसाक्ष्यं मानकूटं तुलाकूटं करोति च॥

(३) प्रदोषव्रत—यह कृष्ण, शुक्ल दोनों पक्षकी प्रदोषव्यापिनी त्रयोदशीको किया जाता है। उस दिन सायंकालके समय शिवजीका पूजन करके दो घड़ी रात जानेके पहले एक बार भोजन करना चाहिये। विशेष बातें ऊपर लिखी जा चुकी हैं।

(४) अमाव्रत—इस दिन परलोकस्थ पितृगणोंको प्राप्त करानेके लिये कई प्रकारके दान-पुण्य किये जाते हैं तथा तीर्थस्नान, जप-तप और व्रतादिका भी नियम है। इन सबके पुण्यांश सूर्य-किरणोंसे आकर्षित होकर परलोकमें यथायोग्य प्राप्त होते हैं।

(५) वटसावित्रीव्रत—यह व्रत स्कन्द और भविष्योत्तरके अनुसार ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमाको और निर्णयामृतादिके अनुसार अमावस्याको किया जाता है। इस देशमें प्रायः अमावस्याको ही होता है। संसारकी सभी स्त्रियोंमें ऐसी कोई शायद ही हुई होगी, जो सावित्रीके समान अपने अखण्ड पातिव्रत्य और दृढ़ प्रतिज्ञाके प्रभावसे यमद्वारपर गये हुए पतिको सदेह लौटा लायी हो। अतः विधवा, सधवा, बालिका, वृद्धा, सपुत्रा, अपुत्रा सभी स्त्रियोंको सावित्रीका व्रत अवश्य करना चाहिये[१]। विधि[२] यह है कि ज्येष्ठकृष्णा त्रयोदशीको प्रातःस्नानादिके पश्चात् '**मम वैधव्यादि-सकलदोषपरिहारार्थं ब्रह्मसावित्रीप्रीत्यर्थं सत्यवत्सावित्रीप्रीत्यर्थं च वटसावित्रीव्रतमहं करिष्ये।**' यह संकल्प करके तीन दिन उपवास करे। यदि सामर्थ्य न हो तो त्रयोदशीको रात्रिभोजन,

---

कूटवेदं पठेद् विप्रः कूटशास्त्रं तथैव च।
ज्यौतिषी कूटगणकः कूटपूर्वाधिको भिषक्॥
कूटसाक्षिसमा ह्येते विज्ञेया नरकौकसः।
अपरासेवनाद् राजन् पापमुक्ता भवन्ति ते॥ (ब्रह्माण्डपुराणे)

१. नारी वा विधवा वापि पुत्रीपुत्रविवर्जिता।
सभर्तृका सपुत्रा वा कुर्याद् व्रतमिदं शुभम्॥(स्कान्दे धर्मवचनम्)

२. यह विधि जयसिंहकल्पद्रुममें लिखित व्रतपद्धतिके अनुसार है।

चतुर्दशीको अयाचित और अमावस्याको उपवास करके शुक्ल प्रतिपदाको समाप्त करे। अमावस्याको वटके समीप बैठकर बाँसके एक पात्रमें सप्तधान्य भरकर उसे दो वस्त्रोंसे ढक दे और दूसरे पात्रमें सुवर्णकी ब्रह्मसावित्री तथा सत्यसावित्रीकी मूर्ति स्थापित करके गन्धाक्षतादिसे पूजन करे। तत्पश्चात् वटके सूत लपेटकर उसका यथाविधि पूजन करके परिक्रमा करे। फिर '**अवैधव्यं च सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते। पुत्रान् पौत्रांश्च सौख्यं च गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' इस श्लोकसे सावित्रीको अर्घ्य दे और '**वट सिंचामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः। यथा शाखाप्रशाखाभिर्वृद्धोऽसि त्वं महीतले। तथा पुत्रैश्च पौत्रैश्च सम्पन्नं कुरु मां सदा॥**' इस श्लोकसे वटवृक्षकी प्रार्थना करे। देशभेद और मतान्तरके अनुरोधसे इसकी व्रतविधिमें कोई-कोई उपचार भिन्न प्रकारसे भी होते हैं। यहाँ उन सबका समावेश नहीं किया है। सावित्रीकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—यह मद्रदेशके राजा अश्वपतिकी पुत्री थी। द्युमत्सेनके पुत्र सत्यवान्‌से इसका विवाह हुआ था। विवाहके पहले नारदजीने कहा था कि सत्यवान् सिर्फ सालभर जीयेगा। किंतु दृढव्रता सावित्रीने अपने मनसे अंगीकार किये हुए पतिका परिवर्तन नहीं किया और एक वर्षतक पातिव्रत्यधर्ममें पूर्णतया तत्पर रहकर अंधे सास-ससुरकी और अल्पायु पतिकी प्रेमके साथ सेवा की। अन्तमें वर्षसमाप्तिके दिन (ज्ये० शु० १५ को) सत्यवान् और सावित्री समिधा लानेको वनमें गये। वहाँ एक विषधर सर्पने सत्यवान्‌को डस लिया। वह बेहोश होकर गिर गया। उसी अवस्थामें यमराज आये और सत्यवान्‌के सूक्ष्मशरीरको ले जाने लगे। किंतु फिर उन्होंने सती सावित्रीकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर सत्यवान्‌को सजीव कर दिया और सावित्रीको सौ पुत्र होने तथा राज्यच्युत अंधे सास-ससुरको राज्यसहित दृष्टि प्राप्त होनेका वर दिया।

शुक्लपक्ष

(१) करवीरव्रत (भविष्योत्तर)—ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदाको देवताके बगीचेमें जाकर कनेरके वृक्षका पूजन करे। उसको मूल और शाखा-प्रशाखाओंके सहित स्नान कराकर लाल वस्त्र ओढ़ावे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यादिसे पूजन करे। उसके समीप सप्तधान्य रखकर उसपर केले, नारंगी, बिजौरा और गुणक आदि स्थापित करे और '**करवीर विषावास नमस्ते भानुवल्लभ। मौलिमण्डन दुर्गादिदेवानां सततं प्रिय॥**' इस मन्त्रसे अथवा '**आकृष्णेन रजसा वर्तमानो०**' इत्यादि मन्त्रसे प्रार्थना करके पूजा-सामग्री ब्राह्मणको दे दे। फिर घर जाकर व्रत करे। यह व्रत सूर्यकी आराधनाका है। आपद्ग्रस्त अवस्थामें स्त्रियोंको तत्काल फल देता है। प्राचीन कालमें सावित्री, सरस्वती, सत्यभामा और दमयन्ती आदिने इसी व्रतसे अभीष्ट फल प्राप्त किया था।

(२) रम्भाव्रत (भविष्योत्तर)—इस व्रतमें पूर्वविद्धा तिथि ली जाती है। इसके लिये ज्येष्ठ शुक्ल तृतीयाको प्रातःकाल स्नानादि नित्यकर्म करके शुद्ध स्थानमें पूर्वाभिमुख बैठे। अपने पार्श्वभागमें १ गार्हपत्य, २ दक्षिणाग्नि, ३ सभ्य, ४ आहवनीय और ५ भास्कर नामकी पाँच अग्नियोंको प्रज्वलित करे। उनके मध्यमें पूर्वाभिमुख बैठकर पद्मासनसे विराजमान चार भुजाओंवाली, सम्पूर्ण आभूषणादिसे भूषिता तथा जटा-जूट और मृगचर्मधारिणी देवीको अपने सम्मुख स्थापित करे। फिर '**ॐ महाकाल्यै नमः। महालक्ष्म्यै नमः। महासरस्वत्यै नमः।**' आदि नामोंसे महानिशा, महामाया, महादेवी, महिषनाशिनी, गंगा, यमुना, सिन्धु, शतद्रु, नर्मदा और वैतरणीपर्यन्त सबका पूजन करे तथा इन्हीं नामोंसे '**नमः**' के स्थानमें '**स्वाहा**' का उच्चारण करके १०८ आहुतियाँ दें। फिर नाना प्रकारके फल, पुष्प और नैवेद्य अर्पण करके '**त्वं शक्तिस्त्वं स्वधा स्वाहा त्वं सावित्री सरस्वती। पतिं देहि गृहं देहि सुतान् देहि नमोऽस्तु ते॥**' इस मन्त्रसे प्रार्थना

करे तो उस स्त्रीका घर सुख, समृद्धि और पुत्रादिसे पूर्ण हो जाता है। यह व्रत माताके कहनेसे पार्वतीने किया था।

(३) पार्वती-पूजा (निर्णयामृत)—ज्येष्ठ शुक्ला तृतीयाको पार्वतीका जन्म हुआ था। अतः स्त्रियोंको चाहिये कि वे अपने सुख और सौभाग्यादिकी वृद्धिके लिये इस दिन उनका प्रीतिपूर्वक पूजन करें तथा विविध प्रकारके फल, पुष्प और नैवेद्यादि अर्पण करके गायन-वादन और नृत्यके साथ उनका जन्मोत्सव मनावें।

(४) शिव-पूजा (भविष्योत्तर)—ज्येष्ठ मासके कृष्ण या शुक्ल किसी पक्षकी अष्टमीको शिवजीका और केवल शुक्लाष्टमीको शुक्लादेवीका यथाविधि पूजन करे। शुक्लादेवीने जब दानवोंका संहार किया था, तब देवताओंने उनका पूजन किया था। अतः आपत्तियोंकी निवृत्तिके लिये मनुष्योंको भी यह व्रत करना चाहिये।

(५) उमा ब्राह्मणी (भविष्योत्तर)—ज्येष्ठ शुक्ल नवमीको उपवास करके ब्राह्मणी नामकी श्वेतवर्णा पार्वतीका भक्तिसहित पूजन करे और ब्राह्मण तथा ब्राह्मणकी कन्याको दूध मिले हुए भातका भोजन कराकर रात्रिमें स्वयं भोजन करे।

(६) दशहराव्रत[१] (ब्रह्मपुराण)—ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको हस्त नक्षत्रमें स्वर्गसे गंगाका आगमन हुआ था। अतएव इस दिन गंगा आदिका स्नान, अन्न-वस्त्रादिका दान, जप-तप-उपासना और उपवास किया जाय तो दस[२] प्रकारके पाप (तीन प्रकारके

---

१. ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता।
हरते दश पापानि तस्माद् दशहरा स्मृता॥ (ब्रह्मपुराणे)

२. अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्॥ (मनुः)

कायिक, चार प्रकारके वाचिक और तीन प्रकारके मानसिक) दूर होते हैं। यदि इस दिन १ ज्येष्ठ, २ शुक्ल, ३ दशमी, ४ बुध, ५ हस्त, ६ व्यतीपात, ७ गर, ८ आनन्द, ९ वृषस्थ रवि और १० कन्याका चन्द्र हो तो यह अपूर्वयोग[1] महाफलदायक होता है। इसमें योग-विशेषका बाहुल्य होनेसे पूर्वा या पराका विचार समयपर करके जिस दिन उपर्युक्त योग अधिक हों उस दिन स्नान, दान, जप, तप, व्रत और उपवास आदि करने चाहिये। यदि ज्येष्ठ अधिक मास हो तो ये काम शुद्धकी अपेक्षा मलमासमें करनेसे ही अधिक फल होता है। दशहराके दिन दशाश्वमेधमें दस प्रकार स्नान करके शिवलिंगका दस संख्याके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और फल आदिसे पूजन करके रात्रिको जागरण करे तो अनन्त फल होता है।

(७) गंगा-पूजन—ज्येष्ठ शुक्ला दशमी (यदि ज्येष्ठ अधिक मास हो तो अधिक ज्येष्ठकी शुक्ल दशमी)-को गंगातटवर्ती प्रदेशमें अथवा सामर्थ्य न हो तो समीपके किसी भी जलाशय या घरके शुद्ध जलसे स्नान करके सुवर्णादिके पात्रमें त्रिनेत्र, चतुर्भुज[2], सर्वावयवभूषित, रत्नकुम्भधारिणी, श्वेत वस्त्रादिसे सुशोभित तथा वर और अभयमुद्रासे युक्त श्रीगंगाजीकी प्रशान्त मूर्ति अंकित करे। अथवा किसी साक्षात् मूर्तिके समीप बैठ जाय। फिर '**ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै नमः।**' से आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करे तथा इन्हीं नामोंसे '**नमः**' के स्थानमें स्वाहायुक्त करके हवन करे। तत्पश्चात् '**ॐ नमो भगवति ऐं ह्रीं श्रीं (वाक्-काममायामयि) हिलि हिलि**

१. ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशभ्यां बुधहस्तयोः।
व्यतीपाते गरानन्दे कन्याचन्द्रे वृषे रवौ।
दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ (स्कान्दे)

२. चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च सर्वावयवशोभिताम्।
रत्नकुम्भसिताम्भोजवरदाभयसत्कराम्॥
(जयसिंहकल्पद्रुमे गंगापूजनविधौ)

मिलि मिलि गंगे मां पावय पावय स्वाहा।' इस मन्त्रसे पाँच पुष्पांजलि अर्पण करके गंगाको भूतलपर लानेवाले भगीरथका और जहाँसे वे आयी हैं, उस हिमालयका नाम-मन्त्रसे पूजन करे। फिर दस फल, दस दीपक और दस सेर तिल—इनका '**गंगायै नमः।**' कहकर दान करे। साथ ही घी मिले हुए सत्तूके और गुड़के पिण्ड जलमें डाले। सामर्थ्य हो तो सोनेके कच्छप, मत्स्य और मण्डूकादि भी पूजन करके जलमें डाल दे। इसके अतिरिक्त १० किलो तिल, १० किलो जौ और १० किलो गेहूँ १० ब्राह्मणोंको दे। परदार और परद्रव्यादिसे दूर रहे तथा ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदासे प्रारम्भ करके दशमीतक एकोत्तर-वृद्धिसे दशहरास्तोत्रका पाठ करे, तो सब प्रकारके पाप समूल नष्ट हो जाते हैं और दुर्लभ सम्पत्ति प्राप्त होती है।

(८) निर्जलैकादशीव्रत (महाभारत)—यह व्रत ज्येष्ठ शुक्ला एकादशीको किया जाता है। इसका नाम निर्जला है; अतः नामके अनुसार इसका व्रत किया जाय तो स्वर्गादिके सिवा आयु और आरोग्यवृद्धिके तत्त्व विशेषरूपसे विकसित होते हैं। व्यासजीके कथनानुसार यह अवश्य सत्य है कि 'अधिमाससहित एक वर्षकी पचीस एकादशी न की जा सकें तो केवल निर्जला* करनेसे ही पूरा फल प्राप्त हो जाता है।' निर्जला व्रत करनेवाला पुरुष अपवित्र अवस्थाके आचमनके सिवा बिन्दुमात्र जल भी ग्रहण न करे। यदि किसी प्रकार उपयोगमें ले लिया जाय तो उससे व्रत भंग हो जाता है। दृढ़तापूर्वक नियमपालनके साथ निर्जल उपवास करके द्वादशीको

---

* वृषस्थे मिथुनस्थेऽर्के शुक्ला ह्येकादशी भवेत्।
ज्येष्ठे मासि प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता॥
स्नाने चाचमने चैव वर्जयेन्नोदकं बुधः।
संवत्सरस्य या मध्ये एकादश्यो भवन्त्युत॥
तासां फलमवाप्नोति अत्र मे नास्ति संशयः।
(हेमाद्रौ—महाभारते व्यासवचनम्)

स्नान करे और सामर्थ्यके अनुसार सुवर्ण और जलयुक्त कलश देकर भोजन करे तो सम्पूर्ण तीर्थोंमें जाकर स्नान-दानादि करनेके समान फल होता है।

एक बार बहुभोजी भीमसेनने व्यासजीके मुखसे प्रत्येक एकादशीको निराहार रहनेका नियम सुनकर विनम्र भावसे निवेदन किया कि 'महाराज! मुझसे कोई व्रत नहीं किया जाता। दिनभर बड़ी तीव्र क्षुधा बनी ही रहती है। अतः आप कोई ऐसा उपाय बतला दीजिये जिसके प्रभावसे स्वतः सद्गति हो जाय।' तब व्यासजीने कहा कि 'तुमसे वर्षभरकी सम्पूर्ण एकादशी नहीं हो सकती तो केवल एक निर्जला कर लो, इसीसे सालभरकी एकादशी करनेके समान फल हो जायगा।' तब भीमने वैसा ही किया और स्वर्गको गये।

(९) जलधेनुदान (मदनरत्न—स्कन्दपुराण)—ज्येष्ठ शुक्ला एकादशीको यथासामर्थ्य सोना, चाँदी या ताँबेके गौकी आकृतिके कलशमें अन्न, जल, सोना, चाँदी और ताँबा रखकर उसे दो सफेद वस्त्रोंसे ढके। उसके ऊपर दूर्वांकुर लगाये। कूट, उशीर, जटामासी, आँवले और प्रियंगु आदि ओषधियोंसहित छाता, जूता और कुशासन रखे। उसके समीप चारों दिशाओंमें तिलके पात्र और सामने घी, दही और चीनीका पात्र रखकर जलाधिपति वासुदेव भगवान्‌का पूजन करे। फिर उसमेंसे देनेयोग्य द्रव्यादिका दान करके उपवास करे।

(१०) दुर्गन्धि-दुर्भाग्यनाशक व्रत (भविष्योत्तर)—ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशीको किसी पवित्र नदीके किनारे जाकर सूर्यनारायणका दर्शन करके स्नान करे और उस देशके सफेद आक, लाल कनेर और सपुष्प नीमका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे। ये तीनों वृक्ष*

* इत्थं योऽर्चयते भक्त्या वर्षे वर्षे पृथङ् नरः।
द्रुमत्रयं नृपश्रेष्ठ नारी वा भक्तिसंयुता।
तस्याः शरीरे दुर्गन्धं दौर्भाग्यं च न जायते॥ (श्रीकृष्णः)

सूर्यनारायणको बहुत प्रिय हैं, अतः इनका पूजन करके व्रत करनेसे सब प्रकारका दुर्भाग्य और दुर्गन्ध सदाके लिये दूर हो जाता है।

(११) शुक्लप्रदोष—यह कृष्ण-शुक्ल दोनों पक्षोंमें प्रतिमास किया जाता है। इसके नियम, विधान और पूजापद्धति आदि ऊपर लिखे जा चुके हैं। आगे जो कुछ विशेष होगा यथास्थान लिख दिया जायगा।

(१२) पंचतपव्रत (मत्स्यपुराण)—ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशीको पूर्वोक्त पाँच अग्नि प्रज्वलित करके दिनभर 'पंचधूनी' तपे और सायंकालमें शिवजीकी प्रसन्नताके लिये सुवर्ण-धेनुका दान देकर भोजन करे तो शिवजीकी प्रसन्नता होती है।

(१३) बिल्वत्रिरात्रिव्रत (हेमाद्रि—स्कन्दपुराण)—ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमाको जब ज्येष्ठा नक्षत्र और मंगलवार हो, तब उस दिन सरसों मिले हुए जलसे स्नान करके 'श्रीवृक्ष' (बिल्ववृक्ष)-का गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और एक समय हविष्यान्न भोजन करे। यदि भोजनको कुत्ता, सूअर या गधा आदि देख लें तो उसे त्याग कर दे। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ला पूर्णिमाको वर्षपर्यन्त करके व्रतसमाप्तिके दिन बिल्ववृक्षके समीप जाकर एक पात्रमें एक किलो बालू या जौ, गेहूँ, चावल और तिल भरे तथा दूसरे पात्रको दो वस्त्रोंसे ढककर उसमें सुवर्णनिर्मित उमा-महेश्वरकी मूर्ति स्थापित करे तथा दो लाल वस्त्र अर्पण कर विविध प्रकारके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यादिसे पूजन करके '**श्रीनिकेत नमस्तुभ्यं हरप्रिय नमोऽस्तु ते। अवैधव्यं च मे देहि श्रियं जन्मनि जन्मनि॥**' इस मन्त्रसे प्रार्थना करे और बिल्वपत्रकी एक हजार आहुति देकर सोलह या आठ अथवा चार दम्पतियों (स्त्री-पुरुषों)-को वस्त्रालंकारादिसे भूषित करके भोजन करावे तो सब प्रकारके अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं।

आषाढ़के व्रत

कृष्णपक्ष

(१) संकष्टचतुर्थीव्रत—इसके सम्बन्धमें पहले वर्णन हो चुका है उसके अनुसार पूर्वविद्धा चन्द्रोदयव्यापिनीमें व्रत करके चन्द्रमाको अर्घ्य दे और हविष्यान्नका भोजन करे।

(२) एकादशीव्रत (ब्रह्मवैवर्तपुराण)—आषाढ़ कृष्ण एकादशीको प्रात:स्नानादि करके '**मम सकलपापक्षयपूर्वककुष्ठादिरोग-निवृत्तिकामनया योगिन्येकादशीव्रतमहं करिष्ये।**' संकल्प करके पुण्डरीकाक्षभगवान्‌का यथाविधि पूजन करे, उनके चरणोदकसे सब अंगोंका मार्जन करे और उपवास करके रात्रिमें जागरण करे तो कुष्ठादि सब रोगोंकी निवृत्ति हो जाती है। प्राचीन कालमें कुबेरके कोपसे हेममालीको कोढ़ हो गया था, उसने महामुनि मार्कण्डेयजीके आज्ञानुसार योगिनी एकादशीका उपवास किया, जिससे उसकी सम्पूर्ण व्याधियाँ मिट गयीं और कुबेरने उसे अपनी सेवामें वापस बुला लिया।

(३) प्रदोषव्रत—यह नित्य-व्रत है। प्रत्येक त्रयोदशीको किया जाता है। इसके विधानादि गत महीनोंमें लिखे जा चुके हैं। आगे जो कुछ विशेष होगा, यथासमय प्रकट किया जायगा।

शुक्लपक्ष

(१) रथयात्रा (स्कन्द)—आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको पुष्यनक्षत्र हो तो सुभद्रासहित भगवान्‌को रथमें विराजित कर यात्रा करावे और वापस पधार आनेपर यथास्थान स्थापित करे। इस दिन पुरीमें श्रीजगदीशभगवान्‌को सपरिवार विशाल रथपर आरूढ़ करके भ्रमण करवाते हैं। उस दिन वहाँ रथयात्राका अद्वितीय उत्सव होता है। देश-देशान्तरके लाखों नर-नारी एकत्र होते हैं।

उसी दिन अन्यत्र (जयपुर आदिमें) भगवान् रामचन्द्रजीको रथारूढ़ करके मन्दिरसे दूसरी जगह ले जाकर वाल्मीकिरामायणके युद्धकाण्डका पाठ सुनाते हैं और वहीं मुक्ताधान्यसे बीजवपन करके चातुर्मासीय कृषिकार्यका शुभारम्भ करते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि उस दिन भगवद्भक्तोंके यहाँ व्रत होता है और महोत्सव मनाया जाता है।

(२) **स्कन्दषष्ठीव्रत** (वाराहपुराण)—यह व्रत पंचमीयुक्त किया जाता है। आषाढ़ शुक्ल पंचमीको उपवास करे। षष्ठीको स्कन्दका पूजन करे और फिर एक बार भोजन करे। यह षष्ठी तिथि कुमार कार्तिकेयजीकी तिथि है, इसलिये इसे कौमारिकी कहते हैं।

(३) **विवस्वान्व्रत** (ब्रह्मपुराण)—आषाढ़ शुक्ल सप्तमीको सूर्य 'विवस्वान्' नामसे विख्यात हुए थे। अतः इस दिन रथचक्रके समान गोल मण्डल बनाकर उसमें विवस्वान्‌का गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और अनेक प्रकारके भक्ष्य, भोज्य एवं पेय पदार्थ अर्पण करके व्रत करे।

(४) **महिषघ्नीव्रत** (देवीभागवत)—इस निमित्त आषाढ़ शुक्ल अष्टमीको उपवास करके हरिद्राके जलसे स्नान करे, वैसे ही जलसे महिषघ्नी देवीको स्नान करावे और केसर, चन्दन, धूप, कपूर आदिसे पूजन करे। नैवेद्यमें घी, चीनी और जौके संयोगसे बनाया हुआ पदार्थ अर्पण करे। ब्राह्मण और ब्राह्मणकुमारियोंको भोजन करावे, फिर स्वयं भोजन करे। इसके प्रभावसे सब प्रकारकी इष्ट-सिद्धि होती है।

(५) **ऐन्द्रीपूजन** (भविष्योत्तरपुराण)—आषाढ़के कृष्ण, शुक्ल किसी भी पक्षकी नवमीको ऐन्द्री नामकी दुर्गाका श्रद्धा-सहित पूजन करे और श्वेत ऐरावतपर विराजी हुई श्वेतवर्णकी देवीका ध्यान करके नक्तव्रत करे।

(६) **शुक्लैकादशीव्रत** (भविष्योत्तरपुराण)—आषाढ़ शुक्ल एकादशीका नाम देवशयनी है। इस दिन उपवास करके सोना, चाँदी, ताँबा या पीतलकी मूर्ति बनवाकर उसका यथोपलब्ध उपचारोंसे पूजन करे और पीताम्बरसे विभूषित करके सफेद चादरसे ढके हुए गद्दे-तकियावाले पलंगपर शयन करावे। उस अवसरके चार महीनोंके

लिये अपनी रुचि अथवा अभीष्टके अनुसार नित्य व्यवहारके पदार्थोंका त्याग और ग्रहण करे। जैसे मधुर स्वरके लिये 'गुड़'का, दीर्घायु अथवा पुत्र-पौत्रादिकी प्राप्तिके लिये 'तैल'का, शत्रुनाशादिके लिये 'कड़ुवे तैल' का, सौभाग्यके लिये 'मीठे तैल'का और स्वर्गप्राप्तिके लिये 'पुष्पादि' भोगोंका त्याग करे। देह-शुद्धि या सुन्दरताके लिये परिमित प्रमाणके 'पंचगव्य'का, वंश-वृद्धिके लिये नियमित 'दूध'का, कुरुक्षेत्रादिके समान फल मिलनेके लिये पात्रमें भोजन करनेके बदले 'पत्र'का और सर्वपापक्षयपूर्वक सकल पुण्यफल प्राप्त होनेके लिये 'एकभुक्त, नक्तव्रत, अयाचित भोजन या सर्वथा उपवास' करनेका व्रत ग्रहण करे। यदि इन चार महीनोंमें दूसरेके दिये हुए भक्ष्य-भोज्यादि सभी पदार्थोंके भक्षण करनेका त्याग रखे और उपर्युक्त चार व्रतोंमें जो बन सके उसको ग्रहण करे तो महाफल होता है।

(७) **स्वापमहोत्सव** (मदनरत्न)—आषाढ़ शुक्ल एकादशीको भगवान् क्षीरसागरमें शेष-शय्यापर शयन करते हैं। अतः इसका उत्सव मनानेके लिये सर्वलक्षणसंयुक्त मूर्ति बनवावे। अपनी सामर्थ्यके अनुसार सोना, चाँदी, ताँबा या पीतलकी या कागजकी मूर्ति (चित्र) बनवाकर गायन-वादन आदि समारोहके साथ विधिपूर्वक पूजन करे। रात्रिके समय '**सुप्ते त्वयि जगन्नाथे**०[१]' से प्रार्थना करके सुखसाधनोंसे सजी हुई शय्यापर शयन करावे। भगवान्‌का[२] सोना रात्रिमें, करवट बदलना संधिमें और जागना दिनमें होता है। इसके विपरीत हो तो अच्छा नहीं। यह विशेष है कि[३] शयन अनुराधाके

---

१. सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत् सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे च विबुध्येत प्रसन्नो मे भवाव्यय॥ (रामार्चनचन्द्रिका)

२. निशि स्वापो दिवोत्थानं संध्यायां परिवर्तनम्। (ब्रह्मपुराण)

३. मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः
श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति।
जागर्ति पौष्णस्य तथावसाने
नो पारणं तत्र बुधः प्रकुर्यात्॥ (नारदपुराण)

आद्य तृतीयांशमें, परिवर्तन श्रवणके मध्य तृतीयांशमें और उत्थान रेवतीके अन्तिम तृतीयांशमें होता है। यही कारण है कि आषाढ़, भाद्रपद और कार्तिकमें एकादशीके व्रतवाले पारणाके समय आषाढ़में अनुराधाका आद्य तृतीयांश, भाद्रपदमें श्रवणका मध्य तृतीयांश और कार्तिकमें रेवतीका अन्तिम तृतीयांश व्यतीत होनेके बाद (या उसके आरम्भसे पहले) पारण करते हैं। (स्मरण रहे कि एक नक्षत्र लगभग ६० घड़ीका होता है अतः उसके २०-२० घड़ीके तृतीयांश बनाकर पहला, दूसरा या तीसरा देख लेना चाहिये।) देवशयनके चातुर्मासीय व्रतोंमें पलंगपर सोना[१]' भार्याका संग करना, मिथ्या बोलना, मांस, शहद और दूसरेके दिये हुए दही-भात आदिका भोजन करना और मूली, पटोल एवं बैगन आदि शाक[२]-पत्र खाना त्याग देना चाहिये। 'रामार्चनचन्द्रिका' में भगवान्‌की मूर्तिको रथपर चढ़ाकर घण्टा आदि बाजोंकी ऊँची आवाजके सहित जलाशयमें ले जाकर जलमें शयन करानेका विधान बतलाया है।

(८) वामनपूजा (महाभारत)—आषाढ़ शुक्ल द्वादशीको वामनजीका यथाविधि पूजन करके व्रत करे तो यज्ञके समान फल होता है। विधि यह है कि साक्षात् मूर्ति हो तो उसके समीप बैठकर, नहीं तो सुवर्णकी बनवाकर ताँबेके पात्रमें तुलसीदलपर स्थापन करे और वह भी न बने तो शालिग्रामजीकी मूर्तिका पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे षोडशोपचार पूजन करके व्रत करे।

(९) प्रदोषव्रत (हेमाद्रि)—पूर्वोक्त प्रकारसे सूर्यास्तके समय स्नान करके प्रदोष-समयमें शिवजीका पूजन करके सूर्यास्तके बाद एक बार भोजन करे। प्रदोष-समयमें शिवजीके समीप

---

१. मंचखट्वादिशयनं वर्जयेद् भक्तिमान्नरः।
अनृतौ वर्जयेद् भार्यां मांसं मधु परौदनम्॥
पटोलं मूलकं चैव वृन्ताकं च न भक्षयेत्। (स्कन्द)

२. मूलपत्रकरीराग्रफलफाण्टाधिरूढकाः।
त्वक्पत्रपुष्पकं चैव शाकं दशविधं स्मृतम्॥

'यक्ष, गन्धर्व*, पतग (पक्षी), उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, देव, अप्सरा और भूतगण' उपस्थित रहते हैं, अतः उस समयके शिवपूजनसे सारे मनोरथोंकी सिद्धि होती है। यह व्रत आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशीको होता है।

(१०) हरिपूजा (ब्रह्म-विष्णु)—आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशीको उपवास करके शुक्ल पूर्णिमाको पूर्वाह्णमें हरिका उत्तम प्रकारके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यसे पूजन करे। यदि उस दिन पूर्वाषाढ़ हो तो अन्नपानादिका दान करके एकभुक्त भोजन करे।

(११) कोकिलाव्रत (हेमाद्रि)—यह व्रत आषाढ़ी पूर्णिमासे प्रारम्भ करके श्रावणी पूर्णिमातक किया जाता है। इसके करनेसे मुख्यतः स्त्रियोंको सात जन्मतक सुत, सौभाग्य और सम्पत्ति मिलती है। विधान यह है—आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमाके सायंकाल स्नान करके कल्पना करे कि 'मैं ब्रह्मचर्यसे रहकर कोकिलाव्रत करूँगी। उसके बाद श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको किसी नद, नदी, झरने, बावली, कुएँ या तालाब आदिपर '**मम धनधान्यादि-सहितसौभाग्यप्राप्तये शिवतुष्टये च कोकिलाव्रतमहं करिष्ये।**' यह संकल्प करके आरम्भके आठ दिनमें भीगे और पिसे हुए आँवलोंमें सुगन्धयुक्त तिलतैल मिलाकर उसे मलकर स्नान करे। फिर आठ दिनतक भिगोकर पिसी हुई मुरामांसी और वच-कुष्टादि दस ओषधियोंसे स्नान करे (दशौषधि पूर्वांगमें देखिये)। उसके बाद आठ दिनतक भिगोकर पिसी हुई बचके जलसे स्नान करे और उसके बाद अन्तके छः दिनतक पिसे हुए तिल-आँवले

---

* गन्धर्वयक्षपतगोरगसिद्धसाध्य-
विद्याधरामरवराप्सरसां गणाश्च।
येऽन्ये त्रिलोकनिलयाः सहभूतवर्गाः
प्राप्ते प्रदोषसमये हरपार्श्वसंस्थाः॥
तस्मात्प्रदोषे शिव एक एव पूज्यः॥ (स्कन्दपुराण ब्रह्मोत्तरखण्ड)

और सर्वोषधिके जलसे स्नान करे। इस क्रमसे प्रतिदिन स्नान करके पीठीके द्वारा निर्माण की हुई कोयलका पूजन करे। चन्दन, सुगन्धित पुष्प, धूप, दीप और तिल-तन्दुलादिका नैवेद्य अर्पण करे और '**तिलस्नेहे०**[१]' से प्रार्थना करे। इस प्रकार श्रावणी पूर्णिमापर्यन्त करके समाप्तिके दिन ताँबेके पात्रमें मिट्टीसे बनायी हुई कोकिलाके सुवर्णके पंख और रत्नोंके नेत्र लगाकर वस्त्राभूषणादिसे भूषित करके सास, ससुर, ज्योतिषी, पुरोहित अथवा कथावाचकके भेंट करनेसे स्त्री इस जन्ममें प्रीतिपूर्वक पोषण करनेवाले सुखरूप पतिके साथ सुख-सौभाग्यादि भोगकर अन्तमें गौरी (पार्वती)-की पुरीमें जाती है। इस व्रतमें गौरीका कोकिलाके रूपमें पूजन किया जाता है।

(१२) अम्बिकाव्रत (भविष्यपुराण)—आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशीको उपवास करके पूर्णिमाके प्रातःकाल अम्बिकादेवीका विधिवत् पूजन करनेसे यज्ञके समान फल होता है और व्रती विष्णुलोकमें जाता है।

(१३) विश्वेदेवपूजन (ब्रह्मपुराण)—आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमाको पूर्वाषाढ़ा हो तो महाबली दस[२] विश्वेदेवोंका पूजन करे, इससे उनकी प्रसन्नता प्राप्त होती है।

(१४) शिवशयनव्रत (हेमाद्रि, वामनपुराण)—आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमाको जटाजूटकी व्यवस्थाके विचारसे शिवजी सिंह-चर्मके विस्तरपर शयन करते हैं, अतः उस दिन पूर्वविद्धा पूर्णिमामें शिवपूजन करके रुद्रव्रत करनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है।

(१५) वायुधारिणी पूर्णिमा (ज्योतिःशास्त्र)—आषाढ़ शुक्ल

---

१. तिलस्नेहे तिलसौख्ये तिलवर्णे तिलामये।
सौभाग्यधनपुत्रांश्च देहि मे कोकिले नमः॥ (भविष्योत्तर०)

२. क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालः कामस्तथैव च।
धूरिश्च लोचनश्चैव तथा चैव पुरूरवाः॥
आश्रवश्च दशैवैते विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः। (मत्स्यपु०१७१ बृहस्पति)

पूर्णिमाको सूर्यास्तके समय गणेशादिका पूजन करके सुदीर्घ शंकुके अग्रभागमें मन्दवायुके संचालनमात्रसे संचालित होनेवाले तूलिकापुष्प (रूईके फोये)-को लटकाकर सीधा खड़ा करे और जिस दिशाकी हवा हो उसके अनुसार* शुभाशुभ निश्चित करे। अक्षय-तृतीयाके अनुसार इस पूर्णिमाको भी कलशस्थापन करके अनेक प्रकारकी वनौषधि, धान्य, प्रख्यात देश और उनके अधिपति एवं विख्यात व्यक्तियोंके नाम पृथक्-पृथक् तौलकर कपड़ेकी अलग-अलग पोटलियोंमें बाँधकर कलशके समीप स्थापन करते हैं और दूसरे दिन उसी प्रकार फिर तौलकर उनके न्यून, सम और अधिक होनेपर अन्नादिके मँहगे, सस्ते एवं देशविशेष और व्यक्तियोंके ह्रास, यथावत् और वृद्धि होनेका ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(१६) व्यासपूजा पूर्णिमा (अर्चनविधि)—आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमाको प्रातःस्नानादि नित्य-कर्म करके ब्राह्मणोंसहित '**गुरुपरम्परासिद्ध्यर्थं व्यासपूजां करिष्ये।**' से संकल्प करके श्रीपर्णीवृक्षकी चौकीपर तत्सम धौतवस्त्र फैलाकर उसपर प्रागपर (पूर्वसे पश्चिम) और उदगपर (उत्तरसे दक्षिण)-को गन्धादिसे बारह-बारह रेखा बनाकर व्यास-पीठ निश्चित करे और दसों दिशाओंमें अक्षत छोड़कर दिग्-बन्धन करे। फिर ब्रह्म, ब्रह्मा, परापरशक्ति, व्यास, शुकदेव, गौडपाद, गोविन्दस्वामी और शंकराचार्यका नाममन्त्रसे आवाहनादि पूजन करके अपने दीक्षागुरु (तथा पिता, पितामह, भ्राता आदि)-का देवतुल्य पूजन करे। विशेष विस्तृत विधान शंकराचार्यविरचित 'व्यासपूजाविधि' में देखना चाहिये।

---

* आषाढ्यां भास्करास्ते सुरपतिनिलये वाति वाते सुवृष्टिः
सस्यार्धं सम्प्रकुर्याद् यदि दहनदिशो मन्दवृष्टिर्यमेन।
नैर्ऋत्यामन्ननाशो वरुणदिशि जलं वायुकोणे प्रवायुः
कौवेर्यां सस्यपूर्णा सकलवसुमती तद्वदीशानवायौ॥ (ज्योतिःशास्त्र)

श्रावणके व्रत

कृष्णपक्ष

(१) अशून्यशयनव्रत (भविष्यपुराण)—यह श्रावण कृष्ण द्वितीयासे मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीयापर्यन्त किया जाता है। इसमें पूर्वविद्धा तिथि ली जाती है। यदि दो दिन पूर्वविद्धा हो या दोनों दिन न हो तो परविद्धा लेनी चाहिये। इसमें शेषशय्यापर लक्ष्मीसहित नारायण शयन करते हैं, इसी कारण इसका नाम अशून्यशयन है। यह प्रसिद्ध है कि देवशयनीसे देवप्रबोधिनीतक भगवान् शयन करते हैं। साथ ही यह भी प्रसिद्ध है कि इस अवधिमें देवता सोते हैं और शास्त्रसे यही सिद्ध होता है कि द्वादशीको भगवान्, त्रयोदशीको काम, चतुर्दशीको यक्ष, पूर्णिमाको शिव, प्रतिपदाको ब्रह्मा, द्वितीयाको विश्वकर्मा और तृतीयाको उमाका शयन होता है। व्रतीको चाहिये कि श्रावण कृष्ण द्वितीयाको प्रातःस्नानादि करके श्रीवत्सचिह्नसे युक्त चार भुजाओंसे भूषित शेषशय्यापर स्थित और लक्ष्मीसहित भगवान्का गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे। दिनभर मौन रहे। व्रत रखे और सायंकाल पुनः स्नान करके भगवान्का शयनोत्सव मनावे। फिर चन्द्रोदय होनेपर अर्घ्यपात्रमें जल, फल, पुष्प और गन्धाक्षत रखकर '**गगनांगणसंदीप क्षीराब्धिमथनोद्भव। भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते॥**' (पुराणान्तर)—इस मन्त्रसे अर्घ्य दे और भगवान्को प्रणाम करके भोजन करे। इस प्रकार प्रत्येक कृष्ण द्वितीयाको करके मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीयाको उस ऋतुमें होनेवाले (आम, अमरूद और केले आदि) मीठे फल सदाचारी ब्राह्मणको दक्षिणासहित दे। करोंदे, नीबू आदि खट्टे तथा इमली, कैरी, नारंगी, अनार आदि स्त्रीनामके फल न दे। इस व्रतसे व्रतीका गृहभंग नहीं होता—दाम्पत्यसुख अखण्ड रहता है। यदि स्त्री करे तो वह सौभाग्यवती होती है।

(२) कज्जली तृतीया—यदि श्रावण कृष्ण तृतीयाको श्रवण नक्षत्र हो तो विष्णुका पूजन करके व्रत करे। इसमें परविद्धा ग्राह्य होती है।*

(३) स्वर्णगौरीव्रत (स्कन्दपुराण)—यह श्रावण कृष्ण तृतीयाको किया जाता है। उस दिन प्रातःस्नानादि करके शुद्ध भूमिकी मृत्तिकासे गौरीकी मूर्ति बनावे। उसके समीप सूत या रेशमके १६ तारका डोरा बनाकर उसमें १६ गाँठ लगाकर स्थापित करे। फिर गौरीका आवाहनादि षोडश उपचारोंसे पूजन करके डोरेको दाहिने हाथमें बाँधे और व्रत करे। इस प्रकार १६ वर्ष करनेके बाद उद्यापन करे। उद्यापनमें एक वेदीपर अष्टदल बनाकर उसपर कलश स्थापित करे और कलशपर शिवगौरीकी सुवर्णमयी मूर्ति प्रतिष्ठित करके यथाविधि पूजन करे और प्रार्थना करके स्वर्णादिनिर्मित और १६ ग्रन्थियुक्त डोरेका पूजन करे। **'ॐ शिवाय नमः स्वाहा।', 'ॐ शिवाय नमः स्वाहा।'** से हवन करके बाँसके १६ पात्रोंमें १६ फल और १६ प्रकारकी मिठाई भरकर १६ ब्राह्मणोंको दे और गोदान, अन्नदान, शय्यादान और भूयसी देकर १६ जोड़ा-जोड़ी जिमावे और फिर स्वयं भोजन करके व्रत समाप्त करे। इस व्रतके सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण कथा है—प्राचीन कालमें सरस्वतीके किनारेकी विमलापुरीके राजा चन्द्रप्रभने अप्सराओंके आदेशानुसार अपनी छोटी रानी विशालाक्षीसे यह व्रत करवाया था; किंतु मदान्विता महादेवी (बड़ी रानी)-ने उक्त डोरा तोड़ डाला। फल यह हुआ कि वह विक्षिप्त हो गयी और आम्र, सरोवर एवं ऋषिगणोंसे 'गौरी कहाँ है?' यह पूछने लगी। अन्तमें गौरीकी सानुकूलता होनेपर वह फिर पूर्वावस्थामें प्राप्त होकर सुखसे रही।

(४) संकष्टचतुर्थी (भविष्योत्तरपुराण)—यह व्रत श्रावण

---

* तृतीया श्रावणे कृष्णा या स्याच्छ्रवणसंयुता।
तस्यां सम्पूज्य गोविन्दं तुष्टिमग्र्यामवाप्नुयात्॥ (हेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरे)

कृष्ण चतुर्थीको किया जाता है। इसमें चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थी ली जाती है। यदि दो दिन वैसी हो या दोनों ही दिन न हो तो पूर्वविद्धा लेना चाहिये। उस दिन नित्यकृत्य करके सूर्यादिसे व्रतकी भावना निवेदन कर '**मम सर्वविधसौभाग्यसिद्ध्यर्थं संकष्टहरगणपतिप्रीतये संकष्टचतुर्थीव्रतमहं करिष्ये।**' यह संकल्प करे और वस्त्राच्छादित वेदीपर मूर्तिमान् या फलस्वरूप गणेशजीको स्थापित करके '**कोटिसूर्यप्रभं देवं गजवक्त्रं चतुर्भुजम्। पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत् सिद्धिविनायकम्॥**' से गणेशजीका ध्यान करके उनका पूजन करे और २१ दूर्वा लेकर '**गणाधिपाय नमः** २, **उमापुत्राय नमः** २, **अघनाशनाय नमः** २, **एकदन्ताय नमः** २, **इभवक्त्राय नमः** २, **मूषकवाहनाय नमः** २, **विनायकाय नमः** २, **ईशपुत्राय नमः** २, **सर्वसिद्धिप्रदायकाय नमः** २ और **कुमारगुरवे नमः** २' इन नामोंसे प्रत्येक नामके साथ दो-दो दूर्वा और गणाधिपादि दसों नामोंके द्वारा एक दूर्वा अर्पण करे। अन्तमें नीराजन करके पुष्पांजलि दे और '**संसारपीडाव्यथितं हि मां सदा संकष्टभूतं सुमुख प्रसीद। त्वं त्राहि मां मोचय कष्टसंघान्नमो नमो विघ्नविनाशनाय॥**' से प्रार्थना करके घी, गेहूँ और गुड़से बनाये हुए २१ मोदक लेकर एक गणेशजीके अर्पण करे, १० ब्राह्मणोंको दे और शेष १० अपने लिये रख दे। तत्पश्चात् चन्द्रोदय होनेपर उनका गन्धाक्षतसे पूजन करके '**ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषां पते। नमस्ते रोहिणीकान्त गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' से चन्द्रमाको, '**गजानन नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धिप्रदायक। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संकष्टं नाशयाशु मे॥**' से गणेशजीको और '**तिथीनामुत्तमे देवि गणेशप्रियवल्लभे। सर्वसम्पत्प्रदे देवि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' से चतुर्थीको अर्घ्य देकर भोजन करे। श्रावणमें लड्डू, भाद्रमें दही, आश्विनमें उपवास, कार्तिकमें दध्योदन,

मार्गशीर्षमें निराहार, पौषमें गोमूत्र, माघमें तिल, फाल्गुनमें घी, शक्कर, चैत्रमें पंचगव्य, वैशाखमें शतपत्रिका,ज्येष्ठमें घी और आषाढ़में मधु भक्षण करे। जमीनपर सोवे, जितक्रोधी, जितेन्द्रिय, निर्लोभी और मोहादिसे रहित होकर प्रतिमास एक वर्ष, तीन वर्ष या जन्मभर करे तो उसके संकट दूर होकर शान्ति मिलती है और ऋद्धि-सिद्धिसे संयुक्त होकर वह सुखी रहता है। इस व्रतको यदि कुमारी करे तो उसे सुयोग्य वर मिले। सौभाग्यवती युवती करे तो सौभाग्यादिकी वृद्धि हो और विधवा करे तो जन्मान्तरमें वह सौभाग्यवती रहे।

(५) शीतलासप्तमी (हेमाद्रि, भविष्यपुराण)—यह व्रत श्रावण कृष्ण सप्तमीको किया जाता है। इसमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ली जाती है। पूजाविधि और स्तोत्रपाठादि चैत्रके समान हैं। कथा यह है कि हस्तिनापुरके राजा इन्द्रद्युम्नकी धर्मशीला नामकी रानीके महाधर्म नामका पुत्र और गुणोत्तमा नामकी पुत्री थी। समयपर पुत्रीका विवाह हुआ। रथारूढ़ होकर पति-पत्नी घर गये। दैवयोगसे रास्तेमें पति अदृश्य हो गये। पतिवियोग मानकर पत्नीने विलाप किया। अन्तमें शीतल उपचारोंसे शीतलादेवीका पूजन करनेसे पतिदेव प्रकट हुए और प्रसन्नचित्तसे घर जाकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किये।

(६) कुमारीपूजा (निर्णयामृत, भविष्योत्तर)—श्रावण कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षकी नवमीको चाँदीकी बनी हुई कुमारी नामकी देवीका पूजन करे। मलयज चन्दन, कनेरके पुष्प, दशांग धूप, घृतपूर्ण दीपक और घीमें पकाये हुए मोदकादिसे पूजन करके ब्राह्मण, ब्राह्मणी और कुमारीको भोजन करावे। स्वयं बिल्वपत्र भक्षण करे तो परम तत्त्व प्राप्त होता है।

(७) कृष्णैकादशी (ब्रह्मवैवर्त०)—श्रावण कृष्ण एकादशीको उपवास करके श्रीकृष्णका पूजन करे। तुलसीदल और उसकी

मंजरी चढ़ावे। घीका दीपक प्रज्वलित रखे और यथाशक्ति दान दे तो अनन्त फल होता है। इसका नाम 'कामिका' है।

(८) प्रदोषव्रत—यह प्रत्येक त्रयोदशीको किया जाता है। परंतु श्रावणमें सोम-प्रदोष हो तो वह विशेष फल देता है। उस दिन ग्रामसे बाहर किसी पुष्पोद्यानके शिवमन्दिरमें जाकर शिव-पूजन करे और दो घड़ी रात्रि जानेसे पहले एक बार भोजन करे तो शिवजी प्रसन्न होते हैं। इसके सिवा श्रावणमें शिवजीके प्रीत्यर्थ चार सोमव्रत और होते हैं, जो श्रावणके अन्तर्गत ही हैं।

(९) अमाव्रत—देशभेदके अनुसार श्रावण कृष्ण अमावस्याको 'हरिता' (या हरियाली अमा) कहते हैं। इस दिन किसी एकान्त स्थानके जलाशयपर जाकर स्नान-दानादि करे और ब्राह्मणोंको भोजन करावे तो पितृगण प्रसन्न होते हैं।

शुक्लपक्ष

(१) दूर्वागणपति (सौरपुराण)—यह व्रत श्रावण शुक्ल चतुर्थीको किया जाता है। इसमें मध्याह्नव्यापिनी चतुर्थी ली जाती है। यदि वह दो दिन हो या दोनों दिन न हो तो '**मातृविद्धा प्रशस्यते**' के अनुसार पूर्वविद्धा व्रत करना चाहिये। उस दिन प्रातःस्नानादि करके सुवर्णके गणेशजी बनवावे जो एकदन्त, चतुर्भुज, गजानन और स्वर्णसिंहासनस्थ हों। उनके अतिरिक्त सोनेकी दूर्वा बनवावे। फिर सर्वतोभद्र-मण्डलपर कलश स्थापन करके उसमें स्वर्णमय दूर्वा लगाकर उसपर उक्त गणेशजीका स्थापन करे। उनको रक्तवस्त्रादिसे विभूषित करे और अनेक प्रकारके सुगन्धित पत्र, पुष्पादिसे पूजन करे। बेलपत्र, अपामार्ग, शमीपत्र, दूब और तुलसीपत्र अर्पण करे। फिर नीराजन करके '**गणेश्वर गणाध्यक्ष गौरीपुत्र गजानन। व्रतं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादादिभानन॥**' इससे प्रार्थना करे। इस प्रकार तीन या पाँच वर्ष करनेसे सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध होते हैं।

(२) नागपंचमी—यह व्रत श्रावण शुक्ल पंचमीको किया जाता है। लोकाचार या देश-भेदवश किसी जगह कृष्णपक्षमें भी होता है। इसमें परविद्धा पंचमी ली जाती है। इस दिन सर्पोंको दूधसे स्नान और पूजन कर दूध पिलानेसे, वासुकीकुण्डमें स्नान करने, निज गृहके द्वारमें दोनों ओर गोबरके सर्प बनाकर उनका दधि, दूर्वा, कुशा, गन्ध, अक्षत, पुष्प, मोदक और मालपुआ आदिसे पूजा करने और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर एकभुक्त व्रत करनेसे घरमें सर्पोंका भय नहीं होता है। यदि '**ॐ कुरुकुल्ये हुं फट् स्वाहा**' के परिमित जप करे तो सर्पविष दूर होता है।

(३) पापनाशिनी सप्तमी (हेमाद्रि)—यह व्रत श्रावण शुक्ल सप्तमीको हस्त नक्षत्र होनेसे उदयव्यापिनीमें किया जाता है। उस दिन जगद्गुरु चित्रभानुका पूजन करके दान, पुण्य, हवन और व्रत करे तो किये हुएका अक्षय फल होता है और प्रत्येक प्रकारके पाप, ताप दूर हो जाते हैं।

(४) दुर्गाव्रत (देवीपुराण)—श्रावण शुक्ल अष्टमीको प्रातः-स्नानादि नित्यकर्म करके पुनः स्नान करे और भीगे वस्त्र धारण किये हुए ही देवीको स्नान कराके खीरका नैवेद्य भोग लगावे और स्वयं भी उसीका एक बार भोजन करे तो भगवती दुर्गाकी प्रसन्नता प्राप्त होती है।

(५) शुक्लैकादशीव्रत (भविष्यपुराण)—श्रावण शुक्लकी एकादशी पवित्रा, पुत्रदा और पापनाशिनी होती है। इसके लिये पहले दिन मध्याह्नमें हविष्यान्नका एकभुक्तव्रत करके एकादशीको प्रातः-स्नानादिके अनन्तर '**मम समस्तदुरितक्षयपूर्वकं श्रीपरमेश्वर-प्रीत्यर्थं श्रावणशुक्लैकादशीव्रतमहं करिष्ये।**' यह संकल्प करके भक्तिभाव और विधानसहित भगवान्‌का पूजन करे और अनेक प्रकारके फल, पत्र, पुष्प और नैवेद्य अर्पण करके नीराजन करे। उसके बाद रात्रिके समय गायन, वादन, नर्तन, कीर्तन और कथा

श्रवण करते हुए जागरण करे। दूसरे दिन पारणा करके यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन करवाकर स्वयं भोजन करे। इस व्रतसे पापोंका नाश और पुत्रादिकी प्राप्ति होती है। पहले द्वापरयुगके आदिमें माहिष्मतीके राजा महीजित्‌के पुत्र नहीं था। उससे राजा-प्रजा दोनों चिन्तित थे। उन्होंने घोर वनमें तप करते हुए लोमश ऋषिसे प्रार्थना की, तब उन्होंने श्रावण शुक्ल एकादशीका व्रत करनेकी आज्ञा दी। तदनुसार ग्रामवासियोंसहित राजाने व्रत किया और उसके प्रभावसे उनको पुत्र प्राप्त हुआ।

(६) पवित्रार्पणविधि (बहुसम्मत)—श्रावण शुक्ल एकादशीको भगवान्‌को पवित्रक अर्पण किया जाता है। यद्यपि साधारण रूपमें बाजारसे लाये हुए रेशम या सूत्रके पवित्रक उपयोगमें आते हैं, किंतु शास्त्रमें इनका पृथक् विधान है। उसके अनुसार मणि, रत्न, सोना, चाँदी, ताँबा, रेशम, सूत, त्रिसर, पद्मसूत्र, कुशा, काश, मूँज, सन, बल्कल, कपास और अन्य प्रकारके रेशे आदिसे पवित्रक बनवावे अथवा सौभाग्यवती स्त्रीसे सूत कतवाकर उसके तीन तारोंको त्रिगुणित करके उनसे बनावे। रेशमका पवित्रक हो तो उसमें अंगूठेके पर्वके समान यथासामर्थ्य ३६०, २७०, १८०, १०८, ५४ या २७ गाँठ लगावे। उसकी लम्बाई जानु, जंघा या नाभिपर्यन्त करे और उसको पंचगव्यसे प्रोक्षण करके शुद्ध जलसे अभिषिक्त करे। फिर '**ॐ नमो नारायणाय**' का १०८ बार जप करके शंखोदकका छींटा दे और रात्रिभर रखकर व्रतके दूसरे दिन धारण करावे। उस समय घृतप्लावित एकाधिक बत्ती या कपूर जलाकर आरती करे और '**मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः। इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज॥**' '**वनमाला यथा देव कौस्तुभः सततं हृदि। पवित्रमस्तु ते तद्वत् पूजां च हृदये वह॥**' यह श्लोक पढ़कर प्रणाम करे। सत्ययुगमें मणि आदि रत्नोंके, त्रेतामें सुवर्णके, द्वापरमें रेशमके और कलियुगमें सूत्रके पवित्रक धारण करानेयोग्य होते हैं और यतिलोग

मानसनिर्मित पवित्रक अर्पण करते हैं। विशेष वर्णन विष्णुरहस्य, स्मृति-कौस्तुभ, रामार्चनचन्द्रिका, नृसिंहपरिचर्या और शिवार्चनचन्द्रिका आदिसे विदित हो सकता है।

(७) दधिव्रत (महाभारत-दानधर्म)—श्रावण शुक्ल द्वादशीको दधिव्रत किया जाता है। उसमें दहीका उपयोग किया जाता है। यदि उस दिन श्रीधर भगवान्‌को विमानमें विराजितकर अहोरात्र आनन्दोत्सव करे तो उससे पंचयज्ञके समान फल होता है।*

(८) प्रदोषव्रत—इस विषयमें पहलेके महीनोंमें बहुत-सा विधान प्रकाशित हो चुका है, तदनुसार श्रावण शुक्ल त्रयोदशीको प्रदोषव्रत करना चाहिये।

(९) रक्षाबन्धन (मदनरत्न—भविष्योत्तरपुराण)—यह श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको होता है। इसमें पराह्णव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो या दोनों ही दिन न हो तो पूर्वा लेनी चाहिये। यदि उस दिन भद्रा हो तो उसका त्याग करना चाहिये। भद्रामें श्रावणी और फाल्गुनी दोनों वर्जित हैं; क्योंकि श्रावणीसे राजाका और फाल्गुनीसे प्रजाका अनिष्ट होता है। व्रतीको चाहिये कि उस दिन प्रातःस्नानादि करके वेदोक्त विधिसे रक्षाबन्धन, पितृतर्पण और ऋषिपूजन करे। शूद्र हो तो मन्त्रवर्जित स्नान-दानादि करे। रक्षाके लिये किसी विचित्र वस्त्र या रेशम आदिकी 'रक्षा' बनावे। उसमें सरसों, सुवर्ण, केसर, चन्दन, अक्षत और दूर्वा रखकर रंगीन सूतके डोरेमें बाँधे और अपने मकानके शुद्ध स्थानमें कलशादि स्थापन करके उसपर उसका यथाविधि पूजन करे। फिर उसे राजा, मन्त्री, वैश्य या शिष्ट शिष्यादिके दाहिने हाथमें '**येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वामनुबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥**' इस मन्त्रसे बाँधे। इसके बाँधनेसे वर्षभरतक

---

* अहोरात्रेण द्वादश्यां श्रावणे मासि श्रीधरम्।
पंचयज्ञमवाप्नोति विमानस्थश्च मोदते॥

पुत्र-पौत्रादिसहित सब सुखी रहते हैं।* कथा यों है कि एक बार देवता और दानवोंमें बारह वर्षतक युद्ध हुआ, पर देवता विजयी नहीं हुए, तब बृहस्पतिजीने सम्मति दी कि युद्ध रोक देना चाहिये। यह सुनकर इन्द्राणीने कहा कि मैं कल इन्द्रके रक्षा बाँधूँगी, उसके प्रभावसे इनकी रक्षा रहेगी और यह विजयी होंगे। श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको वैसा ही किया गया और इन्द्रके साथ सम्पूर्ण देवता विजयी हुए।

(१०) श्रवणपूजन (व्रतोत्सव)—श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको नेत्रहीन माता-पिताका एकमात्र पुत्र श्रवण (जो उनकी दिन-रात सेवा करता था) एक बार रात्रिके समय जल लानेको गया। वहीं कहीं हिरणकी ताकमें दशरथजी छिपे थे। उन्होंने जलसे घड़ेके शब्दको पशुका शब्द समझकर बाण छोड़ दिया, जिससे श्रवणकी मृत्यु हो गयी। यह सुनकर उसके माता-पिता बहुत दु:खी हुए। तब दशरथजीने उनको आश्वासन दिया और अपने अज्ञानमें किये हुए अपराधकी क्षमा-याचना करके श्रावणीको श्रवणपूजाका सर्वत्र प्रचार किया। उस दिनसे सम्पूर्ण सनातनी श्रवणपूजा करते हैं और उक्त रक्षा सर्वप्रथम उसीको अर्पण करते हैं।

(११) ऋषितर्पण (उपाकर्मपद्धति आदि)—यह श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको किया जाता है। इसमें ऋक्, यजु:, सामके स्वाध्यायी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ या वानप्रस्थ किसी आश्रमके हों अपने-अपने वेद, कार्य और क्रियाके अनुकूल कालमें इस कर्मको सम्पन्न करते हैं। इसका आद्योपान्त पूरा विधान यहाँ नहीं लिखा जा सकता और बहुत संक्षिप्त लिखनेसे उपयोगमें भी

---

* य: श्रावणे विमलमासि विधानविज्ञो
रक्षाविधानमिदमाचरते मनुष्य:।
आस्ते सुखेन परमेण स वर्षमेकं
पुत्रप्रपौत्रसहित: ससुहृज्जन: स्यात्॥

नहीं आ सकता है। अतः सामान्यरूपमें यही लिखना उचित है कि उस दिन नदी आदिके तटवर्ती स्थानमें जाकर यथाविधि स्नान करे। कुशानिर्मित ऋषियोंकी स्थापना करके उनका पूजन, तर्पण और विसर्जन करे और रक्षा-पोटलिका बनाकर उसका मार्जन करे। तदनन्तर आगामी वर्षका अध्ययनक्रम नियत करके सायंकालके समय व्रतकी पूर्ति करे। इसमें उपाकर्मपद्धति आदिके अनुसार अनेक कार्य होते हैं, वे सब विद्वानोंसे जानकर यह कर्म प्रतिवर्ष सोपवीती प्रत्येक द्विजको अवश्य करना चाहिये। यद्यपि उपाकर्म चातुर्मासमें किया जाता है और इन दिनों नदियाँ रजस्वला होती हैं, तथापि '**उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते॥**' इस वसिष्ठ-वाक्यके अनुसार उपाकर्ममें उसका दोष नहीं माना जाता।

(१२) मंगला गौरीव्रत (व्रतराज, भविष्यपुराण)—यह व्रत विवाहके बाद स्त्रीको पाँच वर्षोंतक प्रति श्रावणमें प्रति भौमवारको करना चाहिये। विवाहके बाद प्रथम श्रावणमें पीहरमें तथा अन्य चार वर्षोंमें पतिगृहमें ही यह व्रत करना चाहिये। इसकी विधि यह है कि देश-कालादिका कीर्तन कर '**मम पुत्रपौत्रसौभाग्यवृद्धये श्रीमंगला-गौरीप्रीत्यर्थं पंचवर्षपर्यन्तं मंगलागौरीव्रतं करिष्ये॥**' ऐसा संकल्प कर पीठके ऊपर गौरीको पधराकर उनके सामने लोक-व्यवहारानुसार पिट्ठेका पत्थर, रत्न बनाकर रखे। आँटेका एक बड़ा-सा १६ मुखवाला दीपक १६ बत्तियोंसे युक्त घृतपूरित कर प्रज्वलित करे। फिर षोडशोपचारसे भगवती गौरीकी पूजा करे। फिर बाँसके पात्रमें सौभाग्यादि द्रव्योंको रखकर '**अन्नकंचुकिसंयुक्तं सवस्त्रफलदक्षिणम्। वायनं गौरि विप्राय ददामि प्रीतये तव॥ सौभाग्यारोग्यकामानां सर्वसम्पत्समृद्धये। गौरीगिरीशतुष्ट्यर्थं वायनं ते ददाम्यहम्॥**' इन दोनों मन्त्रोंसे वायन दे। फिर माताको सौभाग्य द्रव्यके साथ लड्डू, कंचुकी, फल, वस्त्रके

साथ ताम्रपात्रमें वायन दे। फिर १६ मुँहवाले दीपकसे नीराजन (आरती) करे। फिर थोड़ा-सा दीपका पिष्ठ तथा बिना नमकका अन्न खाकर रातको जागरण करे तथा प्रातःकालमें गौरीका विसर्जन कर दे।

कथाका सार यह है कि कुण्डिन नगरमें एक धर्मपाल नामका धनी सेठ था। उसको कोई पुत्र न था। इसलिये दम्पति बड़े व्याकुल थे। उनके यहाँ प्रतिदिन एक जटा-रुद्राक्षमाल्यधारी भिक्षुक आया करता था। पतिकी सम्मतिसे एक दिन सेठानीने भिक्षुककी झोलीमें छिपाकर सोना डाल दिया। इसपर भिक्षुकने उसे अनपत्यता (संतानहीनता)-का शाप दे डाला। फिर बहुत अनुनय करनेपर गौरीकी कृपासे उसे एक अल्पायु पुत्र प्राप्त हुआ, जिसे गणपतिने १६ वें वर्ष सर्पदंशनका शाप दे दिया था। पर काशीके मार्गमें उस बालकका विवाह एक ऐसी कन्यासे हुआ जिसकी माताने मंगला गौरीव्रत किया था, इसलिये वह शतायु हो गया और मंगला गौरीकी कृपासे न तो साँप ही डँस सका न यमदूत ही १६ वें वर्ष उसके प्राण ले जा सके। वे जब कुण्डिनपुर लौटे तो माता-पिताने उनका बड़ा सोल्लास स्वागत किया।

भाद्रपदके व्रत

कृष्णपक्ष

(१) कज्जलीतृतीया (कृत्यरत्नावली)—यद्यपि यह व्रत वाक्य-विशेष या देश-भेदसे श्रावणमें किया जाता है, किंतु भाद्रपद कृष्ण तृतीयाको व्यापकरूपमें होता है। माहेश्वरी वैश्य इस दिन जौ, गेहूँ, चने और चावलके सत्तूमें घी, मीठा और मेवा डालकर उसके कई पदार्थ बनाते और चन्द्रोदयके बाद उसीका एक बार भोजन करते हैं। इस कारण यह व्रत 'सातूड़ी तीज' अथवा 'सतवा तीज' कहलाता है।

(२) विशालाक्षीयात्रा (काशीखण्ड)—इसके निमित्त भाद्रपद कृष्ण तृतीयाको व्रत किया जाता है। इसमें रात्रिव्यापिनी तिथि लेते हैं। इस दिन केवल उपवास और जागरण किया जाता है और भाद्रपद शुक्ल तृतीयाको सुवर्णनिर्मित गौरीका गन्धादिसे पूजन करते हैं। नैवेद्यमें गुड़के पूआ और यात्रामें विशालाक्षी मुख्य हैं।

(३) संकष्टचतुर्थी (भविष्योत्तर)—यह परिचित व्रत प्रत्येक कृष्ण चतुर्थीको होता है। इसमें चन्द्रोदयव्यापिनी तिथि ली जाती है। रात्रिमें चन्द्रमाको अर्घ्य देकर और पूजनीय पुरुषोंको वायन देकर भोजन किया जाता है। विशेष विधान पहले लिखा जा चुका है।

(४) बहुलाव्रत—यह मध्यप्रदेशमें भाद्रपद कृष्ण चतुर्थीको किया जाता है।

(५) चन्द्रषष्ठी (भविष्यपुराण)—यह भाद्र कृष्ण षष्ठीको किया जाता है। इसमें चन्द्रोदयव्यापिनी तिथि ली जाती है। इसे विशेषकर विवाहिता या अविवाहिता लड़कियाँ ही करती हैं और चन्द्रोदय होनेपर उन्हें अर्घ्य देती हैं।

(६) पुत्रव्रत (वाराहपुराण)—इसके लिये भाद्रपद कृष्ण

सप्तमीको उपवासकर विष्णुका पूजन करे और दूसरे दिन '**ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**' इस मन्त्रसे तिलोंकी १०८ आहुति देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और बिल्वफल खाकर षड्रस (मधुर, अम्ल, लवण, कषाय, तिक्त और कटु) भक्षण करे। इस प्रकार प्रत्येक कृष्ण सप्तमीको करके वर्ष व्यतीत होनेपर दो गोदान करे तो पुत्रकी प्राप्ति होती है।

(७) जन्माष्टमी (शिव, विष्णु, ब्रह्म, वह्नि, भविष्यादि)—यह व्रत भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको किया जाता है। भगवान् श्रीकृष्णका जन्म भाद्रपद कृष्ण अष्टमी बुधवारको रोहिणी नक्षत्रमें अर्धरात्रिके समय वृषके चन्द्रमामें हुआ था। अतः अधिकांश उपासक उक्त बातोंमें अपने-अपने अभीष्ट योगका ग्रहण करते हैं। शास्त्रमें इसके शुद्धा और विद्धा दो भेद हैं। उदयसे उदयपर्यन्त शुद्धा और तद्गत सप्तमी या नवमीसे विद्धा होती है। शुद्धा या विद्धा भी—समा, न्यूना या अधिकाके भेदसे तीन प्रकारकी हो जाती हैं और इस प्रकार अठारह भेद बन जाते हैं, परंतु सिद्धान्तरूपमें तत्कालव्यापिनी (अर्धरात्रिमें रहनेवाली) तिथि अधिक मान्य होती है। वह यदि दो दिन हो—या दोनों ही दिन न हो तो (सप्तमीविद्धाको सर्वथा त्यागकर) नवमी-विद्धाका ग्रहण करना चाहिये। यह सर्वमान्य और पापघ्नव्रत बाल, कुमार, युवा और वृद्ध—सभी अवस्थावाले नर-नारियोंके करनेयोग्य है। इससे उनके पापोंकी निवृत्ति और सुखादिकी वृद्धि होती है। जो इसको नहीं करते, उनको पाप होता है। इसमें अष्टमीके उपवाससे पूजन और नवमीके (तिथिमात्र) पारणासे व्रतकी पूर्ति होती है। व्रत करनेवालेको चाहिये कि उपवासके पहले दिन लघु भोजन करे। रात्रिमें जितेन्द्रिय रहे और उपवासके दिन प्रातःस्नानादि नित्यकर्म करके सूर्य, सोम, यम, काल, सन्धि, भूत, पवन, दिक्पति, भूमि, आकाश, खेचर, अमर और ब्रह्म आदिको नमस्कार करके पूर्व या

उत्तर मुख बैठे; हाथमें जल, फल, कुश, फूल और गन्ध लेकर '**ममाखिलपापप्रशमनपूर्वकसर्वाभीष्टसिद्धये श्रीकृष्णजन्माष्टमी-व्रतमहं करिष्ये**' यह संकल्प करे और मध्याह्नके समय काले तिलोंके जलसे स्नान करके देवकीजीके लिये 'सूतिकागृह' नियत करे। उसे स्वच्छ और सुशोभित करके उसमें सूतिकाके उपयोगी सब सामग्री यथाक्रम रखे। सामर्थ्य हो तो गाने-बजानेका भी आयोजन करे। प्रसूतिगृहके सुखद विभागमें सुन्दर और सुकोमल बिछौनेके सुदृढ़ मंचपर अक्षतादिका मण्डल बनवाकर उसपर शुभ कलश स्थापन करे और उसीपर सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, मणि, वृक्ष, मिट्टी या चित्ररूपकी मूर्ति स्थापित करे। मूर्तिमें सद्यःप्रसूत श्रीकृष्णको स्तनपान कराती हुई देवकी हों और लक्ष्मीजी उनके चरण स्पर्श किये हुए हों—ऐसा भाव प्रकट रहे। इसके बाद यथासमय भगवान्‌के प्रकट होनेकी भावना करके वैदिक विधिसे, पौराणिक प्रकारसे अथवा अपने सम्प्रदायकी पद्धतिसे पंचोपचार, दशोपचार, षोडशोपचार या आवरणपूजा आदिमें जो बन सके वही प्रीतिपूर्वक करे। पूजनमें देवकी, वसुदेव, वासुदेव, बलदेव, नन्द, यशोदा और लक्ष्मी—इन सबका क्रमशः नाम निर्दिष्ट करना चाहिये। ······अन्तमें '**प्रणमे देवजननीं त्वया जातस्तु वामनः। वसुदेवात्** तथा **कृष्णो नमस्तुभ्यं नमो नमः॥ सपुत्रार्घ्यं प्रदत्तं मे गृहाणेमं नमोऽस्तु ते।**' से देवकीको अर्घ्य दे और '**धर्माय धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।**' से श्रीकृष्णको 'पुष्पांजलि' अर्पण करे। तत्पश्चात् जातकर्म, नालच्छेदन, षष्ठीपूजन और नामकरणादि करके '**सोमाय सोमेश्वराय सोमपतये सोमसम्भवाय सोमाय नमो नमः।**' से चन्द्रमाका पूजन करे और फिर शंखमें जल, फल, कुश, कुसुम और गन्ध डालकर दोनों घुटने जमीनमें लगावे और '**क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिनेत्रसमुद्भव। गृहाणार्घ्यं शशांकेमं रोहिण्या सहितो मम॥ ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं**

नमस्ते ज्योतिषां पते। नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम्॥' से चन्द्रमाको अर्घ्य दे और रात्रिके शेष भागको स्तोत्र-पाठादि करते हुए बितावे। उसके बाद दूसरे दिन पूर्वाह्णमें पुनः स्नानादि करके जिस तिथि या नक्षत्रादिके योगमें व्रत किया हो उसका अन्त होनेपर पारणा करे। यदि अभीष्ट तिथि या नक्षत्रादिके समाप्त होनेमें विलम्ब हो तो जल पीकर पारणाकी पूर्ति करे।

(८) उमा-महेश्वरव्रत (हेमाद्रि)—यह भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको करना चाहिये। इसमें सायंकालके समय उमा और महेश्वरका पूजन करके एकभुक्त व्रत करे।

(९) कालाष्टमी (हेमाद्रि)—यदि भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको मृगशिरा हो तो शिवपूजन करके यह व्रत करे।

(१०) गोगानवमी (व्रतोत्सव)—यह व्यापक व्रत नहीं है। लोकाचारमें इसका प्राधान्य है। इसके लिये कुम्हारलोग काली मिट्टीकी एक मूर्ति बनाते हैं। वह वीर पुरुषकी होती है। उसे भाद्रपद कृष्ण नवमीको प्रातः सद्‌गृहस्थोंके घरोंमें ले जाते हैं और पूजन करवाके ले आते हैं। देखा जाता है कि अधिकांश गृहस्थ उस अश्वारूढ मूर्तिको अपूप और श्रावणीका रक्षासूत्र अर्पण करते हैं।

(११) दुर्गाबोधन (देवीपुराण)—यह व्रत यदि भाद्रपद कृष्ण नवमीको आर्द्रा हो तो उसमें गायन-वादनादिके साथ देवीका पूजन करनेसे सम्पन्न होता है।

(१२) कृष्णैकादशीव्रत (ब्रह्मवैवर्त)—यह सुपरिचित व्रत भाद्रपद कृष्ण एकादशीको किया जाता है। इसका नाम 'अजा' एकादशी है। इसके व्रतसे पुनर्जन्मकी बाधा दूर हो जाती है। प्राचीन कालमें चक्रवर्ती हरिश्चन्द्रने इसी व्रतसे अपनी बिगड़ी हुई दशासे उद्धार पाया था।

(१३) वत्सद्वादशी (व्रतोत्सव)—इसमें भाद्रपद कृष्ण द्वादशीको मध्याह्नसे पहले गोवत्सका पूजन करके (उनको पहले दिनके भिगोकर उगाये हुए) मूँग, मोठ और बाजरेका नैवेद्य भोग लगाते हैं और बाड़ करेलेकी बेलिसे उसको सुशोभित करते हैं। व्रतवाली स्त्रियोंकी भोजन-सामग्रीमें मूँग, मोठ और बाजरेका ही प्राधान्य होता है। इसमें दूध, दही या घी (गौका नहीं) भैंसका बर्तते हैं।

(१४) प्रदोषव्रत (स्कन्दपुराण)—इस सुप्रसिद्ध व्रतके विधि-विधान गत महीनोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। विशेषता यह है कि भाद्रपदके सोमप्रदोषसे महाफल मिलता है।

(१५) कुशग्रहणी (मदनरत्न)—यह भाद्रपद कृष्ण अमावास्याके पूर्वाह्णमें मानी जाती है। शास्त्रमें—'**कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च सकुन्दकाः। गोधूमा ब्राह्मयो मौंजा दश दर्भाः सबल्वजाः॥**'—दस प्रकारका कुश बतलाया है। इनमें जो मिल सके उसीको ग्रहण करे। जिस कुशाका मूल सुतीक्ष्ण हो, उसमें सात पत्ती हों, अग्रभाग कटा न हो और हरा हो, वह देव और पितृ दोनों कार्योंमें बर्तने योग्य होती है। उसके लिये अमावास्याको दर्भस्थलमें जाकर पूर्व या उत्तर मुख बैठे और '**विरंचिना सहोत्पन्न परमेष्ठिन्निसर्गज। नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव॥ हुँ फट्।**' यह मन्त्र उच्चारण करके कुशाको दाहिने हाथसे उखाड़े (और इस प्रकार जितनी चाहिये, ले आवे)।

शुक्लपक्ष

(१) महत्तमाख्यशिवव्रत (स्कन्दपुराण)—यह व्रत भाद्रपद शुक्ल प्रतिपद्को किया जाता है। इसके लिये जटामण्डित और त्रिशूल, कपाल तथा कुण्डिकादिसे संयुक्त, चन्द्रादिसे सुशोभित, त्रिनेत्र शिवजीकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाकर भाद्रपद शुक्ल प्रतिपदाको उसे विधिपूर्वक स्थापित किये हुए कलशपर स्थापितकर

यथाप्राप्त उपचारोंसे पूजन करे और नैवेद्यमें अड़तालीस फल या मोदक अथवा मिष्टान्नादि अर्पण करके उनमेंसे १६ देवताओंको और १६ ब्राह्मणोंको अर्पण करे, शेष १६ अपने लिये रखे और '**प्रसीद देवदेवेश चराचरजगद्गुरो। वृषध्वज महादेव त्रिनेत्राय नमो नमः॥**' से प्रार्थना करके दूध देनेवाली गौका दान करे और एक बार भोजन कर व्रतको समाप्त करे। इससे पापनाश होता है तथा राज्य, धन, पुत्र, स्त्री, आरोग्य और आयु आदिकी प्राप्ति होती है।

(२) मौनव्रत (स्कन्दपुराण)—यह व्रत भाद्रपद शुक्ल प्रतिपद्को पूर्ण होता है, किंतु श्रावण शुक्ल पूर्णिमासे ही इसका प्रारम्भ किया जाता है। उस दिन किसी जलाशयपर जाकर स्नान करे और कोमल दूर्वाके १६ अंकुरोंका डोरा बनाकर उसमें १६ गाँठ लगावे; फिर गन्धादिसे उसका पूजनकर स्त्री बाँयें हाथमें और पुरुष दाहिने हाथमें धारण करे। इसके बाद जल लाने, गेहूँ पीसने, उनसे नैवेद्य बनाने और अन्य आयोजन करने आदिमें सर्वथा मौन रहे। तत्पश्चात् भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदाको जलाशयपर जाकर स्नानादि नित्यकर्म करके देव, ऋषि, मनुष्य और पितरोंका तर्पण करे और फिर सदाशिवका आवाहनादि षोडशोपचारसे पूजन करके '**जन्मजन्मान्तरेष्वेव भावाभावेन यत् कृतम्। क्षन्तव्यं देव तत् सर्वं शम्भो त्वां शरणं गतः॥**' से प्रार्थना करे। इस प्रकार १६ दिन करके भाद्रपद शुक्ल प्रतिपदाको ब्राह्मण-भोजनादि करवाकर स्वयं भोजन करे तो इससे पुत्र-पौत्रादिकी प्राप्ति और पापादिकी निवृत्ति होती है।

(३) हरितालिका (भविष्योत्तरपुराण)—'**भाद्रस्य कजली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका।**' के अनुसार भाद्रशुक्ल ३ को 'हरितालिका' का व्रत किया जाता है। इसमें मुहूर्तमात्र हो तो भी परा तिथि ग्राह्य की जाती है। (क्योंकि द्वितीया पितामहकी और चतुर्थी

पुत्रकी तिथि है; अतः द्वितीयाका योग निषेध और चतुर्थीका योग श्रेष्ठ होता है।) शास्त्रमें इस व्रतके लिये सधवा, विधवा सबको आज्ञा है। धर्मप्राणा स्त्रियोंको चाहिये कि वे **'मम उमामहेश्वरसायुज्यसिद्धये हरितालिकाव्रतमहं करिष्ये।'** यह संकल्प करके मकानको मण्डपादिसे सुशोभितकर पूजा-सामग्री एकत्र करे। इसके बाद कलशस्थापन करके उसपर सुवर्णादि-निर्मित शिव-गौरी (अथवा पूर्वप्रतिष्ठित हर-गौरी)-के समीप बैठकर उनका **'सहस्त्रशीर्षा०'** आदि मन्त्रोंसे पुष्पार्पणपर्यन्त पूजन करके **'ॐ उमायै० पार्वत्यै० जगद्धात्र्यै० जगत्प्रतिष्ठायै० शान्तिरूपिण्यै० शिवायै०** और **ब्रह्मरूपिण्यै नमः'** से उमाके और **'ॐ हराय० महेश्वराय० शम्भवे० शूलपाणये० पिनाकधृषे० शिवाय० पशुपतये** और **महादेवाय नमः'** से महेश्वरके नामोंसे स्थापन और पूजन करके धूप-दीपादिसे शेष षोडश उपचार सम्पन्न करे और **'देवि देवि उमे गौरि त्राहि मां करुणानिधे। ममापराधाः क्षन्तव्या भुक्तिमुक्तिप्रदा भव॥'** से प्रार्थना करे और निराहार रहे। दूसरे दिन पूर्वाह्णमें पारणा करके व्रतको समाप्त करे। इस प्रकार नियत अवधि पूर्ण होनेपर या भाद्रपद शुक्ल ३ को हस्तनक्षत्र और सोमवार हो तो रात्रिके समय मण्डलपर उमा-महेश्वरकी मूर्ति स्थापित करके उनका यथाविधि पूजन करे और तिल, घी आदिसे आहुति देकर दूसरे दिन अष्टयुग्म या षोडशयुग्म (जोड़ा-जोड़ी)-को भोजन कराके १६ सौभाग्य-द्रव्य (सुहागटिपारे) दे; फिर स्वयं भोजन करके व्रतका विसर्जन करे। इसी दिन 'हरिकाली', 'हस्तगौरी' और 'कोटीश्वरी' आदिके व्रत भी होते हैं। इन सबमें पार्वतीके पूजनका प्राधान्य है और विशेषकर इनको स्त्रियाँ करती हैं।

(४) सिद्धिविनायकव्रत (कृत्यरत्नावली)—यह भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीको किया जाता है। इस दिन गणेशजीका मध्याह्नमें जन्म हुआ

था, अतः इसमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो या दोनों दिन न हो तो '**मातृविद्धा प्रशस्यते**' के अनुसार पूर्वविद्धा लेनी चाहिये। इस दिन रवि या भौमवार हो तो यह 'महाचतुर्थी' हो जाती है। इस दिन रात्रिमें चन्द्रदर्शन करनेसे मिथ्या कलंक लग जाता है। उसके निवारणके निमित्त स्यमन्तककी कथा श्रवण करना आवश्यक है*। अस्तु, व्रतके दिन प्रातःस्नानादि करके '**मम सर्वकर्मसिद्धये सिद्धिविनायकपूजनमहं करिष्ये**' से संकल्प करके 'स्वस्तिक' मण्डलपर प्रत्यक्ष अथवा स्वर्णादिनिर्मित मूर्ति स्थापन करके पुष्पार्पणपर्यन्त पूजन करे और फिर १३ 'नामपूजा' और २१ 'पत्रपूजा' करके धूप, दीपादिसे शेष उपचार सम्पन्न करे। अन्तमें घृतपाचित २१ मोदक अर्पण करके '**विघ्नानि नाशमायान्तु सर्वाणि सुरनायक। कार्यं मे सिद्धिमायातु पूजिते त्वयि धातरि॥**' से प्रार्थना करे और मोदकादि वितरण करके एक बार भोजन करे। इस दिन राजपूताना प्रान्तमें प्राचीन शैलीकी पाठशालाओंके छात्रगण बड़ी धूमधामसे 'गणपतिचतुर्थी' मनाते हैं और महाराष्ट्रदेशमें इसके महोत्सव होते हैं।

(५) शिवाचतुर्थी (भविष्यपुराण)—शिवा, शान्ता और सुखा—ये ३ चतुर्थी होती हैं। इनमें भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीकी 'शिवा' संज्ञा है। इसमें स्नान, दान, जप और उपवास करनेसे सौगुना फल होता है।

---

* 'श्रीकृष्णकी द्वारकापुरीमें सत्राजित्ने सूर्यकी उपासनासे सूर्यसमान प्रकाशवाली और प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण देनेवाली 'स्यमन्तक' मणि प्राप्त की थी। एक बार उसे संदेह हुआ कि शायद श्रीकृष्ण इसे छीन लेंगे। यह सोचकर उसने वह मणि अपने भाई प्रसेनको पहना दी। दैवयोगसे वनमें शिकारके लिये गये हुए प्रसेनको सिंह खा गया और सिंहसे वह मणि 'जाम्बवान्' छीन ले गये। इससे श्रीकृष्णपर यह कलंक लग गया कि 'मणिके लोभसे उन्होंने प्रसेनको मार डाला।' अन्तर्यामी श्रीकृष्ण जाम्बवान्की गुहामें गये और २१ दिनतक घोर युद्ध करके उनकी पुत्री जाम्बवतीको तथा स्यमन्तकमणिको ले आये। यह देखकर सत्राजित्ने वह मणि उन्हींको अर्पण कर दी। कलंक दूर हो गया।'

स्त्रियाँ यदि इस दिन गुड़, घी, लवण और अपूपादिसे अपने सास-श्वशुर या माँ आदिको तृप्त करें तो उनके सौभाग्यकी वृद्धि होती है। (माघ शुक्ल चतुर्थी शान्ता और भौमप्रयुक्त सुखा होती है।)

(६) ऋषिपंचमी (ब्रह्मपुराण)—भाद्रपद शुक्ल पंचमीको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र वर्णकी स्त्रियोंको चाहिये कि वे नद्यादिपर स्नानकर अपने घरके शुद्ध स्थलमें हरिद्रा आदिसे चौकोर मण्डल बनाकर उसपर सप्तर्षियोंका स्थापन करें और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्यादिसे पूजनकर '**कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः। जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः॥ दहन्तु पापं मे सर्वं गृह्णन्त्वर्घ्यं नमो नमः॥**' से अर्घ्य दें। इसके बाद अकृष्ट (बिना बोयी हुई) पृथ्वीमें पैदा हुए शाकादिका आहार करके ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक व्रत करें। इस प्रकार सात वर्ष करके आठवें वर्षमें सप्तर्षियोंकी सुवर्णमय सात मूर्ति बनवाकर कलश-स्थापन करके यथाविधि पूजनकर सात गोदान और सात युग्मक ब्राह्मण-भोजन कराके उनका विसर्जन करें। किसी देशमें इस दिन स्त्रियाँ पंचताड़ी तृण एवं भाईके दिये हुए चावल आदिकी कौए आदिको बलि देकर फिर स्वयं भोजन करती हैं।

(७) सूर्यषष्ठी (भविष्योत्तर)—सप्तमीप्रयुक्त भाद्रपद शुक्ल षष्ठीको स्नान, दान, जप और व्रत करनेसे अक्षय फल होता है। विशेषकर सूर्यका पूजन, गंगाका दर्शन और पंचगव्यप्राशनसे अश्वमेधके समान फल होता है। पूजामें गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य मुख्य हैं।

(८) चम्पाषष्ठी (हेमाद्रि, स्कन्दपुराण)—यदि भाद्रपद शुक्ल षष्ठीको भौमवार, विशाखा नक्षत्र और वैधृति योग हो तो 'चम्पाषष्ठी' होती है। इस निमित्त पंचमीको मनमें संकल्प करके षष्ठीके प्रभातमें सफेद तिल और मृत्तिका मिले हुए जलसे स्नान

करके कलशपर कुंकुमसे १२ आरे बनावे, उनमें रथ, अरुण और सूर्यका (सूर्यके १२ नामोंसे) पूजन करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भोजन करे।

(९) फलसप्तमी (भविष्यपुराण)—भाद्रपद शुक्ल सप्तमीसे आरम्भ करके प्रत्येक शुक्ल सप्तमीको सूर्यका फलोंसे पूजन करे और स्वयं फल-भक्षणकर व्रत करे।

(१०) मुक्ताभरण (हेमाद्रि, भविष्योत्तरपुराण)—भाद्रपद शुक्ल षष्ठीविद्धा सप्तमीको शुद्ध भूमिमें भवानी और शंकरकी मूर्ति लिखकर उनका षोडशोपचार पूजन करे और स्वयं फल खाकर व्रत करे।

(११) श्रीराधाष्टमी (बृहन्नारदीय पुराण पू० अध्याय ११७) भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको जगज्जननी पराम्बा भगवती श्रीराधाका जन्म हुआ था, अतएव इस दिन राधा-व्रत करना चाहिये। स्नानादिके उपरान्त मण्डपके भीतर मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें मिट्टी या ताँबेका कलश स्थापित करे। उसके ऊपर ताँबेका पात्र रखे। उस पात्रके ऊपर दो वस्त्रोंसे ढकी हुई श्रीराधाकी सुवर्णमयी सुन्दर प्रतिमा स्थापित करे। फिर वाद्यसंयुक्त षोडशोपचारद्वारा स्नेहपूर्ण हृदयसे उसकी पूजा करे। पूजा ठीक मध्याह्नमें ही करनी चाहिये। शक्ति हो तो पूरा उपवास करे अन्यथा एकभुक्त व्रत करे। फिर दूसरे दिन भक्तिपूर्वक सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराकर आचार्यको प्रतिमा दान करे। तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार इस व्रतको समाप्त करना चाहिये। विधिपूर्वक राधाष्टमीव्रतके करनेसे मनुष्य व्रजका रहस्य जान लेता तथा राधा-परिकरोंमें निवास करता है।

(१२) दूर्वाष्टमी (भविष्यपुराण)—भाद्रपद शुक्लाष्टमीको उमासहित शिवका षोडशोपचार पूजन करके सात प्रकारके फल, पुष्प, दूर्वा और नैवेद्य अर्पणकर व्रत करे तो धनार्थी, पुत्रार्थी या कामार्थी आदिको धन, पुत्र और कामादि प्राप्त होते हैं।

(१३) महालक्ष्मीव्रत (मदनरत्न, स्कन्दपुराण)—भाद्रपद शुक्ल अष्टमीसे आरम्भ करके आश्विन कृष्ण अष्टमीपर्यन्त प्रतिदिन १६ अंजलि कुल्ले करके प्रातःस्नानादि नित्यकर्मकर चन्दनादिनिर्मित लक्ष्मीकी प्रतिमाका स्थापन करे। उसके समीप सोलह सूत्रके डोरेमें १६ गाँठ लगाकर उनका '**लक्ष्म्यै नमः**' से प्रत्येक गाँठका पूजन करके लक्ष्मीकी प्रतिमाका पूजन करे। (लक्ष्मीपूजनकी विशेष विधि 'सारसंग्रह' में देखनी चाहिये) पूजनके पश्चात् '**धनं धान्यं धरां हर्म्यं कीर्तिमायुर्यशः श्रियम्। तुरगान् दन्तिनः पुत्रान् महालक्ष्मि प्रयच्छ मे॥**' से उक्त डोरेको दाहिने हाथमें बाँधे और हरी दूर्वाके १६ पल्लव और १६ अक्षत लेकर कथा सुने। इस प्रकार करके आश्विन कृष्ण अष्टमीको विसर्जन करे।

(१४) नन्दानवमी (मदनरत्न, भविष्योत्तर)—भाद्रपद शुक्ल 'नन्दानवमी' को दुर्गाका यथाविधि पूजन करके व्रत करनेसे विष्णुलोक प्राप्त होता है। व्रतीको चाहिये कि वह शुक्ल सप्तमीको एकभुक्त व्रत करे और अष्टमीको उपवास करके दुर्गाको दूर्वांकुरोंपर स्थिरकर फल-पुष्पादिसे पूजन करे और रात्रिमें '**ॐ नन्दायै नमः स्वाहा हूँ फट्**' इस मन्त्रसे जप और जागरण करे। फिर नवमीके प्रभातमें चण्डिका देवीका, गुरुका और कुमारीका पूजन करके भोजन करे। स्नान और प्राशनमें कुशोदक उपयोगमें ले। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल सप्तमी, अष्टमी और नवमीको चार मासपर्यन्त करे।

(१५) दशावतारव्रत (भविष्योत्तर)—यह व्रत भाद्रपद शुक्ल दशमीको किया जाता है। एतन्निमित्त किसी जलाशयपर जाकर स्नान करके देव और पितरोंका तर्पण करे और अपने हाथसे आटेकी दो परो (लगभग ३००ग्राम आटा) लेकर उसके अपूप (पूआ) बनावे और 'मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, त्रिविक्रम, राम, कृष्ण, परशुराम, बौद्ध और कल्कि' इन दस अवतारोंका यथाविधि पूजन

करे और अपूपादिका भोग लगाकर उनमेंसे दस देवताके, दस ब्राह्मणके और दस अपने रखकर भोजन करे। इस प्रकार दस वर्षतक करे। १–अपूप, २–घेवर, ३–कासार, ४–मोदक, ५–सुहाल, ६–सकरपारे, ७–डोवठे, ८–गुणा, ९–कोकर और १०–पुष्पकर्ण—इन दस पदार्थोंमेंसे प्रतिवर्ष एक-एक पदार्थ देवता आदिको दस-दसकी संख्यामें अर्पण करे तो विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

(१६) शुक्लैकादशी (ब्रह्माण्डपुराण)—भाद्रपद शुक्ल 'पद्मा' एकादशीको प्रातःस्नानादिके अनन्तर भगवान्‌का यथाविधि पूजन करके उपवास करे और रात्रिके समय हरिस्मरणसहित जागरण करके दूसरे दिन पूर्वाह्णमें पारणा करे।....यह स्मरण रहे कि प्रभातके समय यदि श्रवण नक्षत्रके मध्यभागकी (लगभग २०) घड़ीका अंश हो तो उसमें पारणा न करे। यह भी स्मरण रहे कि मध्याह्नसे पहले श्रवणका मध्य अंश न उतरे तो जल पीकर पारणा करे।.....प्राचीन कालमें सूर्यवंशके चक्रवर्ती मान्धाताने अपने राज्यकी तीन वर्षकी अनावृष्टिको मिटानेके लिये अंगिरा ऋषिके आदेशसे इसी 'पद्मा एकादशी' के व्रतका अनुष्ठान किया था, उससे मान्धाताके राज्यमें सर्वत्र सदैव अनुकूल वर्षा होती रही।.....यदि इस दिन श्रवण नक्षत्र हो तो यही 'विजया एकादशी' होती है। इसके व्रतसे सब प्रकारके अभीष्ट सिद्ध होते हैं। इस दिन भगवान् वामनजीका पूजन करना आवश्यक होता है। व्रतीको चाहिये कि भाद्रपद शुक्ल एकादशीको प्रातः-स्नानादि करके भगवान् वामनजीकी सुवर्णकी मूर्ति बनवावे और 'मत्स्य, कूर्म, वाराह' आदिके नामोच्चारणसहित गन्ध-पुष्पादि सभी उपचारोंसे उसका यथाविधि पूजन करे। दिनभर उपवास रखे और रात्रिमें जागरण करके दूसरे दिन फिर उसका पूजन करके उपस्थित देय द्रव्यादि ब्राह्मणोंको देकर उनको भोजन करावे और फिर स्वयं भोजन करके व्रत समाप्त करे।

(१७) कटिपरिवर्तनोत्सव (भविष्योत्तर)—भाद्रपद शुक्ल एकादशीको भगवान्‌का कटिपरिवर्तन करावे। उसके लिये देव-प्रबोधिनीके समान सम्पूर्ण विधान बनवाकर भगवान्‌को विमानमें विराजित करके गायन, वादन, नर्तन, कीर्तन और जय-घोषादिके साथ जलाशयपर ले जाय और वहाँ जलपानादि साधनोंसे उनको दोलायमान करके वापस लाकर संध्याके समय महापूजा और नीराजन करे। रात्रिमें भगवान्‌को दक्षिण-कटि शयन कराके जागरण करे और दूसरे दिन पूर्वाह्णमें '**वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव। पार्श्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव॥**' से प्रार्थना करके पारणा करे। राजपूतानेमें यह उत्सव 'जलझूलनी' के नामसे प्रसिद्ध है और सामान्य या विशेष यथायोग्य आयोजनोंसे सर्वत्र ही मनाया जाता है।

(१८) प्रदोषव्रत—यह सुपरिचित व्रत प्रत्येक त्रयोदशीको किया जाता है। सूर्यास्तके समय स्नान करके लाल कनेरके पुष्प, लाल चन्दन और धूप-दीपादिसे शिवपूजन करके प्रदोष-समयमें एक बार भोजन करे। यदि इस दिन शनिवार हो तो और भी अधिक अच्छा है।

(१९) अनन्तव्रत (स्कन्द-ब्रह्म-भविष्यादि)—यह व्रत भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशीको किया जाता है। इसमें उदयव्यापिनी[१] तिथि ली जाती है। पूर्णिमाका सहयोग[२] होनेसे इसका फल बढ़ जाता है। कथाके अनुरोधसे मध्याह्नतक चतुर्दशी[३] रहे तो और भी अच्छा है। व्रतीको चाहिये कि उस दिन प्रातःस्नानादि करके '**ममाखिलपापक्षयपूर्वकशुभफलवृद्धये श्रीमदनन्तप्रीतिकामनया अनन्तव्रतमहं करिष्ये**' ऐसा संकल्प करके वासस्थानको स्वच्छ

---

१. उदये त्रिमुहूर्तापि ग्राह्यानन्तव्रते तिथिः।

२. तथा भाद्रपदस्यान्ते चतुर्दश्यां द्विजोत्तम।
पौर्णमास्याः समायोगे व्रतं चानन्तकं चरेत्॥

३. मध्याह्ने भोज्यवेलायाम्। इति।

और सुशोभित करे। यदि बन सके तो एक स्थानको या चौकी आदिको मण्डपरूपमें परिणत करके उसमें भगवान्‌की साक्षात् अथवा दर्भसे बनायी हुई सात फणोंवाली शेषस्वरूप अनन्तकी मूर्ति स्थापित करे। उसके आगे १४ गाँठका अनन्त दोरक रखे और नवीन आम्रपल्लव एवं गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यादिसे पूजन करे। पूजनमें पंचामृत, पंजीरी, केले और मोदकादिका प्रसाद अर्पण करके '**नमस्ते देव देवेश नमस्ते धरणीधर। नमस्ते सर्वनागेन्द्र नमस्ते पुरुषोत्तम॥**' से नमस्कार करे और '**न्यूनातिरिक्तानि परिस्फुटानि यानीह कर्माणि मया कृतानि। सर्वाणि चैतानि मम क्षमस्व प्रयाहि तुष्टः पुनरागमाय॥**' इससे विसर्जन करके '**दाता च विष्णुर्भगवाननन्तः प्रतिग्रहीता च स एव विष्णुः। तस्मात्त्वया सर्वमिदं ततं च प्रसीद देवेश वरान् ददस्व॥**' से वायन दान करके कथा सुने और जिनमें नमक न पड़ा हो ऐसे पदार्थोंका भोजन करे। कथाका सार यह है कि....'प्राचीन कालमें सुमन्तु ब्राह्मणकी सुशीला कन्या कौण्डिन्यको ब्याही थी। उसने दीन पत्नियोंसे पूछकर अनन्त-व्रत धारण किया। एक बार कुयोगवश कौण्डिन्यने अनन्तके डोरेको तोड़कर आगमें पटक दिया। उससे उसकी सम्पत्ति नष्ट हो गयी। तब वह दुःखी होकर अनन्तको देखने वनमें चला गया। वहाँ आम्र, गौ, वृष, खर, पुष्करिणी और वृद्ध ब्राह्मण मिले। ब्राह्मण स्वयं अनन्त थे। वे उसे गुहामें ले गये। वहाँ जाकर बतलाया कि वह आम वेदपाठी ब्राह्मण था, विद्यार्थियोंको न पढ़ानेसे 'आम' हुआ। गौ पृथ्वी थी, बीजापहरणसे 'गौ' हुई। वृष धर्म, खर क्रोध और पुष्करिणी बहिनें थीं। दानादि परस्पर लेने-देनेसे 'पुष्करिणी' हुईं और वृद्ध ब्राह्मण मैं हूँ। अब तुम घर जाओ। रास्तेमें आम्रादि मिलें उनसे संदेशा कहते जाओ और दोनों स्त्री-पुरुष व्रत करो, सब आनन्द होगा।' इस प्रकार १४ वर्ष (या यथासामर्थ्य) व्रत करे। फिर नियत

अवधि पूरी होनेपर भाद्रपद शुक्ल १४ को उद्यापन करे। उसके लिये 'सर्वतोभद्रस्थ कलशपर कुशनिर्मित या सुवर्णमय अनन्तकी मूर्ति और सोना, चाँदी, ताँबा, रेशम या सूत्रका (१४ ग्रन्थियुक्त) अनन्त दोरक स्थापन करके उनका वेदमन्त्रोंसे पूजन और तिल, घी, खाँड, मेवा एवं खीर आदिसे हवन करके गोदान, शय्यादान, अन्नदान (१४ घट, १४ सौभाग्यद्रव्य और १४ अनन्त दान) करके १४ युग्म ब्राह्मणोंको भोजन करावे और फिर स्वयं भोजन करके व्रतको समाप्त करे।

(२०) पालीव्रत (भविष्यपुराण)—भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशीको चारों वर्णकी कोई भी कुलवधू किसी जलपूर्ण बड़े तालाब आदिपर जाकर एक चौकीपर अक्षतादिका मण्डल बनाकर उसपर वरुणकी मूर्ति या वारुण यन्त्र लिखे। फिर उसका गन्ध, पुष्पादिसे पूजन करके '**वरुणाय नमस्तुभ्यं नमस्ते यादसां पते। अपां पते नमस्तुभ्यं रसानां पतये नमः॥**' से अर्घ्य दे और '**मा क्लेदं मा च दौर्गन्ध्यं वैरस्यं मा मुखेऽस्तु मे। वरुणो वारुणीभर्ता वरदोऽस्तु सदा मम॥**' से प्रार्थना करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और अग्निपक्व अन्नका स्वयं भोजन करे।

(२१) कदलीव्रत (भविष्योत्तरपुराण)—भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशीको कदली (केला)-के पेड़के समीप बैठकर अनेक प्रकारके फल, पुष्प और धूप-दीपादिसे उसका पूजन करे। सप्तधान्य, रक्तचन्दन, घृत-दीपक, दही, दूब, अक्षत, वस्त्र, घृतपाचित नैवेद्य, जायफल, पूगफल और प्रदक्षिणासे अर्चन सम्पन्नकर '**चिन्तयेत् कदलीं नित्यं कदलैः कामदीपितैः। शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥**' से प्रार्थना करे। इस प्रकार तीन या चार मास करे तो उस कुलमें स्त्री कुलटा नहीं हों। सब पुत्र-पौत्रादिसंयुक्त सौभाग्यशालिनी सदाचारिणी हों!

आश्विनके व्रत

कृष्णपक्ष (महालय)

(१) पितृव्रत (कर्मकाण्डमार्गप्रदीप)—शास्त्रोंमें मनुष्योंके लिये देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण—ये तीन ऋण बतलाये गये हैं। इनमें श्राद्धके द्वारा पितृ-ऋणका उतारना आवश्यक है; क्योंकि जिन माता-पिताने हमारी आयु, आरोग्य और सुख-सौभाग्यादिकी अभिवृद्धिके लिये अनेक यत्न या प्रयास किये उनके ऋणसे मुक्त न होनेपर हमारा जन्मग्रहण करना निरर्थक होता है। उनके ऋण उतारनेमें कोई ज्यादा खर्च हो, सो भी नहीं है; केवल वर्षभरमें उनकी मृत्यु-तिथिको सर्वसुलभ जल, तिल, यव, कुश और पुष्प आदिसे उनका श्राद्ध सम्पन्न करने और गोग्रास देकर एक या तीन, पाँच आदि ब्राह्मणोंको भोजन करा देनेमात्रसे ऋण उतर जाता है; अतः इस सरलतासे साध्य होनेवाले कार्यकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इसके लिये जिस मासकी जिस तिथिको माता-पिता आदिकी मृत्यु हुई हो उस तिथिको श्राद्धादि करनेके सिवा, आश्विन कृष्ण (महालय) पक्षमें भी उसी तिथिको श्राद्ध-तर्पण-गोग्रास और ब्राह्मण-भोजनादि करना-कराना आवश्यक है; इससे पितृगण प्रसन्न होते हैं और हमारा सौभाग्य बढ़ता है। पुत्रको चाहिये कि वह माता-पिताकी मरण-तिथिको मध्याह्नकालमें पुनः स्नान करके श्राद्धादि करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भोजन करे। जिस स्त्रीके कोई पुत्र न हो, वह स्वयं भी अपने पतिका श्राद्ध उसकी मृत्यु-तिथिको कर सकती है। भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमासे प्रारम्भ करके आश्विन कृष्ण अमावस्यातक सोलह दिन पितरोंका तर्पण और विशेष तिथिको श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे 'पितृव्रत' यथोचितरूपमें पूर्ण होता है।

(२) संकष्टचतुर्थी (पूर्वागत)—आश्विन कृष्ण चतुर्थीको व्रत हो और उसी दिन माता-पिता आदिका श्राद्ध हो तो दिनमें श्राद्ध करके ब्राह्मणोंको भोजन करा दे और अपने हिस्सेके भोजनको सूँघकर गौको खिला दे। रात्रिमें चन्द्रोदयके बाद स्वयं भोजन करे। इस व्रतकी कथाका यह सार है कि एक बार बाणासुरकी पुत्री ऊषाको स्वप्नमें कृष्णपौत्र अनिरुद्धका दर्शन हुआ। ऊषाको उनके प्रत्यक्ष दर्शनकी अभिलाषा हुई और उसने चित्रलेखाके द्वारा अनिरुद्धको अपने घर मँगा लिया। इससे अनिरुद्धकी माताको बड़ा कष्ट हुआ। इस संकटको टालनेके लिये माताने व्रत किया, तब इस व्रतके प्रभावसे ऊषाके यहाँ छिपे हुए अनिरुद्धका पता लग गया और ऊषा तथा अनिरुद्ध द्वारका आ गये।

(३) पुत्रीयव्रत (हेमाद्रि)—आश्विन कृष्ण अष्टमीको प्रातःस्नानादि करके वासुदेवका पूजन करे। घी और खीरकी आहुति दे और जिस स्त्रीको पुत्रकी कामना हो, वह पुरुष-नामके—केले, अमरूद, सीताफल और खरबूजा आदि और जिसको कन्याकी कामना हो, वह स्त्री-नामके—नारंगी, अनार, कमरख और जामुन आदिका एक बार भोजन करे। इस प्रकार वर्षपर्यन्त करनेसे पुत्र होता है। इसी तिथिको 'जीवत्पुत्रिकाव्रत' भी किया जाता है। इस व्रतका आचरण पुत्रकी जीवन-रक्षाके उद्देश्यसे होता है।

(४) कृष्णैकादशी (ब्रह्मवैवर्तपुराण)—आश्विन कृष्ण एकादशीका नाम 'इन्दिरा' है, इसके व्रतसे सब प्रकारके पाप दूर होते हैं। इसके निमित्त प्रातःस्नानादि करके उपवास करे और हरिस्मरणमें लगे रहकर रातभर जगे। यदि इस दिन पिता आदिका श्राद्ध हो और उपवासके कारण श्राद्धीय अन्नके ग्रहण करनेमें संकोच हो तो उसे सूँघकर गौको खिला दे और पारणके पश्चात् भोजन करे।

(५) संन्यासीय श्राद्ध (मदनपारिजातमें वायुपुराणका वचन)—पुत्रको चाहिये कि उसका पिता यदि यति (संन्यासी) या वनवासी हो तो आश्विन कृष्ण द्वादशीको उसके निमित्त श्राद्ध करे।*

(६) पितृश्राद्ध (हेमाद्रि)—आश्विन कृष्ण त्रयोदशीको पितृश्राद्ध करके पितरोंको तृप्त करे तो सब प्रकारके सुख प्राप्त हों। यदि उसके पुत्र हो तो अपिण्ड श्राद्ध करे।

(७) प्रदोषव्रत (पूर्वागत)—प्रत्येक त्रयोदशीमें होनेवाले इस व्रतको आश्विन कृष्ण त्रयोदशीको प्रदोषकालमें करे।

(८) दुर्मरणश्राद्ध (मरीचि)—जो मनुष्य तिर्यग्योनि (कुत्ता आदि)-के काटने और विष-शस्त्रादिके घातसे मरे हों या ब्रह्मघाती हुए हों, उनका आश्विन कृष्ण १४ को श्राद्ध करनेसे उनकी तृप्ति होती है।

शुक्लपक्ष

(१) अशोकव्रत (भविष्योत्तर)—आश्विन शुक्ल प्रतिपदाको नवीन पल्लवोंवाले अशोकवृक्षके समीप सप्तधान्य, गेहूँके गुणे, मोदक, अनार आदि ऋतुफल और पुष्पादि चढ़ाकर यथाविधि पूजन करे और '**अशोक शोकशमनो भव सर्वत्र नः कुले**' से अर्घ्य देकर उसे उत्तम वस्त्रोंसे ढककर पताकादि लगाये तो व्रतवती स्त्रीके सब शोक नष्ट हो जाते हैं। जिस समय जनकनन्दिनी सीताने लंकाकी अशोकवाटिकामें यह व्रत किया था, उस समय उनके सब शोक दूर हो गये थे।

(२) नवरात्रव्रत (देवीभागवतादि)—ये आश्विन शुक्ल प्रतिपदासे नवमीपर्यन्त होते हैं। इनका आरम्भ अमायुक्त प्रतिपदामें वर्जित है और द्वितीयायुक्त प्रतिपदामें शुभ है। नव रात्रियोंतक व्रत

---

* यतीनां च वनस्थानां वैष्णवानां विशेषतः।
द्वादश्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेषतः॥ (पृथ्वीचन्द्रोदयसंग्रहे)

करनेसे 'नवरात्र' व्रत पूर्ण होता है; तिथिकी ह्रास-वृद्धिसे इनमें न्यूनाधिकता नहीं होती। प्रारम्भके समय यदि चित्रा नक्षत्र और वैधृति हों तो उनके उतरनेके बाद व्रतका प्रारम्भ होना चाहिये। परंतु देवीका आवाहन, स्थापन और विसर्जन—ये तीनों प्रातःकालमें होते हैं; अतः यदि चित्रादि अधिक समयतक हों तो उसी दिन अभिजित् मुहूर्तमें आरम्भ करना चाहिये। वैसे तो वासन्ती नवरात्रोंमें विष्णुकी और शारदीय नवरात्रोंमें शक्तिकी उपासनाका प्राधान्य है ही; किंतु ये दोनों ही बहुत व्यापक हैं, अतः दोनोंमें दोनोंकी उपासना होती है। इनमें किसी वर्ण, विधान या देवादिकी भिन्नता नहीं है; सभी वर्ण अपने अभीष्टकी उपासना करते हैं। यदि नवरात्रपर्यन्त व्रत रखनेकी सामर्थ्य न हो तो (१) प्रतिपदासे सप्तमीपर्यन्त 'सप्तरात्र;' (२) पंचमीको एकभुक्त, षष्ठीको नक्तव्रत, सप्तमीको अयाचित, अष्टमीको उपवास और नवमीके पारणसे 'पंचरात्र;' (३) सप्तमी, अष्टमी और नवमीके एकभुक्त व्रतसे 'त्रिरात्र;' (४) आरम्भ और समाप्तिके दो व्रतोंसे 'युग्मरात्र' और (५) आरम्भ या समाप्तिके एक व्रतसे 'एकरात्र' के रूपमें जो भी किये जायँ, उन्हींसे अभीष्टकी सिद्धि होती है। आरम्भमें शुभस्थानकी मृत्तिकासे वेदी बनाकर उसमें जौ, गेहूँ बोये। उनपर यथासामर्थ्य सुवर्णादिका कलश स्थापित करे और कलशपर सोना, चाँदी, ताँबा, मृत्तिका, पाषाण या चित्रमय मूर्तिकी प्रतिष्ठा करे। मूर्ति यदि मिट्टी, कागज या सिन्दूर आदिकी हो और स्नानसे उसके नष्ट हो जानेका डर हो तो या तो उसपर दर्पण लगा देना चाहिये या खड्गादिको उसमें परिणत करना चाहिये। मूर्ति न होनेकी अवस्थामें कलशके पीछेको स्वस्तिक और उसके युग्म-पार्श्वमें त्रिशूल बनाकर दुर्गाका तथा चित्र, पुस्तक या शालग्रामादिको विराजमानकर विष्णुका पूजन

करे। पूजा राजसी, तामसी और सात्त्विकी—तीन प्रकारकी होती है; इनमें सात्त्विकीका सर्वाधिक प्रचार है। नवरात्र-व्रत आरम्भ करते समय सर्वप्रथम गणपति, मातृका, लोकपाल, नवग्रह और वरुणका पूजन, स्वस्तिवाचन और मधुपर्क ग्रहण करके प्रधान मूर्तिकी—जो राम-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण या शक्ति, भगवती, देवी आदि किसी भी अभीष्ट देवकी हो—वेदविधि या पद्धतिक्रमसे अथवा अपने साम्प्रदायिक विधानसे पूजा करे। देवीके नवरात्रमें महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वतीका पूजन तथा सप्तशतीका पाठ मुख्य है। यदि पाठ करना हो तो देवतुल्य पुस्तकका पूजन करके १, ३, ५ आदि विषम संख्याके पाठ करने चाहिये और पाठमें विशेष ब्राह्मण हों तो उनकी संख्या भी १, ३, ५ आदि विषम ही होनी चाहिये। फलसिद्धिके लिये १, उपद्रव-शान्तिके लिये ३, सामान्यतः सब प्रकारकी शान्तिके लिये ५, भयसे छूटनेके लिये ७, यज्ञफलकी प्राप्तिके लिये ९, राज्यके लिये ११, कार्यसिद्धिके लिये १२, किसीको वशमें करनेके लिये १४, सुख-सम्पत्तिके लिये १५, धन और पुत्रके लिये १६, शत्रु, रोग और राजाके भयसे छूटनेके लिये १७, प्रियकी प्राप्तिके लिये १८, बुरे ग्रहोंके दोषकी शान्तिके लिये २०, बन्धनसे मुक्त होनेके लिये २५ और मृत्युके भय, व्यापक उपद्रव तथा देशको नाश आदिसे बचानेके लिये और असाध्य वस्तुकी सिद्धि एवं लोकोत्तर लाभके लिये आवश्यकतानुसार सौ, हजार, दस हजार और लाख पाठतक करने चाहिये। देवीव्रतोंमें 'कुमारीपूजन' परमावश्यक माना गया है। यदि सामर्थ्य हो तो नवरात्रपर्यन्त और न हो तो समाप्तिके दिन कुमारीके चरण धोकर उसकी गन्ध-पुष्पादिसे पूजा करके मिष्टान्न भोजन कराना चाहिये। एक कन्याके पूजनसे ऐश्वर्यकी; दोसे भोग और

मोक्षकी; तीनसे धर्म, अर्थ, कामकी; चारसे राज्यपदकी; पाँचसे विद्याकी; छःसे षट्कर्मसिद्धिकी; सातसे राज्यकी; आठसे सम्पदाकी और नौसे पृथ्वीके प्रभुत्वकी प्राप्ति होती है। दो वर्षकी लड़की कुमारी, तीनकी त्रिमूर्तिनी, चारकी कल्याणी, पाँचकी रोहिणी, छःकी काली, सातकी चण्डिका, आठकी शाम्भवी, नौकी दुर्गा और दसकी सुभद्रास्वरूप होती है। इससे अधिक उम्रकी कन्याको कुमारीपूजामें नहीं सम्मिलित करना चाहिये।* दुर्गापूजामें प्रतिपदाको केशके संस्कार करनेवाले द्रव्य—आँवला और सुगन्धित तैल आदि; द्वितीयाको बाल बाँधनेके लिये रेशमी डोरी; तृतीयाको सिन्दूर और दर्पण; चतुर्थीको मधुपर्क, तिलक और नेत्रांजन; पंचमीको अंगराग और अलंकार तथा षष्ठीको फूल आदि समर्पण करे। सप्तमीको गृहमध्यपूजा, अष्टमीको उपवासपूर्वक पूजन, नवमीको महापूजा और कुमारीपूजा तथा दशमीको नीराजन और विसर्जन करे। इसी प्रकार राम-कृष्णादिके नवरात्रमें स्तोत्र-पाठ या लीलाप्रदर्शन आदि करे। यह उल्लेख दिग्दर्शनमात्र है, अतः विशेष बातें ग्रन्थान्तरोंसे जाननी चाहिये। इस प्रकार नौ दिनोंतक नवरात्र करके दशमीको दशांश हवन, ब्राह्मण-भोजन और व्रतका विसर्जन करे।

(३) पुण्यप्रदा (स्कन्दपुराण)—आश्विन शुक्ल द्वितीयाको किसी भी प्रकारका दान देकर व्रत करनेसे अत्यन्त फल होता है।

(४) सिन्दूरतृतीया (दुर्गाभक्तितरंगिणी)—आश्विन शुक्ल तृतीयाको चम्पाके तेलमें मिले हुए सिन्दूरसे देवीके केशपाशके मध्यभागको चर्चितकर दर्पण दिखाये तो देवीकी पूजा सम्पन्न होती है।

(५) रथोत्सवचतुर्थी (दुर्गाभक्तितरंगिणी)—आश्विन शुक्ल

* अत ऊर्ध्वं तु याः कन्याः सर्वकार्येषु वर्जिताः। (स्कन्दपुराण)

चतुर्थीको भगवतीका पूजन और जागरण करके उन्हें सजे हुए रथमें विराजमान करे और नगरमें भ्रमण कराके पुनः स्थापित करे।

(६) शान्तिपंचमी (हेमाद्रि)—आश्विन शुक्ल पंचमीको प्रातः-स्नानादिके पश्चात् वेदी या चौकीपर सफेद वस्त्र बिछाकर हरी और कोमल कुशके १२ नाग और एक इन्द्राणी बनाकर उसपर स्थापित करे। इन्द्राणीको जलसे और नागोंको घी, दूध और जल—तीनोंसे स्नान करावे। गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और अनेक प्रकारके नागोंका ध्यान करके '**नागाः प्रीता भवन्तीह शान्तिमाप्नोति वै विभो। स शान्तिलोकमासाद्य मोदते शाश्वतीः समाः॥**' से प्रार्थना करके '**ॐ कुरु कुल्ल्यं हुं फट् स्वाहा**' के १२ हजार जप करे। इस प्रकार उक्त कुश-निर्मित बारह नागोंमें आश्विनमें अनन्त, कार्तिकमें वासुकि, मार्गशीर्षमें शंख, पौषमें पद्म, माघमें कम्बल, फाल्गुनमें कर्कोटक, चैत्रमें अश्वतर, वैशाखमें शंखपाल, ज्येष्ठमें कालिय, आषाढ़में तक्षक, श्रावणमें पिंगल और भाद्रपदमें महानागका पूजन करे। इससे सर्पादिका भय दूर हो जाता है, सब प्रकारकी शान्ति बढ़ती है और उक्त मन्त्रसे सर्पविष रुक जाता है।

(७) उपांगललिताव्रत (कृत्यरत्नावली)—यह आश्विन शुक्ल पंचमीको किया जाता है। इसमें रात्रिव्यापिनी तिथि ली जाती है। व्रतीको चाहिये कि उस दिन अपामार्ग (ऊँगा)-के २१ दातुन लेकर '**आयुर्बलमिदम्०**' से एक-एक दातुन करके स्नान करे और सफेद वस्त्र पहनकर सुवर्णमयी उपांगललिताका यथाप्राप्त उपचारोंसे पूजन करे। रात्रिमें चन्द्रोदय होनेपर उन्हें अर्घ्य दे करके नक्तव्रतकर दूसरे दिन देवीका विसर्जन करे। इस व्रतकी महाराष्ट्र देशमें विशेष प्रसिद्धि है।

(८) बिल्वनिमन्त्रण (हेमाद्रि)—आश्विन शुक्ल षष्ठीको

प्रातः-कृत्यादि करके देवीका पूजन करे और यदि ज्येष्ठा हो तो उनकी पूजाके लिये बिल्ववृक्षका निमन्त्रिण करे।

(९) बिल्वसप्तमी (हेमाद्रि)—यदि आश्विन शुक्ल सप्तमीको मूल नक्षत्र हो (या न हो तो भी) पूर्वनिमन्त्रित बिल्ववृक्षकी दो फल लगी हुई शाखा लेकर देवीके समीप रखे और उनके सहित देवीका पूजन करे। इसमें सूर्योदय-संयुक्त परा तिथि ली जाती है।

(१०) सरस्वतीशयनसप्तमी (वीरमित्रोदय)—आश्विन शुक्ल सप्तमीसे नवमीपर्यन्त सरस्वतीका शयनव्रत किया जाता है। एतन्निमित्त सप्तमीको पुस्तकादिका पूजन करके सरस्वतीका शयन कराये, व्रतमें रहे और पठन-पाठन एवं लिखना-लिखाना बंद रखे और सप्तमी (के मूल)-से दशमी (के श्रवण) पर्यन्त पुस्तकादिका पूजन करता रहे। पूजनमें सरस्वतीकी स्वर्णमयी, शिलामयी या चित्रमयी जैसी भी मूर्ति हो वह चार भुजावाली, सर्वाभरणविभूषित, दो दायें हाथोंमें पुस्तक और रुद्राक्ष और दो बायें हाथोंमें वीणा और कमण्डलु धारण किये हुए समान रूपमें विराजी हुई हो—इस प्रकारका ध्यान करे।

(११) महाष्टमी (दुर्गोत्सवभक्तितरंगिणी, देवीपुराणादि)—आश्विन शुक्ल अष्टमीको देवीकी उपासनाके अनेक अनुष्ठान होते हैं, इस कारण यह महाष्टमी मानी जाती है। इसमें सप्तमीका वेध वर्जित और नवमीका ग्राह्य होता है। इस दिन देवी शक्ति धारण करती हैं और नवमीको पूजा समाप्त होती है; अतएव सप्तमीवेधसंयुक्त महाष्टमीको पूजनादि करनेसे पुत्र, स्त्री और धनकी हानि होती है। यदि अष्टमी मूलयुक्त और नवमी पूर्वाषाढ़ायुक्त हो अथवा दोनोंसे युक्त हो तो वह महानवमी होती है। यदि सूर्योदयके समय अष्टमी और सूर्यास्तके समय नवमी हो और भौमवार हो तो यह योग अधिक श्रेष्ठ होता

है। महाष्टमीके प्रातःकालमें पवित्र होकर भगवतीकी वस्त्र, शस्त्र, छत्र, चामर और राजचिह्नादिसहित पूजा करे। यदि उस समय भद्रा हो तो सायंकालके समय करे और अर्द्धरात्रिमें बलिप्रदान करे। कई स्थानोंमें इस दिन 'अखिलकारिणी' (खिलगानी) देवीका पूजन किया जाता है। वह भद्रावर्जित सायंकाल या प्रातःकाल किसीमें भी किया जा सकता है। उसमें त्रिशूलमात्रकी पूजा होती है।

(१२) महानवमी (हेमाद्रि, देवीभागवत)—आश्विन शुक्ल नवमीको प्रातःस्नानादि नित्यकर्म शीघ्र समाप्त करके '**उपोष्य नवमीं त्वद्य यामेष्वष्टसु चण्डिके। तेन प्रीता भव त्वं भोः संसारात् त्राहि मां सदा॥**' इस मन्त्रसे व्रत करनेकी भावना भगवतीके सम्मुख निवेदन करे। इसके बाद देवीपूजाके स्थानको ध्वजा, पताका, पुष्पमाला और बंदनवार आदिसे सुशोभित करके भगवतीका पंचदश, षोडश, षट्त्रिंश या राजोपचारादिमेंसे जो उपलब्ध हो उसी प्रकारसे पूजन करे। अनेक प्रकारके अन्न-पानादिका भोग लगाये और घृतपूर्ण बत्ती या कपूर जलाकर नीराजन करे। इस दिन धराधीशोंको चाहिये कि वे नवीन अश्वोंका पूजन करें। पूजाविधान आगे (दशमीके शस्त्रपूजनमें) दिया गया है। इस दिन पूर्व-विद्धा नवमी ली जाती है। यदि इसमें मूल, पूर्वा और उत्तराका (त्रैलोक्यदुर्लभ) सहयोग हो तो यह नवमी बड़े महत्त्वकी मानी जाती है। इसमें अनेक प्रकारके उपहारद्रव्योंसे पूजा की जाय तो महाफल होता है।

(१३) भद्रकालीव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—आश्विन शुक्ल नवमीको वासस्थानके पूर्व भागमें भद्रकालीकी स्थापना करके गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और उपवास रखे।

(१४) रथनवमी (भविष्यपुराण)—इसी दिन (आ० शु० ९

को) नवीन रथमें आसन बिछाकर महिषारूढ महिषघ्नीकी स्वर्णनिर्मित मूर्ति स्थापित करके पूजन करे और रथको राजमार्गोंमें भ्रमण कराकर यथास्थान ले आये और भगवतीका पुनः पूजन करके रथोत्सव-व्रत समाप्त करे।

(१५) शौर्यव्रत (ब्रह्मपुराण)—एतन्निमित्त आश्विन शुक्ल सप्तमीको संकल्प करे। अष्टमीको निरुदक (अन्न-पानादिवर्जित) उपवास रखे और नवमीको भगवतीकी भक्तिसहित उपासना करके '**दुर्गां देवीं महामायां महाभागां महाप्रभाम्।**' से प्रार्थना करके यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये और स्वयं पिसे हुए सत्तूका पान करके व्रत करे।

(१६) नवरात्रसमाप्ति (देवीभागवत)—आश्विन शुक्ल दशमीके प्रातःकालमें भगवतीका यथाविधि पूजन करके नीराजन करे। '**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः०**' से पुष्पांजलि अर्पण करे। '**मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम्। पूर्णं भवतु तत् सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वरि॥**' से क्षमा-प्रार्थना करके '**ॐ दुर्गायै नमः**' कहकर एक पुष्प ईशानमें छोड़ दे और '**गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके। व्रतस्त्रोतोजलं वृद्ध्यै तिष्ठ गेहे च भूतये॥**' से कलशस्थ देवमूर्ति आदिको उठाकर यथास्थान स्थापित करे। यदि मूर्ति मृत्तिका आदिकी हो और यव-गोधूमके जुआरा हों तो उनको गायन-वादनके साथ समीपके जलाशयपर ले जाकर '**दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते। षण्मासेषु व्यतीतेषु पुनरागमनाय वै॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्योपपादिताम्। रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम्॥**' इन मन्त्रोंसे मूर्तिका विसर्जन करके जलमें प्रवेश कराये और जुआरा आदि जलमें डाल दे। इस विषयमें 'मत्स्यसूक्त' का यह आदेश है कि '**देवे दत्त्वा तु दानानि देवे दद्याच्च दक्षिणाम्। तत् सर्वं ब्राह्मणे दद्यादन्यथा विफलं भवेत्॥**' नवरात्रादिके

अवसरमें स्थापित देवताके जो कुछ फल-पुष्प-नैवेद्य अथवा उपहारादि अर्पण किया हो वह ब्राह्मणको देना चाहिये, अन्यथा विफल होता है।

(१७) विजयादशमी (श्रुति-स्मृति-पुराणादि)—आश्विन शुक्ल दशमीको श्रवणका सहयोग होनेसे विजयादशमी होती है। इस दिन राज्य-वृद्धिकी भावना और विजयप्राप्तिकी कामनावाले राजा 'विजयकाल' में प्रस्थान करते हैं। 'ज्योतिर्निबन्ध' में लिखा है कि '**आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां तारकोदये। स कालो विजयो ज्ञेय: सर्वकार्यार्थसिद्धये॥**' आश्विन शुक्ल दशमीके सायंकालमें तारा उदय होनेके समय 'विजयकाल' रहता है। वह सब कामोंको सिद्ध करता है। आश्विन शुक्ल दशमी पूर्वविद्धा निषिद्ध, परविद्धा शुद्ध और श्रवणयुक्त सूर्योदयव्यापिनी सर्वश्रेष्ठ होती है। राजाओंको चाहिये कि उस दिन प्रात:स्नानादि नित्यकर्मसे निश्चिन्त होकर '**मम क्षेमारोग्यादिसिद्ध्यर्थं यात्रायां विजयसिद्ध्यर्थं गणपति-मातृकामार्गदेवतापराजिताशमीपूजनानि करिष्ये।**' यह संकल्प करके उक्त सभी देवताओं, अस्त्र-शस्त्राश्वादिकों और पूजनीय गुरुजन आदिका यथाविधि* पूजन करके सुसज्जित अश्वपर आरूढ़ होकर अपराह्णमें

---

* शस्त्रादीनां पूजनविधि:—ततो राजा 'गणेशाय नम:' इति नाममन्त्रेण आवाहनादि-षोडशोपचारै: सम्पूज्य एवं मातृकादीनां पितृदेवादीनां च सम्यक् पूजनं विधाय तत: 'छत्राय नम:' इत्यादिमन्त्रेण गन्धादिभि: सम्पूज्य—

यथाम्बुदश्छादयति शिवायेमां वसुन्धराम्।
तथा छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये॥

—इति पठेत्। एवं चामरादीनामपि पूजनं कुर्यात्। तेषां प्रार्थनामन्त्रान् एवं पठेत्।

चामरमन्त्र:

शशांककरसंकाश क्षीरडिण्डीरपाण्डुर।
प्रोत्सारयाशु दुरितं चामरामरदुर्लभ॥

खड्गमन्त्र:

असिर्विशसन: खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासद:।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मधारस्तथैव च॥

गज, तुरग, रथराज्यैश्वर्यादिसहित यात्रा करके स्वपुरसे बाहर ईशान कोणमें शमी (जाँटी या खेजड़ा) और अश्मन्तक (कोविदार या कचनार)-के समीप अश्वसे उतरकर शमीके मूलकी भूमिका जलसे प्रोक्षण करे और पूर्व या उत्तर मुख बैठकर पहले शमीका और फिर अश्मन्तकका पूजन करे और '**शमी शमय मे**

इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा।
नक्षत्रं कृत्तिका ते तु गुरुर्देवो महेश्वरः॥
हिरण्यं च शरीरं ते धाता देवो जनार्दनः।
पिता पितामहो देवस्त्वं मां पालय सर्वदा॥
नीलजीमूतसंकाशस्तीक्ष्णदंष्ट्रः कृशोदरः।
भावशुद्धोऽमर्षणश्च अतितेजास्तथैव च॥
इयं येन धृता क्षोणी हतश्च महिषासुरः।
तीक्ष्णधाराय शुद्धाय तस्मै खड्गाय ते नमः॥

कटारमन्त्रः

रक्षांगानि गजान् रक्ष रक्ष वाजिधनानि च।
मम देहं सदा रक्ष कट्टारक नमोऽस्तु ते॥

छुरिकामन्त्रः

सर्वायुधानां प्रथमं निर्मितासि पिनाकिना।
शूलायुधाद् विनिष्कृष्य कृत्वा मुष्टिग्रहं शुभम्॥
चण्डिकायाः प्रदत्तासि सर्वदुष्टनिबर्हिणी।
तया विस्तारिता चासि देवानां प्रतिपादिता॥
सर्वसत्त्वांगभूतासि सर्वाशुभनिबर्हिणी।
छुरिके रक्ष मां नित्यं शान्तिं यच्छ नमोऽस्तु ते॥

कवचमन्त्रः

शर्मप्रदस्त्वं समरे वर्म सर्वायशो नुद।
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तापनेय नमोऽस्तु ते॥

चर्ममन्त्रः

चण्डिकायाः प्रदत्तं त्वं सर्वदुष्टनिबर्हणम्।
त्वया निस्तारिता देवाः सुप्रतिष्ठं पितामहैः॥
अतस्त्वयि बलं सर्वं विन्यस्तं देवसत्तमैः।
तस्मादायोधने रक्ष शत्रून् नाशय सर्वदा॥

पापं शमी लोहितकण्टका। धारिण्यर्जुन बाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥ करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं सुखं मम । तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते ॥' इन मन्त्रोंसे शमीकी और '**अश्मन्तक महावृक्ष महादोषनिवारक । इष्टानां दर्शनं देहि शत्रूणां च विनाशनम् ॥**'

चापमन्त्रः

सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारिसूदन।
चाप मां समरे रक्ष साकं शरवरैरिह॥
धृतः कृष्णेन रक्षार्थं संहाराय हरेण च।
त्रयीमूर्तिगतं देवं धनुरस्त्रं नमाम्यहम्॥

शक्तिमन्त्रः

शक्तिस्त्वं सर्वदेवानां गुहस्य च विशेषतः।
शक्तिरूपेण देवि त्वं रक्षां कुरु नमोऽस्तु ते॥

कुन्तमन्त्रः

प्रास पातय शत्रूंस्त्वमनया नाकमायया।
गृहाण जीवितं तेषां मम सैन्यं च रक्षय॥

अग्नियन्त्रमन्त्रः

अग्निशस्त्र नमस्तेऽस्तु दूरतः शत्रुनाशन।
शत्रून् दह हि शीघ्रं त्वं शिवं मे कुरु सर्वदा॥

पाशमन्त्रः

पाश त्वं नागरूपोऽसि विषपूर्णो विषोद्भवः।
शत्रवो हि त्वया बद्धा नागपाश नमोऽस्तु ते॥

परशुमन्त्रः

परशो त्वं महातीक्ष्ण सर्वदेवारिसूदन।
देवीहस्तस्थितो नित्यं शत्रुक्षय नमोऽस्तु ते॥

ध्वजमन्त्रः

शक्रकेतो महावीर्य सुपर्णस्त्वय्युपाश्रितः।
पत्रिराज नमस्तेऽस्तु तथा नारायणध्वज॥
काश्यपेयारुणभ्रातर्नागारे विष्णुवाहन।
अप्रमेय दुराधर्ष रणे देवारिसूदन॥
गरुत्मन् मारुतगतिस्त्वयि संनिहितो यतः।
साश्वचर्मायुधान् योधान् रक्ष त्वं च रिपून् दह॥

इससे अश्मन्तककी प्रार्थना करके शमीके अथवा अश्मन्तकके या दोनोंके पत्ते लेकर उनमें पूजास्थानकी थोड़ी-सी मृत्तिका और कुछ तण्डुल तथा एक सुपारी रखकर कपड़ेमें बाँध ले और कार्यसिद्धिकी कामनासे अपने पास रखे। फिर आचार्यादिका आशीर्वाद प्राप्तकर वहाँ ही पूर्व दिशामें विष्णुकी परिक्रमा करके अपने शत्रुके स्वरूपको

पताकामन्त्रः

हुतभुग् वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः।
नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतगणग्रहाः ॥
प्रमथास्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह।
शक्रसेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाश्रितस्त्वयि॥
प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राजा विजयमृच्छतु।
यानि प्रयुक्तान्यरिभिरायुधानि समन्ततः॥
पतन्तूपरि शत्रूणां हतानि तव तेजसा।
हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे दैवासुरे तथा।
कालनेमिवधे यद्वद् यद्वत् त्रिपुरघातने॥
शोभितासि तथैवाद्य शोभयास्मांश्च संस्मर।
नीलां श्वेतामिमां दृष्ट्वा नश्यन्त्वाशु नृपारयः॥
व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः।
सद्यः स्वस्था भवन्त्वस्मात्त्वद्वातेनापमार्जिताः॥
पूतना रेवती नाम्ना कालरात्रिश्च या स्मृता।
दहत्वाशु रिपून् सर्वान् पताके त्वं मयार्चिता॥

कनकदण्डमन्त्रः

प्रोत्सारणाय दुष्टानां साधुसंरक्षणाय च।
ब्रह्मणा निर्मितश्चासि व्यवहारप्रसिद्धये॥
यशो देहि सुखं देहि जयदो भव भूपतेः।
ताडयस्व रिपून् सर्वान् हेमदण्ड नमोऽस्तु ते॥

दुन्दुभिमन्त्रः

दुन्दुभे त्वं सपत्नानां घोरो हृदयकर्षणः।
तथास्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावहः॥
भव भूमिपसैन्यानां तथा विजयवर्धनः।
यथा जीमूतघोषेण प्रहृष्यन्ति च बर्हिणः॥

हृदयमें और उसकी प्रतिकृति (मूर्ति या चित्रादि)-को दृष्टिमें रखकर (तोप, बंदूक या) सुवर्णके शरसे उसके हृदयके मर्मस्थलका भेदन करे और खड्गको हाथमें लेकर दक्षिण दिशासे आरम्भ करके वृक्षके समीपकी चारों दिशाओंमें जाकर सब दिशाओंकी विजय करे और

तथास्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावहः।
यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते॥
तथैव तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्द्विषो रणे।

शंखमन्त्रः

पुण्यस्त्वं शंख पुण्यानां मंगलानां च मंगलम्।
विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिप्रदो भव॥

सिंहासनमन्त्रः

विजयो जयदो जेता रिपुहन्ता शुभंकरः।
दुःखहा धर्मदः शान्तः सर्वारिष्टविनाशनः॥
एते वै संनिधौ यस्मात् तव सिंहा महाबलाः।
तेन सिंहासनेति त्वं वेदैर्मन्त्रैश्च गीयसे॥
त्वयि स्थितः शिवः शान्तस्त्वयि शक्रः सुरेश्वरः।
त्वयि स्थितो हरिर्देवस्त्वदर्थं तप्यते तपः॥
नमस्ते सर्वतोभद्र भद्रदो भव भूपतेः।
त्रैलोक्यजयसर्वस्व सिंहासन नमोऽस्तु ते॥

अश्वपूजनम्

तद्दक्षिणकर्णे जपेत्।

कुलाभिजनजात्या च लक्षणैर्व्यञ्जनोत्तमैः।
भर्तारमभिरक्ष त्वं शिवं तव भवेदिति॥
कशाघातमधिष्ठानं क्षमस्व तुरगोत्तम।

ततोऽश्वाय भक्ष्यं दत्त्वा—

अश्वराज पुरोधास्तु विष्णुस्ते पुरतः स्थितः।
वरुणः पाशहस्तस्त्वां पृष्ठतः परिरक्षतु॥
वैवस्वतकुबेरौ च पार्श्वयोरभिरक्षताम्।
चन्द्रादित्यौ पृष्ठवंशे उदरं पृथिवीधरः॥
रक्षन्तु वक्त्रं गन्धर्वा बलमिन्द्रो ददातु ते।
हविःशेषमिति प्राश्यं विजयार्थं महीपतेः॥

शत्रुको जीत लिया है, यह कहे। इसके बाद यथापूर्व नगरमें जाकर प्रवेशद्वारपर नीराजनादि कराकर निवास करे।

(१८) अपराजिता-पूजा (निर्णयामृत)—आश्विन शुक्ल दशमीको प्रस्थान करनेके पहले अपराजिताका पूजन किया जाता है। उसके लिये अक्षतादिके अष्टदलपर मृत्तिकाकी मूर्ति स्थापन करके '**ॐ अपराजितायै नमः**' इससे अपराजिताका, (उसके दक्षिण भागमें) '**ॐ क्रियाशक्त्यै नमः**' इससे जयाका, (उसके वाम भागमें) '**ॐ**

आचमनं दत्त्वा स्तुतिं पठेत्—

गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः।
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च॥
प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धय त्वं तुरंग माम्।
तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा तथा॥
रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च।
स्मर त्वं राजपुत्रं च कौस्तुभं च मणिं स्मर॥
सुरासुरैर्मथ्यमानक्षीरोदादमृतादिभिः।
जात उच्चैःश्रवाः पूर्वं तेन जातोऽसि तत् स्मर॥
यां गतिं ब्रह्महा गच्छेन्मातृहा पितृहा तथा।
भूमिहानृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः॥
सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्यावत् पश्यति दुष्कृतम्।
व्रजाश्व तां गतिं क्षिप्रं तच्च पापं भवेत् तव॥
विकृतिं यदि गच्छेथा युद्धाध्वनि तुरंगम।
विजित्य समरे शत्रून् सह भर्त्रा सुखी भव॥

शिविकामन्त्रः

महेन्द्रनिर्मिते दिव्ये देवराजादिसेविते।
शिविके रक्ष मां नित्यं सदा त्वं संनिधौ भव॥
निर्मितासि कुबेरेण या त्वं निद्रासुखार्थिना।
शिविके पाहि मां नित्यं शान्तिं देहि नमोऽस्तु ते॥

रथमन्त्रः

शस्त्रास्त्रधारणार्थाय निर्मितो विश्वकर्मणा।
रथनेमिस्वनैर्घोरै रिपोर्हृदयकम्पनः॥

उमायै नमः' इससे विजयाका स्थापन करके आवाहनादि पूजन करे और '**चारुणा मुखपद्मेन विचित्रकनकोज्ज्वला। जया देवी भवे भक्ता सर्वकामान् ददातु मे॥ कांचनेन विचित्रेण केयूरेण विभूषिता। जयप्रदा महामाया शिवभावितमानसा॥ विजया च महाभागा ददातु विजयं मम। हारेण सुविचित्रेण भास्वत्कनकमेखला। अपराजिता रुद्ररता करोतु विजयं मम॥**' इनसे जया-विजया और अपराजिताकी प्रार्थना करके हरिद्रासे रँगे हुए वस्त्रमें दूब और सरसों रखकर डोरा बनावे। फिर '**सदापराजिते यस्मात्त्वं लतासूत्तमा स्मृता। सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थं तस्मात्त्वां धारयाम्यहम्॥**' इस मन्त्रसे उसे अभिमन्त्रित करके—'**जयदे वरदे देवि दशम्यामपराजिते। धारयामि भुजे दक्षे जयलाभाभिवृद्धये**'॥ से उक्त डोरेको दाहिने हाथमें धारण करे।

(१९) रावण-वध (व्रतोत्सव)—पहले शमी-पूजनमें बतलाया गया है कि शत्रुकी प्रतिकृति (तत्तुल्य मूर्ति या चित्र) बनाकर सुवर्णके शरसे उसके मर्मस्थानका भेदन करे।

गजमन्त्रः

कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः।
सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वनान्यष्टौ समाश्रिताः।
मन्दो भद्रो मृगश्चैव राजा संकीर्ण एव च॥
वने वने प्रसूतास्ते स्मर योनिं महागज।
पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः॥
भर्तारं रक्ष नागेन्द्र स्वामी च प्रतिपाल्यताम्।
अवाप्नुहि जयं युद्धे गमने स्वस्तितो व्रज॥
श्रीस्ते सोमाद् बलं विष्णोस्तेजः सूर्याज्जवोऽनिलात्।
स्थैर्यं मेरोर्जयं रुद्राद् यशो देवात् पुरन्दरात्॥
युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः।
अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा॥

इति राजचिह्नादिपूजनविधिः।

(२०) शुक्लैकादशी (पद्मपुराण)—पापपरायण पुरुषोंके पापोंको वशवर्ती बनानेमें आश्विन शुक्ल एकादशी अंकुशके समान है। इसी कारण इसका नाम 'पापांकुशा' है। यह स्वर्ग और मोक्षको देनेवाली, शरीरको नीरोग रखनेवाली, सुन्दरी, सुशीला, स्त्री, सदाचारी पुत्र और सुस्थिर धन देनेवाली है। उस दिन दिनमें भगवान्का पूजन और रात्रिमें उनके सम्मुख जागरण करके दूसरे दिन पूर्वाह्णमें पारण करके व्रतको समाप्त करे।

(२१) पुत्रप्राप्तिव्रत (भविष्योत्तर)—आश्विन शुक्ल एकादशीको स्नान करके उपवास रखे और भगवान्का पूजन करके रात्रिके समय दूध देती हुई सवत्सा गौकी पूजा करके दूसरे दिन दिनभर व्रत रखे और रात्रिमें भोजन करे। इस प्रकार इसी (आ० शु०) एकादशीको १२ वर्ष या प्रत्येक महीनेकी शुक्ल द्वादशीको १२ मास व्रत करे और प्रतिमास या प्रतिवर्ष (पहले-दूसरे मास या वर्षके क्रमसे) १-अपराजित, २-अजातशत्रु, ३-पुराकृत, ४-पुरन्दर, ५-वर्धमान, ६-सुरेश, ७-महाबाहु, ८-प्रभु, ९-विभु, १०-सुभूति, ११-सुमन और १२-सुप्रचेता—इन १२ नामोंसे हरिका स्मरण करे तो देवतुल्य दीर्घायु पुत्र होता है।

(२२) पद्मनाभव्रत (वाराहपुराण)—आश्विन शुक्ल द्वादशीको पद्मपर प्रतिष्ठित किये हुए सनातन पद्मनाभका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके जागरण करे और व्रत रखे तो इस व्रतसे अनेक गोदानके समान फल होता है।

(२३) प्रदोषव्रत—आश्विन शुक्ल त्रयोदशीको सूर्यास्तसे पहले स्नान करके यथालब्धोपचारोंसे शिवजीका पूजन करे और रात्रि होनेपर एक बार भोजन करे।

(२४) कोजागरव्रत (कृत्यनिर्णयादि)—आश्विन शुक्ल निशीथव्यापिनी पूर्णिमाको ऐरावतपर आरूढ हुए इन्द्र और

महालक्ष्मीका पूजन करके उपवास करे और रात्रिके समय घृतपूरित और गन्ध-पुष्पादिसे सुपूजित एक लाख, पचास हजार, दस हजार, एक हजार या केवल एक सौ दीपक प्रज्वलित करके देवमन्दिरों, बाग-बगीचों, तुलसी-अश्वत्थके वृक्षों, बस्तीके रास्ते, चौराहे, गली और वास-भवनोंकी छत आदिपर रखे और प्रातःकाल होनेपर स्नानादि करके इन्द्रका पूजनकर ब्राह्मणोंको घी-शक्कर मिली हुई खीरका भोजन कराकर वस्त्रादिकी दक्षिणा और स्वर्णादिके दीपक दे तो अनन्त फल होता है। इस दिन रात्रिके समय इन्द्र और लक्ष्मी पूछते हैं कि 'कौन जागता है?' इसके उत्तरमें उनका पूजन और दीपज्योतिका प्रकाश देखनेमें आये तो अवश्य ही लक्ष्मी और प्रभुत्व प्राप्त होता है।

(२५) शरत्पूर्णिमा (कृत्यनिर्णयामृत)—इसमें प्रदोष और निशीथ दोनोंमें होनेवाली पूर्णिमा ली जाती है। यदि पहले दिन निशीथव्यापिनी हो और दूसरे दिन प्रदोषव्यापिनी न हो तो पहले दिन व्रत करना चाहिये। १—इस दिन काँसीके पात्रमें घी भरकर सुवर्णसहित ब्राह्मणको दे तो ओजस्वी होता है, २—अपराह्णमें हाथियोंका नीराजन करे तो उत्तम फल मिलता है और ३—अन्य प्रकारके अनुष्ठान करे तो उनकी सफल सिद्धि होती है। इसके अतिरिक्त आश्विन शुक्ल निशीथव्यापिनी पूर्णिमाको प्रभातके समय आराध्यदेवको सुश्वेत वस्त्राभूषणादिसे सुशोभित करके षोडशोपचार पूजन करे और रात्रिके समय उत्तम गोदुग्धकी खीरमें घी और सफेद खाँड मिलाकर अर्द्धरात्रिके समय भगवान्‌के अर्पण करे। साथ ही पूर्ण चन्द्रमाके मध्याकाशमें स्थित होनेपर उनका पूजन करे और पूर्वोक्त प्रकारकी खीरका नैवेद्य अर्पण करके दूसरे दिन उसका भोजन करे।

कार्तिकके व्रत

कृष्णपक्ष

(१) कार्तिकस्नान (हेमाद्रि)—धर्म-कर्मादिकी साधनाके लिये स्नान करनेकी सदैव आवश्यकता होती है। इसके सिवा आरोग्यकी अभिवृद्धि और उसकी रक्षाके लिये भी नित्य स्नानसे कल्याण होता है। विशेषकर माघ, वैशाख और कार्तिकका नित्य स्नान अधिक महत्त्वका है। मदनपारिजातमें लिखा है कि—'**कार्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः। जपन् हविष्यभुक्छान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥**' कार्तिक मासमें जितेन्द्रिय रहकर नित्य स्नान करे और हविष्य (जौ, गेहूँ, मूँग तथा दूध-दही और घी आदि)-का एक बार भोजन करे तो सब पाप दूर हो जाते हैं। इस व्रतको आश्विनकी पूर्णिमासे प्रारम्भ करके ३१वें दिन कार्तिक शुक्ल पूर्णिमाको समाप्त करे। इसमें स्नानके लिये घरके बर्तनोंकी अपेक्षा कुँआ, बावली या तालाब आदि अच्छे होते हैं और कूपादिकी अपेक्षा कुरुक्षेत्रादि तीर्थ, अयोध्या आदि पुरियाँ और काशीकी पाँचों नदियाँ एक-से-एक अधिक उत्तम हैं। ध्यान रहे कि स्नानके समय जलाशयमें प्रवेश करनेके पहले हाथ-पाँव और मैल अलग धो ले। आचमन करके चोटी बाँध ले और जल-कुशसे संकल्प करके स्नान करे। संकल्पमें कुशा लेनेके लिये अंगिराने लिखा है कि '**विना दर्भैश्च यत् स्नानं यच्च दानं विनोदकम्। असंख्यातं च यज्जप्तं तत् सर्वं निष्फलं भवेत्॥**' स्नानमें कुशा, दानमें संकल्पका जल और जपमें संख्या न हो तो ये सब फलदायक नहीं होते।·····यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि धर्मप्राण भारतके बड़े-बड़े नगरों, शहरों या गाँवोंमें ही नहीं, छोटे-छोटे टोलेतकमें भी अनेक नर-नारी

(विशेषकर स्त्रियाँ) बड़े सबेरे उठकर कार्तिकस्नान करतीं, भगवान्‌के भजन गातीं और एकभुक्त, एकग्रास, ग्रास-वृद्धि, नक्तव्रत या निराहारादि व्रत करती हैं और रात्रिके समय देवमन्दिरों, चौराहों, गलियों, तुलसीके बिरवों, पीपलके वृक्षों और लोकोपयोगी स्थानोंमें दीपक जलातीं और लम्बे बाँसमें लालटेन बाँधकर किसी ऊँचे स्थानमें 'आकाशी दीपक' प्रकाशित करती हैं।

(२) करकचतुर्थी (करवाचौथ) (वामनपुराण)—यह व्रत कार्तिक कृष्णकी चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थीको किया जाता है। यदि वह दो दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो या दोनों ही दिन न हो तो '**मातृविद्धा प्रशस्यते**' के अनुसार पूर्वविद्धा लेना चाहिये। इस व्रतमें शिव-शिवा, स्वामिकार्तिक और चन्द्रमाका पूजन करना चाहिये और नैवेद्यमें (काली मिट्टीके कच्चे करवेमें चीनीकी चासनी ढालकर बनाये हुए) करवे या घीमें सेंके हुए और खाँड मिले हुए आटेके लड्डू अर्पण करने चाहिये। इस व्रतको विशेषकर सौभाग्यवती स्त्रियाँ अथवा उसी वर्षमें विवाही हुई लड़कियाँ करती हैं और नैवेद्यके १३ करवे या लड्डू और १ लोटा, १ वस्त्र और १ विशेष करवा पतिके माता-पिताको देती हैं।.....व्रतीको चाहिये कि उस दिन प्रातःस्नानादि नित्यकर्म करके '**मम सुख सौभाग्य-पुत्रपौत्रादिसुस्थिरश्रीप्राप्तये करकचतुर्थीव्रतमहं करिष्ये।**' यह संकल्प करके बालू (सफेद मिट्टी)-की वेदीपर पीपलका वृक्ष लिखे और उसके नीचे शिव-शिवा और षण्मुखकी मूर्ति अथवा चित्र स्थापन करके '**नमः शिवायै शर्वाण्यै सौभाग्यं संततिं शुभाम्। प्रयच्छ भक्तियुक्तानां नारीणां हरवल्लभे॥**' से शिवा (पार्वती)-का षोडशोपचार पूजन करे और '**नमः शिवाय**' से शिव तथा '**षण्मुखाय नमः**' से स्वामिकार्तिकका

पूजन करके नैवेद्यका पक्वान्न (करवे) और दक्षिणा ब्राह्मणको देकर चन्द्रमाको अर्घ्य दे और फिर भोजन करे। इसकी कथाका सार यह है कि—'शाकप्रस्थपुरके वेदधर्मा ब्राह्मणकी विवाहिता पुत्री वीरवतीने करकचतुर्थीका व्रत किया था। नियम यह था कि चन्द्रोदयके बाद भोजन करे। परंतु उससे भूख नहीं सही गयी और वह व्याकुल हो गयी। तब उसके भाईने पीपलकी आड़में महताब (आतिशबाजी) आदिका सुन्दर प्रकाश फैलाकर चन्द्रोदय दिखा दिया और वीरवतीको भोजन करवा दिया। परिणाम यह हुआ कि उसका पति तत्काल अलक्षित हो गया और वीरवतीने बारह महीनेतक प्रत्येक चतुर्थीका व्रत किया तब पुनः प्राप्त हुआ।

(३) दशरथपूजा (संवत्सरप्रदीप)—कार्तिक कृष्ण चतुर्थीको दशरथजीका पूजन करे और उनके समीपमें दुर्गाका पूजन करे तो सब प्रकारके सुख उपलब्ध होते हैं।

(४) दम्पत्यष्टमी (हेमाद्रि)—पुत्रकी कामनावाले स्त्री-पुरुषोंको चाहिये कि वे कार्तिक कृष्णाष्टमीको डाभकी पार्वती और शिव बनाकर उनका स्नान, गन्ध, अक्षत, पुष्प और नैवेद्यसे पूजन करें और उनके समीपमें ब्राह्मणका पूजन करके उसे दक्षिणा दें। ऐसा करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है। इस व्रतमें चन्द्रोदयव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये। यदि वह दो दिन हो या दोनों ही दिन न हो तो दूसरे दिन व्रत करना चाहिये।

(५) कृष्णैकादशी (ब्रह्मवैवर्त)—कार्तिक कृष्णकी एकादशीका नाम 'रमा' है। इसका व्रत करनेसे सब पापोंका क्षय होता है। इसकी कथाका सार यह है कि—'प्राचीन कालमें मुचुकुन्द नामका राजा बड़ा धर्मात्मा था। उसके इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर और विभीषण-जैसे मित्र और चन्द्रभागा-जैसी पुत्री थी। उसका विवाह दूसरे राज्यके शोभनके साथ हुआ था। विवाहके बाद वह

ससुराल गयी तो उसने देखा कि वहाँका राजा एकादशीका व्रत करवानेके लिये ढोल बजवाकर ढिंढोरा पिटवाता है और उससे उसका पति सूखता है। यह देखकर चन्द्रभागाने अपने पतिको समझाया कि 'इसमें कौन-सी बड़ी बात है। हमारे यहाँ तो हाथी, घोड़े, गाय, बैल, भैंस, बकरी और भेड़तकको एकादशी करनी पड़ती है और एतन्निमित्त उस दिन उनको चारा-दानातक नहीं दिया जाता।' यह सुनकर शोभनने व्रत कर लिया।

(६) गोवत्सद्वादशी (मदनरत्नान्तर्गत भविष्योत्तरपुराण)—यह व्रत कार्तिक कृष्ण द्वादशीको किया जाता है। इसमें प्रदोषव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो या न हो तो '**वत्सपूजा वटश्चैव कर्तव्यौ प्रथमेऽहनि**' के अनुसार पहले दिन व्रत करना चाहिये। उस दिन सायंकालके समय गायें चरकर वापस आयें तब तुल्य वर्णकी गौ और बछड़ेका गन्धादिसे पूजन करके '**क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते। सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' से उसके (आगेके) चरणोंमें अर्घ्य दे और '**सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते। मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि॥**' से प्रार्थना करे। इस बातका स्मरण रखे कि उस दिनके भोजनके पदार्थोंमें गायका दूध, दही, घी, छाछ और खीर तथा तेलके पके हुए भुजिया पकौड़ी या अन्य कोई पदार्थ न हों।

(७) नीराजनद्वादशी (भविष्योत्तर)—कार्तिक कृष्ण द्वादशीको प्रातःस्नानसे निवृत्त होकर काँसे आदिके उज्ज्वल पात्रमें गन्ध, अक्षत, पुष्प और जलका पात्र रखकर देवता, ब्राह्मण, गुरुजन (बड़े-बूढ़े), माता और घोड़े आदिका नीराजन (आरती) करे तो अक्षय फल होता है। यह नीराजन पाँच दिनतक किया जाता है।

(८) यम-दीपदान (स्कन्दपुराण)—कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको सायंकालके समय किसी पात्रमें मिट्टीके दीपक रखकर उन्हें तिलके तेलसे पूर्ण करे। उनमें नवीन रूईकी बत्ती रखे और उनको प्रकाशित करके गन्धादिसे पूजन करे। फिर दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके '**मृत्युना दण्डपाशाभ्यां कालेन श्यामया सह। त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रीयतां मम॥**' से दीपोंका दान करे तो उससे यमराज प्रसन्न होते हैं। यह त्रयोदशी प्रदोषव्यापिनी शुभ होती है। यदि वह दो दिन हो या न हो तो दूसरे दिन करे।

(९) धनत्रयोदशी (व्रतोत्सव)—कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको सायंकालके समय एक दीपकको तेलसे भरकर प्रज्वलित करे और गन्धादिसे पूजन करके अपने मकानके द्वारदेशमें अन्नकी ढेरीपर रखे। स्मरण रहे वह दीप रातभर जलते रहना चाहिये, बुझना नहीं चाहिये।

(१०) गोत्रिरात्र (स्कन्दपुराण)—यह व्रत कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीसे दीपावलीके दिनतक किया जाता है। इसमें उदयव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो तो पहले दिन व्रत करे। इस व्रतके लिये गोशाला या गायोंके आने-जानेके मार्गमें आठ हाथ लम्बी और चार हाथ चौड़ी वेदी बनाकर उसपर सर्वतोभद्र लिखे और उसके ऊपर छत्रके आकारका वृक्ष बनाकर उसमें विविध प्रकारके फल, पुष्प और पक्षी बनाये। वृक्षके नीचे मण्डलके मध्य भागमें गोवर्द्धनभगवान्‌की; उनके वाम भागमें रुक्मिणी, मित्रविन्दा, शैब्या और जाम्बवतीकी; दक्षिण भागमें सत्यभामा, लक्ष्मणा, सुदेवा और नाग्नजितिकी; उनके अग्र भागमें नन्दबाबा, पृष्ठ भागमें बलभद्र और यशोदा तथा कृष्णके सामने सुरभी, सुनन्दा, सुभद्रा और कामधेनु गौ—इनकी सुवर्णमयी

सोलह मूर्तियाँ स्थापित करे। उन सबका नाममन्त्र (यथा—**गोवर्द्धनाय नमः** आदि)-से पूजन करके '**गवामाधार गोविन्द रुक्मिणीवल्लभ प्रभो। गोपगोपीसमोपेत गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' से भगवान्‌को और '**रुद्राणां चैव या माता वसूनां दुहिता च या। आदित्यानां च भगिनी सा नः शान्तिं प्रयच्छतु॥**' से गौको अर्घ्य दे एवं '**सुरभी वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता। प्रतिगृह्णातु मे ग्रासं सुरभी मे प्रसीदतु॥**' से गौको ग्रास दे। इस प्रकार विविध भाँतिके फल, पुष्प, पक्वान्न और रसादिसे पूजन करके बाँसके पात्रोंमें सप्तधान्य और सात मिठाई भरकर सौभाग्यवती स्त्रियोंको दे। इस प्रकार तीन दिन व्रत करे और चौथे दिन प्रातःस्नानादि करके गायत्रीके मन्त्रसे तिलोंकी १०८ आहुति देकर व्रतका विसर्जन करे तो इससे सुत, सुख और सम्पत्तिका लाभ होता है।

(११) रूपचतुर्दशी (बहुसम्मत)—कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तमें—जिस दिन चन्द्रोदयके समय चतुर्दशी हो उस दिन प्रभात समयमें दन्तधावन आदि करके '**यमलोकदर्शना-भावकामोऽहमभ्यंगस्नानं करिष्ये।**' यह संकल्प करे और शरीरमें तिलके तेल आदिका उबटन या मर्दन करके हलसे उखड़ी हुई मिट्टीका ढेला, तुम्बी और अपामार्ग (ऊँगा)—इनको मस्तकके ऊपर बार-बार घुमाकर शुद्ध स्नान करे। यद्यपि कार्तिकस्नान करनेवालोंके लिये '**तैलाभ्यंगं तथा शय्यां परान्नं कांस्यभोजनम्। कार्तिके वर्जयेद् यस्तु परिपूर्णव्रती भवेत्॥**' के अनुसार तैलाभ्यंग वर्जित किया है, किंतु '**नरकस्य चतुर्दश्यां तैलाभ्यंगं च कारयेत्। अन्यत्र कार्तिकस्नायी तैलाभ्यंगं विवर्जयेत्॥**' के आदेशसे नरकचतुर्दशी या (रूपचतुर्दशी)-को तैलाभ्यंग करनेमें कोई दोष नहीं। यदि रूपचतुर्दशी दो दिनतक चन्द्रोदयव्यापिनी

हो तो चतुर्दशीके चौथे प्रहरमें स्नान करना चाहिये। इस व्रतको चार दिनतक करे तो सुख-सौभाग्यकी वृद्धि होती है।

(१२) हनुमज्जन्म-महोत्सव (व्रतरत्नाकर)—'**आश्विनस्यासिते पक्षे भूतायां च महानिशि। भौमवारेऽञ्जनादेवी हनूमन्तमजीजनत्॥**' अमान्त आश्विन (कार्तिक) कृष्ण चतुर्दशी भौमवारकी महानिशा (अर्धरात्रि)-में अंजनादेवीके उदरसे हनुमान्जीका जन्म हुआ था। अतः हनुमद्-उपासकोंको चाहिये कि वे इस दिन प्रातःस्नानादि करके '**मम शौर्यौदार्यधैर्यादिवृद्ध्यर्थं हनुमत्प्रीतिकामनया हनुमज्जयन्तीमहोत्सवं करिष्ये**' यह संकल्प करके हनुमान्जीका यथाविधि षोडशोपचार पूजन करें। पूजनके उपचारोंमें गन्धपूर्ण तेलमें सिन्दूर मिलाकर उससे मूर्तिको चर्चित करे। पुन्नाम (पुरुष नामके हजारा-गुलहजारा आदि)-के पुष्प चढ़ाये और नैवेद्यमें घृतपूर्ण चूरमा या घीमें सेंके हुए और शर्करा मिले हुए आटेका मोदक और केला, अमरूद आदि फल अर्पण करके वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका पाठ करे। रात्रिके समय घृतपूर्ण दीपकोंकी दीपावलीका प्रदर्शन कराये। यद्यपि अधिकांश उपासक इसी दिन हनुमज्जयन्ती मनाते हैं और व्रत करते हैं, परन्तु शास्त्रान्तरमें चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको हनुमज्जन्मका उल्लेख किया है; अतः इसका चैत्रके व्रतोंमें भी वर्णन मिलेगा और हनुमान्जीका पूजाविधान होगा।..... कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको हनुमज्जयन्ती मनानेका यह कारण है कि लंकाविजयके बाद श्रीराम अयोध्या आये। पीछे भगवान् रामचन्द्रजीने और भगवती जानकीजीने वानरादिको विदा करते समय यथायोग्य पारितोषिक दिया था। उस समय इसी दिन (का० कृ० १४ को) सीताजीने हनुमान्जीको पहले तो अपने गलेकी माला पहनायी (जिसमें बड़े-बड़े बहुमूल्य मोती और अनेक रत्न थे), परंतु उसमें राम-

नाम न होनेसे हनुमान्‌जी उससे संतुष्ट न हुए। तब सीताने अपने ललाटपर लगा हुआ सौभाग्यद्रव्य 'सिंदूर' प्रदान किया और कहा कि 'इससे बढ़कर मेरे पास अधिक महत्त्वकी कोई वस्तु नहीं है, अतएव तुम इसको हर्षके साथ धारण करो और सदैव अजरामर रहो।' यही कारण है कि कार्तिक कृष्ण १४ को हनुमज्जन्म-महोत्सव मनाया जाता है और तैल-सिंदूर चढ़ाया जाता है।

(१३) यम-तर्पण (कृत्यतत्त्वार्णव)—इसी दिन (का० कृ० १४ को) सायंकालके समय दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके जल, तिल और कुश लेकर देवतीर्थसे '**यमाय धर्मराजाय मृत्यवे अनन्ताय वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने वृकोदराय चित्राय** और **चित्रगुप्ताय।**' इनमेंसे प्रत्येक नामका '**नमः**' सहित उच्चारण करके जल छोड़े। यज्ञोपवीतको कण्ठीकी तरह रखे और काले तथा सफेद दोनों प्रकारके तिलोंको काममें ले। कारण यह है कि यममें धर्मराजके रूपसे देवत्व और यमराजके रूपसे पितृत्व—ये दोनों अंश विद्यमान हैं।

(१४) दीपदान (कृत्यचन्द्रिका)—इसी दिन प्रदोषके समय तिल-तेलसे भरे हुए प्रज्वलित और सुपूजित चौदह दीपक लेकर '**यममार्गान्धकारनिवारणार्थे चतुर्दशदीपानां दानं करिष्ये।**' से संकल्प करके ब्रह्मा, विष्णु और महेशादिके मन्दिर, मठ, परकोटा, बाग, बगीचे, बावली, गली, कूचे, नजरनिवास (हमेशा निगाहमें आनेवाले बाग), घुड़शाला तथा अन्य सूने स्थानोंमें भी यथाविभाग दीपस्थापन करे। इस प्रकारके दीपकोंसे यमराज संतुष्ट होते हैं।

(१५) नरकचतुर्दशी (लिंगपुराण)—यह भी इसी दिन होती है। इसके निमित्त चार बत्तियोंके दीपकको प्रज्वलित करके

पूर्वाभिमुख होकर '**दत्तो दीपश्चतुर्दश्यां नरकप्रीतये मया। चतुर्वर्तिसमायुक्तः सर्वपापापनुत्तये॥**' इसका उच्चारण करके दान करे। इस अवसरमें (आतिशबाजी आदिकी बनी हुई) प्रज्वलित उल्का लेकर '**अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। उज्ज्वलज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमां गतिम्॥**' से उसका दान करे तो उल्का आदिसे मरे हुए मनुष्योंकी सद्गति हो जाती है।

(१६) कार्तिकी अमावास्या (भविष्योत्तर)—इस दिन प्रातः-स्नानादि करनेके अनन्तर देव, पितृ और पूज्यजनोंका अर्चन करे और दूध, दही तथा घी आदिसे श्राद्ध करके अपराह्णके समय नगर, गाँव या बस्तीके प्रायः सभी मकानोंको स्वच्छ और सुशोभित करके विविध प्रकारके गायन, वादन, नर्तन और संकीर्तन करे और प्रदोषकालमें दीपावली सजाकर मित्र, स्वजन या सम्बन्धियोंसहित आधी रातके समय सम्पूर्ण दृश्योंका निरीक्षण करे। उसके बाद रात्रिके शेष भागमें सूप (छाजला) और डिंडिम (डमरू) आदिको वेगसे बजाकर अलक्ष्मीको निकाले।

(१७) कौमुदी-महोत्सव (हेमाद्रि)—उपर्युक्त प्रकारसे हृष्ट-पुष्ट और संतुष्ट होकर दीपक जलाने आदिसे कौमुदी-महोत्सव सम्पन्न होता है। वह्निपुराणके लेखानुसार यह व्रत कार्तिक कृष्ण एकादशीसे आरम्भ होकर अमावास्यातक किया जाता है।

(१८) दीपावली (व्रतोत्सव)—लोकप्रसिद्धिमें प्रज्वलित दीपकोंकी पंक्ति लगा देनेसे 'दीपावली' और स्थान-स्थानमें मण्डल बना देनेसे 'दीपमालिका' बनती है, अतः इस रूपमें ये दोनों नाम सार्थक हो जाते हैं। इस प्रकारकी दीपावली या दीपमालिका सम्पन्न करनेसे '**कार्तिके मास्यमावास्या तस्यां**

दीपप्रदीपनम्। शालायां ब्राह्मणः कुर्यात् स गच्छेत् परमं पदम्॥' के अनुसार परमपद प्राप्त होता है। ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि 'कार्तिककी अमावास्याको अर्धरात्रिके समय लक्ष्मी महारानी सद्गृहस्थोंके मकानोंमें जहाँ-तहाँ विचरण करती हैं। इसलिये अपने मकानोंको सब प्रकारसे स्वच्छ, शुद्ध और सुशोभित करके दीपावली अथवा दीपमालिका बनानेसे लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और उनमें स्थायीरूपसे निवास करती हैं। इसके सिवा वर्षाकालके किये हुए दुष्कर्म (जाले, मकड़ी, धूल-धमासे और दुर्गन्ध आदि) दूर करनेके हेतुसे भी कार्तिकी अमावास्याको दीपावली लगाना हितकारी होता है। यह अमावास्या प्रदोषकालसे आधी राततक रहनेवाली श्रेष्ठ होती है। यदि वह आधी राततक न रहे तो प्रदोषव्यापिनी लेना चाहिये।

(१९) लक्ष्मीपूजन—कार्तिक कृष्ण अमावास्या (दीपावलीके दिन) प्रातःस्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर '**मम सर्वापच्छान्ति-पूर्वकदीर्घायुष्यबलपुष्टिनैरुज्यादिसकलशुभफलप्राप्त्यर्थं गजतुरगरथराज्यैश्वर्यादिसकलसम्पदामुत्तरोत्तराभिवृद्ध्यर्थम् इन्द्रकुबेरसहितश्रीलक्ष्मीपूजनं करिष्ये।**' यह संकल्प करके दिनभर व्रत रखे और सायंकालके समय पुनः स्नान करके पूर्वोक्त प्रकारकी 'दीपावली', 'दीपमालिका' और 'दीपवृक्ष' आदि बनाकर कोशागार (खजाने)-में या किसी भी शुद्ध, सुन्दर, सुशोभित और शान्तिवर्द्धक स्थानमें वेदी बनाकर या चौकी-पाटे आदिपर अक्षतादिसे अष्टदल लिखे और उसपर लक्ष्मीका स्थापन करके '**लक्ष्म्यै नमः**', '**इन्द्राय नमः**' और '**कुबेराय नमः**'—इन नामोंसे तीनोंका पृथक्-पृथक् (या एकत्र) यथाविधि पूजन करके '**नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरेः प्रिया। या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्चनात्॥**' से 'लक्ष्मी' की; '**ऐरावतसमारूढो वज्रहस्तो महाबलः। शतयज्ञाधिपो**

देवस्तस्मा इन्द्राय ते नमः ॥' से 'इन्द्र' की और '**धनदाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधिपाय च। भवन्तु त्वत्प्रसादान्मे धनधान्यादिसम्पदः ॥**' से 'कुबेर' की प्रार्थना करे। पूजनसामग्रीमें अनेक प्रकारकी उत्तमोत्तम मिठाई, उत्तमोत्तम फल-पुष्प और सुगन्धपूर्ण धूप-दीपादि ले और ब्रह्मचर्यसे रहकर उपवास अथवा नक्तव्रत करे।

शुक्लपक्ष

(१) गोवर्धनपूजा (हेमाद्रि)—दीपावलीके दूसरे दिन प्रभातके समय मकानके द्वारदेशमें गौके गोबरका गोवर्धन बनाये। शास्त्रमें उसको शिखरप्रयुक्त, वृक्ष-शाखादिसे संयुक्त और पुष्पादिसे सुशोभित बनानेका विधान है; किंतु अनेक स्थानोंमें उसे मनुष्यके आकारका बनाकर पुष्पादिसे भूषित करते हैं। चाहे जैसा हो, उसका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके '**गोवर्धन धराधार गोकुल-त्राणकारक। विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव॥**' से प्रार्थना करे। इसके पीछे भूषणीय गौओंका आवाहन करके उनका यथाविधि पूजन करे और '**लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता। घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु॥**' से प्रार्थना करके रात्रिमें गौसे गोवर्धनका उपमर्दन कराये।

(२) अन्नकूट (भागवत और व्रतोत्सव)—कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको भगवान्के नैवेद्यमें नित्यके नियमित पदार्थोंके अतिरिक्त यथासामर्थ्य (दाल, भात, कढ़ी, साग आदि 'कच्चे'; हलवा, पूरी, खीर आदि 'पक्के'; लड्डू, पेड़े, बर्फी, जलेबी आदि 'मीठे'; केले, नारंगी, अनार, सीताफल आदि 'फल'-फूल; बैगन, मूली, साग-पात, रायते, भुजिये आदि 'सलूने' और चटनी, मुरब्बे, अचार आदि खट्टे-मीठे-चरपरे) अनेक प्रकारके पदार्थ बनाकर अर्पण करे और भगवान्के भक्तोंको यथाविभाग भोजन कराकर शेष सामग्री आशार्थियोंमें वितरण करे। अन्नकूट

यथार्थमें गोवर्धनकी पूजाका ही समारोह है। प्राचीन कालमें व्रजके सम्पूर्ण नर-नारी अनेक पदार्थोंसे इन्द्रका पूजन करते और नाना प्रकारके षड्रसपूर्ण (छप्पन भोग, छत्तीसों व्यंजन) भोग लगाते थे। किंतु श्रीकृष्णने अपनी बालकावस्थामें ही इन्द्रकी पूजाको निषिद्ध बतलाकर गोवर्धनका पूजन करवाया और स्वयं ही दूसरे स्वरूपसे गोवर्धन बनकर अर्पण की हुई सम्पूर्ण भोजन-सामग्रीका भोग लगाया। यह देखकर इन्द्रने व्रजपर प्रलय करनेवाली वर्षा की, किंतु श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको हाथपर उठाकर और व्रजवासियोंको उसके नीचे खड़े रखकर बचा लिया।

(३) मार्गपाली (आदित्यपुराण)—कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको सायंकालके समय कुश या काँसका लम्बा और मजबूत रस्सा बनाकर उसमें जहाँ-तहाँ अशोक (आशापाला)-के पत्ते गूँथकर बंदनवार बनवाये और राजप्रासादके प्रवेश-द्वारपर अथवा दरवाजेके आकारके दो अति उच्चस्तम्भोंपर इस सिरेसे उस सिरेतक बँधवा दे और गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके '**मार्गपालि नमस्तेऽस्तु सर्वलोकसुखप्रदे। विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे॥**' से प्रार्थना करे। इसके बाद सर्वप्रथम नराधिप (या बस्तीका कोई भी प्रधान पुरुष) और राजपरिवार और उनके पीछे नगरके नर-नारी और हाथी, घोड़े आदि हर्षध्वनिके साथ जयघोष करते हुए प्रवेश करें और राजा यथास्थान स्थित होकर सौभाग्यवती स्त्रियोंके द्वारा नीराजन करायें और हो सके तो रात्रिके समय बलिराजाका पूजन करके '**बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो। भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥**' से प्रार्थना करे। जिस समय बलिने वामनभगवान्‌के लिये तीन पैंड पृथ्वीके दानको पूर्ण करनेके लिये आकाश और पातालको दो पैंडमें मानकर तीसरे

पैंडके लिये अपना मस्तक दिया, उस समय भगवान्‌ने कहा था कि 'हे दानवीर! भविष्यमें इसी प्रतिपदाको तेरा पूजन होगा और उत्सव मनाया जायगा।' इसी कारण उस दिन बलिका पूजन किया जाता है और करना चाहिये। ....मार्गपाली और बलिकी पूजा करनेसे और विशेषकर मार्गपालीकी बंदनवारके नीचे होकर निकलनेसे उस वर्षमें सब प्रकारकी सुख-शान्ति रहती है और कई रोग दूर हो जाते हैं।.....अनेक बार देखनेमें आता है कि मनुष्योंमें जनपदनाशक महामारी और पशुओंमें बीमारी होती है, तब देहातके अनक्षर और साक्षर सामूहिकरूपमें सलाह करके सन, सूत या खींपका बहुत लम्बा रस्सा बनवाकर उसमें नीमके पत्ते गूँथ देते हैं और बीचमें ५ या ७ पाली नीचे-ऊपर लगाकर उसको गाँवमें प्रवेश करनेकी जगह बाँध देते हैं। ताकि उसके नीचे होकर निकलनेवाले नर-नारी और पशु (गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि) रोगी नहीं होते और सालभर प्रसन्न रहते हैं।

(४) यमद्वितीया—कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको यमका पूजन किया जाता है, इससे यह 'यमद्वितीया' कहलाती है। इस दिन वणिक्-वृत्तिवाले व्यवहारदक्ष वैश्य मसिपात्रादिका पूजन करते हैं, इस कारण इसे 'कलमदानपूजा' भी कहते हैं और इस दिन भाई अपनी बहिनके घर भोजन करते हैं, इसलिये यह 'भइया दूज' नामसे भी विख्यात है। हेमाद्रिके मतसे यह द्वितीया मध्याह्नव्यापिनी पूर्वविद्धा उत्तम होती है। स्मार्तमतमें आठ भागके दिनके पाँचवें भागकी श्रेष्ठ मानी है और स्कन्दके कथनानुसार अपराह्णव्यापिनी अधिक अच्छी होती है। यही उचित है। व्रतीको चाहिये कि प्रातःस्नानादिके अनन्तर कर्मकालके समय अक्षतादिके अष्टदलकमलपर गणेशादिका स्थापन करके '**मम यमराजप्रीतये यमपूजनम्—व्यवसाये व्यवहारे वा सकलार्थसिद्धये मसिपात्रादीनां पूजनम्—भ्रातुरायुष्यवृद्धये**

मम सौभाग्यवृद्धये च भ्रातृपूजनं च करिष्ये।' यह संकल्प करके गणेशजीका पूजन करनेके अनन्तर यमका, चित्रगुप्तका, यमदूतोंका और यमुनाका पूजन करे तथा '**धर्मराज नमस्तुभ्यं नमस्ते यमुनाग्रज। पाहि मां किंकरैः सार्धं सूर्यपुत्र नमोऽस्तु ते॥**' से 'यम' की— '**यमस्वसर्नमस्तेऽस्तु यमुने लोकपूजिते। वरदा भव मे नित्यं सूर्यपुत्रि नमोऽस्तु ते॥**' से 'यमुना' की और '**मसिभाजनसंयुक्तं ध्यायेत्तं च महाबलम्। लेखनीपट्टिकाहस्तं चित्रगुप्तं नमाम्यहम्॥**' से 'चित्रगुप्त' की प्रार्थना करके शंखमें या ताँबेके अर्घ्यपात्रमें अथवा अंजलिमें जल, पुष्प और गन्धाक्षत लेकर '**एह्येहि मार्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालोकधरामरेश। भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमोऽस्तु ते।**' से यमराजको 'अर्घ्य' दे।·····उसी जगह मसिपात्र (दावात), लेखनी (कलम) और राजमुद्रा (मुख्य मुहर) स्थापन करके '**मसिपात्राय नमः।**' '**लेखन्यै नमः।**' और '**राजमुद्रायै नमः।**' इन नाममन्त्रोंसे उनका पूजन करके '**मसि त्वं लेखनीयुक्त-चित्रगुप्तशयस्थिता। सदक्षराणां पत्रे च लेख्यं कुरु सदा मम॥**' से 'मसिपात्र' की; '**या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता या वीणा वरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना। या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥**' '**तरुणशकलमिन्दोर्बिभ्रती शुभ्रकान्तिः कुचभरनमितांगी संनिषण्णा सिताब्जे। निजकरकमलोद्यल्लेखनीपुस्तकश्रीः सकलविभवसिद्ध्यै पातु वाग्देवता नः॥**' '**कृष्णानने कृष्णजिह्वे चित्रगुप्तशयस्थिते। प्रार्थनेयं गृहाण त्वं सदैव वरदा भव॥**' से 'लेखनी' की और '**हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसंनिभे। प्रार्थनेयं गृहाणेमां नमस्ते राजमुद्रिके॥**' से 'राजमुद्रा' (मुहर)–की प्रार्थना करके सफेद कागजपर श्रीरामजी, '**श्रीरामो जयति, गणपतिर्जयति, शारदायै नमः** और

लक्ष्म्यै नमः' आदि लिखे। इसके अतिरिक्त छोटी भगिनीके घर जाकर बहिनकी की हुई पूजा ग्रहण करे। बहिनको चाहिये कि वह भाईको शुभासनपर बिठाकर उसके हाथ-पैर धुलाये। गन्धादिसे उसका पूजन करे और दाल, भात, फुलके, कढ़ी, सीरा, पूरी, चूरमा अथवा लड्डू, जलेबी, घेवर आदि यथासामर्थ्य उत्तम पदार्थोंका भोजन कराये और '**भ्रातस्तवानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिमं शुभम्। प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः॥**' से उसका अभिनन्दन करे। इसके बाद भाई बहिनको यथासामर्थ्य अन्न-वस्त्र-आभूषण और सुवर्ण-मुद्रादि द्रव्य देकर उससे शुभाशिष प्राप्त करे।""""यदि सहजा (सगी) बहिन न हो तो पितृव्य-पुत्री (काकाकी कन्या), मातुल-पुत्री (मामाकी बेटी) या मित्रभगिनी (मित्रकी बहिन)— इनमें जो हो उसके यहाँ भोजन करे। यदि यमद्वितीयाको यमुनाके किनारेपर बहिनके हाथका बनाया भोजन करे तो उससे भाईकी आयुवृद्धि और बहिनके अहिवात (सौभाग्य)-की रक्षा होती है।

(५) नागव्रत (कूर्मपुराण)—कार्तिक शुक्ल चतुर्थीको मध्याह्नके समय शेषसहित शंखपालादि नागोंका पूजन करे, दूधसे स्नान कराये, गन्ध-पुष्प अर्पण करे और दुग्धका पान (भोजन) कराये तो विषजन्य बीमारियोंका भय नहीं होता और न सर्प डसते हैं। यह चतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी ली जाती है।

(६) जयापंचमी (भविष्योत्तर)—यह व्रत कार्तिक शुक्ल पंचमीको किया जाता है। एतन्निमित्त तिलोद्वर्तनपूर्वक गंगादि तीर्थोंके स्मरणसहित शुद्ध स्नान करके शुद्धासनपर बैठकर भगवान् 'हरि' का और उनके वाम भागमें 'जया' का स्थापन करे। विविध प्रकारके गन्ध-पुष्पादिसे प्रीतिपूर्वक पूजन करे और हरिके चरण, घुटने, ऊरु, मेढ्र, उदर, वक्षःस्थल, कण्ठ, मुख

और मस्तक इनमें पद्मनाभ, नरसिंह, मन्मथ और दामोदर आदि नामोंसे अंगपूजा करके '**जयाय जयरूपाय जय गोविन्दरूपिणे। जय दामोदरायेति जय सर्व नमोऽस्तु ते॥**' से अर्घ्य दे और बाँसके पात्रमें सप्तधान्य भरकर लाल वस्त्रसे ढँककर '**यथा वेणुफलं दृष्ट्वा तुष्यते मधुसूदनः। तथा मेऽस्तु शुभं सर्वं वेणुपात्रप्रदानतः॥**' से ब्राह्मणोंको दे फिर एक वस्त्रमें गन्ध, अक्षत, पुष्प, सरसों और दूर्वा रखकर 'रक्षापोटलिका' तैयार करके '**येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वामनुबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥**' से रक्षाबन्धन करे। इस व्रतके करनेसे ब्रह्महत्या-जैसे पापोंकी निवृत्ति होती है और सब प्रकारके सुख उपलब्ध होते हैं।

(७) वह्निमहोत्सव (मत्स्यपुराण)—कार्तिक शुक्लपक्षकी भौमयुक्त षष्ठीको अग्निका और स्वामी कार्तिकका पूजन करे और दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके घी, शहद, जल और पुष्पादि लेकर '**सप्तर्षिदारज स्कन्द सेनाधिप महाबल। रुद्रोमाग्निज षड्वक्त्र गंगागर्भ नमोऽस्तु ते॥**' से अर्घ्य दे और ब्राह्मणको आमान्न (भोजनयोग्य आटा, दाल आदि) देकर आप भोजन करे तथा रात्रिमें भूमिपर सोये तो रोग-दोषादि दूर हो जाते हैं।

(८) शाकसप्तमी—कार्तिक शुक्ल सप्तमीको उपलब्ध शाक-पत्रादिका दान करके रात्रिमें स्वयं भी शाकमात्रका भोजन करे और फिर प्रत्येक शुक्ल सप्तमीको वर्षपर्यन्त करता रहे तो सम्पूर्ण व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

(९) गोष्ठ-(गोप-) अष्टमी (निर्णयामृत, कूर्मपुराण)—कार्तिक शुक्ल अष्टमीको प्रातःकालके समय गौओंको स्नान करावे। गन्ध-पुष्पादिसे उनका पूजन करे और अनेक प्रकारके वस्त्रालंकारसे अलंकृत करके उनके गोपालों (ग्वालों)-का पूजन

करे, गायोंको गोग्रास देकर उनकी परिक्रमा करे और थोड़ी दूरतक उनके साथ जाय तो सब प्रकारकी अभीष्टसिद्धि होती है। इसी गोपाष्टमीको सायंकालके समय गायें चरकर वापस आवें उस समय भी उनका आतिथ्य, अभिवादन और पंचोपचार पूजन करके कुछ भोजन करावे और उनकी चरणरजको मस्तकपर धारण करके ललाटपर लगावे तो उससे सौभाग्यकी वृद्धि होती है।

(१०) नवमीव्रत (हेमाद्रि, देवीपुराण)—कार्तिक शुक्ल नवमीको व्रत, पूजा, तर्पण और अन्नादिका दान करनेसे अनन्त फल होता है। इसमें पूर्वाह्णव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो या न हो तो '**अष्टम्या नवमी विद्धा कर्तव्या फलकाङ्‌क्षिणा। न कुर्यान्नवमीं तात दशम्या तु कदाचन॥**' इस ब्रह्मवैवर्तके वचनके अनुसार पूर्वविद्धा लेनी चाहिये। इस दिनका किया हुआ पूजा-पाठ और दिया हुआ दान-पुण्य अक्षय हो जाता है, इस कारण इसका नाम 'अक्षयनवमी' है। इस दिन गो, भू, हिरण्य और वस्त्राभूषणादिका दान किया जाय तो यथाभाग्य इन्द्रत्व, शूरत्व या नराधिपत्वकी प्राप्ति होती है और ब्रह्महत्या-जैसे महापाप मिट जाते हैं। यही (कार्तिक शुक्ल नवमी) 'धात्रीनवमी' और 'कूष्माण्डनवमी' भी है। अतः इस दिन प्रात:स्नानादि करके धात्रीवृक्ष (आँवला)-के नीचे पूर्वाभिमुख बैठकर '**ॐ धात्र्यै नमः**' से उसका आवाहनादि 'षोडशोपचार' अथवा स्नान-गन्धादि 'पंचोपचार' पूजन करके '**पिता पितामहाश्चान्ये अपुत्रा ये च गोत्रिणः। ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेऽक्षयं पयः॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः। ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेऽक्षयं पयः॥**' इन मन्त्रोंसे उसके मूलमें दूधकी धारा गिराये, फिर '**दामोदरनिवासायै धात्र्यै देव्यै नमो नमः। सूत्रेणानेन बध्नामि धात्रि देवि नमोऽस्तु ते॥**' इस मन्त्रसे उसको

सूत्रसे आवेष्टित करे (सूत लपेटे) और कर्पूर या घृतपूर्ण बत्तीसे नीराजन करके '**यानि कानि च पापानि०**' से परिक्रमा करे।.....तदनन्तर सुपक्व कूष्माण्ड (अच्छा पका हुआ कोहला—कुम्हड़ा) लेकर उसके अंदर रत्न, सुवर्ण, रजत या रुपया आदि रखकर उसका गन्धादिसे पूजन करके '**कूष्माण्डं बहुबीजाढ्यं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। दास्यामि विष्णवे तुभ्यं पितॄणां तारणाय च॥**' से प्रार्थना करे और दानपात्र ब्राह्मणके तिलक करके '**ममाखिलपापक्षयपूर्वकसुखसौभाग्यादीनामुत्तरोत्तराभिवृद्धये कूष्माण्डदानं करिष्ये।**' यह संकल्प करके ब्राह्मणको दे दे।

(११) सार्वभौमव्रत (वराहपुराण)—कार्तिक शुक्ल दशमीको प्रातःस्नान करके नक्तव्रत करनेकी प्रतिज्ञा करे और विविध प्रकारके चित्र-विचित्र गन्ध-पुष्पादिसे दिशाओंका पूजन करके दध्योदनादिकी शुद्ध बलि दे। उस समय—'**सर्वा भवत्यः सिध्यन्तु मम जन्मनि जन्मनि।**' यह प्रार्थना करे और अर्धरात्रिमें दध्योदन (दही और भात)-का भोजन करे। इस प्रकार प्रत्येक मासकी शुक्ल दशमीको वर्षभर करे तो दिग्विजयी (अथवा सर्वत्र विजयी) होता है।

(१२) आशादशमी (भविष्योत्तर)—धन, राज्य, खेती, वाणिज्य या पुत्रादि प्राप्त होनेकी आशा पूर्ण होनेके लिये कार्तिक शुक्ल दशमी (या किसी भी शुक्ल दशमी)-को स्नान करके शुद्ध स्थानमें जौके चूर्णसे सायुध और स्वस्वरूपयुक्त इन्द्रादि दिक्पालोंको लिखकर उनका पूजन करे। गन्ध-पुष्पादि चढ़ाये। घीसे भलीभाँति भीगा हुआ भोजन और कालजात (उस ऋतुके) फल अर्पण करे। दीपक जलाये और '**आशाः स्वाशाः सदा सन्तु सिद्ध्यन्तां मे मनोरथाः। भवतीनां प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्विति॥**' से प्रार्थना करे। इस प्रकार वर्षपर्यन्त करे तो

धनार्थी, पुत्रार्थी, सुखार्थी, राज्यार्थी या अन्य कामार्थी आदिकी धन, पुत्र, सुख, राज्य और काम आदिकी आशा सफल हो जाती है।

(१३) आरोग्यव्रत (गरुडपुराण)—कार्तिक शुक्ल नवमी (या किसी भी शुक्ल नवमी)-को उपवास करे। दशमीको स्नान करके हरिका ध्यान करे। फल, पुष्प और मधुरान्न-पानादिका भोग लगावे। साथ ही चक्र, गदा, मूसल, धनुष और खड्ग—इन आयुधोंका लाल पुष्पोंसे पूजन करके गुडान्नका नैवेद्य अर्पण करे। इसके अतिरिक्त अजिन (मृगचर्म)-पर द्रोणपरिमित तिलोंका कमल बनाकर उसपर सुवर्णका अथवा अच्छे वर्णका अष्टदल स्थापित करके उसकी प्रत्येक पँखुड़ीपर पूर्वादिक्रमसे मन, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, प्राण और बुद्धि—इनका पूजन करके '**अनामयानीन्द्रियाणि प्राणश्च चिरसंस्थितः। अनाकुला च मे बुद्धिः सर्वे स्युर्निरुपद्रवाः॥ मनसा कर्मणा वाचा मया जन्मनि जन्मनि। संचितं क्षपयत्वेनः कालात्मा भगवान् हरिः॥**' से इनकी प्रार्थना करे तो रोगी नीरोग और सदैव सुस्वस्थ रहता है।

(१४) राज्यप्राप्तिव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—इस व्रतके निमित्त १-क्रतु (यज्ञ), २-दक्ष, ३-वसु, ४-सत्य, ५-काल, ६-काम, ७-मुनि, ८-कुरुवान्मनुज, ९-परशुराम और १०-विश्वेदेव—इनका गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और अन्नादिसे पूजन करके '**पारणान्ते**' (व्रतके अन्तमें) सुवर्णादि सामग्री ब्राह्मणको दे। यह व्रत कार्तिक शुक्ल दशमीसे आरम्भ किया जाता है और उपर्युक्त क्रतु-दक्षादि दस देव केशवके आत्मा हैं, अतः इनके अर्चनसे अवश्य ही राज्यलाभ होता है।

(१५) ब्रह्मप्राप्ति-व्रत(विष्णुधर्मोत्तर)—कार्तिक शुक्ल दशमी (या किसी भी शुक्ल दशमी)-को १-आत्मा, २-आयु, ३-मन, ४-दक्ष, ५-मद, ६-प्राण, ७-हविष्मान् ८-गविष्ठ (स्वर्गस्थ),

९-दत्त और १०-सत्य—इनका तथा अंगिरसका यथाविधि पूजन करके उपवास करे तो ब्रह्मत्वकी प्राप्ति होती है।

(१६) **शुक्लैकादशी** (वराहपुराण)—कार्तिक शुक्ल एकादशी 'प्रबोधिनी' के नामसे मानी जाती है। इसके निमित्त स्नान-दान और उपवास यथापूर्व किये जाते हैं। विशेषता यह है कि एक वेदीपर सोलह आर (कोण या पत्ती)-का कमल बनाकर उसपर सागरोपम, जलपूर्ण, रत्नप्रयुक्त, मलयागिरिसे चर्चित, कण्ठप्रदेशमें नालसे आबद्ध और सुश्वेत वस्त्रसे आच्छादित चार कलश स्थापित करे और उनके बीचमें पीताम्बर धारण किये हुए शंख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज और शेषशायी भगवान्‌की सुवर्णनिर्मित मूर्ति स्थापित करके उसका '**सहस्रशीर्षा०**' आदि ऋचाओंसे अंगन्यासपूर्वक यथाविधि पूजन करे और रात्रिमें जागरण करके दूसरे दिनके प्रभातमें वेदपाठी पाँच ब्राह्मणोंको बुलाकर उक्त चार कलश चारको और योगेश्वर भगवान्‌की (स्वर्णमयी) मूर्ति पाँचवेंको देकर उनको भोजन करवाकर स्वयं भोजन करे तो गंगादि तीर्थों, सुवर्णादि दानों और भगवान् आदिकी पूजाके समान फल होता है।

(१७) **प्रबोधैकादशीकृत्य** (मदनरत्न)—यह तो प्रसिद्ध ही है कि आषाढ़ शुक्लसे कार्तिक शुक्लपर्यन्त ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अग्नि, वरुण, कुबेर, सूर्य और सोमादि देवोंसे वन्दित, जगन्निवास, योगेश्वर क्षीरसागरमें शेषशय्यापर चार मास शयन करते हैं और भगवद्भक्त उनके शयनपरिवर्तन और प्रबोधके यथोचित कृत्य दत्तचित्त होकर यथासमय करते हैं। उनमें दो कृत्य आषाढ़ और भाद्रपदके व्रतोंमें प्रकाशित हो चुके हैं और तीसरे (प्रबोध)-का विधान यहाँ प्रकट किया जाता है। यद्यपि भगवान् क्षणभर भी कभी सोते नहीं, तथापि '**यथा देहे तथा देवे**' माननेवाले उपासकोंको शास्त्रीय विधान अवश्य करना चाहिये। यह कृत्य कार्तिक शुक्ल एकादशीको रात्रिके समय

किया जाता है। उस समय शयन करते हुए हरिको जगानेके लिये (१) सुभाषित स्तोत्रपाठ, भगवत्कथा और पुराणादिका श्रवण और भजनादिका 'गायन', (२) घंटा, शंख, मृदंग, नगारे और वीणा आदिका 'वादन' और (३) विविध प्रकारके देवोपम खेल-कूद, लीला और नाच आदिके द्वारा भगवान्‌को जगाये और साथ ही '**उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते। त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत् सुप्तं भवेदिदम्॥**' '**उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव। गता मेघा वियच्चैव निर्मलं निर्मलादिशः॥**'— '**शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव।**' इन मन्त्रोंका उच्चारण करे। अनन्तर भगवान्‌के मन्दिर (अथवा सिंहासन)-को नाना प्रकारके लता-पत्र, फल-पुष्प और बंदनवार आदिसे सजावे और 'विष्णुपूजा'—या 'पंचदेवपूजाविधान' अथवा 'रामार्चनचन्द्रिका' आदिके अनुसार भली प्रकार पूजन करे और समुज्ज्वल घृतवर्तिका या कर्पूरादिको प्रज्वलित करके नीराजन (आरती) करे। अनन्तर '**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन। तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥**' से पुष्पांजलि अर्पण करके '**इयं तु द्वादशी देव प्रबोधाय विनिर्मिता। त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना॥**' '**इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो। न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥**' से प्रार्थना करे और प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीष, शुक, शौनक और भीष्मादि भक्तोंका स्मरण करके चरणामृत, पंचामृत या प्रसादका वितरण करे। इसके पीछे एक रथमें भगवान्‌को विराजमान करके नरवाहनद्वारा उसे संचालित कर नगर, ग्राम या गलियोंमें भ्रमण कराये। जो मनुष्य उस रथके वाहक बनकर उसको चलाते हैं, उनको प्रत्येक पदपर यज्ञके समान फल होता है। जिस समय वामनभगवान् तीन पद भूमि लेकर विदा हुए थे, उस समय सर्वप्रथम दैत्यराज (बलिराजा)-ने वामनजीको

रथमें विराजमान कर स्वयं उसे चलाया था। अतः इस प्रकार करनेसे '**समुत्थिते ततो विष्णौ क्रियाः सर्वाः प्रवर्तयेत्**'। के अनुसार विष्णुभगवान् योगनिद्राको त्यागकर प्रत्येक प्रकारकी क्रिया करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं और प्राणिमात्रका पालन-पोषण और संरक्षण करते हैं। प्रबोधिनीकी पारणामें रेवतीका अन्तिम तृतीयांश हो तो उसको त्यागकर भोजन करना चाहिये।

(१८) भीष्मपंचक (पद्मपुराण)—यह व्रत कार्तिककी प्रबोधिनीसे प्रारम्भ होकर पूर्णिमाको पूर्ण होता है। इस निमित्त काम-क्रोधादिका त्यागकर ब्रह्मचर्य धारण करके क्षमा, दया और उदारतायुक्त होकर सोने या चाँदीकी लक्ष्मीनारायणकी मूर्ति बनवाकर वेदीपर स्थापित करे। ऋतुकालमें प्राप्त होनेवाले गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यादिसे पूजन करके पाँच दिनपर्यन्त निराहार, फलाहार, एकभुक्त, मिताहार या नक्तव्रतादिमें जो बन सके, व्रत करे। प्रतिदिन पद्मपुराणोक्त कथा सुने। पूजनमें सामान्य पूजाके सिवा—पहले दिन भगवान्के हृदयका कमलके पुष्पोंसे, दूसरे दिन कटिप्रदेशका बिल्वपत्रोंसे, तीसरे दिन घुटनोंका केतकी (केवड़े)-के पुष्पोंसे, चौथे दिन चरणोंका चमेलीके पुष्पोंसे और पाँचवें दिन सम्पूर्ण अंगका तुलसीकी मंजरियोंसे पूजन करे। नित्यप्रति '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' के सौ, हजार, दस हजार या जितने बन सके जप करे और व्रतान्तमें पारणाके समय ब्राह्मणदम्पतिको भोजन करवाकर स्वयं भोजन करे। इस देशमें अधिकांश स्त्रियाँ एकादशी और द्वादशीको निराहार, त्रयोदशीको शाकाहार और चतुर्दशी तथा पूर्णिमाको फिर निराहार रहकर प्रतिपदाके प्रभातमें द्विजदम्पतिको जिमाकर स्वयं भोजन करके 'पँचभीखण' नहाती हैं।

(१९) तुलसीविवाह (विष्णुयामल)—पद्मपुराणमें कार्तिक शुक्ल नवमीको तुलसीविवाहका उल्लेख किया गया है; किंतु अन्य ग्रन्थोंके अनुसार प्रबोधिनीसे पूर्णिमापर्यन्तके पाँच दिन अधिक फल

देते हैं। व्रतीको चाहिये कि विवाहके तीन मास पूर्व तुलसीके पेड़को सिंचन और पूजनसे पोषित करे। प्रबोधिनी या भीष्मपंचक अथवा ज्योति:शास्त्रोक्त विवाह-मुहूर्तमें तोरण-मण्डपादिकी रचना करके चार ब्राह्मणोंको साथ लेकर गणपति-मातृकाओंका पूजन, नान्दीश्राद्ध और पुण्याहवाचन करके मन्दिरकी साक्षात् मूर्तिके साथ सुवर्णके लक्ष्मीनारायण और पोषित तुलसीके साथ सोने और चाँदीकी तुलसीको शुभासनपर पूर्वाभिमुख विराजमान करे और सपत्नीक यजमान उत्तराभिमुख बैठकर 'तुलसी-विवाह-विधि' के अनुसार गोधूलीय समयमें 'वर' (भगवान्)-का पूजन, 'कन्या' (तुलसी)-का दान, कुशकण्डीहवन और अग्नि-परिक्रमा आदि करके वस्त्राभूषणादि दे और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर स्वयं भोजन करे।

(२०) तुलसीवास (स्कन्दपुराण)—कार्तिक शुक्ल नवमीको प्रात:-स्नानादि करके मकानके अंदर बालूकी वेदी बनाये। उसपर तुलसीका प्रत्यक्ष पेड़ और चाँदीकी सपत्र शाखा तथा सोनेकी मंजरीयुक्त निर्मित पेड़ रखके यथाविधि पूजन करे। ऋतुकालके फल-पुष्पादिका भोग लगाये। एक दीपकको घीसे पूर्ण करके लम्बी बातीसे उसे अखण्ड प्रज्वलित रखे और निराहार रहकर रात्रिमें कथावार्ता श्रवण करनेके अनन्तर जमीनपर शयन करे। इस प्रकार नवमी, दशमी और एकादशीका उपवास करनेके अनन्तर द्वादशीको (रेवतीके अन्तिम तृतीयांशकी २० घड़ियाँ हों तो उनको त्यागकर) ब्राह्मणदम्पतिको दान-मानसहित भोजन कराकर स्वयं भोजन करे।

(२१) ब्रह्मकूर्च (हेमाद्रि)—कार्तिक शुक्ल चतुर्दशीको स्नानादिके अनन्तर उपवासका संकल्प करके देवोंको तोयाक्षतादिसे और पितरोंको तिलतोयादिसे तृप्त करके कपिला गौका 'गोमूत्र', कृष्ण गौका 'गोमय', श्वेत गौका 'दूध', पीली गौका 'दही' और कर्बुर (कबरी) गौका घी लेकर वस्त्रसे छान करके एकत्र करे। उसमें थोड़ा कुशोदक

(डाभका पानी) भी मिला दे और रात्रिके समय उक्त 'पंचगव्य' पीये तो उससे तत्काल ही सब पाप-ताप और रोग-दोष दूर होकर अद्‌भुत प्रकारके बल, पौरुष और आरोग्यकी वृद्धि होती है।

(२२) पाषाणचतुर्दशी (देवीपुराण)—उसी चतुर्दशीको जौके चूर्णकी चौकोर रोटी बनाकर गौरीकी आराधना करे और उक्त रोटीका नैवेद्य अर्पण करके स्वयं उसीका एक बार भोजन करे तो सुख-सम्पत्ति और सुन्दरता प्राप्त होती है।

(२३) वैकुण्ठचतुर्दशी (सनत्कुमारसंहिता)—हेमलम्ब संवत्सरकी कार्तिक शुक्ल अरुणोदयव्यापिनी चतुर्दशीको 'मणिकर्णिक' ब्राह्ममुहूर्तमें प्रातःस्नानादिके पश्चात् विश्वेश्वरी और विश्वेश्वरका पूजन करके व्रत करे तो वैकुण्ठवास होता है।

(२४) कार्तिकी (बहुसम्मत)—इसको ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अंगिरा और आदित्य आदिने महापुनीत पर्व प्रमाणित किया है। अतः इसमें किये हुए स्नान, दान, होम, यज्ञ और उपासना आदिका अनन्त फल होता है। इस दिन कृत्तिका हो तो यह 'महाकार्तिकी' होती है,[१] भरणी हो तो विशेष फल देती है[२] और रोहिणी हो तो इसका महत्त्व बढ़ जाता है[३]। इसी दिन सायंकालके समय मत्स्यावतार हुआ था। इस कारण इसमें दिये हुए दानादिका दस यज्ञोंके समान फल होता है[४]। यदि इस दिन कृत्तिकापर

---

१. आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्तिक्यां भवति क्वचित्।
महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नानदानेषु चोत्तमा॥ (यम)

२. यदा याम्यं तु भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित्।
तिथिः सापि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्तिता॥ (स्मृत्यन्तर)

३. प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां नराधिप।
सा महाकार्तिकी प्रोक्ता.......... ॥ (स्मृतिसार)

४. वरान् दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपोऽभवत् ततः।
तस्यां दत्तं हुतं जप्तं दशयज्ञफलं स्मृतम्॥ (पद्मपुराण)

चन्द्रमा और बृहस्पति हों तो यह 'महापूर्णिमा' होती है[१]। इस दिन कृत्तिकापर चन्द्रमा और विशाखापर सूर्य हों तो 'पद्मक' योग होता है। यह पुष्करमें भी दुर्लभ है[२]। कार्तिकीको संध्याके समय 'त्रिपुरोत्सव' करके '**कीटाः पतंगा मशकाश्च वृक्षे जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः। दृष्ट्वा प्रदीपं न हि जन्मभागिनस्ते मुक्तरूपा हि भवन्ति तत्र॥**' से दीपदान करे तो पुनर्जन्मादिका कष्ट नहीं होता[३]। यदि इस दिन कृत्तिकामें स्वामी (विश्वस्वामी)-का दर्शन किया जाय तो ब्राह्मण सात जन्मतक वेदपारग और धनवान् होता है[४]। इस दिन चन्द्रोदयके समय शिवा, सम्भूति, प्रीति, संतति, अनसूया और क्षमा—इन छः तपस्विनी कृत्तिकाओंका पूजन करे (क्योंकि ये स्वामिकार्तिककी माता हैं) और कार्तिकेय, खड्गी (शिवा), वरुण, हुताशन और सशूक (बालियुक्त) धान्य—ये निशागममें द्वारके ऊपर शोभित करनेयोग्य हैं; अतः इनका उत्कृष्ट गन्धादिसे पूजन करे तो शौर्य, वीर्य और धैर्यादि बढ़ते हैं[५]। कार्तिकीको नक्तव्रत करके वृषदान करे तो शिवपद प्राप्त होता है[६]। यदि गौ, गज, रथ, अश्व और घृतादिका दान

१. पूर्णा महाकार्तिकी स्याज्जीवेन्द्वोः कृत्तिकास्थयोः। (ब्राह्म)

२. विशाखासु यदा भानुः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः।
स योगः पद्मको नाम पुष्करे त्वतिदुर्लभः॥ (पद्मपुराण)

३. पौर्णमास्यां तु संध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः।
दद्यात् पूर्वोक्तमन्त्रेण सुदीपांश्च सुरालये॥ (भविष्य०)

४. कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात् स्वामिदर्शनम्।
सप्त जन्म भवेद् विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः॥ (काशीखण्ड)

५. ततश्चन्द्रोदये पूज्यास्तापस्यः कृत्तिकास्तु षट्।
कार्तिकेयस्तथा खड्गी वरुणश्च हुताशनः॥
धान्यैः सशूकैर्द्वारोर्ध्वं भूषितव्यं निशामुखे।
माल्यैर्धूपैस्तथा······· दीपादिभिः पूजयेत्॥ (ब्रह्मपुराण)

६. कार्तिक्यां तु वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्।
शैवं पदमवाप्नोति शैवव्रतमिदं स्मृतम्॥ (मत्स्यपुराण)

किया जाय तो सम्पत्ति बढ़ती है[१]। कार्तिकीको सोपवास हरिस्मरण करे तो अग्निष्टोमके समान फल होकर सूर्यलोककी प्राप्ति होती है[२]। कार्तिकीको अपनी या परायी अलंकृता कन्याका दान करे तो 'संतानव्रत' पूर्ण होता है[३]। कार्तिकीको सुवर्णका मेष दान करे तो ग्रहयोगके कष्ट नष्ट हो जाते हैं[४] और कार्तिकी पूर्णिमासे प्रारम्भ करके प्रत्येक पूर्णिमाको नक्तव्रत करे तो उससे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं।[५]

(२५) कार्तिकीका उद्यापन (व्रतोद्यापन-प्रकाश)—कार्तिक शुक्ल चतुर्दशीको गणपति-मातृका, नान्दीश्राद्ध, पुण्याहवाचन, सर्वतोभद्र, ग्रह और हवनकी यथापरिमित वेदी बनवाकर रात्रिके समय उनपर उक्त देवोंका स्थापन और पूजन करे। इसके लिये अपनी सामर्थ्यके अनुसार सुवर्णकी भगवान्‌की सायुध-मूर्ति बनवाकर व्रतोद्यापनकौमुदी या व्रतोद्यापन-प्रकाशादिके अनुसार सर्वतोभद्रमण्डल स्थापित किये हुए सुवर्णादिके कलशपर उक्त मूर्तिका यथाविधि स्थापन, प्रतिष्ठा और पूजन करके रात्रिभर जागरण करे और पूर्णिमाके प्रभातमें प्रातःस्नानादि करके गोदान, अन्नदान, शय्यादान, ब्राह्मणभोजन (३० जोड़ा-जोड़ी) और व्रतविसर्जन करके जाति-बान्धवोंसहित भोजन करे।

---

१. गजाश्वरथदानं च घृतधेन्वादयस्तथा।
प्रदेयाः पुण्यकृद्भिस्तु .... ॥ (निर्णयामृत)

२. कार्तिके पौर्णमास्यां तु सोपवासः स्मरेद्धरिम्।
अग्निष्टोमफलं विन्देत् सूर्यलोकं च विन्दति॥ (ब्रह्मपुराण)

३. कार्तिक्यामुपवासी यः कन्यां दद्यात् स्वलंकृताम्।
स्वकीयां परकीयां वा अनन्तफलदायिनी॥ (हेमाद्रि)

४. कार्तिक्यां नक्तभुग् दद्यान्मेषं हेमविनिर्मितम्।
एतद् राशिव्रतं नाम ग्रहोपद्रवनाशनम्॥ (भविष्य०)

५. कार्तिक्यां तु समारभ्य सम्पूर्णं शशलक्षणम्।
पूजयेदुदये राजन् सदा नक्ताशनो भवेत्॥ (हेमाद्रि)

मार्गशीर्षके व्रत

कृष्णपक्ष

(१) धन्यव्रत (वाराहपुराण)—यह व्रत मार्गशीर्षमें शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंकी प्रतिपदासे प्रारम्भ होकर प्रत्येक शुक्ल या कृष्ण प्रतिपदाको वर्षभर करनेसे पूर्ण होता है। इसमें नक्तव्रत किया जाता है। उस दिन रात्रिके समय विष्णुका पूजन करते समय—'**वैश्वानराय पादौ**', '**अग्नये उदरम्**', '**हविर्भुजे उरः**', '**द्रविणोदाय भुजे**', '**संवर्ताय शिरः**' और '**ज्वलनायेति सर्वांगम्**' (पूजयामि)–से अंगपूजा करके गन्ध–पुष्पादि अर्पण करे। वर्षके अन्तमें व्रतके पूर्ण होनेपर सुवर्णकी अग्निकी मूर्ति बनवाकर उसे लाल वस्त्रसे भूषित करके लाल रंगके गन्ध–पुष्पादिसे पूजन करे और प्रतिदिन विष्णुकी भक्ति रखे तो निर्धन भी धनवान् हो सकता है।

(२) संकष्टचतुर्थीव्रत (भविष्यपुराण)—यह व्रत मार्गशीर्ष कृष्णकी चन्द्रोदयव्यापिनी पूर्वविद्धा चतुर्थीको करना चाहिये। उस दिन प्रातःस्नानादिके पश्चात् व्रत करनेका संकल्प करके सायंकालके समय अनेक प्रकारके गन्ध–पुष्पादिसे गणेशजीका पूजन करे। चन्द्रोदय होनेपर उनका पूजन करे और अर्घ्य देनेके पश्चात् वायन–दान करके भोजन करे। इस व्रतसे स्त्रियोंके सौभाग्यकी वृद्धि होती है।

(३) अनघाव्रत (हेमाद्रि)—मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमीको डाभके अनघ और अनघा निर्माण करके गोबरसे पोती हुई वेदीपर विराजमानकर गन्धादिसे उनका पूजन करे। इस प्रकार प्रत्येक कृष्णाष्टमीको एक वर्षतक करे तो सम्पूर्ण प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं।

(४) भैरवजयन्ती (शिवरहस्य)—मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमीको व्रत रखे और प्रत्येक प्रहरमें भैरवका यथाविधि पूजन करके '**भैरवार्घ्यं गृहाणेश भीमरूपाव्ययानघ। अनेनार्घ्यप्रदानेन तुष्टो**

भव शिवप्रिय॥' 'सहस्त्राक्षिशिरोबाहो सहस्त्रचरणाजर। गृहाणार्घ्यं भैरवेदं सपुष्पं परमेश्वर॥' 'पुष्पांजलिं गृहाणेश वरदो भव भैरव। पुनरर्घ्यं गृहाणेदं सपुष्पं यातनापह॥' इन तीन मन्त्रोंसे तीन बार अर्घ्य दे। रात्रिमें जागरण करे और शिवजीकी कथा सुने तो सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भैरवका मध्याह्नमें जन्म हुआ था, अतः मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी लेनी चाहिये।

(५) कालाष्टमी (शिवरहस्य)—मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमीको कालाष्टमीका कृत्य किया जाता है। इस दिन **'जागरं चोपवासं च कृत्वा कालाष्टमीदिने। प्रयतः पापनिर्मुक्तः शैवो भवति शोभनः॥'** के अनुसार उपवास करके रात्रिमें जागरण करे तो सब पाप दूर हो जाते हैं और व्रती शैव बन जाता है।

(६) कृष्णैकादशीव्रत (भविष्योत्तर)—मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशीको प्रातःस्नानादिके पश्चात् **'ममाखिलपापक्षयपूर्वक-श्रीपरमेश्वरप्रीतिकामनया मार्गशीर्षकृष्णैकादशीव्रतं करिष्ये।'** यह संकल्प करके उपवास करे। तिथि-निर्णय और व्रत-नियम यथापूर्व देख ले। 'कथाका सार' यह है कि 'सत्ययुगमें तालजंघका पुत्र 'मुर' नामका दानव था। वह महाबली और विलक्षण बुद्धिमान् था। उसने समय पाकर स्वर्गके देवताओंको मार भगाया और उनके स्थानमें नये देवता बनाकर भर दिये। इससे स्वर्गके देवताओंको बड़ा कष्ट हुआ, वे शिवजीके समीप गये और शिवजीने उनको गरुड़ध्वज (भगवान्)-के पास भेज दिया। तब भगवान्ने उनकी रक्षाका विधान किया। उसमें भगवान्के शरीरसे एक परम रूपवती स्त्री उत्पन्न हुई। उसको देखकर मुर मोहित हो गया और उस सुन्दरीपर आक्रमण करने लगा, तब उसने मुरको मार डाला। यह देखकर भगवान्ने उस स्त्रीको वर दिया कि 'तू मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई है,अतः तेरा नाम 'उत्पन्ना' होगा और तू देवताओंका संकट निवारण करनेमें

समर्थ है; अतएव जो तेरा व्रत करेंगे, उनकी अभीष्ट-सिद्धि होगी।' इस वरको प्राप्त करके वह कन्या अलक्षित हो गयी। कैटभ देश (काठियावाड़)-के महादरिद्र सुदामाने पत्नीके सहित 'उत्पन्ना एकादशी' का व्रत किया था, इससे वह सब दु:खोंसे मुक्त होकर पुत्रवान्, सुखी और सम्पत्तिशाली बन गया।

(७) प्रदोषव्रत (व्रतोत्सव)—यह प्रत्येक महीनेके कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षोंमें त्रयोदशीको किया जाता है। इस दिन प्रात:स्नानादि करके दिनभर शिवका स्मरण रखे और सूर्यास्तसे पहले पुन: स्नान करके प्रदोषके समय शिवपूजन करे तो इच्छानुसार फलकी प्राप्ति होती है।

(८) गौरीतपव्रत (अंगिरा)—यह व्रत मार्गशीर्षकी अमावास्यासे आरम्भ किया जाता है। उस दिन प्रात:स्नान करके हाथमें गन्ध, अक्षत, पुष्प, दूर्वा और जल लेकर '**ईशार्द्धांगहरे देवि करिष्येऽहं व्रतं तव। पतिपुत्रसुखावाप्तिं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥**' से संकल्प करके मध्याह्नमें सूर्यनारायणको अर्घ्य देकर '**अहं देवि व्रतमिदं कर्तुमिच्छामि शाश्वतम्। तवाज्ञया महादेवि निर्विघ्नं कुरु तत्र वै॥**' से प्रार्थना करे। पीछे अपने निवासस्थानमें जाकर गौरीका पूजन और उपवास करे। पूजनमें आवाहनादि छ: उपचारोंके पीछे —**१ पार्वत्यै नम: (पादौ), २ हैमवत्यै (जानुनी), ३ अम्बिकायै (जंघे), ४ गिरिशवल्लभायै (गुह्यम्), ५ गम्भीरनाभ्यै (नाभिम्), ६ अपर्णायै (उदरम्), ७ महादेव्यै (हृदयम्), ८ कण्ठकामिन्यै (कण्ठम्), ९ षण्मुखायै (मुखम्), १० लोकमोहिन्यै (ललाटम्), ११ मेनकाकुक्षिरत्नायै (शिर: पूजयामि)**—इस प्रकार अंगपूजा करनेके अनन्तर गन्ध-पुष्पादि शेष दस उपचारोंसे पूजन करे और गौरीके दक्षिण भागमें गणेशजीका और वामभागमें स्कन्द (स्वामिकार्तिकेय)-का पूजन करे। तत्पश्चात् ताँबे अथवा मिट्टीके

दीपकको गौके घीसे पूर्ण करके उसमें आठ बत्ती जलाये और (सूर्योदय होनेतक) रात्रिभर प्रज्वलित रखे। फिर ब्राह्ममुहूर्त (प्रतिपदाके प्रभात)-में स्नानादि करनेके अनन्तर द्विजदम्पती (ब्राह्मण-ब्राह्मणी)-का पूजन करके तीन धातुओं (ताँबे, पीतल और शीशे)-के बने हुए पात्रमें गुड़, पक्वान्न (हलुआ-पूरी-पूआ), तिल-तण्डुल और सौभाग्यद्रव्य रखकर उनपर उपर्युक्त दीपक रखे और जबतक बक-काकादि पक्षीगण अपना कलरव करते हुए उसको ग्रहण न करें तबतक वहीं बैठी रहे। यदि उठ खड़ी हो तो उससे सौभाग्यकी हानि होती है। इस प्रकार पहले वर्षमें अमावस्यासे, दूसरेमें प्रतिपदासे और तीसरेमें द्वितीयासे—इस क्रमसे चौथे-पाँचवें आदि वर्षोंमें तृतीया-चतुर्थी आदि तिथियोंको व्रत करके सोलहवें वर्षके मार्गशीर्षकी पूर्णिमाको आठ द्विजदम्पती बुलवाकर मध्याह्नके समय अक्षतोंके अष्टदलपर (सुपूजित गौरीके समीप) सोम और शिवका पूजन करे और नैवेद्यमें सुहाली, कसार, पूआ, पूरी, खीर, घी, शर्करा और मोदक—इन आठ पदार्थोंका भोग लगाये। फिर इन्हीं आठ पदार्थोंसे आठ कटोरदान (ढक्कनदार भोजनपात्र) भरकर उपर्युक्त आठ दम्पती (जोड़ा-जोड़ी)-को भोजन करवाकर वस्त्रालंकारादिसे भूषितकर एक-एक करके आठों कटोरदान दान करे। यह व्रत स्त्रियोंके करनेका है—इससे सभी स्त्रियोंको सुतादिकी प्राप्ति हो सकती है और उनके सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध हो सकते हैं।

शुक्लपक्ष

(१) धन्यव्रत (वाराहपुराण)—यह व्रत मार्गशीर्षके दोनों पक्षोंमें किया जाता है, इस प्रकार कृष्णपक्षके व्रतोंमें आरम्भहीमें इसका उल्लेख हो गया है। पूरा विधान वहीं देख लेना चाहिये।

(२) पितृपूजन (लिंगपुराण)—मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीयाको पितरोंका पूजन करके व्रत करनेसे पितृगण प्रसन्न होते हैं और न करनेसे उन्हें दुःख होता है।

(३) कृच्छ्रचतुर्थी (स्कन्दपुराण)—यह व्रत मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थीसे आरम्भ होकर प्रत्येक चतुर्थीको वर्षपर्यन्त करके फिर दूसरे, तीसरे और चौथे वर्षमें करनेसे चार वर्षमें पूर्ण होता है। विधि यह है कि पहले वर्षमें (मार्गशीर्ष शुक्ल ४ को) प्रातःस्नानके पश्चात् व्रतका नियम ग्रहण करके गणेशजीका यथाविधि पूजन करे। नैवेद्यमें लड्डू-तिलकुटा, जौका मँडका और सुहाली अर्पण करके '**त्वत्प्रसादेन देवेश व्रतं वर्षचतुष्टयम्। निर्विघ्नेन तु मे यातु प्रमाणं मूषकध्वज॥**' '**संसारार्णवदुस्तारं सर्वविघ्नसमाकुलम्। तस्माद् दीनं जगन्नाथ त्राहि मां गणनायक॥**' से प्रार्थना करके एक बार परिमित भोजन करे। इस प्रकार प्रत्येक चतुर्थीको करता रहकर दूसरे वर्ष उसी मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थीको यथापूर्व नियम-ग्रहण, व्रत और पूजा करके नक्त (रात्रिमें एक बार) भोजन करे। इसी प्रकार प्रत्येक चतुर्थीको वर्षपर्यन्त करके तीसरे वर्ष फिर मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थीको व्रत-नियम और पूजा करके अयाचित (बिना माँगे जो कुछ जितना मिले उसीका एक बार) भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक चतुर्थीको व्रत करके चौथे वर्षमें उसी मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थीको नियम-ग्रहण, व्रत-संकल्प और पूजनादि करके निराहार उपवास करे। इस प्रकार वर्षपर्यन्त प्रत्येक चतुर्थीको व्रत करके चौथा वर्ष समाप्त होनेपर सफेद कमलपर ताँबेका कलश स्थापन करके सुवर्णके गणेशजीका पूजन करे। सवत्सा गौका दान करे, हवन करे और चौबीस सपत्नीक ब्राह्मणोंको भोजन करवाकर वस्त्राभूषणादि देकर स्वयं भोजन करे तो इस व्रतके करनेसे सब प्रकारके विघ्न दूर हो जाते हैं और सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है।

(४) वरचतुर्थी (स्कन्दपुराण)—पूर्वोक्त कृच्छ्रचतुर्थीके समान यह व्रत भी मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थीसे आरम्भ होकर चार वर्षमें पूर्ण होता है। प्रथम वर्षमें प्रत्येक चतुर्थीको दिनार्द्धके समय एक बार

अलोन (बिना नमकका) भोजन, दूसरे वर्षमें नक्त (रात्रि) भोजन, तीसरेमें अयाचित भोजन और चौथेमें उपवास करके यथापूर्व समाप्त करे। यह व्रत सब प्रकारकी अर्थसिद्धि करनेवाला है। परिमित भोजनके विषयमें किसीने ३२ ग्रास और किसीने २९ ग्रास बतलाये हैं। 'स्मृत्यन्तर'में '**अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः। द्वात्रिंशद् गृहस्थस्या परिमितं ब्रह्मचारिणः॥**' मुनिको आठ, वनवासियोंको सोलह, गृहस्थोंको बत्तीस और ब्रह्मचारियोंको अपरिमित (यथारुचि) ग्रास भोजन करनेकी आज्ञा है। ग्रासका प्रमाण है एक आँवलेके बराबर अथवा जितना सुगमतासे मुँहमें जा सके, उतना एक ग्रास होता है। न्यून भोजनके लिये (याज्ञवल्क्यने) तीन ग्रास नियत किये हैं।

(५) नागपंचमी (हेमाद्रि)—यद्यपि यह व्रत श्रावणमें ही प्रसिद्ध है, परंतु (स्कन्दपुराणके) '**शुक्ला मार्गशिरे पुण्या श्रावणे या च पंचमी। स्नानदानैर्बहुफला नागलोकप्रदायिनी॥**' के अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमीको भी नागोंका पूजन और एकभुक्त व्रत करना फलदायक होता है।

(६) श्रीपंचमी (भविष्योत्तर)—यह व्रत मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमीसे आरम्भ किया जाता है। एतन्निमित्त कमलपुष्प हाथमें लिये हुए कमलासनपर विराजमान और दो गजेन्द्रोंके छोड़े हुए दुग्ध या जलसे स्नान करती हुई लक्ष्मीका हृदयमें ध्यानकर सुवर्णादिकी मूर्तिके समक्ष व्रत करनेका नियम करे और तीन प्रहर दिन बीतनेके बाद गंगा या कुएँ आदिपर स्नान करके उक्त मूर्तिको सुवर्णादिके कलशपर स्थापित करके सर्वप्रथम देव और पितरोंको तृप्त करे (अर्थात् गणपति-पूजन, मातृका-पूजन और नान्दीश्राद्ध करे), फिर उस ऋतुके फल-पुष्पादि लेकर यथाप्राप्त उपचारोंसे लक्ष्मीका पूजन करे। उसमें गन्ध-लेपनके पहले १ चंचला, २ चपला, ३ ख्याति,

४ मन्मथा, ५ ललिता, ६ उत्कण्ठिता, ७ माधवी और ८ श्री—इन आठ नामोंसे १ पाद, २ जंघा, ३ नाभि, ४ स्तन, ५ भुजा, ६ कण्ठ, ७ मुख और ८ मस्तककी अंगपूजा करके नैवेद्य अर्पण करे और सौभाग्यवती स्त्रीके तिलक करके उसे मधुरान्नका भोजन करावे तथा उसके पतिको '**श्रीर्मे प्रीयताम्**' का उच्चारण करके प्रस्थ (लगभग एक किलो) चावल और घी देकर भोजन करे। इस प्रकार १ मार्गशीर्षमें श्री, २ पौषमें लक्ष्मी, ३ माघमें कमला, ४ फाल्गुनमें सम्पत्, ५ चैत्रमें पद्मा, ६ वैशाखमें नारायणी, ७ ज्येष्ठमें धृति, ८ आषाढ़में स्मृति, ९ श्रावणमें पुष्टि, १० भाद्रपदमें तुष्टि, ११ आश्विनमें सिद्धि और १२ कार्तिकमें क्षमा—इन बारह देवियोंका यथापूर्व और यथाक्रम पूजन करके मण्डपादि बनवाकर उसमें वस्त्र-आभूषण और बर्तन आदिसे समन्वित शय्यापर लक्ष्मीका पुनः पूजन करके सवत्सा गौसहित विद्वान् ब्राह्मणको दे और फिर भोजन करे तो इस व्रतसे सुत-सुख-सौभाग्य और अचल लक्ष्मी प्राप्त होती है।

(७) स्कन्दषष्ठी (भविष्योत्तर)—मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठीको स्वामिकार्तिकजी तारकको मारकर अभिषिक्त हुए थे, अतः यह पुण्यप्रद, पापहर और यशस्करी है। इसमें स्नान, दान और व्रत करनेसे पुण्य होता है।

(८) त्रितयसप्तमी (हेमाद्रि)—मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमीको हस्त हो तो जगत्प्रसूति (सूर्यनारायण)-का उत्तम प्रकारके गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके उपवास करे और फिर इसी प्रकार प्रत्येक शुक्ल सप्तमीको वर्षभर करता रहे तो अच्छे कुलमें जन्म, स्थायी आरोग्य और यथेच्छ धन—ये तीनों मिलते हैं।

(९) मित्रसप्तमी (निर्णयामृत)—मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमीके पहले दिन वपन (मुण्डन) करावे, फिर स्नान करके उपवास करे। सप्तमीको सूर्यका आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करके

ब्राह्मणोंको भोजन करवाकर शहदमें भीगे हुए मधुरान्नका स्वयं भोजन करे। इस विषयमें (ब्रह्मपुराणका) यह मत है कि सूर्यनारायण किसीके बनाये हुए नहीं हैं। यह विष्णुके दक्षिण नेत्र और अदिति एवं कश्यपके पुत्र हैं। मित्र इनका नाम है। इस कारण इनकी मित्रसप्तमीको उपवास करके फलाहार करे और अष्टमीको ब्राह्मणों और नट-नर्तकादिको भोजन करवाकर मधुप्लावित अन्नका स्वयं भोजन करे।

(१०) विष्णुसप्तमी (हेमाद्रि)—मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमीको लाल रंगके चन्दन और पुष्पोंसे भगवान् विष्णुका पूजन करके वटक (बाटी)-का नैवेद्य अर्पणकर व्रत करे। इन तीनों व्रतोंसे अभीष्टकी सिद्धि होती है।

(११) नन्दासप्तमी (भविष्य)—मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमीको सूर्यका पूजन करके दध्योदन (दही-भात) अर्पणकर उपवास करे तो सर्वानन्दकी प्राप्ति होती है।

(१२) भद्रासप्तमी (भविष्योत्तर)—इसी दिन (मार्गशीर्ष शुक्ल ७ को) घी-दूध और इक्षु (गन्ने)-के रससे सूर्यको स्नान करवाकर उपवास करे और अष्टमीको पारण करके भोजन करे।

(१३) निक्षुभार्कचतुष्टय (भविष्योत्तर)—१. मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठी और सप्तमीको उपवाससहित सूर्यका पूजनकर अष्टमीको भोजन करे, २. केवल कृष्ण सप्तमीको उपवास करके सूर्यका पूजन करे, ३. सप्तमीको निराहार उपवास करके चूनका हाथी बनाकर निवेदन करे और ४. मार्गशीर्ष या माघकी कृष्ण सप्तमीको दृढव्रत होकर उपवास करे, यथानियम पूजन करे और एक वर्ष समाप्त होनेपर गन्धादिसे सूर्यका पुनः पूजन करके ब्राह्मणोंको मणि-मुक्ता और भोजनादि देकर स्वयं भोजन करे। इस प्रकार सूर्यपत्नी (निक्षुभा) और सूर्यका उपर्युक्त चार प्रकारसे व्रत और पूजन करे तो भ्रूणहत्यादि सब पाप दूर होते हैं।

(१४) नन्दिनी (मदनरत्न)—मार्गशीर्ष शुक्ल नवमी 'नन्दिनी' है। इस दिनसे तीन रात्रितक देवीका यथाविधि पूजन करके उपवास करे तो अश्वमेधके समान फल होता है।

(१५) पदार्थदशमी (विष्णुधर्मोत्तर)—मार्गशीर्ष शुक्ल दशमीसे आरम्भ करके एक वर्षपर्यन्त प्रत्येक शुक्ल दशमीको दसों दिगीशों (१ इन्द्र, २ अग्नि, ३ यम, ४ निर्ऋति, ५ वरुण, ६ वायु, ७ कुबेर, ८ ईशान, ९ ब्रह्मा और १० अनन्त)-का गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके वर्षके बाद दूध देती हुई गौका दान करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराये तो व्यापार, व्यवहारमें यथेच्छ सफलता प्राप्त होनेके सिवा विद्या और धनादिकी वृद्धि होती है और शत्रुओंका नाश होता है।

(१६) धर्मत्रयव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—१. मार्गशीर्ष शुक्ल दशमीको उपवास करके धर्मका पूजन करे, घीकी आहुति दे और ब्राह्मणोंको भोजन कराये। २. कृष्णपक्षकी दशमीको धर्मका पूजन करके व्रत करे। ३. कृष्ण और शुक्ल दोनोंकी दशमीको धर्मका यथाविधि पूजन करके व्रत करे तो इस व्रतत्रयसे पापोंका नाश और आयु, आरोग्य एवं ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है।

(१७) दशादित्यव्रत (स्कन्दपुराण)—यद्यपि यह व्रत किसी भी शुक्ल दशमीको रविवार हो उसी दिन किया जाता है तथापि मार्गशीर्ष, माघ और वैशाखके व्रतारम्भका अधिक फल होता है। मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी रविवारको नदी, तालाब या झरने आदिपर जाकर प्रातःस्नानादि नित्यकर्म करके मध्याह्नमें स्नान करे और घर आकर देव तथा पितरोंको तृप्त करके वेदी बनाये। (१) उसपर १२ आर (नोक या कोण)-का कमल लिखे और उसपर स्वर्णनिर्मित सूर्यमूर्ति स्थापित करके सूर्यके मन्त्रोंसे आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, फल, ताम्बूल, दक्षिणा और विसर्जन—इन

उपचारोंसे पूजन करे। (२) गोबरसे पोती हुई वेदीपर काले रंगकी—१ दुर्मुखी, २ दीनवदना, ३ मलिना, ४ सत्यनाशिनी, ५ बुद्धिनाशिनी, ६ हिंसा, ७ दुष्टा, ८ मित्रविरोधिनी, ९ उच्चाटनकारिणी और १० दुश्चिन्तप्रदा—ये दस पुत्रिका (पुतली) लिखकर इनकी नाम-मन्त्रोंसे पूजा और प्रतिष्ठा करे और '**नित्यं पापकरे पापे देवद्विजविरोधिनी। गच्छ त्वं दुर्दशे देवि नित्यं शास्त्रविरोधिनि॥**' से प्रार्थना करके विसर्जन करे। (३) सूत या रेशमके दस तारका डोरा बनाकर उसमें दस ग्रन्थि (गाँठ) लगाये। आवाहनादि षोडश उपचारोंसे पूजन करे और सूर्यकी प्रार्थना करे। फिर दक्षिणासहित दस फल लेकर '**भास्करो बुद्धिदाता च द्रव्यस्थो भास्करः स्वयम्। भास्करस्तारकोभाभ्यां भास्कराय नमोऽस्तु ते॥**' से वायन-दान करके भोजन करे और (४) वेदीके स्थानमें चन्दनकी १ सुबुद्धिदा, २ सुखकारिणी, ३ सर्वसम्पत्तिदा, ४ इष्टभोगदा, ५ लक्ष्मी, ६ कान्तिदा, ७ दुःखनाशिनी, ८ पुत्रप्रदा, ९ विजया और १० धर्मदायिनी—ये दस पुतली लिखकर नाममन्त्रोंसे इनका षोडशोपचार पूजन करे तथा '**विशुद्धवसनां देवीं सर्वाभरणभूषिताम्। ध्यायेद् दशदशां देवीं वरदाभयदायिनीम्।**' से प्रार्थना करके भोजन करे तो दुर्दशा दूर हो जाती है। 'दुर्दशा क्यों होती है?' इस विषयमें नारदजीने कश्यपजीसे पूछा, तब उन्होंने बतलाया था कि—'तुष, भस्म और मूसलका उल्लंघन करनेसे— कुमारी, रजकी (धोबिन) और वृद्धाके साथ संयोग होनेसे, अयोनि— (मुख, हाथ, गुदा) या ब्राह्मणी आदिसे ब्रह्मचर्य नष्ट होनेसे, शाम, सुबह या पर्वमें रजस्वलाके समीप जानेसे, संकटके समय माँ, बाप और मालिकको छोड़ देनेसे और अपने परम्परागत धर्म-कर्म और सदाचारका त्याग कर देनेसे दुर्दशा होती है। अतः न्यायमार्ग और सत्कर्ममें प्रवृत्त रहे और आपत्तिमें दशादित्यका व्रत करे। आपद्ग्रस्त होनेपर नल राजाने और पाण्डवोंने यह व्रत किया था।

(१८) शुक्लैकादशी (ब्रह्माण्डपुराण)—इसके शुद्धा, विद्धा और नियमादिका निर्णय यथापूर्व करनेके अनन्तर मार्गशीर्ष शुक्ल दशमीको मध्याह्नमें जौ और मूँगकी रोटी-दालका एक बार भोजन करके एकादशीको प्रातःस्नानादि करके उपवास रखे। भगवान्का पूजन करे और रात्रिमें जागरण करके द्वादशीको एकभुक्त पारण करे। यह एकादशी मोहका क्षय करनेवाली है। इस कारण इसका नाम 'मोक्षदा' रखा गया है। इसी दिन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको गीताका उपदेश किया था; अतः उस दिन गीता, श्रीकृष्ण, व्यास आदिकी पूजा करके गीता-जयन्तीका उत्सव मनाना चाहिये। गीतापाठ, गीतापर व्याख्यान आदि हो। सम्भव हो तो गीताका जुलूस भी निकालना चाहिये।

(१९) व्यंजनद्वादशी (व्रतोत्सव)—मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशीको भगवान्का षोडशोपचार पूजन करके अन्नकूटके समान अनेक प्रकारके भोजन-पदार्थ बनाकर विष्णुके अर्पण करे और प्रसादके अभिलाषी भगवद्भक्तोंको आदर और प्रेमके साथ प्रसाद दे। बादमें एक बार भोजन करे।

(२०) द्वादशादित्यव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशीसे आरम्भ करके प्रत्येक शुक्ल द्वादशीको १ मार्गशीर्षमें धाता, २ पौषमें मित्र, ३ माघमें अर्यमा, ४ फाल्गुनमें पूषा, ५ चैत्रमें शक्र, ६ वैशाखमें अंशुमान् , ७ ज्येष्ठमें वरुण, ८ आषाढ़में भग, ९ श्रावणमें त्वष्टा, १० भाद्रपदमें विवस्वान् , ११ आश्विनमें सविता और १२ कार्तिकमें विष्णु—इन नामोंसे सूर्यभगवान्का यथाविधि पूजन करे और जितेन्द्रिय होकर व्रत करे तो सब प्रकारकी आपत्तियोंका नाश और सब प्रकारके सुखोंकी वृद्धि होती है।

(२१) जनार्दनपूजा (कृत्यरत्नावली)—मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशीको प्रातःस्नानसे पवित्र होकर उपवास करके देवदेवेश

भगवान्‌का पूजन करे। पंचगव्यसे स्नान कराये। उसीका स्वयं पान करे और जौ तथा चावलोंका पात्र ब्राह्मणको दे। साथ ही **'सप्तजन्मसु यत् किंचिन्मया खण्डव्रतं कृतम्। भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे॥' 'यथाखिलं जगत् सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम। तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै॥'** से प्रार्थना करे।

(२२) अनंगत्रयोदशी (भविष्योत्तर)—मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशीको नदी, तालाब, कुआँ या घरपर स्नान करके अनंग नर्मदेश्वर महादेवका गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करके व्रत करे। विशेषता यह है कि मार्गशीर्षादि महीनोंमें—१ मधु, २ चन्दन, ३ न्यग्रोध, ४ बदरीफल, ५ करंज, ६ अर्कपुष्प, ७ जामुन, ८ अपामार्ग, ९ कमलपुष्प, १० पलास, ११ कुब्ज अपामार्ग और १२ कदम्ब—इनका पूजन और प्राशनमें यथाक्रम उपयोग करे। विशेष विधान मूल ग्रन्थमें देखें। इस व्रतसे शिवजी प्रसन्न होते हैं।

(२३) यमादर्शन (स्कन्दपुराण)—यह व्रत मार्गशीर्ष शुक्लकी जिस त्रयोदशीको क्रूर (सूर्य, भौम और शनि) वार न हों और सौम्य (सोम, बुध, बृहस्पति एवं शुक्र) वार हों उसी त्रयोदशीसे आरम्भ करके वर्षपर्यन्त करे। इसका विधान स्वयं यमने ही इस प्रकार प्रकाशित किया है कि उस दिन यम नामके 'काल, दण्डधर, अन्तक, शीर्णपाद, कंक, हरि और वैवस्वत' जैसे नामोंवाले आठ-पाँच (तेरह) ब्राह्मणोंको पवित्र स्थानमें अलग-अलग पूर्वाभिमुख बैठाकर मस्तक आदि अंगोंमें तैल-मर्दन करके कवोष्ण (साधारण गर्म) जलसे स्नान कराये और सुगन्धयुक्त गन्धादिसे चर्चित करके दूसरे स्थानमें उसी प्रकार पूर्वाभिमुख बैठाकर गुड़के सुस्निग्ध और सुस्वादु मालपूओंका यथारुचि भोजन कराये। उसके पीछे आचमन करवाकर ताँबेके

तेरह पात्रोंमें सोलह-सोलह किलो तिल और चावल भरकर '**लोकपालोऽधिना क्रूरो रौद्रो घोराननः शिवः। मम प्रसादात् सुमुखो ददात्वभयदक्षिणाम्॥**' से प्रणाम और प्रार्थना करके दक्षिणासहित उक्त तेरह पात्र उनके अर्पण करे तो इस व्रतके प्रभावसे यमका भयंकर रूप नहीं दीखता।

(२४) पिशाचमोचनयात्रा (काशीखण्ड)—यह सांवत्सरिक यात्रा मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशीको होती है। उस दिन कपर्दीश्वर (शिव)-के समीपमें स्नान करके यात्रा करे। इस यात्राके करनेवाले मनुष्यकी अन्यत्र मृत्यु होनेपर भी वह पिशाच नहीं होता और तीर्थपर लिये हुए दानादिका पाप नहीं रहता।

(२५) शिवचतुर्दशीव्रत (मत्स्यपुराण)—'शास्त्रोंमें इस व्रतका विधान विशेष प्रकारसे वर्णन किया है, यहाँ उसका सम्पूर्ण समावेश नहीं हो सकता । इसलिये संक्षेपसे प्रकाशित करते हैं।' इसके निमित्त मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशीको एकभुक्त व्रत करके चतुर्दशीको निराहार उपवास करे और शिवजीका पूजन करे। उसमें स्नान करानेके पीछे '**शिवाय नमः पादौ। सर्वात्मने नमः शिरः। त्रिनेत्राय नमः ललाटम्। हराय नमः नेत्रयुग्मम्। इन्दुमुखाय नमः मुखम्। श्रीकण्ठाय नमः स्कन्धौ। सद्योजाताय नमः कर्णौ। वामदेवाय नमः भुजौ। अघोरहृदयाय नमः हृदयम्। तत्पुरुषाय नमः स्तनौ। ईशानाय नमः उदरम्। अनन्तधर्माय नमः पार्श्वम्। ज्ञानभूताय नमः कटिम्। अनन्तवैराग्यसिंहाय नमः ऊरू। प्रधानाय नमः जंघे। व्योमात्मने नमः गुल्फौ** और **व्युप्तकेशात्मरूपाय नमः पृष्ठम् अर्चयामि।**' से अंगपूजा करके '**नमः पुष्ट्यै, नमस्तुष्ट्यै**' से पार्वतीका पूजन करे। उसके बाद वृषभ, सुवर्ण, जलपूर्ण कलश, गन्ध, पंचरत्न और अनेक प्रकारकी भोजनसामग्री—ये सब '**प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः**

पिनाकधृक्।' से प्रार्थना करके ब्राह्मणके अर्पण करे और थोड़ा घी खाकर भूमिमें उदङ्मुख शयन करे। फिर पूर्णिमाको ब्राह्मणोंका पूजन करके उनको भोजन कराये और इसी प्रकार कृष्ण चतुर्दशीको भी करे। आगे हर महीनेमें दोनों पक्षकी चतुर्दशीको शिव-पूजनादिके पश्चात् मार्गशीर्षमें गोमूत्र, पौषमें गोबर, माघमें गोदुग्ध, फाल्गुनमें गोदधि, चैत्रमें गोघृत, वैशाखमें कुशोदक, ज्येष्ठमें पंचगव्य, आषाढ़में बिल्व, श्रावणमें जौ, भाद्रपदमें गोशृंगजल, आश्विनमें जल और कार्तिकमें काले तिल—इनको यथाविधि भक्षण करे। शिवके पूजनमें मासभेदसे भी पुष्पादि अर्पण किये जाते हैं। यथा मार्गशीर्षमें सफेद कमल, पौषमें मन्दार, माघमें मालती, फाल्गुनमें धतूर, चैत्रमें सिन्दुवार, वैशाखमें अशोक, ज्येष्ठमें मल्लिका, आषाढ़में पाटल, श्रावणमें अर्क-पुष्प, भाद्रपदमें कदम्ब, आश्विनमें शतपत्री और कार्तिकमें उत्पल—इनसे देवदेवेश महादेवका पूजन करे तो महाफल प्राप्त होता है। शास्त्रोंमें इसका अनन्त फल लिखा है।

पौषके व्रत

कृष्णपक्ष

(१) संकष्टचतुर्थी (भविष्योत्तर)—पौष कृष्ण (चन्द्रोदयव्यापिनी पूर्वविद्धा) चतुर्थीको गणपति-स्मरणपूर्वक प्रातःस्नानादि नित्यकर्म करनेके पश्चात् '**मम सकलाभीष्टसिद्धये चतुर्थीव्रतं करिष्ये**' इस प्रकार संकल्प करके दिनभर मौन रहे। रात्रिमें पुनः स्नान करके गणपति-पूजनके पश्चात् चन्द्रोदयके बाद चन्द्रमाका पूजन करके अर्घ्य दे, फिर भोजन करे।

(२) अष्टकाश्राद्ध (आश्वलायन)—पौष कृष्ण अपराह्णव्यापिनी अष्टमीको शास्त्रोक्त विधिसे अष्टकाश्राद्ध करके ब्राह्मणभोजन करानेसे उत्तम फल मिलता है और न कराये तो दोष लगता है।

(३) रुक्मिणी-अष्टमी (व्रतकौस्तुभ)—पौष कृष्ण अष्टमीको कृष्ण, रुक्मिणी और प्रद्युम्नकी स्वर्णमयी मूर्तियोंका गन्धयुक्त गन्धादिसे पूजनकर उत्तम पदार्थ अर्पण करे और शक्ति हो तो सुवासिनी अच्छे वस्त्रोंवाली (सौभाग्यवती) आठ स्त्रियोंको भोजन करवाकर दक्षिणा दे तो रुक्मिणीजीकी प्रसन्नता प्राप्त होती है।

(४) कृष्णैकादशी (पद्मपुराण)—पौष कृष्ण एकादशीको उपवास करके भगवान्का यथाविधि पूजन करे। यह सफला एकादशी है; अतः नैवेद्यमें केला, बिजौरा, जंबीरी, नारियल, दाडिम (अनार) और पूगफलादि अर्पण करके रात्रिमें जागरण करे। प्राचीन कालमें चम्पावतीके माहिष्मन् राजाका लुम्पक नामक पुत्र कुमार्गी होकर धन-पुत्रादिसे हीन हो गया था। कई वर्ष कष्ट भोगनेके बाद एक रोज (एकादशीको) उसने फल बीनकर किसी पुराने पीपलकी जड़में रख दिये और असमर्थ होनेके कारण खाये नहीं। वह रातभर जागता रहा। इस प्रकार

अनायास किये गये व्रतसे भी भगवान् प्रसन्न हुए और उसे उसके पितासे आदरपूर्वक चम्पावतीका राज्य दिला दिया।

(५) सुरूपद्वादशी (व्रतार्क)—पौष कृष्ण पुष्पयुक्त द्वादशीके पहले दिन रात्रिमें जितेन्द्रिय होकर विष्णुका ध्यान करे और सफेद गौके छतपर सुखाये हुए गोबरकी आगमें घृतादियुक्त तिलोंकी १०८ आहुतिका हवन करे। दूसरे दिन द्वादशीको नदी या तालाब आदिपर स्नान करके भगवान्‌की सुवर्णमयी मूर्तिको तिलपूर्ण पात्रमें रखकर गन्धादिसे पूजन करे और तिल, फल आदिका भोग लगाकर '**नमः परमशान्ताय विरूपाक्ष नमोऽस्तु ते**' से अर्घ्य दे तथा विद्वान् ब्राह्मणको भोजन करवाकर उक्त मूर्ति उन्हें दान कर दे।

शुक्लपक्ष

(१) आरोग्यव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—पौष शुक्ल द्वितीयाको गोशृंगोदक (गायोंके सीगोंको धोकर लिये हुए जल)-से स्नान करके सफेद वस्त्र धारणकर सूर्यास्तके बाद बालेन्दु (द्वितीयाके चन्द्रमा)-का गन्धादिसे पूजन करे। जबतक चन्द्रमा अस्त न हो, तबतक गुड़, दही, परमान्न (खीर) और लवणसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट करके केवल गोरस (छाछ) पीकर जमीनपर शयन करे। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल द्वितीयाको एक वर्षतक चन्द्रपूजन और भोजनादि करके बारहवें महीने (मार्गशीर्ष)-में बालेन्दुका यथापूर्व पूजन करे और इक्षुरस (ईखके रस)-का घड़ा, सोना और वस्त्र ब्राह्मणको देकर भोजन करे तो रोगोंकी निवृत्ति और आरोग्यताकी प्रवृत्ति होती है तथा सब प्रकारके सुख मिलते हैं।

(२) विधिपूजा (ब्रह्मपुराण)—पौष शुक्ल द्वितीयाको गुरुवार हो तो प्रातःस्नानादिके अनन्तर यथाविधि विधिपूजा (ब्रह्माजीका पूजन) करके नक्तव्रत (रात्रिमें एक बार भोजन) करे तो उत्तम सम्पत्ति प्राप्त होती है।

(३) उभयसप्तमी (आदित्यपुराण)—यह व्रत पौष शुक्ल सप्तमीको उपवास करके तीनों संधियों (प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल)-में गन्ध, पुष्प और घृतादिसे सूर्यका पूजन करे और क्षारसिद्ध मोदक निवेदन करे (पकते हुए घीमें नमक डालकर उसे निकाल दे और फिर आटेको सेंककर मोदक बनावे)। ब्राह्मणोंको भोजन कराये, गोदान करे और भूमिपर शयन करे तो सब कामना सफल होती है।

(४) मार्तण्डसप्तमी (कृत्यकल्पतरु)—पौष शुक्ल सप्तमीको मार्तण्ड (सूर्य)-का पूजन करके गोदान करे। इस प्रकार वर्षपर्यन्त करे तो उत्तम फल प्राप्त होता है।

(५) महाभद्रा (कृत्यकल्पतरु)—पौष शुक्ल अष्टमीको बुधवार हो तो उस दिनके स्नान-दानादिसे शिवजी प्रसन्न होते हैं।

(६) जयन्ती अष्टमी (निर्णयामृत)—उसी (पौष शुक्लाष्टमी बुधके) दिन भरणी हो तो वह 'जयन्ती' होती है। उस दिन स्नान, दान, जप, होम, देवर्षिपितृतर्पण करनेसे तथा ब्राह्मणभोजन करानेसे कोटिगुना फल होता है।

(७) शुक्लैकादशी (ब्रह्मवैवर्त)—पौष शुक्ल एकादशी 'पुत्रदा' है। इसके उपवाससे पुत्रकी प्राप्ति होती है। प्राचीन कालमें भद्रावती नगरीके राजा वसुकेतुके पुत्र न होनेसे राजा, रानी दोनों दुःखी थे। उनके मनमें यह विचार उठा कि 'पुत्रके बिना गज, तुरग, रथ, राज्य, नौकर-चाकर और सम्पत्ति— सब निरर्थक है; अतः पुत्रप्राप्तिका उपाय करना चाहिये।' यह सोचकर राजा एक ऐसे गहन वनमें चला गया जिसमें बड़, पीपल, बेल, जामुन, केले, कदम्ब, टेंडू, लीची और आम आदि भरे हुए थे; जहाँ सिंह, व्याघ्र, वराह, शश, मृग, शृगाल और चार दाँतोंके हाथी आदि घूम रहे थे; शुक, सारिका, कबूतर, पपीहा और उल्लू आदि बोल रहे थे तथा साँप, बिच्छू, गोह

और कीट-पतंगादि डरा रहे थे। ऐसे सुहावने और डरावने जंगलमें एक अत्यन्त सुन्दर, मनोहर और मधुरतम जलपूर्ण सरोवरके तटपर मुनिलोग सत्कर्मोंका अनुष्ठान कर रहे थे। उनको देखकर राजाने अपना अभीष्ट निवेदन किया। तब महात्माओंने बतलाया कि 'आज पुत्रदा एकादशी है, इसका उपवास करो तो पुत्र प्राप्त हो सकता है।' राजाने वैसा ही किया और भगवत्कृपासे उसके यहाँ सर्वगुणसम्पन्न सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ।

(८) सुजन्मद्वादशी (वीरमित्रोदय)—यदि पौष शुक्ल द्वादशीको ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो उस दिन भगवान्‌का पूजन करके घीका दान करे, गोमूत्र पीकर उपवास करे और आगे माघादि महीनोंमें नियत वस्तुका दान और भोजन करके उपवास करे। जैसे माघमें चावलदान, जल-प्राशन; फाल्गुनमें जौदान, घृतभोजन; चैत्रमें सुवर्णदान, सुपक्व शाकभोजन; वैशाखमें जौदान, दूर्वाभोजन; ज्येष्ठमें जलदान, दधि-भोजन; आषाढ़में सोना, अन्न और जलदान, भात-भोजन; श्रावणमें छत्रदान, जौभोजन; भादोंमें दूधदान, तिलभोजन; आश्विनमें अन्नदान, सूर्यकिरणोंसे तपाये हुए जलका भोजन; कार्तिकमें गुड़-फांटदान, दूधभोजन और मार्गशीर्षमें मलयागिरिचन्दनका दान और दूधका भोजन कर उपवास करे तो कुलमें प्रधानता और घरमें सम्पत्ति होती है।

(९) घृतदान (कृत्यतत्त्वार्णव)—पौष शुक्ल १३ को भगवान्‌का पूजन करके ब्राह्मणको घीका दान दे तो सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं।

(१०) विरूपाक्षपूजन (हेमाद्रि)—पौष शुक्ल १४ को विरूपाक्षका पूजन करके तदनुकूल उपकरण महोक्ष (बड़ा बैल—साँड आदि)-का दान करे। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल चतुर्दशीको वर्षभर करनेसे राक्षसादिका भय नहीं होता और घरमें सुख, शान्ति एवं समृद्धिकी वृद्धि होती है।

(११) ईशानव्रत (कालिकापुराण)—पौष शुक्ल चतुर्दशीका व्रत करके पुष्ययुक्त पूर्णमासीको सुश्वेत वस्त्रसे आच्छादित की हुई वेदीपर चारों दिशाओंमें अक्षतोंकी चार ढेरियाँ बनाये। एक वैसी ही मध्यमें बनाये। उनपर पूर्वमें विष्णु', दक्षिणमें 'सूर्य', पश्चिममें 'ब्रह्मा' और उत्तरमें 'रुद्र' को स्थापित करे तथा सबके मध्यमें 'ईशान' की स्थापना करके उत्तम प्रकारके गन्ध-पुष्पादिसे पूजन कर और कर्पूरादिसे नीराजन (आरती) करके गोमिथुन (एक गौ और एक बैल)-का दान करे। ब्राह्मणोंको भोजन कराये और स्वयं गोमूत्र पीकर उपवास करे। इस प्रकार पाँच वर्ष करनेसे यह व्रत पूर्ण होता है। गोदानमें यह विशेषता है कि पहले वर्षमें एक गौ, एक बैल; दूसरे वर्षमें दो गौ, एक बैल; तीसरेमें तीन गौ, एक बैल; चौथेमें चार गौ, एक बैल और पाँचवेंमें पाँच गौ और एक बैल दान करे। बैल ब्रह्मचारी या साँड हो—खेती आदिमें जोता हुआ न हो तो इस व्रतके करनेसे सब प्रकारका सुख होता है और लक्ष्मी बढ़ती है।

माघके व्रत

कृष्णपक्ष

(१) माघस्नान (नानापुराणादि)—माघ, कार्तिक और वैशाख महापुनीत महीने माने गये हैं। इनमें तीर्थस्थानादिपर या स्वदेशमें रहकर नित्यप्रति स्नान-दानादि करनेसे अनन्त फल होता है। स्नान सूर्योदयके समय[1] श्रेष्ठ है। उसके बाद जितना विलम्ब[2] हो उतना ही निष्फल होता है। स्नानके लिये काशी और प्रयाग[3] उत्तम माने गये हैं। वहाँ न जा सके तो जहाँ भी स्नान करे, वहीं उनका स्मरण करे अथवा **'पुष्करादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा। आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम॥' 'हरिद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते। स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥' 'अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका। पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥' 'गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥'** का उच्चारण करे। अथवा वेगसे[4] बहनेवाली किसी भी नदीके जलसे स्नान करे अथवा रातभर छतपर रखे हुए जलपूर्ण घटसे स्नान करे अथवा दिनभर सूर्यकिरणोंसे तपे हुए जलसे स्नान करे। स्नानके आरम्भमें **'आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च। पापं नाशय मे देव**

---

१. 'स्नानकालश्च सूर्योदयः।' (त्रिस्थलीसेतौ)

२. उत्तमं तु सनक्षत्रं लुप्ततारं तु मध्यमम्।
सवितर्युदिते भूप ततो हीनं प्रकीर्तितम्॥ (ब्राह्मे)

३. काश्युद्भवे प्रयागे ये तपसि स्नान्ति मानवाः।
दशाश्वमेधजनितं फलं तेषां भवेद् ध्रुवम्॥ (काशीखण्ड)

४. सरित्तोयं महावेगं नवकुम्भस्थितं तथा।
वायुना ताडितं रात्रौ गंगास्नानसमं स्मृतम्॥

वाङ्मनः कर्मभिः कृतम्॥' से जलकी और '**दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च। प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम्॥**' से ईश्वरकी प्रार्थना करे और स्नान करनेके पश्चात् '**सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम। त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा॥**' से सूर्यको अर्घ्य देकर हरिका पूजन या स्मरण करे। माघस्नानके लिये ब्रह्मचारी, गृहस्थ, संन्यासी[१] और वनवासी—चारों आश्रमोंके; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णोंके; बाल, युवा और वृद्ध—तीनों अवस्थाओंके स्त्री, पुरुष या नपुंसक जो भी हों, सबको आज्ञा है; सभी यथानियम नित्यप्रति माघस्नान कर सकते हैं। स्नानकी अवधि[२] या तो पौष शुक्ल एकादशीसे माघ शुक्ल एकादशीतक या पौष शुक्ल पूर्णिमासे माघ शुक्ल पूर्णिमातक अथवा मकरार्कमें (मकरराशिपर सूर्य आये, उस दिनसे कुम्भ राशिपर जानेतक) नित्य स्नान करे और उसके अनन्तर यथावकाश मौन रहे। भगवान्‌का भजन या यजन करे। ब्राह्मणोंको अवारित[३] (बिना रोक) नित्य भोजन कराये। कम्बल, मृगचर्म[४], रत्न, कपड़े (कुरता, चादर, रूमाल, कमीज, टोपी),

---

१. ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
बालवृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः ....
स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलम्। (भविष्ये)
'सर्वेऽधिकारिणो ह्यत्र विष्णुभक्तौ यथा नृप।' (पाद्मे)

२. एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषमासे समारभेत्।
द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा शुक्लपक्षे समापनम्॥ (ब्राह्मे)
'पुण्यान्यहानि त्रिंशत्तु मकरस्थे दिवाकरे।' (विष्णु)

३. 'एवं स्नात्वावसाने तु भोज्यं देयमवारितम्।' (भविष्ये)

४. कम्बलाजिनरत्नानि वासांसि विविधानि च।
चोलकानि च देयानि प्रच्छादनपटास्तथा॥
उपानहौ तथा गुप्तमोचकौ पापमोचकौ। (भविष्ये)

उपानह् (जूते), धोती और पगड़ी आदि दे। एक या एकाधिक ३० द्विजदम्पती (ब्राह्मण-ब्राह्मणी)-के जोड़ेको षट्रस भोजन करवाकर '**सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिनिरंजनः।**' से सूर्यकी प्रार्थना करे। इसके बाद उनको अच्छे वस्त्र,*, सप्तधान्य और तीस मोदक दे। स्वयं निराहार, शाकाहार, फलाहार या दुग्धाहार व्रत अथवा एकभुक्त व्रत करे। इस प्रकार काम, क्रोध, मद, मोहादि त्यागकर भक्ति, श्रद्धा, विनय—नम्रता, स्वार्थत्याग और विश्वास—भावके साथ स्नान करे तो अश्वमेधादिके समान फल होता है और सब प्रकारके पाप-ताप तथा दुःख दूर हो जाते हैं।

(२) वक्रतुण्डचतुर्थी (भविष्योत्तर)—माघ कृष्ण चन्द्रोदय-व्यापिनी चतुर्थीको वक्रतुण्डचतुर्थी कहते हैं। इस व्रतका आरम्भ '**गणपतिप्रीतये संकष्टचतुर्थीव्रतं करिष्ये**'—इस प्रकार संकल्प करके करे। सायंकालमें गणेशजीका और चन्द्रोदयके समय चन्द्रका पूजन करके अर्घ्य दे। इस व्रतको माघसे आरम्भ करके हर महीनेमें करे तो संकटका नाश हो जाता है।

(३) संकष्टचतुर्थी (व्रतोत्सव)—यह प्रशस्त व्रत उपर्युक्त वक्रतुण्डचतुर्थीव्रतके समान किया जाता है।

(४) सर्वाप्तिसप्तमी (हेमाद्रि)—माघ कृष्ण सप्तमीको स्नान-दानादि करनेसे इच्छानुसार फल मिलता है।

(५) कृष्णैकादशी (हेमाद्रि)—माघ कृष्ण एकादशीको प्रातःस्नान करके 'श्रीकृष्ण' इस मन्त्रके ८, २८, १०८ या १००० जप करे। उपवास रखे। रात्रिमें जागरण और हवन करे। भगवान्का पूजन करे और '**सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज। गृहाणार्घ्यं**

---

* दम्पत्योर्वाससी सूक्ष्मे सप्तधान्यसमन्विते।
त्रिंशत्तु मोदका देयाः शर्करातिलसंयुताः॥ (नारद)
(विशेष माघी पूर्णिमा और अमाके उल्लेखमें देखना चाहिये।)

मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते॥'—इस मन्त्रसे अर्घ्य दे। यह 'षट्तिला' एकादशी है। इसमें (१) तिलोंके जलसे स्नान करे, (२) पिसे हुए तिलोंका उबटन करे, (३) तिलोंका हवन करे, (४) तिल मिला हुआ जल पीये, (५) तिलोंका दान करे और (६) तिलोंके बने (मोदक, बर्फी या तिलसकरी आदि)-का भोजन करे तो पापोंका नाश हो जाता है। इस व्रतकी कथा संक्षेपमें इस प्रकार है कि प्राचीन कालमें भगवान्की परमा भक्ता एक ब्राह्मणी थी; वह भगवत्सम्बन्धी उपवास-व्रत रखती, भगवान्की विधिवत् पूजा करती और नित्य-निरन्तर भगवान्का स्मरण किया करती थी। कठिन व्रत करने और पतिसेवा एवं घरकी सँभाल रखने आदिसे उसका शरीर सूख गया था, किंतु अपने जीवनमें उसने दानके निमित्त किसीको एक दाना भी नहीं दिया था। एक दिन स्वयं भगवान्ने कपालीका रूप धारणकर उससे भिक्षाकी याचना की, परंतु उसने उन्हें भी कुछ नहीं दिया। अन्तमें कपालीके ज्यादा बड़बड़ानेसे उसने मिट्टीका एक बहुत बड़ा ढेला दिया तो भगवान् उसीसे प्रसन्न हो गये और ब्राह्मणीको वैकुण्ठका वास दिया। परंतु वहाँ मिट्टीके परम मनोहर मकानोंके सिवा और कुछ भी नहीं था। तब उसने भगवान्की आज्ञासे षट्तिलाका व्रत किया और उसके प्रभावसे उसको सब कुछ प्राप्त हुआ।

(६) माघी अमा (वायु, देवी, ब्रह्म, हारीत, व्यासादि)—अमा और पूर्णिमा ये दोनों पर्वतिथियाँ हैं। इस दिन पृथ्वीके किसी-न-किसी भागमें सूर्य या चन्द्रमाका ग्रहण हो ही जाता है। इससे धर्मप्राण हिंदू इस दिन अवश्य दान-पुण्यादि कर्म करते हैं। हिमपिण्ड चन्द्रका आधा भाग काला और आधा सफेद है। सफेदपर सूर्यकिरण पड़नेसे वह प्रकाशित होता है। जब चन्द्रमा क्षीण होकर दीखता नहीं,

तब उस तिथिको अमा कहते हैं और पूर्ण चन्द्रसे पूर्णिमा होती है। जिस अमामें चन्द्रकी कुछ सफेदी हो, वह 'सिनीवाली' और कोयलके शब्द करने जितनी हो वह 'कुहू' होती है। इसी प्रकार पूर्ण चन्द्रकी पूर्णिमा 'राका' और कलामात्र कमकी 'अनुमती' होती है। सिनीवाली और कुहूके भेदसे अमा तथा राका और अनुमतीके भेदसे पूर्णिमा दोनों दो प्रकारकी हैं। चन्द्रमा सूर्यसे नीचा है; अतः पूर्णिमाको इसका काला भाग और अमाको सफेद भाग सूर्यकी ओर रहनेसे पृथ्वीपर किये गये दान, पुण्य और भोजनादिके बाष्पसम्भूत अंश सूर्यकी किरणोंसे आकर्षित होकर चन्द्रमण्डलमें (जहाँ पितृगण रहते हैं) चले जाते हैं। इसी कारण अमाको पितृ-श्राद्धादि करनेका विधान किया गया है। अमाके दिन चन्द्रका प्रकाशमान भाग सूर्यके आगे आ जानेसे सूर्यग्रहण और पूर्णिमाको नीचे गये हुए सूर्यसे उठी हुई पृथ्वीकी छाया चन्द्रके सामने आ जानेसे चन्द्रग्रहण होता है। 'लोकान्तरमें कहीं भी ग्रहण हुआ होगा'—इस सम्भावनासे धर्मज्ञ मनुष्य अमा और पूर्णिमाको स्नान-दानादि पुण्य कर्म किया करते हैं। ग्रहण तब होता है, जब सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी (तीनों) एक सीधमें आते हैं; अन्यथा नहीं होता। व्रतादिमें अमावस्या परविद्धा (प्रतिपदायुक्त) लेनी चाहिये। चतुर्दशीयुक्त यानी पूर्वविद्धा अमा निषिद्ध मानी गयी है। '**पूर्वाह्णो वै देवानाम्, मध्याह्नो मनुष्याणामपराह्णः पितॄणाम्**' के अनुसार दिनको (लगभग १०-१० घड़ीके) तीन भागोंमें विभाजित मानकर जप, ध्यान और उपासना आदिके कार्य प्रथम तृतीयांश (लगभग १० घड़ी दिन चढ़ेतक) करने चाहिये। संस्कारादि एवं आयुर्बलवित्तादिप्राप्तिके प्रयोगादि 'मनुष्यकार्य' दूसरे तृतीयांश (मध्य दिनकी लगभग १० घड़ी)-में करने चाहिये और श्राद्ध, तर्पण एवं हंतकारादि 'पितृकार्य' तीसरे तृतीयांश (दिनास्तसे पहलेतककी लगभग १० घड़ी)-में करने चाहिये।

(७) विधिपूजा (भविष्योत्तर)—माघी अमाको प्रतिदिनके स्नान-दानादिके पश्चात् वस्त्राच्छादित वेदीपर वेद-वेदांगभूषित ब्रह्माजीका गायत्रीसहित पूजन करे और नवनीत (मक्खन)-की देनेवाली गौका तथा सुवर्ण, छत्र, वस्त्र, उपानह्, शय्या, अंजन और दर्पणादि '**स्थानं स्वर्गेऽथ पाताले यन्मर्त्ये किंचिदुत्तमम्। तदवाप्नोत्यसंदिग्धं पद्मयोनेः प्रसादतः॥**' इस मन्त्रसे निवेदन करके ब्राह्मणको दे और '**यत्किंचिद् वाचिकं पापं मानसं कायिकं तथा। तत् सर्वं नाशमायाति युगादितिथिपूजनात्॥**' को स्मरणकर शुद्ध भावसे सजातियोंसहित भोजन करे।

(८) अर्धोदय (महाभारत)—माघ कृष्ण अमावस्याको रविवार, व्यतीपात और श्रवण हो तो 'अर्धोदय' योग होता है। इस योगमें स्कन्दपुराणके लेखानुसार सभी स्थानोंका जल गंगातुल्य हो जाता है और सभी ब्राह्मण ब्रह्मसंनिभ शुद्धात्मा हो जाते हैं। अतः इस योगमें यत्किंचित् किये हुए स्नान-दानादिका फल भी मेरुसमान होता है।

(९) पात्रदान (स्कन्दपुराण)—अर्धोदय योगवाली अमावस्याको साठ, चालीस या पचीस माशा सुवर्णका अथवा चाँदीका पात्र बनाकर उसमें खीर भरे और पृथ्वीपर अक्षतोंका अष्टदल लिखकर उसपर ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप उपर्युक्त पात्रको स्थापित करके गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और फिर सुपठित ब्राह्मणको दे तो समुद्रान्त पृथ्वीदान करनेके समान फल होता है। यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि इस व्रतमें गोदान, शय्यादान और जो भी देय द्रव्य हों तीन-तीन दे। अर्धोदय योगके अवसरपर सत्ययुगमें वसिष्ठजीने, त्रेतामें रामचन्द्रजीने, द्वापरमें धर्मराजने और कलियुगमें पूर्णोदर (देवविशेष)-ने अनेक प्रकारके दान, धर्म किये थे; अतः धर्मज्ञ सत्पुरुषोंको अब भी अवश्य करना चाहिये।

शुक्लपक्ष

(१) गुड़-लवणदानव्रत (भविष्योत्तर)—माघ शुक्ल तृतीयाको गुड़ और लवणका दान करे तो गुड़से देवी और लवणसे प्रभु प्रसन्न होते हैं।

(२) वरदा चतुर्थी (निर्णयामृत)—माघ शुक्ल चतुर्थीको कुन्दके पुष्पोंसे शिवजीका पूजन करनेसे श्रीकी प्राप्ति होती है।

(३) गौरीव्रत (ब्रह्मपुराण)—माघ शुक्ल चतुर्थीको गन्ध, पुष्प, धूप-दीप और नैवेद्य आदिसे उमाका पूजन करके गुड़, अदरख, लवण, पालक और खीर इनसे बलि देकर ब्राह्मणोंको भोजन कराये।

(४) कुण्डचतुर्थी (देवीभागवत)—माघ शुक्ल चतुर्थीको उपवास करके देवीका पूजन करे। अनेक प्रकारके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, फल, पत्र, धान्य, बीज और सब प्रकारकी नैवेद्य-सामग्री अर्पण करे तथा शूर्प या मिट्टीके पात्रमें उक्त नैवेद्य-सामग्री भरकर ब्राह्मणको दे तो संतति और सौभाग्य दोनों प्राप्त होते हैं।

(५) ढुण्ढिपूजा (त्रिस्थलीसेतु)—माघ शुक्ल चतुर्थीको नक्तव्रतमें परायण होकर काशीवासी ढुण्ढिराजका पूजन करे, सफेद तिल और चीनीके मोदक अर्पण करे, तिलोंकी आहुति दे और रात्रिमें एकभुक्त करके जागरण करे तो उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

(६) शान्तिचतुर्थी (भविष्यपुराण)—माघ शुक्ल चतुर्थीको गणेशजीका पूजन करके घीमें सने हुए गुड़के अपूप (पूआ) और लवणके पदार्थ अर्पण करे और गुरुदेवकी पूजा करके उनको गुड़, लवण और घी दे तो इस व्रतसे सब प्रकारकी स्थिर शान्ति प्राप्त होती है।

(७) अंगारकचतुर्थी (मत्स्यपुराण)—यदि माघ शुक्ल चतुर्थीको मंगलवार हो तो उस दिन प्रातःस्नानके पहले शरीरमें मिट्टी लगाकर शुद्ध स्नान करे, लाल धोती पहने, पद्मरागमणि धारण करे और उत्तराभिमुख बैठकर '**अग्निमूर्द्धा०**' इस मन्त्रका जप करे। जिसके

यज्ञोपवीत न हो, वह '**अंगारकाय भौमाय नमः**' का जप करे। फिर भूमिको गोबरसे लीपकर उसपर लाल चन्दनका अष्टदल बनाये तथा उसकी पूर्वादि चारों दिशाओंमें भक्ष्य-भोजन और चावलोंसे भरे हुए चार करवे रखे तथा उनका गन्धाक्षतादिसे पूजन करके कपिला गौ और लाल रंगका अतीव सौम्य धुरंधर बैल दे और साथमें शय्या दे तो सहस्रगुण फल होता है।

(८) गणेशव्रत (भविष्यपुराण)—माघ शुक्ल पूर्वविद्धा चतुर्थीको प्रातःस्नानादि करनेके पश्चात् '**ममाखिलाभिलषितकार्य-सिद्धिकामनया गणेशव्रतं करिष्ये**' इस मन्त्रसे संकल्प करके वेदीपर लाल वस्त्र बिछाये। लाल अक्षतोंका अष्टदल बनाकर उसपर सिन्दूरचर्चित गणेशजीको स्थापित करे। स्वयं लाल धोती पहनकर लाल वर्णके फल-पुष्पादिसे षोडशोपचार पूजन करे। नैवेद्यमें (भिगोकर छीली हुई) हल्दी, गुड़, शक्कर और घी—इनको मिलाकर भोग लगाये और नक्तव्रत (रात्रिमें एक बार भोजन) करे तो सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध होते हैं।

(९) सुखचतुर्थी (भविष्यपुराण)—सुमन्तुरुके '**चतुर्थी तु चतुर्थी तु यदांगारकसंयुता। चतुर्थ्यां तु चतुर्थ्यां तु विधानं शृणु यादृशम्॥**' के अनुसार माघ शुक्ल चतुर्थीको यदि मंगलवार हो तो लाल वर्णके गन्ध, अक्षत और पुष्प, नैवेद्यसे गणेशजीका पूजन करके उपवास करे। इस प्रकार चतुर्थ-चतुर्थ (चौथी, चौथी) चतुर्थी (माघ, वैशाख, भाद्रपद और पौष)-का एक वर्ष व्रत करे तो सब प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं। प्रत्येक चतुर्थीको भौमवार होना आवश्यक है।

(१०) यमव्रत (हेमाद्रि)—माघ शुक्ल चतुर्थीको भरणी नक्षत्र और शनिवार हो तो उस दिन यमका पूजन और तन्निमित्त व्रत करनेसे यमके भयकी निवृत्ति और स्वर्गीय सुखकी प्रवृत्ति होती है।

(११) श्रीपंचमी-वसन्तपंचमी (पुराणसमुच्चय)—माघ शुक्ल

पूर्वविद्धा पंचमीको उत्तम वेदीपर वस्त्र बिछाकर अक्षतोंका अष्टदल कमल बनाये। उसके अग्रभागमें गणेशजी और पृष्ठभागमें 'वसन्त' जौ, गेहूँकी बालका पुंज (जो जलपूर्ण कलशमें डंठलसहित रखकर बनाया जाता है) स्थापित करके सर्वप्रथम गणेशजीका पूजन करे और पीछे उक्त पुंजमें रति और कामदेवका पूजन करे तथा उनपर अबीर आदिके पुष्पोपम छींटे लगाकर वसन्तसदृश बनाये। तत्पश्चात् '**शुभा रतिः प्रकर्तव्या वसन्तोज्ज्वलभूषणा। नृत्यमाना शुभा देवी समस्ताभरणैर्युता॥ वीणावादनशीला च मदकर्पूरचर्चिता।**' से 'रति' का और '**कामदेवस्तु कर्तव्यो रूपेणाप्रतिमो भुवि। अष्टबाहुः स कर्तव्यः शंखपद्मविभूषणः॥ चापबाणकरश्चैव मदादंचितलोचनः। रतिः प्रीतिस्तथा शक्तिर्मदशक्तिस्तथोज्ज्वला॥ चतस्त्रस्तस्य कर्तव्याः पत्न्यो रूपमनोहराः। चत्वारश्च करास्तस्य कार्या भार्यास्तनोपगाः॥ केतुश्च मकरः कार्यः पंचबाणमुखो महान्।**' से कामदेवका ध्यान करके विविध प्रकारके फल, पुष्प और पत्रादि समर्पण करे तो गार्हस्थ्यजीवन सुखमय होकर प्रत्येक कार्यमें उत्साह प्राप्त होता है।

(१२) मन्दारषष्ठी (भविष्योत्तर)—यह व्रत तीन दिनमें पूर्ण होता है। एतन्निमित्त माघ शुक्ल पंचमीको सम्पूर्ण कामना त्याग करके जितेन्द्रिय होकर थोड़ा-सा भोजन करके एकभुक्त व्रत करे। षष्ठीको प्रातःस्नानादि नित्यकर्म करनेके बाद ब्राह्मणसे आज्ञा लेकर दिनभर व्रत रखे और रात्रि होनेपर केवल मन्दारके पुष्पको भक्षण करके उपवास करे तथा सप्तमीके प्रभातमें पुनः स्नान करके ब्राह्मणोंका पूजन करे और मन्दार (आक)-के आठ पुष्प लाकर ताँबेके पात्रमें काले तिलोंका अष्टदल कमल बनाये। उसकी प्रत्येक कर्णिका (कली या कोण)-पर एक-एक पुष्प रखे और बीचमें सुवर्णनिर्मित सूर्यनारायणकी मूर्ति स्थापित करके—'**भास्कराय नमः**' से पूर्वके, '**सूर्याय नमः**' से अग्निके,

‘**सूर्याय नमः**’ से दक्षिणके, ‘**यज्ञेशाय नमः**’ से नैर्ऋत्यके, ‘**वसुधाम्ने नमः**’ से पश्चिमके, ‘**चण्डभानवे नमः**’ से वायव्यके, ‘**कृष्णाय नमः**’ से उत्तरके और ‘**श्रीकृष्णाय नमः**’ से ईशानके अर्कपुष्पका स्थापन और पूजन करे और पद्मके मध्यमें स्थापित की हुई सुवर्णमूर्तिका ‘**सूर्याय नमः**’ इस मन्त्रसे पूजन करे। तैल तथा लवणवर्जित भोजन करे। इस प्रकार प्रतिज्ञापूर्वक महीने-के-महीने प्रत्येक सप्तमीको वर्षपर्यन्त व्रत करके समाप्तिके दिन कलशपर रक्त सूर्यमूर्ति स्थापितकर पूजन करे और ‘**नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च। त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात् संसारसागरात्॥**’ से प्रार्थना करके सूर्यमूर्ति सुपठित ब्राह्मणको दे तो उसके सब पाप दूर हो जाते हैं और वह स्वर्गमें जाता है।

(१३) दारिद्र्यहरषष्ठी (स्कन्दपुराण)—माघ शुक्ल षष्ठीसे आरम्भ करके प्रत्येक षष्ठीको एकभुक्त, नक्त, अयाचित या उपवास करके ब्राह्मणको भोजन कराये और कटोरेमें दूध, घी, भात और शक्कर भरकर (प्रति षष्ठीको) वर्षपर्यन्त दान करे तो उसके कुलसे दरिद्र दूर हो जाता है।

(१४) भानुसप्तमी (बहुसम्मत)—यह माघ शुक्ल सप्तमीको होती है। प्राणिमात्रकी जीवनशक्तिको जीवित रखनेवाले प्रत्यक्ष ईश्वर सूर्यनारायणने मन्वन्तरके आदिमें इसी दिन अपना प्रकाश प्रकाशित किया था। अतः यह जयन्ती भी है। इस दिन सूर्यकी उपासनाके कई कृत्य कई प्रयोजनों और प्रकारोंसे किये जाते हैं। इस कारण इसके ‘अर्क-अचलारथ-सूर्य और भानुसप्तमी’ आदि कई नाम हैं। यह अरुणोदयव्यापिनी ली जाती है। यदि दो दिन अरुणोदयव्यापिनी हो तो पहली लेना चाहिये। स्नानके विषयमें यह स्मरण रहे कि जो माघ-स्नान करते हों, वे इसी दिन अरुणोदय (पूर्व दिशाकी प्रातःकालीन लालिमा) होनेपर और भानुसप्तमी-निमित्त

स्नान करनेवालोंको सूर्योदयके बाद स्नान करना चाहिये। स्नान करनेके पहले आकके सात पत्तों और बेरके सात पत्तोंको कसुम्भाकी बत्तीवाले तिल-तैलपूर्ण दीपकमें रखकर उसको सिरपर रखे और सूर्यका ध्यान करके गन्नेसे जलको हिलाकर दीपकको प्रवाहमें बहा दे। दिवोदासके मतानुसार दीपकके बदले आकके सात पत्ते सिरपर रखकर ईखसे जलको हिलाये और '**नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः। वरुणाय नमस्तेऽस्तु**' पढ़कर दीपकको बहा दे। फिर '**यद् यज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम्। मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः॥ इति सप्तविधं पापं स्नानान्ते सप्तसप्तिके। सप्तव्याधिसमाकीर्णं हर भास्करि सप्तमि॥**' इनका जप करके केशव और सूर्यको देखकर पादोदक (गंगाजल अथवा चरणामृत)-को जलमें डालकर स्नान करे तो क्षणभरमें पाप दूर हो जाते हैं। इसके बाद अर्घ्येमें जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, दूर्वा, सात अर्कपत्र और सात बदरीपत्र रखकर '**सप्तसप्तिवह प्रीत सप्तलोकप्रदीपन। सप्तम्या सहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥**' से सूर्यको और '**जननी सर्वलोकानां सप्तमी सप्तसप्तिके। सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते सूर्यमण्डले॥**' से सप्तमीको अर्घ्य दे। इसी दिन तालक-दानके निमित्त नित्यनियमसे निवृत्त होकर चन्दनसे अष्टदल लिखे। पूर्वादिक्रमसे उसकी आठों कर्णिका (कोणों)-पर शिव, शिवा, रवि, भानु , वैवस्वत, भास्कर, सहस्रकिरण और सर्वात्मा इनका यथाक्रम स्थापन और पूजन करके—ताम्रादिके पात्रमें कांचन कर्णाभरण (कुण्डल), घी, गुड़ और तिल रखकर लाल वस्त्रसे ढँके और गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके '**आदित्यस्य प्रसादेन प्रातःस्नानफलेन च। दुष्टदुर्भाग्यदुःखघ्नं मया दत्तं तु तालकम्॥**' से ब्राह्मणको दे

'भानुसप्तमी' के निमित्त प्रातःस्नानादिसे निश्चिन्त होकर समीपमें सूर्यमन्दिर हो तो उसके सम्मुख बैठे अथवा सुवर्णादिकी छोटी मूर्ति

हो तो उसे अष्टदल कमलके बीचमें स्थापितकर '**ममाखिलकामना-सिद्ध्यर्थे सूर्यनारायणप्रीतये च सूर्यपूजनं करिष्ये।**' से संकल्प करके—'**ॐ सूर्याय नमः**' इस नाममन्त्रसे अथवा पुरुषसूक्तादिसे आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करे। ऋतुकालके पत्र, पुष्प, फल, खीर, मालपुआ, दाल-भात या दध्योदनादिका नैवेद्य निवेदन करे और भगवान्‌को सर्वांगपूर्ण रथमें विराजमान करके गायन-वादन और स्वजन-परिजनादिको साथ लेकर नगर-भ्रमण करवाकर यथास्थान स्थापित करे। ब्राह्मणोंको खीर आदिका भोजन करवाकर दिनास्तसे पहले स्वयं एक बार भोजन करे। उस दिन तैल और लवण न खाय। इस प्रकार प्रतिवर्ष करे तो सूर्योपरागादिमें कियेके समान अक्षय पुण्य होता है।

(१५) महती सप्तमी (मत्स्यपुराण)—इसी माघ शुक्ल सप्तमीको रथारूढ़ सूर्यनारायणका पूजन करके उपवास करे तो सात जन्मके पाप दूर होते हैं। यही रथसप्तमी भी है।

(१६) रथांकसप्तमी (हेमाद्रि)—इसी सप्तमीको उपवास करके सूर्यका पूजन करे, उनको सुवर्णके रथमें स्थापित करके और प्रत्येक शुक्ल सप्तमीको पूजन करके वर्षके अन्तमें ब्राह्मणको दे।

(१७) पुत्रसप्तमी (आदित्यपुराण)—माघ शुक्ल षष्ठीको उपवास करके सप्तमीके प्रातःकालमें स्नान करे और सूर्यनारायणका पूजन एवं तन्निमित्त हवन करके दूध, दही, भात या खीर आदिका ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इसी प्रकार कृष्णपक्षमें उपवास करके लाल कमलके पुष्पादिसे सूर्यका पूजन करे तो वर्षपर्यन्त करनेसे उत्तम पुत्रकी उपलब्धि होती है।

(१८) सप्तसप्तमी (सूर्यारुण-हेमाद्रि)—जिस प्रकार योगविशेषसे वारुणी, महावारुणी, महामहावारुणी या माघी, महामाघी, महामहामाघी अथवा जया, विजया, महाजया आदि होती हैं उसी प्रकार वारादिके योगविशेषसे माघ शुक्ल सप्तमीके

भी कई भेद होते हैं। यथा—१ जया, २ विजया, ३ महाजया, ४ जयन्ती, ५ अपराजिता, ६ नन्दा और ७ भद्रा अथवा १ अर्कसम्पुटक, २ मरीचि, ३ निम्बपत्र, ४ सुफला, ५ अनोदना, ६ विजया और ७ कामिका—ये सब रविवारको पंचतारक (रो० श्ले० म० ह०) अथवा पुन्नाम (मृ० पुन० पु० ह० अनु०) नक्षत्र होनेसे सिद्ध होती हैं। इनमें व्रत-उपवास, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, हवन और ब्राह्मण-भोजनादि करने-करानेसे अनन्त फल होता है। विशेषकर १ अर्कसम्पुटकसे धनवृद्धि, २ मरीचिसे प्रियपुत्रादिका संगम, ३ निम्बपत्रीसे रोगनाश, ४ सुफलासे पुत्र-पौत्र-दौहित्रादिकी अपूर्व अभिवृद्धि, ५ अनोदनासे धन-धान्य, सुवर्ण, चाँदी और आरोग्यलाभ, ६ विजयासे शत्रुनाश और ७ कामिकासे सब प्रकारकी अभीष्टसिद्धि होती है। इनके निमित्त माघ शुक्ल सप्तमीको प्रातःस्नानादिके पश्चात् आकाशस्थ सूर्यका अथवा सुवर्णादिनिर्मित सूर्यमूर्तिका यथालब्ध उपचारोंसे पूजन करके खीर, मालपुआ, दाल-भात, दूध-दही अथवा दध्योदनादिका नैवेद्य अर्पण करे और पीछे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे तो यथोक्त फल मिलता है।

(१९) भीष्माष्टमी (धवलनिबन्ध)—माघ शुक्ल अष्टमीको जौ, तिल, गन्ध, पुष्प, गंगाजल और दर्भ आदिसे भीष्मजीका श्राद्ध अथवा तर्पण करे तो अभीष्टसिद्धि होती है। यदि तर्पणमात्र भी न किया जाय तो पाप होता है। श्राद्धके अवसरमें भीष्मका पूजन भी किया जाता है, अतः उसमें '**वसूनामवताराय शंतनोरात्मजाय च। अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबाल्यब्रह्मचारिणे॥**' इस मन्त्रसे अर्घ्य दे।

(२०) शुक्लैकादशी (पद्मपुराण)—माघ शुक्ल एकादशीका नाम 'जया' है। इसका व्रत करनेसे पिशाचत्व मिट जाता है। एक बार इन्द्रकी सभामें युवक माल्यवान् और युवती पुष्पवतीके

लज्जाहीन बर्तावसे रुष्ट होकर इन्द्रने उनको पिशाच बना दिया था, उससे उनको बड़ा दु:ख हुआ। अन्तमें उन दोनोंने माघ शुक्ल एकादशीका उपवास किया, तब अपनी पूर्वावस्थाको प्राप्त हुए।

(२१) तिलद्वादशी (ब्रह्मपुराण)—यह व्रत षट्तिलाके समान है। इसके लिये माघ शुक्ल द्वादशीको तिलोंके जलसे स्नान करे। तिलोंसे विष्णुका पूजन करे। तिलोंके तेलका दीपक जलाये। तिलोंका नैवेद्य बनाये। तिलोंका हवन करे और तिलोंका दान करके तिलोंका ही भोजन करे तो इस व्रतके प्रभावसे स्वाभाविक, आगन्तुक, कायकान्तर और सांसर्गिक सम्पूर्ण व्याधि दूर होती है और सुख मिलता है।

(२२) भीमद्वादशी (हेमाद्रि)—यह भी इसी माघ शुक्ल द्वादशीको होती है। इसमें व्रतको ब्रह्मार्पण करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये और फिर पारण करे। शेष विधि एकादशीके समान करे।

(२३) दिनत्रयव्रत (पद्मपुराण)—माघस्नान ३० दिनमें पूर्ण होता है, परंतु इतने समयकी सामर्थ्य अथवा अनुकूलता न हो तो माघ शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाके अरुणोदयमें स्नानादि करके व्रत करे और यथानियम दान-पुण्य करे तो सम्पूर्ण माघस्नानका फल मिलता है।

(२४) माघी पूर्णिमा (दानचन्द्रोदय)—माघ शुक्ल पूर्णिमाको प्रात:स्नानादिके पीछे विष्णुका पूजन करे, पितरोंका श्राद्ध करे, असमर्थोंको भोजन, वस्त्र और आश्रय दे, तिल, कम्बल, कपास, गुड़, घी, मोदक, उपानह्, फल, अन्न और सुवर्णादिका दान करे और व्रत या उपवास करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये और कथा सुने।

(२५) महामाघी (कृत्यचन्द्रिका)—माघ शुक्ल पूर्णिमाको मेषका शनि, सिंहके गुरु-चन्द्र और श्रवणका सूर्य हो तो इनके सहयोगसे महामाघी सम्पन्न होती है। इसमें स्नान-दानादि जो भी किये जायँ, उनका अमिट फल होता है।

फाल्गुनके व्रत

कृष्णपक्ष

(१) संकष्टचतुर्थी (भविष्योत्तर)—यह व्रत प्रत्येक मासकी कृष्ण चतुर्थीको किया जाता है। इसमें चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थी लेनी चाहिये। यदि वह दो दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो '**मातृविद्धा प्रशस्यते**' के अनुसार पहले दिन व्रत करे। व्रतीको चाहिये कि वह प्रातःस्नानादिके पश्चात् व्रत करनेका संकल्प करके दिनभर मौन रहे और सायंकालमें पुनः स्नान करके लाल वस्त्र धारणकर ऋतुकालके गन्ध-पुष्पादिसे गणेशजीका पूजन करे, उसके बाद चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाका पूजन करे और अर्घ्य एवं वायन देकर स्वयं भोजन करे तो सुख, सौभाग्य और सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है। इसकी कथा यह है कि सत्ययुगमें राजा युवनाश्वके पास सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता ब्रह्मशर्मा नामके ब्राह्मण थे, जिनके सात पुत्र और सात पुत्रवधुएँ थीं। ब्रह्मशर्मा जब वृद्ध हुए, तब बड़ी छः बहुओंकी अपेक्षा छोटी बहूने श्वशुरकी अधिक सेवा की। तब उन्होंने संतुष्ट होकर उससे संकष्टहर चतुर्थीका व्रत करवाया, जिसके प्रभावसे वह मरणपर्यन्त सब प्रकारके सुख-साधनोंसे संयुक्त रही।

(२) जानकीव्रत (निर्णयसिन्धु)—यह व्रत फाल्गुन कृष्ण अष्टमीको किया जाता है। इसमें जनकनन्दिनी श्रीजानकीजीका पूजन होता है। गुरुवर वसिष्ठजीके कहनेपर भगवान् रामचन्द्रजीने समुद्रतटकी तपोमय भूमिपर बैठकर यह व्रत किया था। अतः सर्व-साधारणको चाहिये कि वे अपनी अभीष्टसिद्धिके लिये इस व्रतको अवश्य करें। इसमें सर्वधान्य (जौ-चावल आदि)-के चरु (खीर)-का हवन और अपूप (पूए) आदिका नैवेद्य अर्पण किया जाता है। इसमें '**व्रतमात्रेऽष्टमी कृष्णा पूर्वा शुक्लेऽष्टमी**

परा' के अनुसार पूर्वविद्धा अष्टमी ली जाती है।[1] अन्य वैष्णवग्रन्थोंके मतानुसार वैशाख शुक्ल नवमीको जानकीजीका जन्म हुआ था, जो जानकी-नवमीके नामसे प्रसिद्ध है।

(३) कृष्णैकादशी (स्कन्दपुराण)—यह व्रत प्रत्येक मासमें किया जाता है। शुद्धा, विद्धा आदिका पूरा निर्णय चैत्रके व्रत-परिचयमें दिया गया है। वहीं इसके सम्बन्धकी अन्य ज्ञातव्य बातें भी बतायी गयी हैं। इस एकादशीका नाम 'विजया' है। इसके प्रभावसे व्रतीका जय होता है। लंका-विजय करनेकी कामनासे 'बकदाल्भ्य' मुनिके आज्ञानुसार समुद्रके तटपर भगवान् रामचन्द्रने इसी एकादशीका व्रत किया था, जिससे रावणादि मारे गये और श्रीरामचन्द्रकी विजय हुई।

(४) प्रदोष (व्रतोत्सव)—इस सुप्रशस्त व्रतका उल्लेख पिछले सभी महीनोंमें किया गया है और मासानुकूल विधान भी प्रत्येक व्रतके साथ लिख दिया है। अतः व्रतीको चाहिये कि सभी महीनोंके प्रदोषव्रतका विधान देखकर व्रत करे और इसके उपयोगी जो कुछ विशेष विधान हों, उनका पालन करे।

(५) शिवरात्रि (नानापुराणशास्त्राणि)—यह व्रत फाल्गुन कृष्ण[2] चतुर्दशीको किया जाता है। इसको प्रतिवर्ष[3] करनेसे यह 'नित्य'

---

१. फाल्गुनस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां महीपते।
जाता दाशरथेः पत्नी तस्मिन्नहनि जानकी॥
उपोषितो रघुपतिः समुद्रस्य तटे तदा।
सर्वसस्यैश्चरुस्तस्मात् तत् कर्तव्यमेव हि॥
सापूपैस्तैश्च सम्पूज्या विप्रसम्बन्धिबान्धवाः।
रामपत्नीं च सम्पूज्य सीतां जनकनन्दिनीम्॥ (निर्णयसिन्धु)

२. चतुर्दश्यां तु कृष्णायां फाल्गुने शिवपूजनम्।
तामुपोष्य प्रयत्नेन विषयान् परिवर्जयेत्॥ (शिवरहस्य)

३. 'नित्यकाम्यरूपस्यास्य व्रतस्येति।' (मदनरत्न)

और किसी कामनापूर्वक करनेसे 'काम्य' होता है। प्रतिपदादि[1] तिथियोंके अग्नि आदि अधिपति होते हैं। जिस तिथिका जो स्वामी हो उसका उस तिथिमें अर्चन करना अतिशय उत्तम होता है। चतुर्दशीके स्वामी शिव हैं (अथवा शिवकी तिथि चतुर्दशी है)। अतः उनकी रात्रिमें व्रत किया जानेसे इस व्रतका नाम 'शिवरात्रि' होना सार्थक हो जाता है। यद्यपि प्रत्येक मासकी कृष्णचतुर्दशी शिवरात्रि होती है और शिवभक्त प्रत्येक कृष्णचतुर्दशीका व्रत करते ही हैं, किन्तु फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीके निशीथ (अर्धरात्रि)-में '**शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः।**' ईशानसंहिताके इस वाक्यके अनुसार ज्योतिर्लिंगका प्रादुर्भाव हुआ था, इस कारण यह महाशिवरात्रि मानी जाती है। '**शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम्। आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥**'—के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अछूत, स्त्री-पुरुष और बाल-युवा-वृद्ध—ये सब इस व्रतको कर सकते हैं और प्रायः करते ही हैं। इसके न करनेसे दोष होता है। जिस प्रकार राम, कृष्ण, वामन और नृसिंहजयन्ती एवं प्रत्येक एकादशी उपोष्य हैं, उसी प्रकार यह भी उपोष्य है और इसके व्रतकालादिका निर्णय भी उसी प्रकार किया जाता है। सिद्धान्तरूपमें आजके सूर्योदयसे कलके सूर्योदयतक रहनेवाली चतुर्दशी 'शुद्धा'[2] और अन्य 'विद्धा' मानी गयी हैं। उसमें भी प्रदोष (रात्रिका आरम्भ) और निशीथ (अर्धरात्रि)-की चतुर्दशी ग्राह्य होती है। अर्धरात्रिकी पूजाके लिये स्कन्दपुराणमें लिखा है कि (फाल्गुन कृष्ण १४ को) '**निशिभ्रमन्ति**

---

१. तिथीशा वह्निको गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः।
शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी॥ (मु० चि०)

२. 'सूर्योदयमारभ्य पुनः सूर्योदयपर्यन्ता 'शुद्धा' तदन्या 'विद्धा', सा प्रदोषनिशीथोभय-व्यापिनी ग्राह्या।' (तिथिनिर्णय)

त्रयोदश्यस्तगे सूर्ये चतसृष्वेव नाडिषु।
भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिव्रतं चरेत्॥ (वायुपुराण)

भूतानि शक्तयः शूलभृद् यतः। अतस्तस्यां चतुर्दश्यां सत्यां तत्पूजनं भवेत्॥' अर्थात् रात्रिके समय भूत, प्रेत, पिशाच, शक्तियाँ और स्वयं शिवजी भ्रमण करते हैं; अतः उस समय इनका पूजन करनेसे मनुष्यके पाप दूर हो जाते हैं। यदि यह (शिवरात्रि) त्रिस्पृशा* (१३-१४-३०—इन तीनोंके स्पर्शकी) हो तो अधिक उत्तम होती है। इसमें भी सूर्य या भौमवारका योग (शिवयोग) और भी अच्छा है। 'पारण' के लिये '**व्रतान्ते पारणम्**', '**तिथ्यन्ते पारणम्**' और '**तिथिभान्ते च पारणम्**' आदि वाक्योंके अनुसार व्रतकी समाप्तिमें पारण किया जाता है, किंतु शिवरात्रिके व्रतमें यह विशेषता है कि '**तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु। तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद् विना शिवचतुर्दशीम्॥**' (स्मृत्यन्तर) शिवरात्रिके व्रतका पारण चतुर्दशीमें ही करना चाहिये और यह पूर्वविद्धा (**प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी**) चतुर्दशी होनेसे ही हो सकता है। व्रतीको चाहिये कि फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको प्रातःकालकी संध्या आदिसे निवृत्त होकर भालमें भस्मका त्रिपुण्ड्र तिलक और गलेमें रुद्राक्षकी माला धारण करके हाथमें जल लेकर '**शिवरात्रिव्रतं ह्येतत् करिष्येऽहं महाफलम्। निर्विघ्नमस्तु मे चात्र त्वत्प्रसादाज्जगत्पते॥**' यह मन्त्र पढ़कर जलको छोड़ दे और दिनभर (शिवस्मरण करता हुआ) मौन रहे। तत्पश्चात् सायंकालके समय फिर स्नान करके शिव-मन्दिरमें जाकर सुविधानुसार पूर्व या उत्तरमुख होकर बैठे और तिलक तथा रुद्राक्ष धारण करके '**ममाखिलपापक्षयपूर्वकसकलाभीष्टसिद्धये शिवपूजनं करिष्ये**' यह संकल्प करे। इसके बाद ऋतुकालके गन्ध-पुष्प, बिल्वपत्र, धतूरेके फूल, घृतमिश्रित गुग्गुलकी धूप, दीप, नैवेद्य और नीराजनादि आवश्यक सामग्री समीप रखकर रात्रिके प्रथम प्रहरमें 'पहली',

---

* त्रयोदशी कला ह्येका मध्ये चैव चतुर्दशी।
अन्ते चैव सिनीवाली 'त्रिस्पृशा' शिवमर्चयेत्॥ (माधव)

द्वितीयमें 'दूसरी' तृतीयमें 'तीसरी' और चतुर्थमें 'चौथी' पूजा करे। चारों पूजन पंचोपचार, षोडशोपचार या राजोपचार—जिस विधिसे बन सके समानरूपसे करे और साथमें रुद्रपाठादि भी करता रहे। इस प्रकार करनेसे पाठ, पूजा, जागरण और उपवास—सभी सम्पन्न हो सकते हैं। पूजाकी समाप्तिमें नीराजन, मन्त्रपुष्पांजलि और अर्घ्य, परिक्रमा करे तथा प्रत्येक पूजनमें '**मया कृतान्यनेकानि पापानि हर शंकर। शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यमुमाकान्त गृहाण मे॥**'—से अर्घ्य देकर '**संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शंकर। प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥**' से प्रार्थना करे। स्कन्दपुराणका कथन है कि फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको शिवजीका पूजन, जागरण और उपवास करनेवाला मनुष्य माताका दूध कभी नहीं पी सकता अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। इस व्रतकी दो कथाएँ हैं। एकका सारांश यह है कि एक बार एक धनवान् मनुष्य कुसंगवश शिवरात्रिके दिन पूजन करती हुई किसी स्त्रीका आभूषण चुरा लेनेके अपराधमें मार डाला गया, किंतु चोरीकी ताकमें वह आठ प्रहर भूखा-प्यासा और जागता रहा था, इस कारण स्वतः व्रत हो जानेसे शिवजीने उसको सद्गति दी। दूसरीका सारांश यह है कि शिवरात्रिके दिन एक व्याधा दिनभर शिकारकी खोजमें रहा, तो भी शिकार नहीं मिला। अन्तमें वह गुँथे हुए एक झाड़की ओटमें बैठ गया। उसके अंदर स्वयम्भू शिवजीकी एक मूर्ति और एक बिल्ववृक्ष था। उसी अवसरपर एक हरिणीपर वधिककी दृष्टि पड़ी। उसने अपने सामने पड़नेवाले बिल्वपत्रोंको तोड़कर शिवजीपर गिरा दिया और धनुष लेकर बाण छोड़ने लगा। तब हरिणी उसे उपदेश देकर जीवित चली गयी। इसी प्रकार वह प्रत्येक प्रहरमें आयी और चली गयी। परिणाम यह हुआ कि उस अनायास किये हुए व्रतसे ही शिवजीने उस व्याधाको सद्गति दी और भवबाधासे मुक्त कर दिया। बन सके तो शिवरात्रिका व्रत सदैव

करना चाहिये और न बन सके तो १४ वर्षके[१] बाद 'उद्यापन' कर देना चाहिये। उसके लिये चावल, मूँग और उड़द आदिसे 'लिंगतोभद्र' मण्डल बनाकर उसके बीचमें सुवर्णादिके सुपूजित दो कलश स्थापन करे और चारों कोणोंमें तीन-तीन कलश स्थापन करे। इसके बाद ताँबेके नाँदियेपर विराजे हुए सुवर्णमय शिवजी और चाँदीकी बनी हुई पार्वतीको बीचके दोनों कलशोंपर यथाविधि स्थापन करके पद्धतिके अनुसार सांगोपांग षोडशोपचार पूजन और हवनादि करे। अन्तमें गोदान, शय्यादान, भूयसी आदि देकर और ब्राह्मणभोजन कराके स्वयं भोजनकर व्रतको समाप्त करे। पूजनके समय शंख, घण्टा आदि बजानेके विषयमें (योगिनीतन्त्रमें) लिखा है कि '**शिवागारे झल्लकं च सूर्यागारे च शंखकम्। दुर्गागारे वंशवाद्यं मधुरीं च न वादयेत्॥**' अर्थात् शिवजीके मन्दिरमें झालर, सूर्यके मन्दिरमें शंख और दुर्गाके मन्दिरमें मीठी बंसरी नहीं बजानी चाहिये। शिवरात्रिके व्रतमें कठिनाई तो इतनी है कि इसे वेदपाठी विद्वान् ही यथाविधि सम्पन्न कर सकते हैं और सरलता इतनी है कि पठित-अपठित, धनी-निर्धन—सभी अपनी-अपनी सुविधा या सामर्थ्यके अनुसार शतशः रुपये लगाकर भारी समारोहसे अथवा मेहनत-मजदूरीसे प्राप्त हुए दो पैसेके गाजर, बेर और मूली आदि सर्वसुलभ फल-फूल आदिसे पूजन कर सकते हैं और दयालु शिवजी छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी—सभी पूजाओंसे प्रसन्न होते हैं।

(६) मासशिवरात्रि (मदनरत्न)—यह व्रत चैत्रादि सभी महीनोंकी कृष्ण[२] चतुर्दशीको किया जाता है। इसमें त्रयोदशीविद्धा

---

१. चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम्। (कालोत्तरखण्ड)

२. यतः प्रतिचतुर्दश्यां पूजा यत्नेन मे कृता।
तथा जागरणं तत्र संनिधौ मे कृतं तथा॥ (स्कन्दपुराण)

बहुत राततक रहनेवाली चतुर्दशी ली जाती है। कारण यह है कि इसमें भी महाशिवरात्रिके समान चारों पहरोंमें पूजा और जागरण किया जाता है। इसमें जया (त्रयोदशी)-का योग अधिक फलदायी होता है। इस व्रतका प्रथमारम्भ दीपावली या मार्गशीर्षसे करना चाहिये।

(७) फाल्गुनी अमा (लिंगपुराण)—फाल्गुन कृष्ण अमावस्याको रुद्र, अग्नि और ब्राह्मणोंका पूजन करके उन्हें उड़द, दही और पूरी आदिका नैवेद्य अर्पण करे और स्वयं भी उन्हीं पदार्थोंका एक बार भोजन करे। यदि '**अमा सोमे शनौ भौमे गुरुवारे यदा भवेत्। तत्पर्वं पुष्करं नाम सूर्यपर्वशताधिकम्॥**' अर्थात् अमावास्याके दिन सोम, मंगल, गुरु या शनिवार हो तो यह सूर्यग्रहणसे भी अधिक फल देनेवाली होती है। फाल्गुनी अमाके दिन युगका प्रारम्भ होनेसे इस दिन पित्रादिकोंका अपिण्ड श्राद्ध करना चाहिये।

शुक्लपक्ष

(१) पयोव्रत (श्रीमद्भागवत)—यह व्रत फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदासे द्वादशीपर्यन्त बारह दिनमें पूर्ण होता है। इसके लिये गुरु-शुक्रादिका उदय और उत्तम मुहूर्त देखकर फाल्गुनी अमावास्याको वनमें जाकर '**त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता। उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय॥**'—इस मन्त्रसे जंगली शूकरकी खोदी हुई मिट्टीको शरीरमें लगाये और समीपके सरोवरमें जाकर शुद्ध स्नान करे। फिर गौके दूधकी खीर बनाकर दो विद्वान् ब्राह्मणोंको उसका भोजन कराये और स्वयं भी उसीका भोजन करे। दूसरे दिन (फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदाको) भगवान्‌को गौके दूधसे स्नान कराकर हाथमें जल लेकर '**मम सकलगुणगणवरिष्ठमहत्त्वसम्पन्नायुष्मत्पुत्रप्राप्तिकामनया विष्णुप्रीतये पयोव्रतमहं करिष्ये।**' यह संकल्प करे। तदनन्तर

सुवर्णके बने हुए हृषीकेशभगवान्‌का '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस मन्त्रसे आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करके—**१ महापुरुषाय, २ सूक्ष्माय, ३ द्विशीर्ष्णे, ४ शिवाय, ५ हिरण्यगर्भाय, ६ आदिदेवाय, ७ मरकतश्यामवपुषे, ८ त्रयीविद्यात्मने, ९ योगैश्वर्यशरीराय नमः**—से भगवान्‌को प्रणाम और पुष्पांजलि अर्पण करके परिमित दूध एक बार पीये। इस प्रकार प्रतिपदासे द्वादशीपर्यन्त १२ दिनतक व्रत करके त्रयोदशीको विष्णुका यथाविधि पूजन करे। पंचामृतसे स्नान कराये और तेरह ब्राह्मणोंको गोदुग्धकी खीरका भोजन कराये। तदनन्तर सुपूजित मूर्ति भूमिके, सूर्यके, जलके या अग्निके अर्पण करके गुरुको दे और व्रतविसर्जन करके तेरहवें दिन स्वयं भी स्वल्पमात्रामें खीरका भोजन करे। यह व्रत पुत्रप्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले अपुत्र स्त्री-पुरुषोंके करनेका है। देवमाता अदितिके उदरसे वामनभगवान् इसी व्रतके प्रभावसे प्रकट हुए थे।

(२) मधुकतृतीया (पुराणसमुच्चय)—यह व्रत फाल्गुन शुक्ल तृतीयाको किया जाता है। उस दिन प्रातःस्नानादिके पश्चात्—**१ भूमिकायै, २ देवभूषायै, ३ उमायै, ४ तपोवनरतायै** और **५ गौर्यै नमः**—इन पाँच मन्त्रोंके उच्चारणके साथ क्रमशः गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य—इन पाँच उपचारोंसे उमा (पार्वती)-का पूजन करे और '**दौर्भाग्यं मे शमयतु सुप्रसन्नं मनः सदा। अवैधव्यं कुले जन्म ददात्वपरजन्मनि॥**' इस मन्त्रसे प्रार्थना करे।

(३) अविघ्नकरव्रत (वाराहपुराण)—फाल्गुन शुक्ल चतुर्थीको सुवर्णके गणेशजीका गन्धादिसे पूजन करे, तिलोंके पदार्थका भोग लगाये, तिलोंका हवन करे, ताम्रादिके पाँच पात्रोंमें तिल भरकर ब्राह्मणोंको दे एवं उनको तिलोंके पदार्थका भोजन कराये तथा स्वयं भी तिलोंका भोजन और तिलोंसे ही पारण करे। इस प्रकार

चार महीनेतक प्रत्येक शुक्ल चतुर्थीका व्रत करके पाँचवें महीने (आषाढ़)-में पूर्वोक्त पूजित मूर्ति ब्राह्मणको दे तो सब विघ्न दूर होते हैं। प्राचीन कालमें अश्वमेधके समय महाराज सगरने, त्रिपुरासुरयुद्धमें शिवजीने और समुद्रमन्थनमें विघ्न न होनेके लिये स्वयं भगवान्ने यही व्रत किया था।

(४) मनोरथचतुर्थी (मत्स्यपुराण)—फाल्गुन शुक्ल चतुर्थीको सुवर्णके गणेशजीका गन्धादिसे पूजन करके नक्तव्रत करे। इस प्रकार बारह महीनेकी प्रत्येक शुक्ल चतुर्थीको करता रहकर सालभर बाद उक्त मूर्तिका दान करे तो सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं।

(५) अर्कपुटसप्तमी (भविष्यपुराण)—फाल्गुन शुक्ल सप्तमीको प्रातः स्नानादिके पश्चात् '**खखोल्काय नमः**' इस मन्त्रसे सूर्यनारायणका पूजन करे। इसके पहले दिन (षष्ठीको) एकभुक्त, उस दिन (सप्तमीको) निराहार और अष्टमीको (तुलसीपत्रके समान) अर्कपत्र (आकके पत्तों)-का प्राशन करे तो सम्पूर्ण व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

(६) त्रिवर्गेष्टदा सप्तमी (भविष्यपुराण)—फाल्गुन शुक्ल सप्तमीको '**ॐ वेलीदेवाय नमः**' इस मन्त्रसे पूजनादि करके उपवास करनेसे त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म और काम)-की सिद्धि होती है।

(७) कामदा सप्तमी (भविष्यपुराण)—फाल्गुन शुक्ल सप्तमीको स्त्री या पुरुष जो भी हो, '**सूर्याय नमः**' इस मन्त्रसे '**तमोऽपह**' (सूर्य)-का गन्धादिसे पूजन करके उठते-बैठते, सोते-जागते, सर्वत्र ही सूर्यका स्मरण करता रहे और फिर अष्टमीको स्नान करके सूर्यका यथोक्त विधिसे पूजनकर ब्राह्मणको दक्षिणा दे। सूर्यके उद्देश्यसे हवनकर भगवान्‌को नमस्कार करे। नैवेद्यमें कसार (घीमें सेके हुए शर्करासंयुक्त खुले हुए आटे)-का भोग लगाये। सात घोड़ोंका पूजन करे और पूजन-सामग्री ब्राह्मणको दे। इस प्रकार प्रतिमास

करनेसे अपुत्रको पुत्र, निर्धनको धन, रोगीको आरोग्य और निराश्रयको पदप्राप्ति आदि सब कुछ होते हैं।

(८) कल्याणसप्तमी (पुराणसमुच्चय)—फाल्गुन शुक्ल सप्तमीको सूर्यका पूजन करके सुवर्णसहित जलसे पूर्ण कलश और घी, गुड़ आदिका दान दे और दूसरे दिन ब्राह्मणोंका पूजन करके खीरका भोजन कराये और स्वयं भी एक बार खीर खाये।

(९) द्वादशसप्तमी (हेमाद्रि)—यह व्रत माघ शुक्ल सूर्यसप्तमीसे आरम्भ किया जाता है। विधान यह है कि १ माघमें '**भानवे**', २ फाल्गुनमें '**सूर्याय**', ३ चैत्रमें '**वेदांशवे**', ४ वैशाखमें '**धात्रे**', ५ ज्येष्ठमें '**इन्द्राय**', ६ आषाढ़में '**दिवाकराय**', ७ श्रावणमें '**आतपिने**', ८ भाद्रपदमें '**रवये**', ९ आश्विनमें '**सवित्रे**', १० कार्तिकमें '**सप्ताश्वाय**', ११ मार्गशीर्षमें '**भानवे**' और १२ पौषमें '**भास्कराय नमः**'—इन नामोंसे सूर्यनारायणका पूजन करके उपवास करे और माघ कृष्ण सप्तमीके शुद्ध भूमिके प्रांगणमें लाल चन्दनका लेप करके उसपर एक, दो या चार हाथके विस्तारका सिन्दूरसे सूर्यमण्डल बनाये और उसपर लाल वस्त्रोंसे ढके हुए तिलपूर्ण और दक्षिणासहित बारह कलश स्थापन करके लाल गन्ध-पुष्पादिसे उनमें सूर्यका पूजन करे और **आकृष्णेन०**' से हवन करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये और उक्त कलशादि ब्राह्मणोंको दे। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

(१०) लक्ष्मी-सीताष्टमी (वीरमित्रोदय)—फाल्गुन शुक्ल अष्टमीको एक चौकीपर लाल वस्त्र बिछाकर उसपर अक्षतोंका अष्टदल कमल बनाये और उसपर लक्ष्मी तथा जानकीकी सुवर्णमयी मूर्ति-स्थापन करके गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे। फिर प्रदोषके समय हजार (अथवा जितनी सामर्थ्य हो उतने) दीपक जलाये और ब्राह्मणोंको

भोजन कराके बान्धवोंसहित स्वयं भोजन करे तथा दूसरे दिन पूजन-सामग्री आदि दो ब्राह्मणोंको दे। यह अष्टमी प्रदोषव्यापिनी ली जाती है। यदि दो दिन हो तो परा लेनी चाहिये।

(११) बुधाष्टमी (निर्णयामृत)—जब-जब शुक्लाष्टमीको (विशेषकर फाल्गुन शुक्ल अष्टमीको) बुधवार हो तो उसका व्रत करनेसे यथोक्त फल होता है, किंतु संध्याकालमें और देवशयनके दिनोंमें इस व्रतके करनेसे दोष होता है।

(१२) आनन्दनवमी (भविष्यपुराण)—यह व्रत फाल्गुन शुक्ल पंचमीसे प्रारम्भ होता है। विधि यह है कि फाल्गुन शुक्ल पंचमीको एकभुक्त, षष्ठीको नक्त, सप्तमीको अयाचित, अष्टमीको निराहार और नवमीको उपवास करे। फिर देवी (सरस्वती)-का यथाविधि पूजन करके दूसरे दिन विसर्जन करे।

(१३) शुक्लैकादशी (ब्रह्माण्डपुराण)—फाल्गुन शुक्ल एकादशी 'आमलकी' कहलाती है। इस दिन आँवलेके समीप बैठकर* भगवान्का पूजन करे। ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और कथा सुने। रात्रिमें जागरण करके दूसरे दिन पारण करे। इसकी कथाका सार यह है कि वैदेशिक नगरमें चैत्ररथ राजाके यहाँ एकादशीके व्रतका अत्यधिक प्रचार था। एक बार फाल्गुन शुक्ल एकादशीके दिन नगरके सम्पूर्ण नर-नारियोंको व्रतके महोत्सवमें मग्न देखकर कौतूहलवश एक व्याधा वहाँ आकर बैठ गया और भूखा-प्यासा दूसरे दिनतक वहीं बैठा रहा। इस प्रकार अकस्मात् ही व्रत और जागरण हो जानेसे दूसरे जन्ममें वह जयन्तीका राजा

---

* फाल्गुने मासि शुक्लायामेकादश्यां जनार्दनः।
वसत्यामलकीवृक्षे लक्ष्म्या सह जगत्पतिः॥
तत्र सम्पूज्य देवेशं शक्त्या कुर्यात् प्रदक्षिणाम्।
उपोष्य विधिवत् कल्पं विष्णुलोके महीयते॥ (नृसिंहपरिचर्या)

हुआ। विशेष विधि-विधान और निर्णय आदि चैत्रके व्रत-परिचयमें दिये गये हैं, वहाँ देखने चाहिये।

(१४) पापनाशिनी द्वादशी (ब्रह्माण्डपुराण)—फाल्गुन शुक्ल एकादशीको प्रातःस्नानादिके पश्चात् हाथमें जल लेकर '**द्वादश्यां तु निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि। भोक्ष्यामि जामदग्न्येश शरणं मे भवाच्युत॥**'—इस मन्त्रके उच्चारणसे व्रत ग्रहण करे। फिर आँवलेके वृक्षके नीचे एक वेदी बनाकर उसपर कलश स्थापन करके उसीपर ताँबे या बाँसके पात्रमें लाजा (खील) भरकर रखे और उसमें सुवर्णनिर्मित परशुरामकी मूर्ति रखकर '**क्षत्रान्तकरणं घोरमुद्वहन् परशुं करे। जामदग्न्यः प्रकर्तव्यो रामो रोषारुणेक्षणः॥**' से ध्यान करे और उनको पंचामृतसे स्नान कराकर षोडशोपचार पूजन करे। इसके अतिरिक्त '**पादयोर्विशोकाय**', '**जान्वोः सर्वरूपिणे**', '**नासिकायां शोकनाशाय**', '**ललाटे वामनाय**', '**भ्रुवो रामाय**' और '**शिरसि सर्वात्मने नमः**' से अंगपूजा और नाममन्त्रसे आयुध-पूजा करे। फिर '**नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य नमोऽस्तु ते। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं मालत्या सहितो हरे॥**' से अर्घ्य देकर '**माता पितामहश्चान्ये अपुत्रा ये च गोत्रिणः। ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूले सदा पयः॥**' से आँवलेका अभिषेक करके १०८, २८ या ८ परिक्रमा करे और ब्राह्मण-भोजनादिसे पीछे व्रतका विसर्जन करे।

(१५) सुगतिद्वादशी (पृथ्वीचन्द्रोदय)—फाल्गुन शुक्ल द्वादशीको भगवान्‌का पूजन करके 'श्रीकृष्ण' इस मन्त्रके १०८ जप करे और उपवास रखे।

(१६) सुकृतद्वादशी (पुराणसमुच्चय)—इस व्रतमें फाल्गुन शुक्ल दशमीको मध्याह्नभोजन, एकादशीको उपवास, द्वादशीको एकभुक्त और त्रयोदशीको अयाचित भोजन करे।

(१७) नन्दत्रयोदशी (विष्णुधर्मोत्तर)—फाल्गुन शुक्ल

त्रयोदशीको श्रीकृष्णके उद्देश्यसे व्रत करे और उत्सव करके भगवान्‌का पूजन करे।

(१८) प्रदोषव्रत (व्रतोत्सव)—यह सुपरिचित पूर्वागत व्रत प्रत्येक त्रयोदशीको किया जाता है। इसके उपयोगी विशेष विधि-विधान और वाक्यादि चैत्रके व्रतमें दिये गये हैं।

(१९) महेश्वरव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशीको सोपवास शिवपूजन करके गोदान करनेसे अग्निष्टोमके समान फल होता है। यदि प्रतिमास दोनों चतुर्दशियोंको एक वर्षतक व्रत किया जाय तो कुलका उद्धार और पुण्डरीकाक्षका आश्रय प्राप्त होता है।

(२०) वृषदानव्रत (वीरमित्रोदय)—इसी दिन (फाल्गुन शुक्ल १४ को) यथोक्तगुण*-सम्पन्न वृषका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके विद्वान् ब्राह्मणको दे तो सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं।

(२१) सर्वार्तिहरव्रत (सनत्कुमारसंहिता)—फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशीको प्रातःस्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर **'मम सकलपापतापप्रशमनकामनया ईश्वरप्रीतये सर्वार्तिहरव्रतं करिष्ये।'**—यह संकल्प करके काम, क्रोध, लोभ, मोह, अनाचार और मिथ्या-भाषणादि दोषोंका त्यागकर सूर्योदयसे

---

* लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः।
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते॥ (हरिहर)
चरणांसमुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः।
लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत्॥
भूमौ कर्षति लांगूलं प्रलम्बं स्थूलवालधिः।
पुरस्तादुन्नतो नीलो वृषभः स प्रशस्यते॥
श्वेतोदरः कृष्णपृष्ठो ब्राह्मणस्य प्रशस्यते।
स्निग्धवर्णेन रक्तेन क्षत्रियस्य प्रशस्यते॥
कांचनाभेन वैश्यस्य कृष्णः शूद्रस्य शस्यते। (अन्यत्र)
यस्य प्रागायते शृंगे भ्रूमुखाभिमुखे सदा।
सर्वेषामेव वर्णानां स च सर्वार्थसाधकः॥ (स्मृत्यन्तर)

सूर्यास्तपर्यन्त करबद्ध और विनम्र होकर सूर्यके सम्मुख अविचल खड़ा रहे। सूर्यास्तके समय पुनः स्नानकर भगवान्‌का विधिवत् पूजन करके निराहार व्रत रखे और दूसरे दिन भोजन करे तो इस व्रतके करनेसे ज्वरसे उत्पन्न होनेवाले सब रोग, फोड़ा-फुन्सी, प्लीहा (तिल्ली), सब प्रकारके शूल (दर्द), सब प्रकारके कोढ़, अरुचि, अजीर्ण, जलाघात, अग्निमान्द्य और अतिसारादि प्रायः सभी रोग और भव-बाधादि सभी दुःख दूर होकर देवदुर्लभ सुख सुलभ हो जाते हैं। सूर्यके सम्मुख खड़ा रहनेके लिये कुछ दिन पहलेसे दो-दो, चार-चार घंटेतक खड़े रहनेका क्रमोत्तर अभ्यास करके फिर उक्त चतुर्दशीको दिनभर खड़ा रहे। सूर्यबिम्बको विशेष न देखे। नेत्रोंको नीचा रखे। यथासाध्य पृथ्वीको या तत्रस्थ फल-पुष्प और दूर्वा आदिको देखता रहे तो कष्ट नहीं होता। सूर्याभिमुख खड़ा रहे, उस दिन दिनके तीन भाग बनाये। फिर प्रातःकालीन पहले सवा पहरमें पूर्वाभिमुख, मध्याह्नकालीन दूसरे सवा पहरमें उत्तराभिमुख और सायंकालीन तीसरे सवा पहरमें पश्चिमाभिमुख रहे।

(२२) फाल्गुनी पूर्णिमा (बृहद्यम)—यह पूर्वविद्धा ली जाती है। इस दिन सायंकालके समय भगवान्‌को हिंडोलेमें विराजमानकर आन्दोलित करे (उनका उसीमें पूजन करके हिंडोलेको हिलाये) और नीराजन करके यथास्थान विराजमानकर एकभुक्त भोजन करे। इसी दिन चन्द्रमा प्रकट हुआ था, अतः चन्द्रोदय होनेपर उसका पूजन करे।

(२३) व्रतद्वयी पूर्णिमा (कृत्यतत्त्वार्णव)—फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाको कश्यप ऋषिके औरस और अदितिके गर्भसे अर्यमा (आदित्य) एवं अनुसूयाके गर्भसे निशाकर (चन्द्रमा) उत्पन्न हुए थे। अतः सूर्योदयके समय आदित्यका और चन्द्रोदयके समय

चन्द्रमाका (अथवा चन्द्रोदयके समय सूर्य और चन्द्र दोनोंका) विधिपूर्वक पूजन करके गायन, वादन और नृत्यसे जागरण करे। इस दिन उपवास न करे। नक्तव्रत (रात्रिमें एक बार भोजन) करे।

(२४) फाल्गुन्यां पूर्वाफाल्गुनी (विष्णु)—यदि फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाको पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र हो तो बिस्तर, चादर, रजाई और तकिया आदिसे युक्त और सुपूजित शय्याको '**अशून्यं शयनं नित्यमनूनां श्रियमुन्नतिम्। सौभाग्यं देहि मे नित्यं शय्यादानेन केशव॥**'—इस मन्त्रसे विद्वान् ब्राह्मणको दे तो आज्ञामें रहनेवाली सुर-सुन्दरी स्त्री प्राप्त होती है। यदि यह दान स्त्री करे तो उसको धन, विद्या और सम्मानयुक्त सुन्दर पति प्राप्त होता है।

(२५) अशोकव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाको मृत्तिका मिले हुए जलसे स्नान करे, मस्तकमें भी मृत्तिकाका मर्दन करे और मृत्तिकाका भक्षण भी करे। तत्पश्चात् शुद्ध भूमिमें वेदी बनाकर उसपर 'भूधर' नामके देवताकी कल्पना करके '**भूधराय नमः**', इस नाम-मन्त्रसे उसका पूजन करे और '**धरणीं च तथा देवीमशोकेति च कीर्तयेत्। यथा विशोकां धरणि कृतवांस्त्वां जनार्दनः॥**' इस मन्त्रसे प्रार्थना करे। इस व्रतके करनेसे सब शोक निर्मूल हो जाते हैं और दस पीढ़ियोंतक सब सुखी रहते हैं।

(२६) लक्ष्मीनारायणव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाको प्रातःकालसे सायंकालपर्यन्त सभी प्रकारके धूर्त, मूर्ख, पापी, पाखण्डी, परद्रव्यादिका अपहरण करनेवाले व्यभिचारी, दुर्व्यसनी, मिथ्याभाषी, अभक्त और विद्वेषी मनुष्योंसे वार्तालापतकका संसर्ग त्यागकर मौन रहे और मनमें भगवान्‌का स्मरण करे और उनका प्रीतिपूर्वक प्रातःकालीन पूजन करके व्रत रखे। फिर सायंकालमें चन्द्रोदय होनेपर उसके बिम्बमें ईश्वर (परमेश्वर),

सूर्य और लक्ष्मी—इनका चिन्तन करके पूजन करे और '**श्रीर्निशा चन्द्ररूपस्त्वं वासुदेव जगत्पते। मनोऽभिलषितं देव पूरयस्व नमो नमः॥**' इस मन्त्रसे अर्घ्य दे और रात्रिमें तैलवर्जित एक बार भोजन करे। इस प्रकार फाल्गुनी, चैत्री, वैशाखी और ज्येष्ठीका व्रत करके 'पंचगव्य' (गौके दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्रको वस्त्रसे छानकर प्रमाणका) पीये। आषाढ़ी, श्रावणी, भाद्री और आश्विनीका व्रत करके 'कुशोदक' (दिनभर जलमें भीगी हुई डाभका जल) पीये और कार्तिकी, मार्गशीर्षी, पौषी और माघीका व्रत करके सूर्यकी किरणोंसे दिनभर तपे हुए जलको पीये। इस प्रकार वर्षपर्यन्त व्रत करके उसका विसर्जन करे तो सम्पूर्ण अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं।

(२७) कूर्चव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाके पहले दिन उपवास करके पूर्णिमाको पंचगव्य पीये और प्रतिपदाको हविष्यान्नका भोजन करे तो उस महीनेके सब पाप दूर हो जाते हैं। यह व्रत इन्द्रकी प्रसन्नताका है, अतएव सदैव किया जाय तो और भी अच्छा है।

(२८) पृथक्-पृथक् तीर्थक्षेत्रीय व्रत (गर्गसंहिता)—स्वस्थानकी अपेक्षा तीर्थस्थानोंमें किये हुए व्रतादिका अधिक फल होता है। यथा फाल्गुनकी पूर्णिमाको 'नैमिषारण्य' में, चैत्रीको 'गण्डकी' में, वैशाखीको 'हरिद्वार' में, ज्येष्ठीको 'जगदीशपुरी' (पुरुषोत्तमक्षेत्र) में, आषाढ़ीको 'कनखल' में, श्रावणीको 'केदार' में, भाद्रीको 'बदरिकाश्रम' में, आश्विनीको 'कुब्जाद्रि' (कुमुदगिरि) में, कार्तिकीको 'पुष्कर' में, मार्गीको 'कान्यकुब्ज' में, पौषीको 'अयोध्या' में और माघीको 'प्रयाग' में अभीष्ट व्रत, दान और यजन करनेसे कई गुना अधिक फल होता है।

(२९) होलिकादहन (नानापुराण-स्मृति)—यह फाल्गुन

शुक्ल पूर्णिमाको होता है। इसका मुख्य सम्बन्ध होलीके दहनसे है। जिस प्रकार श्रावणीको ऋषिपूजन, विजयादशमीको देवीपूजन और दीपावलीको लक्ष्मीपूजनके पीछे भोजन किया जाता है, उसी प्रकार होलिकाके व्रतवाले उसकी ज्वाला देखकर भोजन करते हैं। होलिकाके दहनमें पूर्वविद्धा प्रदोषव्यापिनी[१] पूर्णिमा ली जाती है। यदि वह दो दिन[२] प्रदोषव्यापिनी हो तो दूसरी लेनी चाहिये। यदि प्रदोषमें भद्रा हो तो उसके मुखकी[३] घड़ी त्यागकर[४] प्रदोषमें दहन करना चाहिये। भद्रामें होलिकादहन[५] करनेसे जनसमूहका नाश होता है। प्रतिपदा,[६] चतुर्दशी, भद्रा और दिन—इनमें होली जलाना सर्वथा त्याज्य है। कुयोगवश यदि जला दी जाय तो वहाँके राज्य, नगर और मनुष्य अद्‌भुत उत्पातोंसे एक ही वर्षमें हीन हो जाते हैं। यदि पहले दिन प्रदोषके समय भद्रा[७] हो और दूसरे दिन सूर्यास्तसे पहले पूर्णिमा समाप्त होती हो तो भद्राके समाप्त होनेकी प्रतीक्षा करके सूर्योदय होनेसे पहले होलिकादहन करना चाहिये। यदि पहले दिन प्रदोष न हो और हो तो भी रात्रिभर भद्रा रहे (सूर्योदय होनेसे पहले न उतरे) और

---

१. प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पूर्णिमा फाल्गुनी सदा। (नारद)
निशागमे तु पूज्येत होलिका सर्वतोमुखैः। (दुर्वासा)
सायाह्ने होलिकां कुर्यात् पूर्वाह्णे क्रीडनं गवाम्। (निर्णयामृत)

२. दिनद्वये प्रदोषे चेत् पूर्णा दाहः परेऽहनि। (स्मृतिसार)

३. पूर्णिमायाः पूर्वे भागे चतुर्थप्रहरस्य पंचघटीमध्ये भद्राया मुखं ज्ञेयम्। (ज्योतिर्निबन्ध)

४. तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे। (पृथ्वीचन्द्रोदय)

५. भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा। (स्मृत्यन्तर)

६. प्रतिपद्भूतभद्रासु यार्चिता होलिका दिवा।
संवत्सरं तु तद्राष्ट्रं पुरं दहति साद्‌भुतम्॥ (चन्द्रप्रकाश)

७. दिनार्धात् परतो या स्यात् फाल्गुनी पूर्णिमा यदि।
रात्रौ भद्रावसाने तु होलिकां तत्र पूजयेत्॥ (भविष्योत्तर)

दूसरे दिन सूर्यास्तसे पहले ही पूर्णिमा समाप्त होती हो तो ऐसे अवसरमें पहले दिन भद्रा हो तो भी उसके पुच्छमें[१-२] होलिकादीपन कर देना चाहिये। यदि पहले दिन रात्रिभर भद्रा रहे और दूसरे दिन प्रदोषके समय पूर्णिमाका उत्तरार्ध मौजूद भी हो तो भी उस समय यदि चन्द्रग्रहण[३] हो तो ऐसे अवसरमें पहले दिन भद्रा हो तब भी सूर्यास्तके पीछे होली जला देनी चाहिये। यदि दूसरे दिन प्रदोषके समय पूर्णिमा हो और भद्रा उससे पहले उतरनेवाली हो, किंतु चन्द्रग्रहण[४] हो तो उसके शुद्ध होनेके पीछे स्नान करके होलिकादहन करना चाहिये। यदि फाल्गुन दो हों (मलमास हो) तो शुद्ध मास[५] (दूसरे फाल्गुन)-की पूर्णिमाको होलिकादीपन करना चाहिये। स्मरण रहे कि जिन स्थानोंमें माघ शुक्ल पूर्णिमाको 'होलिकारोपण' का कृत्य किया जाता है, वह उसी दिन करना चाहिये; क्योंकि वह भी होलीका ही अंग है। होली क्या है? क्यों जलायी जाती है? और इसमें पूजन किसका होता है? इसका आंशिक समाधान पूजाविधि और कथासारसे होता है। होलीका उत्सव रहस्यपूर्ण है। इसमें होली, ढुंढा, प्रह्लाद और स्मरशान्ति तो हैं ही; इसके सिवा इस दिन 'नवान्नेष्टि' यज्ञ भी सम्पन्न होता है। इसी अनुरोधसे धर्मध्वज राजाओंके यहाँ माघी पूर्णिमाके प्रभातमें शूर, सामन्त और शिष्ट मनुष्य गाजे-बाजे और

---

१. पृथिव्यां यानि कार्याणि शुभानि ह्यशुभानि च।
तानि सर्वाणि सिद्ध्यन्ति विष्टिपुच्छे न संशयः॥ (लल्ल)

२. पूर्णिमायाः पूर्वे भागे तृतीयप्रहरस्य घटीत्रयं भद्रायाः पुच्छं ज्ञेयम्। (पंचद्व्यद्रिकृताष्टेति मुहूर्तचिन्तामणौ)

३. दिवाभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिवा।
सा भद्रा भद्रदा यस्माद् भद्रा कल्याणकारिणी॥ (ज्योतिष-तत्त्व)

४. ग्रहणशुद्धौ 'स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विसर्जयेत्।' (स्मृतिकौस्तुभ)

५. स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले। (धर्मसार)

लवाजमेसहित नगरसे बाहर वनमें जाकर शाखासहित वृक्ष लाते हैं और उसको गन्धादिसे पूजकर नगर या गाँवसे बाहर पश्चिम दिशामें आरोपित करके खड़ा कर देते हैं। जनतामें यह 'होली', 'होलीदंड' (होलीका डाँडा) एवं 'प्रह्लादके नामसे प्रसिद्ध होता है; किंतु इसे 'नवान्नेष्टि' का यज्ञस्तम्भ माना जाय तो निरर्थक नहीं होगा।' अस्तु, व्रतीको चाहिये कि वह फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाको प्रातःस्नानादिके अनन्तर '**मम बालकबालिकादिभिः सह सुखशान्तिप्राप्त्यर्थं होलिकाव्रतं करिष्ये।**' से संकल्प करके काष्ठखण्डके खड्ग बनवाकर बच्चोंको दे और उनको उत्साही सैनिक बनाये। वे निःशंक होकर खेल-कूद करें और परस्पर हँसें। इसके अतिरिक्त होलिकाके दहन-स्थानको जलके प्रोक्षणसे शुद्ध करके उसमें सूखा काष्ठ, सूखे उपले और सूखे काँटे आदि भलीभाँति स्थापित करे। तत्पश्चात् सायंकालके समय हर्षोत्फुल्लमन होकर सम्पूर्ण पुरवासियों एवं गाजे-बाजे या लवाजमेके साथ होलीके समीप जाकर शुभासनपर पूर्व या उत्तरमुख होकर बैठे। फिर '**मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य (पुरग्रामस्थजनपदसहितस्य वा) सर्वापच्छान्तिपूर्वकसकलशुभ-फलप्राप्त्यर्थं ढुण्ढाप्रीतिकामनया होलिकापूजनं करिष्ये।**'— यह संकल्प करके पूर्णिमा प्राप्त होनेपर अछूत* या सूतिकाके घरसे बालकोंद्वारा अग्नि मँगवाकर होलीको दीप्तिमान् करे और चैतन्य होनेपर गन्ध-पुष्पादिसे उसका पूजन करके '**असृक्पाभय-संत्रस्तैः कृता त्वं होलि बालिशैः। अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव॥**'—इस मन्त्रसे तीन परिक्रमा या प्रार्थना करके अर्घ्य दे और लोकप्रसिद्ध होलीदण्ड (प्रह्लाद) या शास्त्रीय

---

* चाण्डालसूतिकागेहाच्छिशुहारितवह्निना ।
प्राप्तायां पूर्णिमायां तु कुर्यात् तत्काष्ठदीपनम्॥ (स्मृतिकौस्तुभ)

'यज्ञस्तम्भ' को शीतल जलसे अभिषिक्त करके उसे एकान्तमें रख दे। तत्पश्चात् घरसे लाये हुए खेड़ा, खाँडा और वरकूलिया आदिको डालकर होलीमें जौ-गेहूँकी बाल और चनेके होलोंको होलीकी ज्वालासे सेंके और यज्ञसिद्ध नवान्न तथा होलीकी अग्नि और यत्किंचित् भस्म लेकर घर आये। वहाँ आकर वासस्थानके प्रांगणमें गोबरसे चौका लगाकर अन्नादिका स्थापन करे। उस अवसरपर काष्ठके खड्गोंको स्पर्श करके बालकगण हास्यसहित शब्द करें! उनका रात्रि आनेपर संरक्षण किया जाय और गुड़के बने हुए पक्वान्न उनको दिये जायँ। इस प्रकार करनेसे ढुंढाके दोष शान्त हो जाते हैं और होलीके उत्सवसे व्यापक सुख-शान्ति होती है। कथाका सार यह है कि (१) उसी युगमें हिरण्यकशिपुकी बहिन, जो स्वयं आगसे नहीं जलती थी, अपने भाईके कहनेसे प्रह्लादको जलानेके लिये उसको गोदमें लेकर आगमें बैठ गयी; परंतु भगवान्की कृपासे ऐसा हुआ कि होली जल गयी; किंतु प्रह्लादको आँच भी नहीं लगी। उसके बदले हिरण्यकशिपु अवश्य मारा गया। (२) इसी अवसरपर नवीन धान्य (जौ, गेहूँ और चने)-की खेतियाँ पककर तैयार हो गयीं और मानव-समाजमें उनके उपयोगमें लेनेका प्रयोजन भी उपस्थित हो आया; किंतु धर्मप्राण हिंदू यज्ञेश्वरको अर्पण किये बिना नवीनान्नको उपयोगमें नहीं ले सके, अतः फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाको समिधास्वरूप उपले आदिका संचय करके उसमें यज्ञकी विधिसे अग्निका स्थापन, प्रतिष्ठा, प्रज्वालन और पूजन करके '**रक्षोघ्न०**' सूक्तसे यव-गोधूमादिके चरुस्वरूप बालोंकी आहुति दी और हुतशेष धान्यको घर लाकर प्रतिष्ठित किया। उसीसे प्राणोंका पोषण होकर प्रायः सभी प्राणी हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ हुए और होलीके रूपमें 'नवान्नेष्टि' यज्ञको सम्पन्न किया।

(परिशिष्ट)

(१) अधिमासव्रत

(१) अधिमास (श्रुति–स्मृति–पुराणादि)—जिस महीनेमें सूर्य–संक्रान्ति[१] न हो, वह महीना अधिमास होता है और जिसमें दो संक्रान्ति हों, वह क्षयमास होता है। इसको 'मलिम्लुच' भी कहते हैं। अधिमास ३२ महीने,[२] १६ दिन और ४ घड़ीके अन्तरसे आया करता है और क्षयमास १४१ वर्ष पीछे और उसके बाद १९ वर्ष पीछे आता है। क्षयमास कार्तिकादि तीन महीनोंमेंसे होता है। लोकव्यवहारमें अधिमासके 'अधिक मास', 'मलमास', 'मलिम्लुच मास' और 'पुरुषोत्तममास' नाम विख्यात है। चैत्रादि १२ महीनोंमें वरुण,[३] सूर्य, भानु, तपन, चण्ड, रवि, गभस्ति, अर्यमा, हिरण्यरेता, दिवाकर, मित्र और विष्णु—ये १२ सूर्य होते हैं और अधिमास इनसे पृथक् रह जाता है। इस कारण यह मलिम्लुच मास कहलाता है। 'अधिमासमें' फल–प्राप्तिकी कामनासे[४] किये जानेवाले प्रायः सभी काम वर्जित हैं और फलकी आशासे रहित होकर करनेके आवश्यक सब काम किये जा सकते हैं। यथा—कुएँ, बावली,[५] तालाब और बाग आदिका आरम्भ और प्रतिष्ठा; किसी भी प्रकार और किसी भी प्रयोजनके

---

१. असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद्
द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्। (ज्योतिःशास्त्र)

२. द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा।
घटिकानां चतुष्केण पतति ह्यधिमासकः॥ (वसिष्ठसिद्धान्त)

३. वरुणः सूर्यो भानुस्तपनश्चण्डो रविर्गभस्तिश्च।
अर्यमहिरण्यरेतोदिवाकरा मित्रविष्णू च॥ (ज्योतिःशास्त्र)

४. न कुर्यादधिके मासि काम्यं कर्म कदाचन। (स्मृत्यन्तर)

५. वाप्यारामतडागकूपभवनारम्भप्रतिष्ठे व्रता–
रम्भोत्सर्गवधूप्रवेशनमहादानानि सोमाष्टके।

व्रतोंका आरम्भ और उत्सर्ग (उद्यापन); नवविवाहिता वधूका प्रवेश; पृथ्वी, हिरण्य और तुला आदिके महादान; सोमयज्ञ और अष्टकाश्राद्ध (जिसके करनेसे पितृगण प्रसन्न हों); गौका यथोचित दान; आग्रयण (यज्ञविशेष नवीन अन्नसे किये जानेवाला यज्ञ; यह वर्षा-ऋतुमें 'सावाँ' (साँवक्या) से, शरद्‌में चावलोंसे और वसन्तमें जौसे किया जाता है); पौसरेका प्रथमारम्भ; उपाकर्म (श्रावणी पूर्णिमाका ऋषिपूजन); वेदव्रत (वेदाध्ययनका आरम्भ); नीलवृषका विवाह; अतिपन्न (बालकोंके नियतकालमें न किये हुए संस्कार); देवताओंका स्थापन (देवप्रतिष्ठा); दीक्षा (मन्त्रदीक्षा, गुरुसेवा); मौंजी-उपवीत (यज्ञोपवीत-संस्कार); विवाह; मुण्डन (जड़ला), पहले कभी न देखे हुए देव और तीर्थोंका निरीक्षण, संन्यास, अग्निपरिग्रह (अग्निका स्थायी स्थापन); राजाके दर्शन, अभिषेक, प्रथम यात्रा, चातुर्मासीय व्रतोंका प्रथमारम्भ, कर्ण-वेध और परीक्षा—ये सब काम अधिमासमें और गुरु-शुक्रके अस्त तथा उनके शिशुत्व और बालत्वके तीन-तीन दिनोंमें और न्यून मासमें भी सर्वथा वर्जित हैं। इनके अतिरिक्त तीव्र ज्वरादि प्राणघातक रोगादिकी निवृत्तिके रुद्रजपादि अनुष्ठान; कपिलषष्ठी-जैसे अलभ्य योगोंके प्रयोग; अनावृष्टिके अवसरमें वर्षा करानेके पुरश्चरण; वषट्कारवर्जित आहुतियोंका हवन; ग्रहणसम्बन्धी श्राद्ध; दान और जपादि; पुत्रजन्मके कृत्य और पितृमरणके श्राद्धादि तथा गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्त-जैसे संस्कार और नियत अवधिमें समाप्त करनेके पूर्वागत प्रयोगादि किये जा सकते हैं।

गोदानाग्रयणप्रपाप्रथमकोपाकर्मवेदव्रतं
नीलोद्वाहमथातिपन्नशिशुसंस्कारान् सुरस्थापनम्॥
दीक्षामौञ्जिविवाहमुण्डनमपूर्वं देवतीर्थेक्षणं
संन्यासाग्निपरिग्रहौ नृपतिसंदर्शाभिषेकौ गमम्।
चातुर्मास्यसमावृती श्रवणयोर्वेधं परीक्षां त्यजेद्
वृद्धत्वास्तशिशुत्व इज्यसितयोर्न्यूनाधिमासे तथा॥ (मुहूर्तचिन्तामणि)

(२) अधिमासव्रत (भविष्योत्तर)—चैत्रादि महीनोंमें जो महीना अधिमास हो, उसके सम्पूर्ण साठ दिनोंमेंसे प्रथमकी शुक्ल प्रतिपदासे प्रारम्भ करके द्वितीयकी कृष्ण अमावास्यातक तीस दिनोंमें अधिमासके निमित्तका उपवास या नक्त अथवा एकभुक्त व्रत करके यथासामर्थ्य दान-पुण्यादि करे। यदि मासपर्यन्तकी सामर्थ्य न हो या उतना अवसर ही न मिले तो पुण्यप्रद किसी भी दिनमें दोनों स्त्री-पुरुष प्रातःस्नानादि नित्यकर्म करके भगवान् वासुदेवको हृदयमें रखकर व्रत या उपवास करें और अव्रण कलशपर लक्ष्मी और नारायणकी मूर्ति स्थापन करके उनका सप्रेम पूजन करें। पूजनके समय '**देवदेव महाभाग प्रलयोत्पत्तिकारक। कृष्ण सर्वेश भूतेश जगदानन्दकारक। गृहाणार्घ्यमिमं देव दयां कृत्वा ममोपरि**' से अर्घ्य दे और '**स्वयम्भुवे नमस्तुभ्यं ब्रह्मणेऽमिततेजसे। नमोऽस्तु ते श्रितानन्द दयां कृत्वा ममोपरि॥**' से प्रार्थना करे। नैवेद्यमें घी, गेहूँ और गुड़के बने हुए पदार्थ; दाख, केले, नारियल, कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) और दाडिमादि फल और बैगन, ककड़ी, मूली और अदरख आदि शाक अर्पण करके अन्न, वस्त्र, आभूषण और अन्य प्रकारके पृथक्-पृथक् पदार्थोंका दान दे।

(३) अधिमासव्रत २ (हेमाद्रि)—यह व्रत मनुष्योंके सम्पूर्ण पापोंका हरण करनेवाला है। इसमें एकभुक्त, नक्त या उपवास और भगवान् भास्करका पूजन तथा कांस्यपात्रमें भरे हुए अन्न-वस्त्रादिका दान किया जाता है। प्राचीन कालमें नहुष राजाने इन्द्रत्वप्राप्तिके मदसे अपने नरयान (पालकी)-को वहन करनेमें महर्षि अगस्त्यको नियुक्त करके 'सर्प-सर्प' (चलो-चलो) कह दिया था। उस धृष्टताके कारण वह स्वयं सर्प हो गया। अन्तमें व्यासजीके आदेशानुसार अधिमासका व्रत करनेसे वह सर्पयोनिसे मुक्त हुआ। ......व्रतका विधान यह है कि अधिमास आरम्भ

होनेपर प्रातःस्नानादि नित्यकर्म करके विष्णुस्वरूप 'सहस्रांशु' (हजार किरणवाले सूर्यनारायणका) पूजन करे। विविध प्रकारके घी, गुड़ और अन्नका नित्य दान करे तथा घी, गेहूँ और गुड़के बनाये हुए तैंतीस अपूप (पूओं)-को कांस्यपात्रमें रखकर '**विष्णुरूपी सहस्रांशुः सर्वपापप्रणाशनः। अपूपान्नप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु॥**' से प्रतिदिन दान करे और '**यस्य हस्ते गदाचक्रे गरुडो यस्य वाहनम्। शंखः करतले यस्य स मे विष्णुः प्रसीदतु॥**' से प्रार्थना करे तो कुरुक्षेत्रादिके स्नान, गो-भू-हिरण्यादिके दान और अगणित ब्राह्मणोंको भोजन करानेके समान फल होता है तथा सब प्रकारके धन, धान्य, पुत्र और परिवार बढ़ते हैं।

(४) पुरुषोत्तममासव्रत (भविष्योत्तरपुराण)—इस व्रतके विषयमें श्रीकृष्णने कहा था कि इसका फलदाता, भोक्ता और अधिष्ठाता—सब कुछ मैं हूँ। (इसी कारणसे इसका नाम पुरुषोत्तम है।) इस महीनेमें केवल ईश्वरके उद्देश्यसे जो व्रत, उपवास, स्नान, दान या पूजनादि किये जाते हैं, उनका अक्षय फल होता है और व्रतीके सम्पूर्ण अनिष्ट नष्ट हो जाते हैं।

(५) मलमासव्रत (देवीभागवत)—इस महीनेमें दान, पुण्य या शरीर-शोषण—जो भी किया जाय, उसका अक्षय फल होता है। यदि सामर्थ्य न हो तो ब्राह्मण और साधुओंकी सेवा सर्वोत्तम है। इससे तीर्थस्नानादिके समान फल होता है। पुण्यके कामोंमें व्यय करनेसे धन क्षीण नहीं होता, बल्कि बढ़ता है। जिस प्रकार अणुमात्र बीजके दान करनेसे वट-जैसा दीर्घजीवी महान् वृक्ष होता है, वैसे ही मलमासमें दिया हुआ दान अधिक फल देता है।

(६) अधिमासीयार्चनव्रत (पूजापंकजभास्कर)—अधिमासके व्रतोंमें भगवान्‌की पूजन-विधिमें यह विशेषता है कि गन्धयुक्त

पुष्प और श्रीसूक्तके मन्त्र—इनके साथमें भगवान्‌के नामोंका एक-एक करके उच्चारण करता हुआ उनके पुष्प अर्पण करे। नाम ये हैं—१—**कूर्माय,** २—**सहस्त्रशीर्ष्णे,** ३—**देवाय,** ४—**सहस्त्राक्षपादाय,** ५—**हरये,** ६—**लक्ष्मीकान्ताय,** ७—**सुरेश्वराय,** ८—**स्वयम्भुवे,** ९—**अमिततेजसे,** १०—**ब्रह्मप्रियाय,** ११—**देवाय,** १२—**ब्रह्मगोत्राय। पुनः लक्ष्म्यै नमः, कमलायै नमः, श्रियै नमः, पद्मवासायै नमः, हरिवल्लभायै नमः, क्षीराब्धितनयायै नमः, इन्दिरायै नमः**—इन नामोंसे पुष्प अर्पण करके '**पुराणपुरुषेशान सर्वशोकनिकृन्तन। अधिमासव्रते प्रीत्या गृहाणार्घ्यं श्रिया सह॥' पुराणपुरुषेशान जगद्धातः सनातन। सपत्नीको ददाम्यर्घ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे॥ देवदेव महाभाग प्रलयोत्पत्तिकारक। कृपया सर्वभूतस्य जगदानन्दकारक। गृहाणार्घ्यमिमं देव दयां कृत्वा ममोपरि॥**'—इन मन्त्रोंसे तीन बार अर्घ्य दे तो महाफल होता है।

(२) संक्रान्तिव्रत

(१) संक्रान्ति (बहुसम्मत)—सूर्य जिस राशिपर[1] स्थित हो, उसे छोड़कर जब दूसरी राशिमें प्रवेश करे, उस समयका नाम संक्रान्ति है। ऐसी बारह संक्रान्तियोंमें मकरादि[2] छः और कर्कादि छः राशियोंके भोगकालमें क्रमशः उत्तरायण और दक्षिणायन—ये दो अयन होते हैं। इनके अतिरिक्त मेष और तुलाकी संक्रान्तिकी 'विषुवत्';[3] वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भकी 'विष्णुपदी' और मिथुन, कन्या, धनु एवं मीनकी 'षडशीत्यानन'

---

१. रवेः संक्रमणं राशौ संक्रान्तिरिति कथ्यते। (नागरखण्ड)

२. मकरकर्कटसंक्रान्तिक्रमेणोत्तरायणं दक्षिणायनं स्यात्। (मुक्तकसंग्रह)

३. अयने द्वे विषुवती चतस्रः षडशीतयः।
चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः॥ (वसिष्ठ)

संज्ञा होती है। अयन या संक्रान्तिके समय व्रत-दान या जपादि करनेके विषयमें 'हेमाद्रि'[१] के मतसे संक्रमण होनेके समयसे पहले और पीछेकी १५-१५ घड़ियाँ, 'बृहस्पति'[२] के मतसे दक्षिणायनके पहले और उत्तरायणके पीछेकी २०-२० घड़ियाँ और 'देवल'[३] के मतसे पहले और पीछेकी ३०-३० घड़ियाँ पुण्यकालकी होती हैं। इनमें 'वसिष्ठ' के मतसे[४] 'विषुव' के मध्यकी, विष्णुपदी और दक्षिणायनके पहलेकी तथा षडशीतिमुख और उत्तरायणके पीछेकी उपर्युक्त घड़ियाँ पुण्यकालकी होती हैं। वैसे सामान्य[५] मतसे सभी संक्रान्तियोंकी १६-१६ घड़ियाँ अधिक फलदायक हैं। यह विशेषता है कि दिनमें संक्रान्ति[६] हो तो पूरा दिन, अर्धरात्रिसे पहले हो तो उस दिनका उत्तरार्ध, अर्धरात्रिसे पीछे हो तो आनेवाले दिनका पूर्वार्ध, ठीक अर्धरात्रिमें[७] हो तो पहले और पीछेके तीन-तीन प्रहर और उस समय अयनका भी परिवर्तन हो तो तीन-तीन दिन पुण्यकालके होते हैं। उस समय

---

१. अधः पंचदश ऊर्ध्वं च पंचदशेति। (हेमाद्रि)
२. दक्षिणायने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः परा। (बृहस्पति)
३. संक्रान्तिसमयः सूक्ष्मो दुर्ज्ञेयः पिशितेक्षणैः।
तद्योगाच्चाप्यधश्चोर्ध्वं त्रिंशन्नाड्यः पवित्रिताः॥ (देवल)
४. मध्ये तु विषुवे पुण्यं प्राग्विष्णौ दक्षिणायने।
षडशीतिमुखेऽतीते अतीते चोत्तरायणे॥ (वसिष्ठ)
५. अर्वाक् षोडश विज्ञेया नाड्यः पश्चाच्च षोडश।
कालः पुण्योऽर्कसंक्रान्तेः········॥ (शातातप)
६. अह्नि संक्रमणे पुण्यमहः सर्वं प्रकीर्तितम्।
रात्रौ संक्रमणे पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः॥
अर्धरात्रादधस्तस्मिन् मध्याह्नस्योपरि क्रिया।
ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम्॥ (वसिष्ठ)
७. पूर्णे चैवार्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः।
तदा दिनत्रयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ॥ (ज्योतिर्वसिष्ठ)

दान देनेमें भी यह विशेषता है कि अयन अथवा[१] संक्रमण-समयका दान उनके आदिमें और दोनों ग्रहण तथा षडशीतिमुखके निमित्तका दान अन्तमें देना चाहिये।

(२) संक्रान्तिव्रत (वंगऋषिसम्मत)—मेषादि किसी भी संक्रान्तिका जिस दिन संक्रमण हो उस दिन प्रातःस्नानादिसे निवृत्त होकर '**मम ज्ञाताज्ञातसमस्तपातकोपपातकदुरितक्षयपूर्वक श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तपुण्यफलप्राप्तये श्रीसूर्यनारायणप्रीतये च अमुकसंक्रमणकालीनमयनकालीनं वा स्नानदानजपहोमादिकर्माहं करिष्ये।**'—यह संकल्प करके वेदी या चौकीपर लाल कपड़ा बिछाकर अक्षतोंका अष्टदल लिखे और उसमें सुवर्णमय सूर्यनारायणकी[२] मूर्ति-स्थापन करके उनका पंचोपचार (स्नान, गन्ध, पुष्प, धूप और नैवेद्य)-से पूजन और निराहार, साहार, अयाचित, नक्त या एकभुक्त व्रत करे तो सब प्रकारके पापोंका क्षय, सब प्रकारकी अधि-व्याधियोंका निवारण और सब प्रकारकी हीनता अथवा संकोचका निपात होता है तथा प्रत्येक प्रकारकी सुख-सम्पत्ति, संतान और सहानुभूतिकी वृद्धि होती है।

(३) संक्रमणव्रत (गर्ग-गालव-गौतमादि)—मेषादि किसी भी अधिकृत राशिको छोड़कर सूर्य दूसरी राशिमें प्रवेश करे (अथवा सौम्य या याम्यायनकी प्रवृत्ति हो) उस समय दिन-रात्रि, पूर्वाह्ण-पराह्ण, पूर्वापरिनिश्यर्द्ध या अर्धरात्रिका कुछ भी विचार न करके तत्काल[३] स्नान करे और सफेद वस्त्र धारण

---

१. अयनादौ सदा देयं द्रव्यमिष्टं गृहेषु यत्।
षडशीतिमुखे चैवं विमोक्षे चन्द्रसूर्ययोः॥ (संक्रान्तिकृत्य)

२. उपोष्यैवं तु संक्रान्तौ स्नातो योऽभ्यर्चयेद्धरिम्।
प्रातः पंचोपचारेण स काम्यं फलमश्नुते॥ (वसिष्ठ)

३. रवेः संक्रमणं राशौ संक्रान्तिरिति कथ्यते।
स्नानदानजपश्राद्धहोमादिषु महाफला॥ (नागरखण्ड)

करके अक्षतादिके अष्टदलपर स्थापित किये हुए सुवर्णमय सूर्यका उपर्युक्त प्रकारसे पूजन करे। साथ ही '**ॐ आकृष्णेन०**' या '**ॐ नमो भगवते सूर्याय**' अथवा '**ॐ सूर्याय नमः**' का जप और आदित्यहृदयादिका पाठ करके घी, शक्कर और मेवा मिले हुए तिलोंका हवन करे और अन्न-वस्त्रादि देय वस्तुओंका दान दे तो इनमेंसे एक-एक भी पावन[1] करनेवाला होता है। स्मृत्यन्तमें रात्रिको स्नान और दान वर्जित किये हैं। इसका 'विष्णु' ने यह समाधान किया है कि विवाह, व्रत, संक्रान्ति, प्रतिष्ठा, ऋतुस्नान, पुत्रजन्म, चन्द्रादित्यके ग्रहण और व्यतीपात—इनके निमित्तका 'रात्रिस्नान'[2] और ग्रहण, उद्वाह (विवाह), संक्रान्ति, यात्रा, प्रसवपीड़ा और इतिहासोंका श्रवण—इनके निमित्तका 'रात्रिदान'[3] वर्जित नहीं है। यही नहीं, यदि कोई ग्रहणादि उक्त अवसरोंमें रात्रिके विचारसे स्नान (और दान) न[4] करे तो वह चिरकाल (कई वर्षों)-तक रोगी और दरिद्री रहता है। व्रतसंख्यामें यह विशेषता है कि वृद्धवसिष्ठके मतानुसार अयन[5] (मकर-कर्क-संक्रमण) और विषुव (मेष-तुला-संक्रमण)—इनमें तीन रात्रिका और आपस्तम्बके मतानुसार अयन,[6] विषुव और दोनों ग्रहण—

---

१. अत्र स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम्।
उपवासस्तथा दानमेकैकं पावनं स्मृतम्॥ (संवर्त)

२. विवाहव्रतसंक्रान्तिप्रतिष्ठाऋतुजन्मसु।
तथोपरागपातादौ स्नाने दाने निशा शुभा॥ (विष्णु)

३. ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तियात्रार्तिप्रसवेषु च।
श्रवणे चेतिहासस्य रात्रौ दानं प्रशस्यते॥ (सुमन्तु)

४. रविसंक्रमणे प्राप्ते न स्नायाद् यस्तु मानवः।
चिरकालिकरोगी स्यान्निर्धनश्चैव जायते॥ (शातातप)

५. अयने विषुवे चैव त्रिरात्रोपोषितो नरः। (वृद्धवसिष्ठ)

६. अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
अहोरात्रोषितः स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ (आपस्तम्ब)

इनमें अहोरात्र (सूर्योदयसे सूर्योदयपर्यन्त)-का उपवास करनेसे सब पाप छूट जाते हैं। परंतु पुत्रवान्[१] गृहस्थीके लिये रविवार, संक्रान्ति, चन्द्रादित्यके ग्रहण और कृष्णपक्षकी एकादशीका व्रत करनेकी आज्ञा नहीं है। अतः उनको चाहिये कि वह व्रतकी अपेक्षा स्नान और दान अवश्य करें। इनके करनेसे दाता और भोक्ता दोनोंका कल्याण होता है। षडशीति (कन्या,[२] मिथुन, मीन और धन) तथा विषुवती (तुला और मेष) संक्रान्तिमें दिये हुए दानका अनन्तगुना, अयनमें दिये हुएका करोड़गुना, विष्णुपदीमें दिये हुएका लाखगुना, षडशीतिमें हजारगुना, इन्दुक्षय (चन्द्रग्रहण)-में सौगुना, दिनक्षय (सूर्यग्रहण)-में हजारगुना और व्यतीपातमें दिये हुए दानादिका अनन्तगुना फल होता है। देयके विषयमें[३] भी यह विशेषता है कि—१ 'मेष' संक्रान्तिमें मेढा, २ 'वृष' में गौ, ३ 'मिथुन' में अन्न-वस्त्र और दूध-दही, ४ 'कर्क'में धेनु, ५ 'सिंह'में सुवर्णसहित छत्र (छाता), ६ 'कन्या' में वस्त्र और गायें, ७ 'तुला' में अनेक प्रकारके धान्य-बीज (जौ, गेहूँ और चने आदि), ८ 'वृश्चिक' में घर-मकान या झोंपड़े (पर्णकुटी), ९ 'धनु' में बहुवस्त्र और सवारियाँ, १० 'मकर' में काष्ठ और

---

१. आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
उपवासो न कर्तव्यो गृहिणा पुत्रिणा तथा॥
'कृष्णैकादशीति' विशेषः। (नारद)

२. षडशीत्यां तु यद् दत्तं यद् दानं विषुवद्वये।
दृश्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव दृश्यते॥ (भारद्वाज)
अयने कोटिपुण्यं च लक्षं विष्णुपदीफलम्।
षडशीतिसहस्त्रं च षडशीत्यां स्मृतं बुधैः॥
शतमिन्दुक्षये दानं सहस्त्रं तु दिनक्षये।
विषुवे शतसाहस्त्रं व्यतीपाते त्वनन्तकम्॥ (वसिष्ठ)

३. मेषसंक्रमणे भानोर्मेषदानं महाफलम्। (विश्वामित्र)

अग्नि, ११ 'कुम्भ' में गायोंके लिये जल और घास तथा १२ 'मीन'में उत्तम प्रकारके माल्य (तेल-फुलेल-पुष्पादि) और स्थानका दान करनेसे सब प्रकारकी कामनाएँ सिद्ध होती हैं और संक्रान्ति आदिके अवसरोंमें हव्य-कव्यादि[1] जो कुछ दिया जाता है, सूर्यनारायण उसे जन्म-जन्मान्तरपर्यन्त प्रदान करते रहते हैं।

(४) महाजया संक्रान्तिव्रत (ब्रह्मपुराण)—किसी महीनेकी कोई भी संक्रान्ति यदि शुक्लपक्षकी सप्तमी और रविवारको हो तो वह 'महाजया'[2] होती है। उस दिन प्रातःस्नानादिके पश्चात् अक्षतोंके अष्टदलपर सुवर्णमय सूर्यमूर्तिको अथवा पूर्वप्रतिष्ठित सूर्य-प्रतिमाको स्थापित करके गौके घी और दूधसे पूर्ण स्नान कराये तथा पंचोपचार पूजन करके सोपवास जप, तप, हवन, देवपूजा, पितृतर्पण और दान करे तथा ब्राह्मणभोजन कराये तो अश्वमेधादिके समान फल होता है और व्रत करनेवालेको सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

(५) धनसंक्रान्तिव्रत (स्कन्दपुराण)—संक्रान्तिके समय मनुष्य अच्छिद्र (बिना छेदके) कलशमें जल, फल, सर्वौषधि और दक्षिणा रखकर उसको अष्टदलपर स्थापित करके उसके मध्यमें सुवर्णमय सूर्यका गन्धादिसे पूजन करे, एकभुक्त व्रत करे और इस प्रकार वर्षपर्यन्त करके उद्यापन करे तो धनसे संयुक्त रहता है।

(६) धान्यसंक्रान्तिव्रत (स्कन्दपुराण)—मेषार्कके समय स्नान करके सूर्यका ध्यान करे और '**करिष्यामि व्रतं देव त्वद्भक्त-स्त्वत्परायणः। तदा विघ्नं न मे यातु तव देव प्रसादतः॥**'

---

१. संक्रान्तौ यानि दत्तानि हव्यकव्यानि दातृभिः।
तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनिजन्मनि॥ (शातातप)

२. शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदा संक्रमते रविः।
महाजया तदा सा वै सप्तमी भास्करप्रिया॥ (ब्रह्मपुराण)

से संकल्प करके व्रत करे। तत्पश्चात् अष्टदलपर पूर्वमें भास्कर, अग्निकोणमें रवि, दक्षिणमें विवस्वान्, नैर्ऋत्यमें पूषा, पश्चिममें वरुण, वायव्यमें दिवाकर, उत्तरमें मार्तण्ड, ईशानमें भानु और मध्यमें विश्वात्माका नाम-मन्त्रोंसे पूजन करके व्रत करे और इस प्रकार बारह महीने करनेके बाद पूजनसामग्री और लगभग १६ किलो अन्न सत्पात्रको दे तो धान्यकी वृद्धि होती है।

(७) भोगसंक्रान्तिव्रत (स्कन्दपुराण)—संक्रान्तिके समय सपत्नीक ब्राह्मणको बुलाकर उसको उत्तम पदार्थोंका भोजन करावे। कुंकुम, कज्जल, कौसुम्भ, सिन्दूर, पान, पुष्प, फल और तण्डुल देकर दोनोंको दो-दो वस्त्र और अलग-अलग दक्षिणा दे तो यथारुचि भोग मिलते हैं।

(८) रूपसंक्रान्तिव्रत (मत्स्यपुराण)—संक्रान्तिके समय तैलमर्दनके अनन्तर शुद्ध स्नान करके सोने, चाँदी, ताँबे या पलाशके पात्रमें घी और सोना रखकर उसमें अपने शरीरका छायाव-लोकन करे और ब्राह्मणको देकर व्रत करे तो रूप बढ़ता है।

(९) तेजःसंक्रान्तिव्रत (मत्स्यपुराण)—संक्रान्तिके पुण्य-कालमें सुपूजित कलशको चावलोंसे भरकर उसपर घीका दीपक रखे और उसके समीपमें मोदक रखकर, '**ममाखिलदोषप्रशमन-पूर्वकतेजः प्राप्तिकामनयेदं पूर्णपात्रं गन्धपुष्पाद्यर्चितं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृजे।**' से जल छोड़कर सम्पूर्ण सामग्री ब्राह्मणको दे तो इससे तेज बढ़ता है।

(१०) आयुःसंक्रान्तिव्रत (स्कन्दपुराण)—संक्रान्तिके समय काँसीके पात्रमें यथासामर्थ्य घी, दूध और सुवर्ण रखकर गन्धादिसे पूजन करके '**क्षीरं च सुरभीजातं पीयूषममलं घृतम्। आयुरारोग्यमैश्वर्यमतो देहि द्विजार्पितम्॥**' से उसका दान करे तो तेज, आयु और आरोग्यता आदिकी वृद्धि होती है।

(११) मेषादिगत सूर्यव्रत (लक्ष्मीनारायणसंग्रह)—व्रतीको चाहिये कि मेषसंक्रान्तिमें सूर्य रहे तबतक प्रत्येक रविवारको तीन बूँद 'गोबर जल' पीकर व्रत करे। इसी प्रकार वृषमें केवल तीन अंजलि जल; मिथुनमें तीन काली मिर्च; कर्कमें तीन मुट्ठी गोधूमसत्तू; सिंहमें तीन बूँद गोशृंगका धोया हुआ जल; कन्यामें तीन पल अन्न; तुलामें केवल प्राणायामकी वायुका भक्षण; वृश्चिकमें तीन तुलसीदल; धनुमें तीन पल गोघृत; मकरमें तीन मुट्ठी तिल; कुम्भमें तीन पल गौका दही और मीनमें तीन पल गोदुग्ध पीकर उपवास करे तो सब प्रकारके अरिष्ट, कष्ट या व्याधियाँ दूर हो जाती हैं और शरीरकी सुन्दरता तथा शक्ति बढ़ जाती है।

(३) अयनव्रत

(१) अयनव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—उत्तरायणकी प्रवृत्तिके समय गौके लगभग दो किलो घृतसे विष्णुको स्नान कराये तो सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुसायुज्यको प्राप्त होता है।

(२) अयनव्रत २ (भविष्योत्तर)—उत्तरायणके समय ब्राह्मणको लगभग दो किलो घी और सुपूजित घोड़ी दे तो सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

(४) पक्षव्रत

(१) पक्ष (धर्मसार)—जिसका देव और पितृकार्योंके अर्थ पृथक्-पृथक् परिग्रहण किया जाय उस (कालविशेष)-को पक्ष कहते हैं अथवा जिसमें चन्द्रमाकी कलाएँ पूर्ण अथवा क्षीण हों उसे पक्ष कहते हैं। ऐसे दो पक्ष 'शुक्ल' और 'कृष्ण' अथवा पूर्व और पर नामसे प्रसिद्ध हैं। ये दोनों पक्ष धर्मशास्त्रके अनुसार 'देव' निमित्तके जप, ध्यान, उपासना, होम, यज्ञ, प्रतिष्ठा अथवा सौभाग्य-वृद्धिके सदनुष्ठान आदिमें और 'पितृ' निमित्तके श्राद्ध,

तर्पण, हन्तकार या महालयादि कार्योंमें उपयुक्त किये जाते हैं। ज्योतिःशास्त्रके अनुसार सब प्रकारके 'शुभकार्य'—यथा आभ्युदयिक श्राद्ध या मांगलिक महोत्सव और 'अशुभ' कार्य—यथा मृत मनुष्यकी अज्ञात मृत्युके अन्त्येष्टिकर्मादि या तन्निमित्तक तीर्थश्राद्ध अथवा गयायात्रा आदि कार्योंमें उपयुक्त किये जाते हैं।

(२) पक्षव्रत (मुक्तकसंग्रह)—यह व्रत शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे प्रारम्भ करके पूर्णिमापर्यन्त प्रतिदिन किया जाता है। उसमें प्रातः-स्नानादिके अनन्तर सुवर्णमय सूर्यका पंचोपचार पूजन करके दोनों हाथोंकी अंजलिमें गन्ध, अक्षत, पुष्प और जल लेकर '**एहि सूर्यसहस्त्रांशो तेजोराशे जगत्पते। अनुकम्पय मां देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥**' से तीन बार अर्घ्य दे और मध्याह्नमें हविष्यान्नका एक बार भोजन करे। कृष्णपक्षमें प्रतिपदासे प्रारम्भ करके अमावस्यापर्यन्त प्रतिदिन प्रातःस्नानादिके पश्चात् चाँदीके बने हुए चन्द्रमाका पंचोपचार पूजन करे और अंजलिमें यथापूर्व जल लेकर '**सोमप्रकाशकाय सूर्याय एषोऽर्घः।**' से अर्घ्य देकर—'**आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने। जन्मान्तरसहस्त्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते॥**' से नमस्कार करे तो आयु, आरोग्य और सौभाग्यकी वृद्धि होती है और ऋण हो तो वह उतर जाता है।

(५) वारव्रत

(१) वारव्रत (श्रुति, स्मृति, पुराणादि)—सप्ताहमें सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, भृगु और शनि—ये सात वार यथाक्रम हैं और आजके सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतक रहते हैं। तिथ्यादिकी क्षय-वृद्धि अथवा उनके मानका न्यूनाधिक्य होता है, किंतु वारोंमें ऐसा नहीं होता। जिनके नामसे वार प्रसिद्ध हैं, उनके अधिष्ठाता सूर्यादि सात ग्रह आकाशमें प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। उनमेंसे सूर्य निरंजन निराकार ज्योतिःस्वरूप परमात्माकी प्रत्यक्ष प्रतिमूर्ति हैं

और चन्द्रादि छः ग्रहों तथा अन्य सभी तारागणोंको प्रकाशित करते हैं। इसी कारण शास्त्रकारोंने ग्रह-नक्षत्रादि सभीमें परमेश्वरका अंश होना बतलाया है और इस कारण उनके निमित्तसे जप, दान, प्रतिष्ठा, पूजा और व्रत आदिके विधान नियत किये हैं। अन्य देवी-देवताओंके व्रतोंकी भाँति सुख-सौभाग्यादिकी उपलब्धिके हेतुसे तो वारोंके व्रत करते ही हैं, साथ ही जन्मलग्न, वर्षलग्न, मासलग्न, उनकी दशा-विदशा, अन्तर-प्रत्यन्तर और गोचराष्टक वर्गादिमें कोई ग्रह अनिष्टकारी हो तो उसकी शान्तिके लिये व्रत किये जाते हैं! इसी विचारसे यहाँ वारोंके भी व्रत लिखे गये हैं। धर्मशास्त्रोंने जिस प्रकार ग्रहोंमें ईश्वरका अंश निर्धारित किया है उसी प्रकार सुवर्णमें भी ईश्वरका अंश सूचित किया है। इस कारण व्रतादिकी देवपूजामें सुवर्णकी मूर्ति स्थापित की जाती है। रस-शास्त्रमें चाँदीको सुवर्णके रूपमें परिणत करनेके विधान और ताँबाको सुवर्णका सहयोगी कहा है; इस कारण सोनेके अभावमें चाँदी और चाँदीके अभावमें ताँबा काममें आता है।

(२) रविवारव्रत (व्रतरत्नाकर)—वारोंके व्रतका आरम्भ विशेषकर वैशाख, मार्गशीर्ष और माघमें होता है। अतः मार्गशीर्ष शुक्लके पहले रविवारको प्रातःस्नानादि करनेके अनन्तर '**मम जन्मवर्ष-मास-दिन-होरा-अष्टकवर्ग-दशा-विदशा-सूक्ष्म-दशादिषु येऽनिष्टफलकारकास्तज्जनितजनिष्यमाणाखिलारिष्टनाद्यनिष्टझटिति-प्रशमनपूर्वकदीर्घायुर्बलपुष्टिनैरुज्यादिसकलशुभफलप्राप्त्यर्थं श्रीसूर्यनारायणप्रीतिकामनयाद्यारभ्य यावद्वर्षपर्यन्तं रविवारे रविवारव्रतं करिष्ये।**'—यह संकल्प करके सुवर्णनिर्मित सूर्यमूर्तिका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और मध्याह्नमें अलवण पदार्थोंका एकभुक्त भोजन करे। इस प्रकार वर्षपर्यन्त करके उद्यापन करे तो दाद, कोढ़, नेत्रपीड़ा और दीर्घरोग दूर होते हैं और आरोग्यता बढ़ती है।

(३) रविवारव्रत[२] (भविष्यपुराण)—चैत्र या मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षमें पहले रविवारको गोबरसे चौका लगाकर उसपर चन्दनसे द्वादशदल पद्म लिखे। उसके मध्यमें सूर्यकी मूर्ति स्थापित करके षोडशोपचार पूजन करे। विशेषता यह है कि चैत्रके व्रतमें 'भानु' नामकी पूजा, घी और पूरीका नैवेद्य, दाडिमका अर्घ्य, मिठाईका दान और तीन पल (१७५ ग्राम) दूधका प्राशन (भोजन)। वैशाखमें तपनका पूजन, उड़द और घीका नैवेद्य, दाखका अर्घ्य, उड़दका दान और गोबरका प्राशन। ज्येष्ठमें 'इन्द्र' (सूर्य)–का पूजन, दही और सत्तूका नैवेद्य, आम्रफलका अर्घ्य, चावलोंका दान और दध्योदनका भोजन। आषाढ़में 'सूर्य' का पूजन, जायफलका नैवेद्य, चिउड़ाका अर्घ्य, भोजनका दान और तीन काली मिरचोंका प्राशन। श्रावणमें 'गभस्ति' का पूजन, सत्तू और पूरीका नैवेद्य, चिउड़ेका अर्घ्य, फलोंका दान और तीन मुट्ठी सत्तूका भोजन। भाद्रपदमें 'यम' (सूर्य)–का पूजन, घी–भातका नैवेद्य, कूष्माण्डका अर्घ्य, उसीका दान और गोमूत्रका प्राशन। आश्विनमें 'हिरण्यरेता' का पूजन, शर्कराका नैवेद्य, दाडिमका अर्घ्य, चावल और चीनीका दान और तीन पल चीनीका भोजन। कार्तिकमें 'दिवाकर' का पूजन, खीरका नैवेद्य, केलेका अर्घ्य, खीरका दान और उसीका भोजन। मार्गशीर्षमें 'मित्र' का पूजन, चावलोंका नैवेद्य, घी, गुड़ और श्रीफलका अर्घ्य, गुड़–घीका दान और तीन तुलसीदलोंका भक्षण। पौषमें 'विष्णु' का पूजन, चावल, मूँग और तिलोंकी खिचड़ीका नैवेद्य, बिजौरेका अर्घ्य, अन्नका दान और पावभर घीका भोजन। माघमें 'वरुण' (सूर्य)–का पूजन, केलेका नैवेद्य, तिलोंका अर्घ्य, गुड़का दान और तिल–गुड़का भोजन एवं फाल्गुनमें 'भानु' का पूजन, दही और घीका नैवेद्य, जँभीरीका अर्घ्य, दही और चावलोंका दान और तीन पल दहीका प्राशन करे। इस विधिमें यम–इन्द्रादिके नाम आये हैं, वे सूर्यके ही

नाम हैं। यह व्रत वर्षपर्यन्त करनेके बाद उद्यापन करे तो सब प्रकारके रोग-दोष दूर होते हैं।

(४) कुष्ठहर आशादित्य रविवारव्रत (स्कन्दपुराण)—आश्विन शुक्लके रविवारको प्रातःस्नानादि करके '**मम शुभाशासिद्धये आशादित्यव्रतं करिष्ये**' से संकल्प करके शुद्ध भूमिमें गोबरसे गोल मण्डल बनाकर केशर और सिन्दूरसे बारह दलका पद्म बनाये। उसके मध्यमें सूर्यकी मूर्ति स्थापित करके षोडशोपचार पूजन करे। इसमें पुष्पार्पण करनेके बाद **सूर्याय नमः 'पादौ', वरुणाय नमः 'जंघे', माधवाय नमः 'जानुनी', धात्रे नमः 'ऊरू', हरये नमः 'कटिम्', भगाय नमः 'गुह्यम्', सुवर्णरेतसे नमः 'नाभिम्', अर्यम्णे नमः 'जठरम्', दिवाकराय नमः 'हृदयम्', तपनाय नमः 'कण्ठम्', भानवे नमः 'स्कन्धौ', हंसाय नमः 'हस्तौ', मित्राय नमः 'मुखम्', रवये नमः 'नासिके', खगाय नमः 'नेत्रे', पूष्णे नमः 'कर्णौ', हिरण्यगर्भाय नमः 'ललाटम्', आदित्याय नमः 'शिरः'** और **भास्कराय नमः 'सर्वांगं पूजयामि'** से अंगपूजा करके धूप-दीपादि करे। इसमें '**पूजयामि**' सब नामोंके साथ लगावे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक करके उद्यापन करे। इस व्रतसे कोढ़-जैसी पापजन्य और पीढ़ियोंतक रहनेवाली बीमारियाँ निर्मूल हो जाती हैं। पूजनमें '**यथाशा विमलाः सर्वास्तव भास्कर भानुभिः। तथाशाः सफला नित्यं कुरु मह्यं यमार्चिता॥**' से अर्घ्य दे और '**नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने सप्ततुरंगमाय। सामग्र्यजुर्धामनिधे विधातर्भवाब्धिपोताय नमः सवित्रे॥**' से प्रार्थना करे।

(५) सौरधर्मोक्त रविवारव्रत (स्कन्दपुराण)—यह व्रत मार्गशीर्षसे वर्षपर्यन्त किया जाता है। व्रतीको चाहिये कि व्रतके

दिन नदी आदिपर प्रातःस्नान करके देव और पितरोंका तर्पण करे। फिर शुद्ध भूमिमें बारह दलका पद्म लिखकर उसपर हर महीने सूर्यका पूजन करे। प्रकार यह है कि मार्गशीर्षमें 'मित्र' का पूजन, श्रीफलका अर्घ्य, चावलोंका नैवेद्य, गुड़-घीका दान और तीन तुलसीपत्रका प्राशन। पौषमें 'विष्णु' का पूजन, चावल, मूँग और तिलोंकी खिचड़ीका नैवेद्य, बिजौरेका अर्घ्य, घीका दान और तीन पल घीका प्राशन। माघमें 'वरुण' का पूजन, तिल-गुड़का नैवेद्य, ऋतुफलका अर्घ्य, उसीका दान और तीन मुट्ठी तिलोंका प्राशन। फाल्गुनमें 'सूर्य' का पूजन, जँभीरीका अर्घ्य, दही और घीका नैवेद्य, दही और चावलोंका दान और इन्हींका भोजन। चैत्रमें 'भानु' का पूजन, पूरी और घीका नैवेद्य, दाडिमका अर्घ्य, मिठाईका दान और तीन पल दूधका भोजन। वैशाखमें 'तपन' का पूजन, उड़दके बने हुए घृतयुक्त पदार्थोंका नैवेद्य, दाखका अर्घ्य, घीसहित उड़दोंका दान और गोबरका प्राशन। ज्येष्ठमें 'इन्द्र' का पूजन, करम्भ (दही-सत्तू)-का नैवेद्य, उसीका अर्घ्य, दही-भातका दान और तीन अंजलि जलका पान। आषाढ़में 'सूर्य' का पूजन, चिउड़ेका अर्घ्य, अन्नका दान और तीन काली मिरचोंका प्राशन। श्रावणमें 'गभस्ति' का पूजन, चिउड़ेका नैवेद्य, फलोंका अर्घ्य, भोजनका दान और तीन मुट्ठी सत्तूका प्राशन। भाद्रपदमें 'यम' का पूजन, घी और चावलका नैवेद्य, कूष्माण्डका अर्घ्य, भोजनका दान और गोमूत्रका प्राशन। आश्विनमें 'हिरण्यरेता' का पूजन, शक्करका नैवेद्य, दाडिमका अर्घ्य, चावल और शक्करका दान और तीन पल खाँडका प्राशन और कार्तिकमें 'दिवाकर' का पूजन, खीरका नैवेद्य, रम्भाफल (केले)-का अर्घ्य, खीरका दान और खीरका भोजन। इस प्रकार बारह महीने करके दूसरे मार्गशीर्षमें उद्यापन और ब्राह्मण-

भोजनादि कराकर व्रतका विसर्जन करे तो ब्राह्मणको विद्या, क्षत्रियको राज्य, वैश्यको सम्पत्ति, शूद्रको सुख, अपुत्रको पुत्र, कुमारीको पति, रोगीको आरोग्यता, कैदीको निर्मुक्ति और आशार्थीको आशासाफल्यकी प्राप्ति होती है।

(६) दानफल रविवारव्रत (स्कन्दपुराण)—यह व्रत आश्विनके शुक्ल रविवारसे माघकी शुक्ल सप्तमीतक किया जाता है। विधि यह है कि प्रातःस्नानादिके पश्चात् '**ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः। केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः॥**' से सूर्यका ध्यान करके सुवर्णकी सूर्यमूर्तिको पद्मासनपर विराजमानकर '**जगन्नाथाय आवाहनम्, पद्मासनाय आसनम्, ग्रहपतये पाद्यम्, त्रैलोक्यतमोहर्त्रे अर्घ्यम्, मित्राय आचमनीयम्, विश्वतेजसे पंचामृतम्, सवित्रे स्नानम्, जगत्पतये वस्त्रम्, त्रिमूर्तये यज्ञोपवीतम्, हरये गन्धम्, सूर्याय अक्षतानि, भास्कराय पुष्पाणि, अहर्पतये धूपम्, अज्ञाननाशिने दीपम्, लोकेशाय नैवेद्यम्, रवये ताम्बूलम्, भानवे दक्षिणाम्, पुष्णे फलम्, खगाय नीराजनम्, भास्कराय पुष्पांजलिम्** और **सर्वात्मने नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि**। ('**नमः**' और '**समर्पयामि**' का सब नामोंके साथ उच्चारण करना चाहिये।) इस प्रकार पूजन करके '**दिवाकर नमस्तुभ्यं पापं नाशय भास्कर। त्रयीमयाय विश्वात्मन् गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' से अर्घ्य दे। फिर प्रथम वर्षमें ५ प्रस्थ (लगभग १० किलो) चावल; दूसरेमें ५ प्रस्थ गेहूँ, तीसरेमें ५ प्रस्थ चने, चौथेमें ५ प्रस्थ तिल और पाँचवेंमें ५ प्रस्थ उड़दोंका दान करे और १२ ब्राह्मणोंको भोजन करावे तो इस व्रतके प्रभावसे समृद्धि-वृद्धि और स्त्री-पुत्रादिका सुख मिलता है।

(७) वैदिक रविवारव्रत (हंसकल्प)—रविवारके दिन

प्रातःस्नानादिके पश्चात् ‘**तिथिर्विष्णुस्तथा वारं नक्षत्रं विष्णुरेव च। योगश्च करणं विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्॥**’ से पंचांगरूप विष्णुका स्मरण करके सूर्यके सम्मुख नतमस्तक हो और अंजलि बाँधकर नीचे लिखे मन्त्रोंका उच्चारण करता हुआ साष्टांग* (सम्पूर्ण शरीरको पृथ्वीपर फैलाकर) नमस्कार करे। यथा **ॐ ह्रां हंसः, शुचिषन्मित्राय नमः। ॐ ह्रीं वसुरन्तरिक्षसत् रवये नमः। ॐ ह्रूं होतावेदिसत् सूर्याय नमः। ॐ ह्रैं अतिथिर्दुरोणसत् भानवे नमः। ॐ ह्रौं नृषत् खगाय नमः। ॐ ह्रः वरसत् पूष्णे नमः। ॐ ह्रां ऋतसत् हिरण्यगर्भाय नमः। ॐ ह्रीं व्योमसत् मरीचये नमः। ॐ ह्रूं अब्जागोजा आदित्याय नमः। ॐ ह्रैं ऋतजाद्रिजाः सवित्रे नमः। ॐ ह्रौं ऋतमोम् अर्काय नमः** और **ॐ ह्रः बृहदोम् भास्कराय नमः।** इस प्रकार जितनी आवृत्ति की जा सके, करे। फिर **१ घृणिः सूर्य आदित्योम्, २ महाश्वेताय ह्रीं ह्रीं सः। ३ खखोल्काय नमः** और **४ ह्रीं ह्रीं सः सूर्यायेति**। इन चार मन्त्रोंमेंसे किसी एकका यथासामर्थ्य जप करके नक्तव्रत (रात्रिमें एक बार भोजन) करे। इस प्रकार एक वर्ष करके समाप्तिके दिन सूर्योपासक वेदपाठी ब्राह्मणोंको भोजन करावे और फिर स्वयं भोजन करके व्रतका विसर्जन करे।

(८) हृदयरविवारव्रत (भविष्योत्तर)—यदि सूर्यसंक्रान्तिके दिन रविवार हो तो वह ‘हृदय’ योग होता है। ऐसे योगमें सूर्य-भगवान्‌का भक्तिपूर्वक पूजन और व्रत करके सूर्यके सम्मुख खड़ा होकर आदित्यहृदयके १०८ पाठ करे तो सम्पूर्ण काम सिद्ध होते हैं।

(९) सोमवारव्रत (स्कन्दपुराण)—यह व्रत चैत्र, वैशाख,

---

* उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग ईरितः॥ (तन्त्रसार)

श्रावण, कार्तिक और मार्गशीर्षमासमें किया जाता है। विशेषकर श्रावणके व्रतका अधिक प्रचार है। व्रतीको चाहिये कि सोमवारके दिन प्रातःस्नान करके '**मम क्षेमस्थैर्यविजयारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थं सोमव्रतं करिष्ये।**' यह संकल्प करके '**ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलांगं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्। पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममर-गणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥**' से ध्यान करे। फिर '**ॐ नमः शिवाय**' से शिवजीका और '**ॐ नमः शिवायै**' से पार्वतीजीका षोडशोपचार पूजन करके समीपके किसी पुष्पोद्यानमें जाकर एकभुक्त भोजन करे। इस प्रकार १४ वर्षतक व्रत करके फिर उद्यापन करे तो इससे पुरुषोंको स्त्री-पुत्रादिका और स्त्रियोंको पति-पुत्रादिका अखण्ड सुख मिलता है। प्राचीन कालमें विचित्रवर्माकी पुत्री सीमन्तिनीका पति (नलपुत्र) चित्रांगद नावके उलट जानेसे जलमें डूबकर नागलोकमें चला गया था। वह इसी व्रतके प्रभावसे वापस आकर विचित्रवर्माका उत्तराधिकारी हुआ और बहुत वर्षोंतक राज्य करके स्वर्गमें गया।

(१०) अर्थप्रद सोमवारव्रत (स्कन्दपुराण)—जिस दिन व्रत करनेकी श्रद्धा हो, उस दिन सब सामग्री जुटाकर, स्नान करके, सफेद वस्त्र धारणकर काम-क्रोधादिका त्याग करे और सुगन्धयुक्त श्वेत पुष्प लाकर मलयनाथका पूजन करे। नैवेद्यमें अभीष्ट अन्नके बने हुए पदार्थ अर्पण करे। फिर '**ॐ नमो दशभुजाय त्रिनेत्राय पंचवदनाय शूलिने। श्वेतवृषभारूढाय सर्वाभरणभूषिताय। उमादेहार्धस्थाय नमस्ते सर्वमूर्तये।**'—इन मन्त्रोंसे पूजा करे और इन्हींसे हवन करे। ऐसा करनेसे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं। ग्रहणादिमें जप-ध्यान, उपासना और दान

करने आदि सत्कार्योंसे जो फल मिलता है, वही इस सोमवारके व्रतसे मिलता है। इसके विषयमें मार्गशीर्षके व्रतका फल ऊपर लिखे अनुसार जानना चाहिये। आगे पौषमें अग्निष्टोम यज्ञके समान, माघमें गोदुग्ध और इक्षुरससे स्नान करके ब्रह्महत्यादिसे निवृत्त होनेके समान, फाल्गुनमें सूर्यादिके ग्रहणोंमें गोदान करनेके समान, चैत्रमें गंगाजलसे सोमनाथको स्नान करानेके समान, वैशाखमें अपूपादिसे पूजनकर कन्यादान करनेके समान, ज्येष्ठमें पुष्करस्नान करके गोदान करनेके समान, आषाढ़में बृहद् यज्ञोंके समान, श्रावणमें अश्वमेधके समान, भाद्रपदमें सवत्स गोदान करनेके समान, आश्विनमें सूर्योपरागके समय कुरुक्षेत्रमें रसधेनु और गुड़धेनु देनेके समान और कार्तिकमें चारों वेदोंके पढ़े हुए चार पण्डितोंको चार-चार घोड़े जुते हुए रथ देनेके समान फल होता है। भाव यह है कि किसी भी महीनेमें सोमवारका व्रत किया जाय तो वह निष्फल नहीं होता।

(११) श्रावणमासीय सोमवारव्रत (शिवरहस्य)—श्रावण मासके सोमवारोंमें केदारनाथ जाकर उनका अनेक प्रकारके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यादि उपचारोंसे पूजन करे और शक्ति हो तो निराहार उपवास करे। शक्ति न हो तो नक्तव्रत (रात्रिमें एक बार भोजन) करे। इससे शिवजी प्रसन्न होते हैं और शिवसायुज्य प्रदान करते हैं।

(१२) भौमवारव्रत (वीरमित्रोदय)—भौमवारके दिन स्वातिनक्षत्र हो तो उस दिन प्रातःस्नानादि करके भौमकी मूर्तिका लाल पुष्पोंसे पूजन करे; लाल वस्त्रसे आच्छादित करे; गुड़, घी और गोधूमका नैवेद्य भोग लगावे। नक्तव्रत (रात्रिमें एक बार भोजन) करे और भूशयन करे। इस प्रकार छः भौमवार करके सातवेंको भौमकी सुवर्णमयी मूर्तिका पूजन करे। दो लाल

वस्त्रोंसे आच्छादित करे। लाल गन्धका लेपन करे। धूप, पुष्प, अक्षत और दीपक रखे तथा सफेद कसारका भोग लगाये। घी, चीनी और तिलोंका '**ॐ कुजाय नमः स्वाहा**' से हवन करे। पूजनके पश्चात् ब्राह्मणको भोजन कराकर मूर्ति आदि उसको दे तो भौमजनित सब दोष शान्त होते हैं और अनेक प्रकारके सुखोंकी उपलब्धि होती है।

(१३) भौमव्रत (भविष्यपुराण)—मंगलवारके दिन सुवर्णमय भौमका ताम्रपात्रमें स्थापन करके पूजन करे। ताँबेके पात्रको गुड़से भरकर प्रत्येक मंगलवारको दान करता रहे और वर्षकी समाप्तिमें यथाविधि गोदान करे तो परम सुखकी प्राप्ति होती है।

(१४) भौमव्रत २ (पद्मपुराण)—मंगलवारके दिन प्रातःस्नानादि करके ताँबेके त्रिकोण पत्रमें केशर, चन्दन या लाल चन्दनसे मध्यमें भौमाकृतिका प्रतिबिम्ब बनाकर तीनों कोणोंमें आर, वक्र और भूमिज—ये तीनों नाम लिखे। फिर उनका लाल वर्णके गन्ध, पुष्प और लाल कमल आदिसे पूजन करे। रक्तधान्य (गेहूँ आदि)-के बने हुए पदार्थोंका नैवेद्य अर्पण करे और '**प्रसीद देवदेवेश विघ्नहर्तर्धनप्रद। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं मम शान्तिं प्रयच्छ हे॥**' से अर्घ्य देकर व्रत करे एवं '**मंगलो**[१] **भूमिपुत्रश्च**[२] **ऋणहर्ता**[३] **धनप्रदः**[४]**। स्थिरासनो**[५] **महाकायः**[६] **सर्वकामार्थसाधकः**[७]**॥ लोहितो**[८] **लोहिताक्षश्च**[९] **सामगानां**[१०] **कृपाकरः। धरात्मजः**[११] **कुजो**[१२] **भौमो**[१३] **भूमिजो**[१४] **भूमिनन्दनः**[१५]**॥ अंगारको**[१६] **यमश्चैव**[१७] **सर्वरोगापहारकः**[१८]**। वृष्टिकर्ताऽपहर्ता**[१९] **च**[२०] **सर्वकामफलप्रदः**[२१] **॥**'—इन २१ नामोंका पाठ करे तो सब प्रकारके ऋणसे उऋण होकर धनवान् होता है।

(१५) भौमव्रत ३ (पद्मपुराण)—मंगलवारके दिन लाल अक्षतोंके अष्टदलपर सुवर्णमय भौमकी मूर्ति स्थापित करके लाल रंगके गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और '**भूमिपुत्रो महातेजाः**

कुमारो रक्तवस्त्रकः। गृहाणार्घ्यं मया दत्तमृणशान्तिं प्रयच्छ हे॥' से अर्घ्य दे तथा पूजनके स्थानमें चार बत्तियोंका दीपक जलावे। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उनको यथाशक्ति सुवर्णका दान करे और स्वयं किसी एक पदार्थका भोजन करके एकभुक्त व्रत करे तथा वायनमें लाल बैलका दान करे। इस प्रकार इक्कीस व्रत करके उद्यापन करनेसे सब प्रकारकी आपदाएँ नष्ट होकर सुख मिलता है और जीवनपर्यन्त पुत्र-पौत्र और धनादिसे युक्त रहकर अन्तमें सूर्यादिके लोकमें चला जाता है। (अधिकांश मनुष्य मंगलवारके दिन किसी भी समय और किसी भी पदार्थका भोजन करके इस व्रतको सम्पन्न करते हैं)।

(१६) बुधव्रत (भविष्योत्तर)—आरम्भके व्रतमें विशाखायुक्त बुधवारको प्रातःस्नानादि करके बुधकी सुवर्णमयी मूर्तिको कांस्यपात्रमें स्थापन करके सुगन्धयुक्त गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे। दो सफेद वस्त्र धारण करावे। गुड़, दही और भातका नैवेद्य अर्पण करके उसी पदार्थका ब्राह्मणोंको भोजन करावे और '**बुध त्वं बुद्धिजनको बोधदः सर्वदा नृणाम्। तत्त्वावबोधं कुरुषे सोमपुत्र नमो नमः॥**' से बुधकी प्रार्थना करे। इस प्रकार सात व्रत करनेसे बुधजनित सम्पूर्ण दोष दूर होकर सुख-शान्ति मिलती है और बुद्धि बढ़ती है।

(१७) गुरुव्रत (भविष्यपुराण)—किसी महीनेके शुक्ल पक्षमें जिस दिन अनुराधा और गुरुवार हो उस दिन बृहस्पतिकी सुवर्णनिर्मित मूर्तिको सोनेके पात्रमें स्थापित करके पीतवर्णके गन्ध-पुष्प, पीताम्बर और अक्षतादिसे पूजन करे। छत्र, उपानह्, पादुका और कमण्डलु अर्पण करे। फिर पीतरंगके फल-पुष्प और यज्ञोपवीत ग्रहण करके '**धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ज्ञानविज्ञानपारग। विविधार्तिहराचिन्त्य देवाचार्य नमोऽस्तु ते॥**' से प्रार्थना करके

ब्राह्मणोंको पीली गौके घीमें बनाये हुए पीतधान्य (चने)-के पदार्थोंका भोजन करावे, सुवर्णकी दक्षिणा दे और फिर स्वयं भोजन करे। इस प्रकार सात व्रत करनेसे गुरुग्रहसे उत्पन्न होनेवाला अनिष्ट नष्ट होकर स्थायी सुख मिलता है।

(१८) शुक्रवारव्रत (भविष्योत्तरपुराण)—शुक्रवार और ज्येष्ठा नक्षत्रके योगमें सुवर्णनिर्मित शुक्रमूर्तिको चाँदी या काँसीके पात्रमें स्थापित करके सुश्वेत गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे। दो सफेद वस्त्र धारण करावे और '**भार्गवो भृगुशिष्यो वा श्रुतिस्मृतिविशारदः। हत्वा ग्रहकृतान् दोषानायुरारोग्यदो भव॥**' से प्रार्थना करके नक्तव्रत (रात्रि-भोजन) करे। इस प्रकार सात शुक्रवारोंका व्रत करके शुक्रके नाममन्त्रसे हवन करे। ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराकर मूर्तिसहित पूजन-सामग्रीका दान करे और नक्तव्रत करके उसे समाप्त करे तो शुक्रजनित सम्पूर्ण व्याधियाँ शान्त होकर सब प्रकारका सुख मिलता है।

(१९) अनिष्टहर शनिव्रत (भविष्योत्तरपुराण)—शनिवारको लोहमयी शनिमूर्तिका कृष्ण वर्णके गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके व्रत करे तो चतुर्थाष्टमद्वादशस्थशनिजनित सकलारिष्टोंकी निवृत्ति और सुख-सम्पत्ति आदिकी प्रवृत्ति होती है।

(२०) सराहुकेतुशनिवारव्रत (मत्स्यपुराण, भविष्यपुराण)—इस व्रतके लिये लोह और शीशेकी शनि, राहु और केतुकी तीन मूर्तियाँ बनवावे[१]। उनमें कृष्ण[२] वर्ण, कृष्ण वस्त्र, दो भुजाओंमें

---

१. शनैश्चरं राहुकेतू लोहपात्रे व्यवस्थितान्।
कृष्णागुरुः स्मृतो धूपो दक्षिणा चात्मशक्तितः॥ (भविष्योत्तर)

२. कृष्णवासास्तथा कृष्णः शनिः कार्यः शिराततः।
दण्डाक्षमालासंयुक्तः करद्वितयभूषणः।
कार्ष्णायसे रथे कार्यस्तथैवाष्टमतुरंगमे॥ (भविष्योत्तर)

दण्ड और अक्षमाला, कृष्ण वर्णके आठ घोड़ोंवाले शीशेके रथमें बैठे हुए शनि; करालवदन[1] , खंग, चर्म और शूलसे युक्त, नीले सिंहासनमें विराजमान, वरप्रद राहु और धूम्रवर्ण,[2] भुजदण्डोंमें गदादि आयुध, गृध्रासनपर विराजे हुए विकटानन और वरप्रद 'केतु' की मूर्ति हो। ऐसी न हो तो गोलाकार बनवावे। फिर उनको कृष्ण वर्णके अक्षतोंसे बनाये हुए चौबीस दलके कमलपर मध्यमें शनि, दक्षिण भागमें राहु और वाम भागमें केतुको स्थापित करे तथा कृष्ण वर्णके गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे। रक्त चन्दनमें केशर मिलाकर 'कृष्ण गन्ध', अक्षतोंमें कज्जल मिलाकर 'कृष्ण अक्षत', काकमाची (कागलहर)-के 'कृष्ण पुष्प', कस्तूरी आदिका 'कृष्णरंग धूप' और तिलविशिष्ट पदार्थोंका 'कृष्ण नैवेद्य' सम्पन्न करके अर्पण करे एवं '**शनैश्चर नमस्तुभ्यं नमस्ते त्वथ राहवे।**' '**केतवेऽथ नमस्तुभ्यं सर्वशान्तिप्रदो भव॥**' से प्रार्थना करके व्रत करे। इस प्रकार सात शनिवारोंका व्रत करके शनिके निमित्त '**शन्नोदेवी०**' मन्त्रसे शमीकी समिधाओंमें, राहुके निमित्त '**कयानश्चि०**' मन्त्रसे दूर्वाकी समिधाओंमें और केतुके निमित्त '**केतुकृण्वन्न०**' मन्त्रसे कुशकी समिधाओंमें कृष्ण गौके घी और काले तिलोंकी प्रत्येककी १०८ आहुति देकर हवन करे। फिर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराकर व्रतका विसर्जन करे तो सब प्रकारके अरिष्ट, कष्ट या आधि-व्याधियोंका सर्वथा नाश होता है और अनेक प्रकारके सुखसाधन एवं पुत्र-पौत्रादिका सुख प्राप्त होता है।

---

१. करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रदः।
नीलसिंहासनयुतो राहुरत्र प्रशस्यते॥ (मत्स्यपुराण)

२. धूम्राद्बिाहवः सर्वे गदिनो विकटाननाः।
गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः॥ (मत्स्यपुराण)

(२१) शान्तिप्रद शनिव्रत (मदनरत्न)—श्रावणके महीनेमें श्रेष्ठ शनिवारके दिन लोहनिर्मित शनिको पंचामृतसे स्नान कराकर अनेक प्रकारके गन्ध, पुष्प, अष्टांग धूप, फल और उत्तम प्रकारके नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करे तथा '**कोणस्थ:* पिंगलो०**' आदि दस नामोंका उच्चारण करके पहले शनिवारको उड़दोंका भात और दही, दूसरेको केवल खीर, तीसरेको खजला और चौथेको घृतपक्व पूरियोंका नैवेद्य अर्पण करे और तिल, यव (जौ), उड़द, गुड़, लोह और नीले वस्त्रोंका दान करके व्रतका विसर्जन करे तो शनि, राहु और केतुकृत दोष दूर होते हैं।

(६) तिथि-वारादि पंचांगव्रत

(२२) तिथि-वार-नक्षत्रव्रत (कालोत्तरागम)—किसी भी महीनेमें १—चतुर्दशी, रविवार और रेवती हो या अष्टमी और मघा हो तो 'रविव्रत' करके अनेक प्रकारके गन्ध-पुष्पादिसे शिवजीका पूजन कर तिलोंका प्राशन करे तो पुत्रादिसहित आरोग्य रहे। २—अष्टमी, सोमवार और रोहिणी हो तो शिवपूजन करके घी-खीरका भोजन कर 'सोमव्रत' करे तो सम्पूर्ण कामोंमें सफलता मिले। ३—चतुर्दशी, मंगलवार और अश्विनी हो या मंगलवार और भरणी हो तो शिवजीका पंचोपचार पूजन करके रक्तोत्पल (लाल कमल)-का प्राशन कर 'भौमव्रत' करे तो साम्राज्य मिले। ४—चतुर्दशी, बुधवार और रोहिणी हो या बुधाष्टमी हो तो महाभिषेकसे शिव-पूजन करके घी-खीरका भोजन कर 'बुधव्रत' करे तो धन, पुत्र, दारा (स्त्री) और पशुओंकी वृद्धि हो। ५—चतुर्दशी, गुरुवार और रेवती हो

---

* कोणस्थ: पिंगलो बभ्रु: कृष्णो रौद्रोऽन्तको यम:।
सौरि: शनैश्चरो मन्द: प्रीयतां मे ग्रहोत्तम:॥

या अष्टमी और पुष्य हो तो शिवका पूजन करके गोघृतके योगसे ब्राह्मी रसका प्राशन करे तो वागीशत्वकी प्राप्ति हो। ६—चतुर्दशी, भृगुवार और श्रवण हो या अष्टमी और पुनर्वसु हो तो शिवपूजन करके 'शुक्रव्रत' के निमित्त शहदका प्राशन करे तो महाफल मिले। ७—चतुर्दशी, शनिवारको भरणी या अष्टमी और आर्द्रा हो तो पूर्वोक्त प्रकारसे शिवपूजन करके 'शनिव्रत' के निमित्त सस्य (अन्न)-का भोजन करे तो सर्वोत्तम फलकी प्राप्ति हो। सूर्यादिमें जो अनिष्टकारी हों या जिनका व्रत अभीष्ट हो, उपर्युक्त प्रकारके योगमें उनका व्रत करे और सोना, चाँदी, मूँगा, मोती, शंख और लोह—इनको यथोचित प्रकारसे यथायोग्य धारण करे।

(२३) नक्षत्रव्रत (भविष्यपुराण)—लोकहित अथवा आत्मोद्धारके निमित्तसे अश्विनी आदि नक्षत्रोंका या तदधिष्ठातृ अश्विनीकुमारादि देवोंका व्रत करना हो तो १—अश्विनीमें अश्विनीकुमारोंका, २—भरणीमें यमका, ३—कृत्तिकामें अग्निका, ४—रोहिणीमें ब्रह्माका, ५—मृगशिरामें चन्द्रमाका, ६—आर्द्रामें शिवका, ७—पुनर्वसुमें अदिति (देवताओंकी माता)-का, ८—पुष्यमें बृहस्पतिका, ९—श्लेषामें सर्पका, १०—मघामें पितरोंका, ११—पूर्वाफाल्गुनीमें भगका, १२—उत्तराफाल्गुनीमें अर्यमाका, १३—हस्तमें सूर्यका, १४—चित्रामें त्वष्टा (इन्द्र)-का, १५—स्वातीमें वायुका, १६—विशाखामें इन्द्र और अग्निका, १७—अनुराधामें मित्रका, १८—ज्येष्ठामें इन्द्रका, १९—मूलमें राक्षसोंका, २०—पूर्वाषाढामें जलका, २१—उत्तराषाढामें विश्वेदेवोंका, २२—अभिजित्‌में ब्रह्माका, २३—श्रवणमें विष्णुका, २४—धनिष्ठामें वसुका, २५—शतभिषामें वरुणका, २६—पूर्वाभाद्रपदीमें अजैकपादका, २७—उत्तराभाद्रपदीमें अहिर्बुध्न्यका और २८—रेवतीमें पूषाका

उत्तम प्रकारके गन्ध, पुष्प, फल, भक्ष्य, भोज्य और दूध, दही आदिसे पूजन करे एवं एकभुक्त या नक्तव्रत करे तो धन, दारा, सुत, सम्मान, आरोग्यता और आयुवृद्धि आदि सुख प्राप्त होते हैं।

(२४) योगव्रत (हेमाद्रि)—तिथि, वार और नक्षत्रोंके साथ विष्कुम्भादिका सहयोग होनेसे विशेष प्रकारके शुभाशुभ प्राप्त होते हैं। उनकी शान्ति और उपलब्धिके लिये योगोंके व्रत और दान आवश्यक होते हैं। व्रतीको चाहिये कि अभीष्ट योगके दिन साक्षात् सूर्यका अथवा सुवर्णनिर्मित सूर्यमूर्तिका पंचोपचारसे पूजन करके व्रत करे और अभीष्ट योगके पदार्थोंका दान करे। पदार्थ ये हैं—विष्कुम्भमें घी, प्रीतिमें तैल, आयुष्मान्में फल, सौभाग्यमें गन्ने, शोभनमें जौ, अतिगण्डमें गेहूँ, सुकर्मामें चने, धृतिमें निष्पाव (हलवा), शूलमें शालि (चावल), गण्डमें लवण, वृद्धिमें दही, ध्रुवमें दूध, व्याघातमें वस्त्र, हर्षणमें सुवर्ण, वज्रमें कम्बल, सिद्धिमें गौ, व्यतीपातमें वृष, वरीयान्में क्षेत्र, परिघमें दो उपानह् (जूते), शिवमें कपूर, सिद्धमें कुंकुम, साध्यमें चन्दन, शुभमें पुष्प, शुक्लमें लोह, ब्रह्ममें ताँबा, ऐन्द्रमें काँसी और वैधृत्यमें चाँदी दे तो यथोचित फल होता है।

(२५) व्यतीपातव्रत (वाराहपुराण)—ऊपरके परिलेखमें इस योगका नाम आया है। ज्यौतिषशास्त्रके अनुसार सूर्य और चन्द्रमाके गणितसे व्यतीपातका आरम्भ और समाप्ति सूचित होते हैं। पुराणोंमें इसकी उत्पत्ति सूर्य और चन्द्रमाके क्रोधपातसे प्रकट की गयी है। लिखा है कि एक बार सूर्यनारायणने चन्द्रमाको गुरुपत्नी (तारा)-के त्यागकी आज्ञा दी, उसको शशिने स्वीकार नहीं किया, इस कारण दोनोंके परस्पर क्रोध बढ़ गया और उसके संतप्त अश्रु पृथ्वीपर गिर गये। उनसे व्यतीपात उत्पन्न

हुआ। यही कारण है कि क्रोधपातसे उत्पन्न होनेके कारण विवाहादि शुभ कामोंमें इसका त्याग किया गया है और लोकोपकार एवं आत्मोद्धारके दान-पुण्य और व्रतादिमें इसका ग्रहण किया गया है। व्रतीको चाहिये कि किसी शुभ दिनके व्यतीपातको प्रातःस्नानादिसे निवृत्त होकर '**मम करिष्यमाणोपवास-जनितानन्तफलप्राप्तिकामनया सवितृप्रीतये व्यतीपातव्रतं करिष्ये।**'—यह संकल्प करके सुवर्णके सूर्य और चन्द्रमाको शक्करसे भरे हुए कलशके शीर्षस्थानीय पूर्णपात्रमें स्थापित करे और आवाहनादि उपचारोंसे पूजन करके उपवास करे। दूसरे दिन पारण करके प्रथमावृत्ति समाप्त करे। इस प्रकार बारह महीनेतक प्रत्येक व्यतीपातका व्रत करके तेरहवीं आवृत्तिके दिन उद्यापन करे। उसमें सर्वतोभद्र-मण्डलपर सुवर्णमय विष्णुका पूजन, तिलादिका हवन, गौ, शय्या, सुवर्ण, अन्न, धन, आभूषण और यथोचित वस्त्र आदिका दान करके खीर आदि पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर और यथासामर्थ्य दक्षिणा देकर व्रतको समाप्त करे एवं बन्धुवर्गादिको साथ लेकर भोजन करे तो गंगादि तीर्थों, कुरुक्षेत्रादि सुक्षेत्रों और अयोध्या आदि पुरियोंमें ग्रहण, संक्रान्ति, मलमास और पंचांगजनित सुयोगोंके समय दान, जप और व्रतादि करनेसे जो फल होता है उससे अनेक गुना अधिक फल व्यतीपातके व्रतादिसे होता है। इसकी कथाका सार यह है कि प्राचीन कालमें हर्यश्व राजाने बहुत दिनोंतक उक्त व्रत किया था। एक बार उसने शिकारके प्रयोजनसे गहन वनमें जाकर जले हुए अंगवाले एक शूकरसे पूछा कि 'तुम्हारी यह दशा कैसे हुई?' तब उसने कहा कि पूर्व जन्ममें मैं पुराणादि धर्मशास्त्रोंको सुनानेवाला महाधनी वैश्य था। परंतु किसीको कुछ देता न था। ऐसी अवस्थामें एक आशार्थी ब्राह्मणने मुझसे याचना की तो मैंने

उसे कुछ भी नहीं दिया, तब उसने कहा कि तुमने मेरी आशाओंको जलाया है, इस कारण आगे तुम्हारे भी ये अंग जल जायँगे। इसी कारण मेरी यह दशा हुई है। अब यदि आप अपने किये हुए व्यतीपातके व्रतोंका फल मुझे दे दें तो मैं अपनी पूर्व अवस्थाको प्राप्त हो सकता हूँ। तब राजाने वैसा ही किया और शूकर यथापूर्व होकर सुख भोगने लगा।

(२६) करणव्रत (हेमाद्रि)—माघ शुक्लमें बवकरण हो, उस दिन उपवास करके ताँबेके पात्रमें तण्डुल भरकर उनपर कलश स्थापन करे और उसके पूर्णपात्रमें सुवर्णकी बनी हुई अच्युतभगवान्‌की मूर्ति रखकर उसका गन्धादि उपचारोंसे पूजन करके अष्टाक्षर **(ॐ नमो नारायणाय)** मन्त्रका जप करे। इस प्रकार छः बार करके सातवेंमें उद्यापन करे। उसमें सात ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा दे और इसी प्रकार बालव आदि शेष करणोंके व्रत भी करे तो यज्ञसम फल होता है।

(२७) भद्राव्रत (भविष्योत्तर)—बवादि करणोंमें ग्यारहवाँ करण भद्रा है। इसमें प्रायः सभी प्रकारके मंगल और महोत्सवादि न तो आरम्भ होते हैं और न समाप्त। यदि प्रमादवश किये जायँ तो उनमें बड़े विघ्न होते हैं और वे दुःखदायी बन जाते हैं। पुराणोंमें भद्राको मार्तण्ड (सूर्य)-की पुत्री और शनिकी बहिन नियत की है और सब प्रकारके मांगलिक या अभ्युदयकारी कामोंमें इसकी उपस्थिति निषिद्ध बतलायी है। विशेषता यह है कि इसके निमित्तसे जो कुछ व्रत-दान या जपादि किये जायँ उनका उत्तम फल होता है। व्रतीको चाहिये कि जिस दिन उदयकी भद्रा हो उस दिन नदी, तालाब या गृहमध्यमें सर्वौषधिके जलसे स्नान करके देवताओंका पूजन और पितरोंका श्राद्ध (मातृका-पूजन और आभ्युदयिक श्राद्ध) करे। तत्पश्चात् भीगी

हुई कुशा (डाभ)-की त्रिकोण (या तीन ग्रन्थि) युक्त भद्रा बनाकर उसको अक्षतोंके अष्टदलपर विराजमान कर ऋतुकालके गन्ध, पुष्प, फल, धूप, दीप और तिलप्रयुक्त खीरके नैवेद्य आदिसे पूजन करके '**छायासूर्यसुते देवि विष्टे इष्टार्थनाशिनि। पूजितासि मया शक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव॥**' से प्रार्थना करे। फिर घी, तिल और शर्करासे '**ॐ भद्रं कर्णेभिः**' या '**ॐ भद्राय नमः**'—इन मन्त्रोंकी १०८ आहुति देकर ब्राह्मणोंको तिल और खीरका भोजन कराकर दक्षिणा दे और स्वयं तेल और खिचड़ीका एकभुक्त भोजन करे। इस प्रकार सात या दस बार क्रमशः करके उद्यापन करे तो व्रतीको भूत-प्रेत-पिशाचादिसे कोई भय नहीं हो और न अन्य प्रकारकी रोग-पीड़ा या भय-चिन्ता आदिकी बाधा हो।

(२८) विष्टिव्रत (भविष्योत्तर)—मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थीको प्रातःस्नानादिके अनन्तर '**भद्रे भद्राय भद्रं हि करिष्ये व्रतमेव ते। निर्विघ्नं कुरु मे देवि कार्यसिद्धिं च भावय॥**'—यह संकल्प करके विद्वान् ब्राह्मणका पूजन करे। साथ ही लौह, पाषाण या काष्ठकी भद्रा बनवाकर उसे अष्टदलके आसनपर प्रतिष्ठित करे और पूर्वोक्त प्रकारसे पूजन, हवन, ब्राह्मणभोजन तथा दान आदि करके व्रत करे। इस प्रकार वर्षपर्यन्त करनेके पश्चात् उद्यापन करके विसर्जन करे। उस अवसरमें '**अज्ञानादथ वा दर्पात् त्वामुल्लङ्घ्यं कृतं हि यत्। तत् क्षमस्वाशुभं मातर्दीनस्य शरणार्थिनः॥**' से प्रार्थना करके ब्राह्मणके किये हुए अभिषेकसे अभिषिक्त हो तो सब प्रकारकी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं एवं उत्तम प्रकारके सुख और उनके साधन उपस्थित रहते हैं। इस व्रतको वृत्रासुरको मारनेके लिये इन्द्रने, त्रिपुरासुरको मारनेके लिये शिवने, विमानके लिये वरुणने और पांचजन्य

(शंख)-के लिये विष्णुने किया था। इससे उनके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हुए थे।

(७) प्रकीर्णव्रत

(२९) मौनव्रत (शिवधर्म)—इसके निमित्त चन्दनकी शिवमूर्ति (अण्डाकार शिवलिंग) बनवावे। उसका गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत और गोलोचन नामकी औषधके जलसे प्रोक्षण करे। फिर शिव-मन्दिरके शान्तिकारी एकान्तस्थानमें शुभासनपर बैठकर सुगन्धयुक्त गन्ध, पुष्प, गोरोचन, धूप, दीप, नैवेद्य और नीराजनादिसे पूजन करके हाथ, पैर और मस्तकको भूमिमें लगाकर प्रणाम करे। यदि सामर्थ्य हो तो मन्दिरके मध्य भागमें शिवजीके आगे सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, काँसी और लौह—इनमेंसे किसी भी धातुका या सबके यथोचित योगका विजयघंट बनवाकर लगावे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको घी, सज्जी और मण्डक (रोटीविशेष)-का भोजन करवाकर दक्षिणा दे और चन्दनकी उक्त मूर्तिको ताम्रपात्रमें स्थापित कर मस्तकपर धारण करके घर आवे और वहाँ उसको मध्यस्थ देवके दक्षिण भागमें प्रतिष्ठित करके गन्ध-पुष्पादिसे पुनः पूजन करे। इसके बाद काम-क्रोधादिका त्याग करके स्थिरासनसे उपविष्ट होकर (भलीभाँति बैठकर) 'मौनव्रत' धारण करे। उस अवस्थामें किसी प्रकारके शब्द-संकेत या बातचीतको सुनकर 'हाँ-हाँ, हूँ-हूँ'-जैसे (स्वीकृति और निषेधके) अक्षरोंका उच्चारण भी न होने दे। ऐसा हो जाय मानो नेत्रोंसे कोई भी दृश्य दीखता नहीं (या देखना नहीं) और कानोंसे कोई शब्द सुनता नहीं (या सुनना नहीं)। इस प्रकार बारह, छः, तीन या एक महीने अथवा इससे भी कम पंद्रह, बारह, छः, तीन या एक दिन—जैसी सामर्थ्य और अवकाश हो, वैसा ही व्रत करे तो सब प्रकारके अभिलषित अर्थ स्वतः सिद्ध

हो जाते हैं और शरीरकी बाह्य तथा आभ्यन्तरिक दोनों परिस्थितियाँ महत्त्वसम्पन्न बन जाती हैं। ऋषि-मुनियोंने इसी मौनव्रतके प्रभावसे शास्त्ररचनाके द्वारा संसारका महान् उपकार किया था और अमिट तपोधनका अमित संचय करके स्वर्गमें गये थे।

(३०) शत्रुनाशकव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—जिस दिन भरणी या कृत्तिका हो, उस दिन श्वेत रंगके गन्धयुक्त गन्ध-पुष्पादिसे वासुदेवका पूजन करके सर्षपका हवन करे और ब्राह्मणोंको भोजन, वस्त्र और आयुध देकर व्रत करे तो मनुष्य विजयी होता है।

(३१) लक्षपूजाव्रत (ब्रह्माण्डपुराण)—किसी महीनेकी कृष्ण चतुर्दशीको प्रातःस्नानादिके पश्चात् रात्रिके आरम्भमें पुनः स्नान करके यथोचित[१] गुणोंसे युक्त और वर्जित[२] दोषोंसे विमुक्त विद्वान्का वरण कर स्त्री और पुत्रसहित पूजाका आरम्भ करे। उसके लिये मालती, केतकी, चमेली, टेसू (पलास-कुसुम), पाटल (गुलाब) और कदम्ब आदिके जितने पुष्प मिल सकें लाकर सुविधाके स्थानमें रख दे तथा विविध प्रकारके अन्न और अखण्डित अक्षत (चावल) लेकर साम्ब शिवका विधिवत् पूजन करे एवं '**ॐ नमः शिवाय**' के उच्चारणके साथ एक-एक पुष्प उनके अर्पण करे। उनमें दस-दस हजारकी दस आवृत्तियाँ करके प्रत्येक आवृत्तिके पश्चात् स्वर्ण-पुष्प अर्पण करे। इस प्रकार एक

---

१. धर्मज्ञं दोषरहितं संतुष्टं परिपूज्य च।
आचार्यं वरयेत् प्राज्ञः सुस्नातो भूषितो व्रती॥ (ईश्वर)

२. ह्रस्वं च वृषलं दीनमतिदीर्घजटं तथा।
देवतानभिसक्तं च बधिरं.........॥
वेदहीनं दुराचारं मलिनं बहुभाषिणम्।
निन्दकं पिशुनं दुष्टमन्धकं च विवर्जयेत्॥ (ईश्वर)

ही दिनमें या दो दिनमें अथवा तीन दिनमें या जिस प्रकार पुष्प प्राप्त हों, उतने दिनमें लक्ष पुष्प अर्पण करके समाप्तिमें सुवर्णका १ बिल्वपत्र शिवके और सोनेका एक पुष्प शिवाके अर्पण करे। इसके पीछे '**विरूपाक्ष महेशान विश्वरूप महेश्वर। मया कृतां लक्षपूजां गृहीत्वा वरदो भव॥**' से प्रार्थना करके '**मृत्युंजयाय यज्ञाय देवदेवाय शम्भवे। आश्विनेशाय शर्वाय महादेवाय ते नमः॥**' से नमस्कार करे। इसके करनेसे गोहत्या, ब्रह्महत्या, गुरु-स्त्रीगमन, मद्यपान और परधनका अपहरण आदि पापोंका नाश होता है और मनुष्य सब प्रकारसे सुखी रहता है। इसके उद्यापनमें यह विशेषता है कि हवनमें विष्णुसहस्रनामसे आहुति दे और दशांश हवन करके पूजनको समाप्त करे।

(३२) लक्षतुलसीदलार्पणव्रत (भविष्यपुराण)—कार्तिक या माघमें भगवान्‌के तुलसीदल अर्पण करे और माघ या वैशाखमें (अथवा कार्तिकका माघमें और माघका वैशाखमें) उद्यापन करे। पत्रार्पणकी क्रिया यह है कि वृन्दा (तुलसी)-के वनमें जाकर तुलसीके उत्तम और समान आकारके एक हजार पत्र लाये। उनमें गन्धसे विष्णुका नाम लिखे, पीछे शालग्रामजीका तथा नामांकित तुलसीपत्रोंका गन्धाक्षतसे पूजन करे। उस समय स्नान कराकर गन्ध और अक्षत अर्पण करे और पुष्पार्पणके पहले विष्णुसहस्रनामके एक-एक नामसे एक-एक तुलसीपत्र भगवान्‌के अर्पण करे। इस प्रकार सौ दिनमें लक्षदल अर्पण करके यथाविधि हवन आदि करे तो इससे सम्पूर्ण प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं।

(३३) लक्षप्रणामव्रत (वसिष्ठाम्बरीषसंवाद)—आषाढ़ शुक्ल एकादशीको प्रातःस्नानादिके पश्चात् भगवान्‌का विधिवत् पूजन करे और विनयावनत होकर भगवान्‌के नामस्मरणसहित एक-

एक करके जितने बन सकें प्रणाम करे और एकभुक्त व्रत करके अतिथि आदिका सत्कार करे। इस प्रकार चार महीनेमें एक लाख नमस्कार पूर्ण करके कार्तिक शुक्ल पूर्णिमाको उद्यापन करे तो अभक्ष्यभक्षण, अगम्यागमन, अदृश्य-दर्शन, अपेयपान और अनृत-भाषण आदिसे उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्यका उदय होता है।

(३४) लक्षप्रदक्षिणाव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—आषाढ़ शुक्ल एकादशीसे कार्तिक शुक्ल एकादशीपर्यन्त प्रतिदिन प्रातःस्नानादिके पश्चात् वेदमन्त्रों (पुरुषसूक्तके मन्त्रों)-से पूजन करके '**कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने**' या '**केशवाय नमः**' आदि किसी नामके उच्चारणसे भगवान्‌की प्रदक्षिणा करे। इस प्रकार यथाक्रम एक लक्ष पूर्ण होनेके पश्चात् उद्यापन, ब्राह्मण-भोजन और विसर्जन करे तो पूर्वजन्म, वर्तमानजन्म और पुनर्जन्म (इन तीन जन्मों)-के पाप दूर हो जाते हैं और सुख-शान्तिके साथ सानन्द जीवन व्यतीत होता है।

(३५) लक्षवर्तिप्रदानव्रत (भविष्यपुराण)—जिस समय श्रद्धा, सुविधा और अवकाश हो उस समय कपासकी एक लाख बत्तियाँ बनाकर तैलपूर्ण दीपकोंमें (एक-एक) रखे और उनका पंक्तिरूपमें प्रज्वालन करके शिव, केशव या हनूमान् आदि किसी भी अभीष्ट देवके मन्दिरमें सुचारुरूपसे स्थापित करके नक्तव्रत करे। इस प्रकार एक, तीन या पाँच आवृत्तियोंमें लक्ष दीपदान पूर्ण करके उद्यापन करे। इससे देवलोकको प्राप्ति होती है।

(३६) लक्षवर्तिदानव्रत (वायुपुराण)—किसी भी शुभ दिनमें कपासकी एक लाख बत्तियाँ बनाकर उनको घृत-प्लावित करे। (भलीभाँति भिगोये) और उनमेंसे शत, सहस्र या अयुत (जैसी सुविधा और अनुकूलता हो) मन्दिरमें देकर एक लाख

पूर्ण करे तो बड़ा पुण्य होता है, सब प्रकारके उपद्रव शान्त हो जाते हैं और देवलोककी प्राप्ति होती है।

(३७) गोपद्मव्रत (भविष्यपुराण)—आषाढ़ शुक्ल एकादशीको प्रातःस्नानादिके पश्चात् गौके निवासस्थानको गोबरसे लीपकर उसमें ३३ पद्म (कमल) स्थापन करके उनका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और ३३ अपूप (पूए) भोग लगाकर उतने ही अर्घ्य, प्रदक्षिणा और प्रणाम अर्पण कर व्रत करे। इस प्रकार कार्तिक शुक्ल एकादशीपर्यन्त प्रतिदिन करनेके पश्चात् द्वादशीको पहले वर्षमें पूए, दूसरेमें खीर और पूए, तीसरेमें मँडके, चौथेमें गुड़ और मँडके और पाँचवेंमें घृतपाचित (घीमें पकाये हुए) मण्डकोंसे पारण करके उद्यापन करे तो जीवनपर्यन्त सुख-सम्पत्तिसे युक्त रहता है और परलोकमें स्वर्गीय सुख प्राप्त होते हैं।

(३८) धारणपारणव्रत (भविष्योत्तर)—देवशयनीसे देवप्रबोधिनी-पर्यन्त (चातुर्मास्यके महीनोंमें) प्रतिदिन प्रातःस्नानादिके पश्चात् भगवान्का स्तवन, पूजन या स्मरण करके '**ॐ नमो नारायणाय**' अथवा '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' का मानसिक जप करे और धारणके दिन (जितक्रोधादि होकर) उपवास करे और पारणके दिन एकभुक्त भोजन करे। इस प्रकार कार्तिकी पूर्णिमा-पर्यन्त करके उद्यापन करे तो ब्रह्महत्या-जैसे महापाप भी नष्ट हो जाते हैं।

(३९) अश्वत्थोपनयनव्रत (शौनक)—वृक्षारोपणके शुभ दिवसमें पुरुष जातिके पीपलका रोपण करे। उसको आठ वर्षपर्यन्त जल आदि पोषणोंसे दीर्घजीवी बनावे। फिर ज्यौतिषशास्त्रोक्त उत्तम मुहूर्तमें अश्वत्थका उपनयन (यज्ञोपवीत-संस्कार) करे। उसके लिये वेदपाठी ब्राह्मणोंका वरण करके गणपतिपूजन,

मातृकापूजन, नान्दीश्राद्ध और पुण्याहवाचन करके गायन, वादन तथा नृत्यके साथ-साथ स्त्रीसमाज और बन्धु-बान्धवोंसहित अभीष्ट पीपलके ईशान कोणमें बैठकर पुण्याहवाचन करे। पीपलको पंचामृत (दूध, दही, घी, खाँड और शहद)-से स्नान कराये। धोती और अँगोछा धारण कराये। उसके पीछे मूँजकी मेखलासे अश्वत्थको तीन बार लपेटे और '**यज्ञोपवीतं०**' से यज्ञोपवीत धारण कराकर दण्ड और कृष्णाजिन उसके समीप रखे। फिर उससे पश्चिममें उपस्थित होकर गन्ध-पुष्पादिसे उसका पूजन करे और उससे पूर्वमें अपनी पद्धतिके विधानसे हवन करे। इसमें '**इन्द्राय**', '**अग्नये**', '**सोमाय**', '**प्रजापतये**' आदिके अनन्तर '**अश्वत्थेवो०**', '**ॐ या ओषधी०**'और '**वनस्पतये०**'—इन मन्त्रोंसे तीन-तीन आहुतियाँ और दे। फिर अश्वत्थसे पश्चिममें पूर्वाभिमुख बैठकर दाहिने हाथसे अश्वत्थको स्पर्श करके उसको तीन बार गायत्रीमन्त्र श्रवण करावे। पीछे हवनको समाप्त कर सवत्सा गौ, अन्न और पूजन-सामग्री आदिका दान करे एवं ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे तो लक्ष्मीकी प्राप्ति और कुलका उद्धार होता है।

(४०) अश्वत्थप्रदक्षिणाव्रत (अद्भुतसागर)—किसी शुभ दिनमें प्रातःस्नानादि करनेके पश्चात् '**ममाखिलपापक्षयपूर्वकमायुरा-रोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थं विष्णुस्वरूपमश्वत्थतरुममुकसंख्याकाभिः प्रदक्षिणाभिः सेविष्ये।**'—यह संकल्प करके अश्वत्थके समीप विष्णुकी मूर्ति स्थापित करके दोनोंका षोडशोपचार पूजन करे। दो वस्त्र (धोती और दुपट्टा) ओढ़ावे। ब्रह्मचर्यका पालन करे। काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सरता, बहुभोजन और मन्दोत्साह न होने दे। दान, मान और उपस्करसहित ब्राह्मणोंको भोजन करावे। फिर '**अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां राजा ब्राह्मणवर्णकः। अश्वत्थः पूजितो**

येन सर्वं सम्पूजितं भवेत्॥' से प्रार्थना करके **'यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे॥'** से चार प्रदक्षिणा करके मौन धारण करे। फिर यथाक्रम लक्षपरिक्रमा आरम्भ करे। उनमें यह ध्यान अवश्य रखे कि पहले दिन जितनी बन सकें उतनी ही प्रतिदिन करे और आगे यथाक्रम एक-दो-तीन-चार-पाँच लाख या अधिक गौरवका कार्य हो तो बारह लाख परिक्रमा करके तदंगीभूत ब्राह्मण-भोजनादि कराये तो इस व्रतसे श्वास, काश, उदरशूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, कोढ़, अग्निमान्द्य और राजयक्ष्मा या सर्वज्वर-जैसे घातक रोग, प्रत्येक प्रकारके महापाप और राजभयादि-जैसे अरिष्ट, कष्ट या संकट आदिका निवारण होकर सब प्रकारके सुख और उनके साधन प्राप्त होते हैं।

(४१) द्वादशमासव्रत (श्रुति-स्मृति-पुराणादि)—यह व्रत प्रत्येक महीनेमें यथाविधि स्नान, दान, देवार्चन और ब्राह्मण-भोजनादि करनेसे सम्पन्न होता है। विधि यह है कि १—चैत्रमें[1] एक ही प्रमाणका एकभुक्त व्रत करे तो सुवर्ण और मुक्ताफल आदिसे युक्त कुलमें जन्म होता है। २—वैशाखमें[2] गन्ध-पुष्पका दान करे तो आरोग्यता बढ़ती है। ३—ज्येष्ठमें[3] जलपूर्ण कुम्भ, सवत्सा गौ, पंखा और चन्दन दे तो सौभाग्यशाली होता है। ४—आषाढ़में[4] एकभुक्त भोजन, ब्रह्मचर्यका पालन और भगवान्‌का

---

१. चैत्रं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुले महति जायते॥ (भारत)

२. गन्धमाल्यानि च तथा वैशाखे सुरभीणि च।
देयानि.................. ॥ (वामन)

३. उदकुम्भाम्बु धेनुश्च तालवृन्तं च चन्दनम्।
त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं ज्येष्ठमासि च॥ (वामन)

४. आषाढमेकभक्तेन स्थित्वा मासमतन्द्रितः।
बहुधान्यो बहुधनो बहुपुत्रश्च जायते॥

स्मरण रखे तो धन-धान्य और पुत्रादिका सुख मिलता है। ५—श्रावणमें[१] घी-दूधसे भरे घड़े, पूरी और फल दे तो श्रीधरकी प्रसन्नता प्राप्त होती है। ६—भाद्रपदमें[२] मधु और घी मिली हुई खीर और नमक तथा गुड़-ओदनका दान करे तो हृषीकेशभगवान्‌का अनुग्रह प्राप्त होता है। ७—आश्विनमें[३] अश्विनीकुमारोंकी प्रसन्नताके अर्थ घीका दान देनेसे रूप और सौभाग्य बढ़ता है। ८—कार्तिकमें[४] चाँदी, सोना, दीप, मणि, मोती और वस्त्रादिका दान करे तो दामोदरभगवान्‌की प्रसन्नता होती है। ९—मार्गशीर्षमें[५] एक महीनेतक एकभुक्त व्रत करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये तो व्याधि-पीड़ा और पाप दूर होते हैं। १०—पौषमें[६] ब्राह्मणोंको घृतविशिष्ट भोजन कराये, घीका दान दे और मास समाप्त होनेपर घी, सोना और पात्र सत्पात्रको देकर तीन दिनका उपवास करे तो उत्तम फल प्राप्त होता है। ११—माघमें[७] तिल-धेनुका दान करे और गरीबोंकी शीतबाधा मिटानेके लिये ईंधन और धनका दान करे तो धनी होता है और

---

१. घृतं च क्षीरकुम्भांश्च घृतपक्वफलानि च।
श्रावणे श्रीधरप्रीत्यै दातव्यानि दिने दिने॥ (वामनपुराण)

२. मासि भाद्रपदे दद्यात् पायसं मधुसर्पिषा।
हृषीकेशप्रीणनार्थं लवणं सगुडोदनम्॥ (वामन)

३. घृतमाश्वयुजे मासि नित्यं दद्याद् द्विजातये।
प्रीणयित्वाश्विनौ देवौ रूपभागभिजायते॥ (यम)

४. रजतं कांचनं दीपान् मणिमुक्ताफलादिकम्।
दामोदरस्य प्रीत्यर्थं प्रदद्यात् कार्तिके नरः॥ (वामन)

५. मार्गशीर्षे तु यो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
भोजयेत्तु द्विजान् भक्त्या मुच्यते व्याधिकिल्बिषैः॥ (महाभारत)

६. घृतं द्विजेभ्यो दद्याच्च घृतमेव निवेदयेत्।
पौषे………… ॥ (वामन)

७. माघे मासि तिलाः शस्ताः कामधेनुश्च दानतः।
इध्मं धनादयश्चान्ये माधवप्रीणनाय तु॥

१२—फाल्गुनमें * गौ, वस्त्र, चावल और कृष्णाजिन (काले मृगका चर्म) दान करके व्रत करे तो गोविन्दभगवान् प्रसन्न होते हैं।

इतिहास-पुराणों, धर्मशास्त्रों, निबन्ध-ग्रन्थों तथा व्रतराज, व्रतार्क एवं जयसिंहकल्पद्रुम आदिमें कुछ ऐसे व्रतोंके भी अनुष्ठानका उपदेश किया गया है, जो तत्तत्कामनाओंके अनुसार विशेष अवसरोंपर विशेष प्रकारसे किये जाते हैं। यथा—जन्मलग्न आदिसे ज्ञात हुए वैधव्ययोग आदिके परिहारके लिये 'सावित्री' और 'अश्वत्थ' व्रत, शरीरसम्भूत शुभ लक्षणोंकी सफलताके लिये 'सौभाग्यलक्ष्मी' और 'श्री' व्रत तथा पातक, उपपातक एवं महापातक आदिकी निवृत्तिके लिये 'प्राजापत्य' और 'चान्द्रायण' व्रत आदि। अब आगे ऐसे ही व्रतोंका उल्लेख किया जायगा तथा साथमें उनके लक्षण, विधान एवं व्यवस्था आदि भी लिखे जायँगे। इसके सिवा पाप या कुयोग-निवारणके विधान पढ़ते समय बहुतोंको कृच्छ्रातिकृच्छ्र आदिके भेद और बहुविधपापोंके नाम तथा लक्षण जाननेकी आवश्यकता होती है। अतः इस संख्यामें प्रसंगानुसार उनका भी उल्लेख कर दिया है। सम्भव है इससे सनातनी जनताको संतोष होगा। अस्तु,

(१) सम्पत्तिप्रद श्रीव्रत (सौभाग्यलक्ष्मीसंग्रह)—यह व्रत एक-एक कलावृद्धिसे सोलह वर्षोंमें पूर्ण होता है। व्रतीको चाहिये कि आरम्भके शुभ दिनमें प्रातःस्नान आदिसे निवृत्त होकर '**ममाखिलपापक्षयपूर्वकमचलसम्पत्तिप्राप्तिकामनया श्रीव्रतमहं करिष्ये**' यह संकल्प करके सोने, चाँदी या ताँबेके पात्रमें दाड़िमकी लेखनी और केसर-चन्दनसे 'श्री' लिखे और उसका १ ईश्वरी, २ कमला, ३ लक्ष्मी, ४ चला, ५ भूति,

---

* फाल्गुने व्रीहयो गावो वस्त्रं कृष्णाजिनान्वितम्।
गोविन्दप्रीणनार्थाय दातव्यं पुरुषर्षभैः॥ (वामनपुराण)

६ हरिप्रिया, ७ पद्मा, ८ पद्मालया, ९ सम्पद् , १० उच्चैः, ११ श्री और १२ पद्म[1]-धारिणी—नामोंसे पूजन करके 'श्रीं' मन्त्रके पाँच या दस हजार जप करे। इस प्रकार प्रतिदिन वर्षपर्यन्त करनेसे एक कला सम्पन्न होती है। यदि वह सोलह वर्षतक किया जाय तो सोलह कलाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसका अमित फल होता है। स्मरण रहे कि जप करते समय सुपूजित 'श्रीं' को हृदयंगम रखकर या उसपर दृष्टि स्थिर करके जप करनेसे अचल श्री प्राप्त होती है।

(२) सुतप्रद धर्ममूलव्रत (शुकजातक)—जन्मलग्न आदिमें बृहस्पतिसे[2] पाँचवें घरका स्वामी त्रिक (६, ८, १२) में हों और पंचम, सप्तम तथा नवमका स्वामी छठे, आठवें और बारहवेंमें हों तो पुत्र-प्राप्तिमें बाधा होती है। अतः उसकी प्राप्तिके निमित्त धर्ममूलक[3] उपाय करने चाहिये। यथा (१) शुक्लपक्षकी सप्तमी, रविवारको प्रातःस्नान आदिके बाद '**सत्पुत्रप्राप्तिकामनया सूर्यसप्तमीव्रतमहं करिष्ये**'—यह संकल्प करके सूर्यकी सुवर्णमयी मूर्तिका या आकाशस्थ साक्षात् सूर्यका गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन कर अलवण एकभुक्त व्रत करे और वर्षपर्यन्त करके उसकी समाप्ति करे। (२) शिवजीके समीप शुभासनपर पूर्वाभिमुख बैठकर उनका विधिवत् पूजन करे और पंचाक्षरी शिवमन्त्र **(ॐ नमः शिवाय)**-का एक लाख या दस हजार जप व्रतपूर्वक नौ मासपर्यन्त करे। (३) प्रारम्भमें शुक्लपक्षकी दशमी गुरुवारको प्रातःस्नान आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर '**मम सकलपापताप-**

---

१. द्वादशैतानि नामानि लक्ष्मीं सम्पूज्य यः पठेत्।
स्थिरा लक्ष्मीर्भवेत् तस्य पुत्रदारादिभिः सह॥ (सौभाग्यलक्ष्मी)

२. वागीशात् पंचमेशस्त्रिकभवनगतः पुत्रधर्मांगनाथा रन्ध्रेद्वेष्यन्तिमस्थाः।

३. तत्प्राप्तिर्धर्ममूला। (शुकसूत्र)

क्षयपूर्वकं सत्पुत्रप्राप्तिकामनया 'देवकीसुत गोविन्द०' इति संतानगोपालमन्त्रस्य जपं स्तोत्रपाठं वाहं करिष्ये।' यह संकल्प करके न्यासादिपूर्वक '**ॐ देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥**' इस मन्त्रका प्रतिदिन एक या पाँच हजार जप करे और ब्रह्मचर्य-धारणपूर्वक परिमित हविष्यान्नका एकभुक्त भोजन करे। इस प्रकार प्रतिदिन एक हजारके हिसाबसे सौ दिन अथवा पाँच हजार प्रतिदिनके हिसाबसे बीस दिनमें एक लाख जप अथवा सौ दिनमें ग्यारह सौ स्तोत्रपाठ करके समाप्तिके समय तद्दशांशका हवन, तर्पण-मार्जन करे और ब्राह्मण-भोजन करावे। तथा (४) अपने मकानके आँगनमें मण्डप बनवाकर उसको ध्वजा-पताका और बन्दनवार आदिसे भूषित करके किसी पुराणपाठी सत्पात्र विद्वान्से हरिवंशपुराणका श्रद्धापूर्वक श्रवण करे और समाप्तिके दिन हवन, पूजन और ब्राह्मण-भोजन आदि कराके उसे समाप्त करे। इस प्रकार इन चारों प्रयोगोंको एक साथ या यथाक्रम पृथक्-पृथक् अथवा इनमेंसे किसी भी एकको करे तो उससे प्रभावशाली पुत्र प्राप्त होता है।

(३) मेधावर्द्धक ग्रहणव्रत (प्रयोगवैभव)—दिनके पूर्वभागमें होनेवाले ग्रहणके पहले दिन प्रातःस्नान आदि करनेके अनन्तर सद्वैद्यकी सम्मतिके अनुसार ब्राह्मीका सेवन करके व्रत करे। उसके दूसरे दिन ग्रहणके समय सोनेकी शलाका या कुशाके मूल अथवा दूर्वाके अंकुरोंसे जीभपर छोटी मक्खियोंके शहदसे '**ऐं**' लिखे और इसीका जप करे। तदनन्तर अग्निस्थापन करके गायके घीकी ८, २८ या १०८ आहुतियाँ देकर गायके दूधकी खीरमें हवनसे बचा हुआ घी मिला दे और '**ॐ प्राणाय स्वाहा**' '**ॐ अपानाय स्वाहा**' '**ॐ व्यानाय स्वाहा**' '**ॐ उदानाय स्वाहा**'

और '**ॐ समानाय स्वाहा**'—इन पाँच मन्त्रोंसे एक-एक करके पाँच प्राणाहुतियाँ देकर (अर्थात् पाँच ग्रास भक्षण करके) व्रत करे तो इससे छोटी अवस्थाके छात्रोंकी बुद्धि विकसित होती है और उनका शास्त्रज्ञान बढ़ता है।

(४) अनिष्टहर ग्रहणव्रत (वसिष्ठ-भृगुसंहिता)—जिसके जन्म[१]-नक्षत्र-(या राशि-) पर स्थित हुए सूर्य या चन्द्रमाका ग्रहण हो तो उससे उस राशिवाले नगर, ग्राम या मनुष्योंको पीड़ा होती है। अथवा जिस राजाके[२] राज्याभिषेकके नक्षत्रपर ग्रहण हो उस राजा और राज्यका ह्रास होता है; अतः इस निमित्त सुवर्णके सर्पको[३] तिलोंसे भरे हुए ताँबेके पात्रमें रखकर गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन करे और वस्त्र आदिसे भूषित करके श्रोत्रिय ब्राह्मणको दे। उस समय '**तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन। हेमनागप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव॥**' इस मन्त्रसे प्रार्थना करे और सूर्यग्रहणमें[४] सोनेके तथा चन्द्रग्रहणमें चाँदीके वृत्ताकार बिम्बका गन्धाक्षतसे पूजन करके दान करे तो उपरागजनित सभी संताप शान्त होते हैं।

(५) वैधव्य-योग-नाशक सावित्रीव्रत (हेमाद्रि, व्रतखण्ड)—किसी कन्याकी कुण्डलीमें विधवायोग बनता हो तो उसके माता-पिता उससे एकान्तमें सावित्रीव्रत[५] अथवा पिप्पलव्रत करायें

---

१. यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ।
तज्जातानां भवेत् पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः॥ (वसिष्ठ)

२. यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते।
राज्यभंगं सुहृन्नाशं मरणं चात्र निर्दिशेत्॥ (भृगुसंहिता)

३. सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं ताम्रभाजनम्।
सदक्षिणं सवस्त्रं च श्रोत्रियाय निवेदयेत्॥ (दैवज्ञमनोहर)

४. सौवर्णं राजतं वापि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तितः।
उपरागोद्भवक्लेशच्छिदे विप्राय कल्पयेत्॥ (दैवज्ञमनोहर)

५. सावित्र्यादिव्रतादीनि भक्त्या कुर्वन्ति याः स्त्रियः।
सौभाग्यं च सुहृत्त्वं च भवेत् तासां सुसंगतिः॥ (व्रतखण्ड)

और फिर उसका दीर्घायु योगवाले वरके साथ विवाह करें। व्रतविधि यह है कि ज्यौतिषशास्त्रोक्त शुभ मुहूर्तमें प्रातःस्नान आदिके पश्चात् शुभासनपर पूर्वाभिमुख बैठकर **'मम वैधव्यादिसकलदोषपरिहारार्थं ब्रह्मसावित्रीप्रीत्यर्थं च सावित्री-व्रतमहं करिष्ये।'** यह संकल्प करके तीन दिन उपवास करे। यदि सामर्थ्य न हो तो प्रथम दिन रात्रि भोजन, द्वितीय दिन अयाचित और तृतीय दिन उपवास करके चतुर्थ दिन समाप्त करे। यह व्रत वटके समीप बैठकर करनेसे विशेष फलदायी होता है। अतः उस जगह बाँसके पात्रमें सप्तधान्य भरकर उसपर सुवर्णनिर्मित सावित्रीका स्थापन करके उसका गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन करे। साथ ही वट-वृक्षको सूत्रसे वेष्टित करके उसका पंचोपचार पूजन कर परिक्रमा करे। तत्पश्चात् **'अवैधव्यं च सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते। पुत्रान् पौत्रांश्च सौख्यं च गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥'** से सावित्रीको अर्घ्य देकर अहिवात (सौभाग्य)-की रक्षाके लिये भक्ति, श्रद्धा और नम्रतासहित प्रार्थना करे तथा **'वट सिंचामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः। यथा शाखाप्रशाखाभिर्वृद्धोऽसि त्वं महीतले। तथा पुत्रैश्च पौत्रैश्च सम्पन्नां कुरु मां सदा॥'** इससे वटकी प्रार्थना करे तो वैधव्यदोषका सुतरां परिहार हो जाता है। वैसे यह* व्रत विधवा-सधवा, बालिका-वृद्धा, अपुत्रा या सपुत्रा—सभीके करनेका है और विशेषकर ज्येष्ठकी अमावस्याको सार्वजनिकरूपमें किया भी जाता है। ज्यौतिषशास्त्रमें वैधव्ययोग इस प्रकार निश्चय किया गया है कि 'कन्याके जन्मलग्नमें सप्तमेश पापी हो, पापदृष्ट हो या पापयुक्त होकर अनिष्टकारी (छठे, आठवें, बारहवें) स्थानमें

---

* नारी वा विधवा वापि पुत्रीपुत्रविवर्जिता।
सभर्तृका सपुत्रा वा कुर्याद् व्रतमिदं शुभम्॥ (स्कन्द०)

बैठा हो या शत्रुके घरमें हो तो पतिके सुखको हीन करता है। इसी प्रकार लग्नमें क्रूरग्रह[१] हो और उससे सातवें भौम हो या लग्नमें चन्द्रमा[२] और सातवें मंगल हो अथवा चौथे,[३] सातवें, आठवें, बारहवें या लग्नमें मंगल हो तो पतिके सुखको हीन करता है।

(६) वैधव्यहर अश्वत्थव्रत (ज्ञानभास्कर)—जिस कन्याके बलवान् वैधव्य-योग हो, उसके माता-पिता उससे अश्वत्थव्रत करायें। कन्याको चाहिये कि वह ज्यौतिषशास्त्रोक्त श्रेष्ठ मुहूर्तमें स्नान करके रंग-बिरंगे वस्त्र धारण कर पिताके घरसे बाहर पीपल (और वह न हो तो शमी या बेरके वृक्ष)-के समीप जाकर चारों ओरकी मिट्टीसे उसके थाल्हा बनाये और विद्वान् ब्राह्मणको आचार्य बनाकर '**मम प्रबलवैधव्यदोषनिरसनपूर्वकं पतिपुत्रादिभिः सह सुखप्राप्तिकामनया अश्वत्थव्रतमहं करिष्ये।**'—यह संकल्प करके जलपूर्ण करवे (मिट्टीके पात्र)-से उस थाल्हेको जलसे भरकर पीपलको प्रतिदिन सींचे। विशेषकर चैत्र कृष्ण या आश्विन कृष्ण तृतीयाको अश्वत्थके समीप बैठकर उपर्युक्त प्रकारसे संकल्प करके उसका सेचन, पूजन और व्रत करे। इस प्रकार आगामी कृष्ण तृतीयापर्यन्त प्रतिदिन करके ३१वें दिन सपत्नीक ब्राह्मणोंका पूजन करे और बाँसके पात्रमें सुवर्णनिर्मित शिव-पार्वतीको स्थापित करके चन्दन, अक्षत, दूर्वा, बिल्वपत्र, पुष्प और धूप-दीप आदिसे विधिपूर्वक पूजन करे। इस प्रकार

---

१. यदि लग्नगतः क्रूरस्तस्मात् सप्तमगः कुजः।
विज्ञेयं मरणं पुंसाम्……… ॥ (नारद)

२. यदि लग्नगतश्चन्द्रस्तस्मात् सप्तमगः कुजः।
भर्तुर्मृत्युं विजानीयात्……… ॥ (नारद)

३. लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजः।
कन्या भर्तुर्विनाशाय भर्ता कन्याविनाशकृत् ॥ (ज्यौ० त०)

एक महीनेतक प्रतिदिन करनेसे कन्याको पूर्ण पतिसौख्य प्राप्त होता है।

(७) वैधव्यहर कर्कटीव्रत (व्रतराज)—सूर्यनारायणके कर्कराशिमें प्रवेश होनेपर कन्याको चाहिये कि वह स्नान करके शुद्ध हो अन्न-पूर्ण बाँसके पात्र या अक्षतोंके अष्टदलपर स्वर्णनिर्मित कर्कटी (ककड़ी)-को स्थापित कर उसका गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन करे और विधिवत् व्रत करके ग्यारह फल (ऋतुकालकी ककड़ी) सहित स्वर्ण-कर्कटीका दान करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये तो इससे वैधव्ययोगकी शान्ति होती है। उक्त तीनों व्रतोंके अतिरिक्त मार्कण्डेयपुराणमें 'कुम्भविवाह', 'अश्वत्थविवाह' और 'विष्णुविवाह'—ये तीन परिहार और लिखे हैं। तत्त्वदर्शी महर्षियोंके निश्चित किये हुए होनेसे प्रसंगवश यहाँ उनका दिग्दर्शन करा देना आवश्यक है।

(८) वैधव्यहर विवाहव्रत (सूर्यारुणसंवाद)—वैधव्ययोगकी सम्भावना होनेसे लौकिक विवाहसे पहले वैवाहिक मुहूर्तमें कन्याके माता-पिता सुस्नात कन्याको **(१) 'कुम्भविवाह'** के लिये पीठस्थ कुम्भके दक्षिण भागमें पूर्वाभिमुख बिठाकर स्वयं उत्तराभिमुख बैठे हुए गणपतिपूजन, मातृकापूजन, नान्दीश्राद्ध और पुण्याहवाचन करके '**भूरसि**'—आदिसे कुम्भस्थापन करें और उसके ऊपर सुवर्णमय वरुण और विष्णुका पूजन करके कुम्भ और कन्याके गलेमें दस तारोंसे बनाया हुआ यज्ञोपवीत-सदृश सूत्र पहनायें और दोनोंको पीतवस्त्रसे वेष्टित करके अग्निस्थापनपूर्वक कन्यादान करें। फिर '**प्रजापतये**.....' आदिसे और '**भूः स्वाहा**.....' आदिसे आहुतियाँ देकर '**वरुणांगस्वरूप त्वं जीवनानां समाश्रय। पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रान् सुखं वरम्। देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः॥**' से प्रार्थना करके विसर्जन करें।

इसी प्रकार (२) '**पिप्पलविवाह**' के निमित्त सुस्नात कन्याको अश्वत्थके समीप पूर्वाभिमुख बैठाकर उसके माता-पिता उत्तराभिमुख बैठें और गणपति, मातृका आदिका पूजन करके विष्णु-प्रतिमा और पीपलका पूजन कर यथापूर्व दस तन्तुमय सूत्र और पीत वस्त्रसे कन्या और अश्वत्थको वेष्टित करे; फिर अग्निस्थापन करके यथोक्त विधिसे कन्यादानका संकल्प करे और '**प्रजापतये०**' आदिसे ४ तथा '**भूः स्वाहा**' आदिसे ९ आहुतियाँ देकर '**नमो निखिलपापौघनाशनाय नमो नमः। पूर्वजन्मभवं पापं बालवैधव्यकारकम्। नाशयाशु सुखं देहि कन्याया मम भूरुह॥**' से पीपलकी प्रार्थना करके विसर्जन करे। इसी प्रकार (३) '**विष्णुविवाह**' के लिये कन्यादाता सुवर्णनिर्मित विष्णुमूर्तिको वस्त्राच्छादित पीठके अष्टदल कमलपर स्थापित करके उसके समीप दक्षिण भागमें शुभासनपर कन्याको पूर्वाभिमुख बिठाये और स्वयं उत्तराभिमुख बैठकर गणपतिपूजन, मातृकापूजन, नान्दीश्राद्ध और पुण्याहवाचन करके विष्णुप्रतिमाका षोडशोपचार पूजन करे। फिर विष्णु तथा कन्याको दशतन्तुविधानके उपवीत-सदृश सूत्रसे वेष्टित और पीताम्बरसे आच्छादित करके अग्निस्थापनपूर्वक कन्यादान करे। फिर अग्निमें यथापूर्व '**प्रजापतये०**' आदिसे ४ और '**भूः स्वाहा**' आदिसे ९ आहुतियाँ देकर '**वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशाय सुखलब्धये। बहुसौभाग्यलब्ध्यै च महाविष्णोरिमां तनुम्॥**' से प्रार्थना करके विसर्जन करे। स्मरण रहे कि उक्त तीनों विवाहोंमें कन्यादानका संकल्प करते समय दाता अपने गोत्रका उच्चारण करके कन्याको अपने प्रपितामहकी प्रपौत्री, पितामहकी पौत्री और अपनी पुत्री सूचित करता हुआ संकल्प करे। इसमें कुम्भ, अश्वत्थ और विष्णुके पिता, पितामह आदिके नामोच्चारण और राष्ट्राभृतादि आहुतियोंकी आवश्यकता

नहीं है और न इन विवाहोंमें पुनर्भूत्व दोष होता है; क्योंकि '**स्वर्णाम्बुपिप्पलानां च प्रतिमा विष्णुरूपिणी। तया सह विवाहे च पुनर्भूत्वं न जायते॥**' अर्थात् सोना, जल, पीपल और विष्णुप्रतिमाके साथ कन्याका विवाह करनेमें पुनर्भूत्व नहीं होता।*

(८) प्रायश्चित्तव्रत

पाप और पुण्य—दोनोंका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है। इनमें अज्ञानवश पाप और ज्ञानवश पुण्य स्वतः संचित होते हैं और समय पाकर बढ़ जानेसे दोनों प्रत्यक्ष देखनेमें आ जाते हैं। उस समय पापका बुरा और पुण्यका अच्छा फल होता ही है। उसमें भी मनुष्य स्वभावतः अच्छेकी इच्छा और बुरेसे ग्लानि करता है। इसी कारण त्रिकालदर्शी महर्षियोंने मनुष्यको पापमुक्त रखनेके लिये प्रायश्चित्त निश्चित किये हैं। इनके करनेसे सद्भावनावाले

---

* लक्ष्मीरूपा सदा कन्या हरिरूपं सदा जलम्।
हरेर्दत्तं च यद् दानं दातुः पापहरं सदा॥
लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै या दत्ता कन्यका बुधैः।
तारयेत् सकलं दातुः कुलं पूर्वापरं सदा॥
चन्द्रगन्धर्ववह्नयम्बुशिवसोमस्मरा इमे।
पतयः कन्यकानां च बाल्यात् सन्ति सदैव ते॥
तदुद्वाहविधिर्यत्नात् कृतो नो जनयेदघम्।
यथालिभुक्तं कमलं देवानां पूजनाय वै॥
अर्हं भवति सर्वत्र तथा कन्या नृणां भवेत्॥ (हेमाद्रि)
यत्किंचित् कथितं शास्त्रं शान्तिकं पतिरक्षणे।
तत्पापमपि नो पापं येन धर्मोऽभिरक्ष्यते॥ (धर्मशास्त्र)
मन्थन्या भास्करो यत्नात् कृतवान् दुहितुर्विधिम्।
रेणुकोऽपि स्वकन्यायास्तदुद्वाहं चकार सः॥ (विधानखण्ड)
पित्रा मात्रा तथा भ्रात्रा दत्ता या तोयधारया।
विप्राग्निसुहृदां साक्ष्यं कृत्वा सोद्वाहिता भवेत्॥ (कात्यायन)

मनुष्य तो अपने अज्ञानवश किये पापोंसे मुक्त होकर सुप्रकाशित प्रतिभासे युक्त होते ही हैं; किंतु असद्भावनावाले मनुष्योंके ज्ञानपूर्वक किये हुए पाप भी यथोचित प्रायश्चित्तोंसे दूर हो जाते हैं। अंगिराने प्रायस् (तप) और चित्त (निश्चय)-को 'प्रायश्चित्त'[१] बतलाया है। हारीतके मतसे शुद्धिद्वारा संचित पापोंके नाशका नाम 'प्रायश्चित्त'[२] है और वैसे किसी प्रकारसे किये गये पापसे अन्तःकरणमें ग्लानि होने (या पछताने) और उसके मिटानेका शास्त्रसम्मत (या परम्परागत) कर्म करनेका नाम भी प्रायश्चित्त ही है।

पाप और पुण्यके अनेक भेद, अनेक लक्षण, अनेक कारण और अनेक नाम होनेपर भी वेदव्यासजीने इनका लक्षण दो शब्दोंमें स्पष्ट कह दिया है। उनका मत है कि दूसरेका उपकार करना 'पुण्य'[३] और दूसरेको पीड़ित करना 'पाप'[४] है। शास्त्रकारोंने पाप तीन प्रकारके बतलाये हैं—(१) धर्मशास्त्रोंने जिस जातिके लिये जो कर्म बतलाया है, उसको न करना, (२) शास्त्रोंमें जिस कर्मको बुरा बतलाया है, उसको करना और (३) इन्द्रियोंको वशमें न रखकर मनमाने कर्म (खान-पान, पहिरान या दुर्व्यवहार) करना—इन तीनों प्रकारके पापोंसे ही पीछे जाकर प्रकीर्णक, जातिभ्रंशकर, संकरीकरण, अपात्रीकरण, मलिनीकरण, उपपातक, अनुपातक और महापातक बन जाते हैं और इनके करनेसे मनुष्य निजपदसे गिर जाता है। अतः

---

१. प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्॥ (अंगिरा)

२. 'प्रयतत्वाद्वोपचितमशुभं नाशयतीति प्रायश्चित्तम्'॥ (हारीत)

३. परोपकारः पुण्याय।

४. पापाय परपीडनम्। (वेदव्यास)

शास्त्रकारोंने जिस कर्मका निषेध किया है, उसका त्याग और जिसको ग्राह्य बतलाया है, उसका ग्रहण करना मनुष्यमात्रके लिये श्रेयस्कर है। कदाचित् कुसंगवश कोई पाप बन जाय तो उसकी निवृत्तिके निमित्त यथोचित प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। यदि प्रायश्चित्त न किया जाय तो दूसरे जन्ममें दूषित योनि प्राप्त होती है या अंग-भंग, भगन्दर आदि दोषोंसे युक्त मनुष्ययोनि मिलती है। किस पापसे मनुष्य किस योनिमें उत्पन्न होता है अथवा अंगोंमें किस प्रकारकी विकृति होती है—ये सब विषय 'प्रायश्चित्तेन्दुशेखर' आदिमें विस्तारसे वर्णित हैं।

प्रायश्चित्तके अनेक भेद हैं। जैसा पाप हो, वैसा ही प्रायश्चित्त होता है। उसमें भी ज्ञात, अज्ञात, अवस्था-भेद और तत्काल या कालातिक्रमण आदिके विचारानुसार यथोचित प्रायश्चित्तमें कमी-बेशी भी की जाती है। यथा—सामान्यके लिये जप या हवन, विशेषके लिये (पूर्वांगमें लिखे हुए) एकभुक्त, नक्त, अयाचित या उपवास और ताड़न-मारण आदिके लिये कृच्छ्र या अतिकृच्छ्र नियत किये जाते हैं। इस विषयमें 'प्राजापत्य' और 'चान्द्रायण' का विशेष प्राधान्य है। अधिकांश पापोंके प्रायश्चित्त प्राय: इन्हींके (कृच्छ्र-अतिकृच्छ्र आदि) विभिन्न भेदोंसे सम्पन्न होते हैं। इनमें भी पापोंकी गुरुता और लघुताके अनुसार कठोरता और सरलता की जाती है। यथा—

(१) प्राजापत्यव्रत (मन्वादि धर्मशास्त्र)—इसमें तीन दिन प्रात:काल (कुक्कुटाण्डके बराबर २६ या १५ ग्रास); तीन दिन सायंकाल (वैसे ही २५ या १२ ग्रास) और तीन दिन अयाचित (बिना माँगे जो कुछ जिस समय जितना मिल जाय, उसके चौबीस ग्रास) भोजन और तीन दिन उपवास करनेसे एक

'प्राजापत्य'[१] होता है। इस प्रकार न हो सके तो एकभुक्त, नक्त, अयाचित और उपवास—ये यथाक्रम ३-३ दिन करे। उपवास निराहार न हो सके तो जल, फल या दुग्धपानसे करे। जपशीलको[२] बारह हजार जप, तपशीलको[३] एक हजार होम तथा समर्थको १२ ब्राह्मणोंका भोजन और दो गो-दान या गोमूल्यरूपसे कुछ द्रव्यका दान करना चाहिये। इस व्रतसे 'अनादिष्ट' (जिनके लिये प्रायश्चित्तका विधान नहीं है उन) पापोंकी निवृत्ति होती है।

(२) पादोनकृच्छ्रव्रत (मन्वादि धर्मशास्त्र)—इसमें दो दिन प्रातःकाल, दो दिन सायंकाल, दो दिन अयाचित भोजन और दो दिन उपवास करे। यह न बने तो कुछ सोना दान दे।

(३) अर्द्धकृच्छ्रव्रत[४] (धर्मशास्त्र)—इसमें एक दिन प्रातःकाल, एक दिन सायंकाल, दो दिन अयाचित भोजन और दो दिन उपवास करे। यह न बने तो सोने या चाँदीका दान दे। इस व्रतसे ऋतुकालमें स्त्रीका सहवास त्याग देने-जैसे पापोंकी निवृत्ति होती है।

(४) पादकृच्छ्रव्रत (धर्मशास्त्र)—इसमें एक दिन प्रातःकाल,

---

१. त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्।
परं त्र्यहं च नाश्नीयात् प्राजापत्यं चरेद् द्विजः॥ (मनु)

२. अनृतं मद्यगन्धं च दिवामैथुनमेव च।
पुनाति वृषलान्नं च संध्या बहिरुपासिता॥
शतजप्ता तु सावित्री महापातकनाशिनी।
सहस्रजप्ता तु तथा पातकेभ्यः प्रमोचिनी॥
दशसाहस्रजाप्येन सर्वकिल्बिषनाशिनी।
लक्षं जप्ता तु सा देवी महापातकनाशिनी॥ (शंख)

३. तिलान् ददाति यः प्रातस्तिलान् स्पृशति खादति।
तिलस्नायी तिलांजुह्वन् सर्वं तरति दुष्कृतम्॥ (यम)

४. सायं प्रातस्तथैकैकं दिनद्वयमयाचितम्।
दिनद्वयं च नाश्नीयात् कृच्छ्रार्धं तद् विधीयते॥ (आपस्तम्ब)

एक दिन सायंकाल, एक दिन अयाचित भोजन और एक दिन उपवास करनेसे 'पादकृच्छ्र'[१] होता है।

(५) अतिकृच्छ्र (धर्मशास्त्र)—नौ दिन एक-एक ग्रास भोजन और तीन दिन उपवास करने और ३ या २ गौ देनेसे 'अतिकृच्छ्र'[२] होता है। यह न बन सके तो 'पाणिपूरान्न' (हथेलीमें आये उतना) भोजन और तीन दिन दूध आदिसे उपवास करे। यह व्रत ब्राह्मणके लकुट-प्रहार करने-जैसे पापोंकी निवृत्तिके निमित्त किया जाता है।

(६) कृच्छ्रातिकृच्छ्र (धर्मशास्त्र)—प्रातःकाल, सायंकाल और मध्याह्नकाल—इनमें एक-एक बार जल पीकर २१ दिन व्रत करनेसे 'कृच्छ्रातिकृच्छ्र'[३] होता है। यमका मत है कि यह न बने तो अतिकृच्छ्र करे।

(७) तप्तकृच्छ्रव्रत (मनु आदि)—३ दिन ६ पल (३५० ग्राम) गर्म जल, ३ दिन ३ पल गर्म दूध, ३ दिन १ पल गर्म घी और तीन दिन गर्म वायु (उबलते हुए जलकी भाप) पीनेसे; या ३ पल गर्म जल, २ पल गर्म दूध और १ पल गर्म घी ३-३ दिन पीने और ३ उपवास करनेसे अथवा तीनोंको एक साथ गर्म करके १ दिन पीने और १ दिन उपवास करनेसे 'तप्तकृच्छ्र'[४] होता है। इसमें पहला मत मनुका है।

(८) शीतकृच्छ्रव्रत (मनु-याज्ञवल्क्य आदि)—इसमें ३ दिन उक्त प्रमाणका ठंडा जल, ३ दिन ठंडा दूध और तीन

---

१. बालवृद्धातुरेष्वेवं शिशुकृच्छ्रमुवाच ह। (वसिष्ठ)

२. एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत्।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः॥ (मनु)

३. अब्भक्षस्तु त्रिभिः कालैः कृच्छ्रातिकृच्छ्रकः स्मृतः। (गौतम)

४. तप्तकृच्छ्रं चरन् विप्रो जलक्षीरघृतानिलान्।
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान् सकृत्स्नायी समाहितः॥ (मनु)

दिन ठंडा घी पीनेसे और यदि सामर्थ्य न हो तो १-१ दिन पीनेसे 'शीतकृच्छ्र'[१] होता है।

(९) पर्णकूर्चव्रत (धर्मशास्त्र)—पलास, गूलर, पद्म, बेलपत्र और कुशपत्र—इन सबको एक साथ उबालकर ३ दिन पीनेसे 'पर्णकूर्च'[२] होता है।

(१०) ब्रह्मकूर्चव्रत (धर्मशास्त्र)—पहले ३ दिन उपवास करके फिर पलास, गूलर, पद्म, बेलपत्र और कुश—इनके उबलते हुए भापको पीनेसे 'ब्रह्मकूर्च' होता है।

(११) पर्णकृच्छ्र—नित्य स्नानसे पहले पंचगव्य-स्नान करके पहले ३ दिन उपवास, फिर ५ दिनतक प्रतिदिन पलास, गूलर, पद्म, बेल और कुश—इनके पत्तोंको जलमें उबालकर या इनमेंसे एक-एकको प्रतिदिन उबालकर पीनेसे 'पर्णकृच्छ्र'[३] होता है।

(१२) पद्मकृच्छ्र—पद्मके पत्तोंको उबालकर प्रतिदिन एक मास पीनेसे 'पद्मकृच्छ्र'[४] होता है।

(१३) पुष्पकृच्छ्र—पुष्पोंको उबालकर एक मास पीनेसे 'पुष्पकृच्छ्र'[५] होता है।

(१४) फलकृच्छ्र—फलोंको उबालकर उनका जल एक मास पीनेसे 'फलकृच्छ्र'[६] होता है।

---

१. त्र्यहं शीतं पिबेत्तोयं त्र्यहं शीतपयः पिबेत्।
त्र्यहं शीतं घृतं पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम्॥ (यम)

२. पालाशादीनि पत्राणि त्रिरात्रोपोषितः शुचिः।
क्वाथयित्वा पिबेदद्भिः पर्णकूर्चोऽभिधीयते॥ (यम)

३. पत्रैर्मतः पर्णकृच्छ्रः। (मार्कण्डेय)

४. पद्मपत्रैः पद्मकृच्छ्रः। (,,)

५. पुष्पैस्तत्कृच्छ्र उच्यते। (,,)

६. फलैर्मासेन क्वथितः फलकृच्छ्रो मनीषिभिः। (,,)

(१५) मूलकृच्छ्र—उक्त वृक्षोंके मूलको उबालकर उसका जल एक मास पीनेसे 'मूलकृच्छ्र'[१] होता है। इन पर्ण, पद्म, पुष्प, फल और मूलोंका जल प्रतिदिन तैयार करना चाहिये। यह नहीं कि एक दिन इकट्ठा उबालकर पात्रमें भर ले और प्रतिदिन पीता रहे।

(१६) श्रीकृच्छ्र (धर्मशास्त्र)—यह तीन प्रकारसे किया जाता है। यथा बेलके फल उबालकर उनका जल एक मास पीनेसे 'श्रीकृच्छ्र' या आँवले उबालकर उनका जल पीनेसे 'दूसरा श्रीकृच्छ्र'[२] होता है।

(१७) जलकृच्छ्रव्रत (याज्ञवल्क्य)—शुद्ध जलको उबालकर प्रतिदिन प्रातःस्नान आदि नित्यकर्मके पीछे एक मासतक पीनेसे 'जलकृच्छ्र'[३] होता है।

(१८) सांतपन (विश्वकोश)—छः रात्रिका उपवास करनेसे 'सांतपन' होता है।

(१९) कृच्छ्रसांतपन (याज्ञवल्क्य)—एक दिन गोमूत्र, एक दिन गोबर, एक दिन दही, एक दिन दूध, एक दिन घी और एक दिन कुशोदक पीने और एक दिन उपवास करनेसे 'कृच्छ्रसांतपन'[४] होता है।

(२०) महासांतपन (याज्ञवल्क्य)—तीन दिन गोमूत्र, तीन दिन गोबर, तीन दिन दही, तीन दिन दूध, तीन दिन घी और

---

१. मूलकृच्छ्रः स्मृतो मूलैः। (मार्कण्डेय)

२. श्रीकृच्छ्रः श्रीफलैः प्रोक्तः। (मार्क०) मासेनामलकैरेवं
श्रीकृच्छ्रमपरं स्मृतम्। (मार्कण्डेय)

३. तोयकृच्छ्रो जलेन तु। (,,)

४. गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकैकं प्रत्यहं पीत्वा त्वहोरात्रमभोजनम्।
कृच्छ्रं सांतपनं नाम सर्वपापप्रणाशनम्॥ (जाबालि)

तीन दिन कुशोदक पीने और तीन दिन उपवास करनेसे सम्पूर्ण पापोंको निवारण करनेवाला 'महासांतपन'[१] होता है।

(२१) अतिसांतपन—उपर्युक्त पदार्थोंको दो-दो दिन पीनेसे 'अतिसांतपन'[२] होता है।

(२२) ब्रह्मकूर्चव्रत (मिताक्षरा)—इसमें ताम्रवर्णकी गौके ८ माशे गोमूत्रको गायत्री-मन्त्रसे, सुश्वेत रंगकी गौके १६ माशे गोबरको '**गन्धद्वारां०**' से, नीली गौके १० माशे दहीको '**दधिक्राव्णो०**' से, सुनहरे रंगकी गौके १२ माशे दूधको '**आप्यायस्व०**' से, काले रंगकी गौके ९ माशे घीको '**देवस्य त्वा०**' से और यथाविधि लाये हुए कुशके चार माशे जलको '**देवस्य त्वा०**' से ग्रहण करके पंचगव्य बनाकर '**इरावती०**', '**इदं विष्णु०**', '**मा नस्तोके०**' और '**शंवती०**'—इन २० ऋचाओंसे हवन करे। फिर हवनसे बचे हुए पंचगव्यको प्रणव (ॐ)से मिलाये, ॐसे ही उठाये और ॐसे ही ढाकके मध्यपत्र या सुवर्णपात्र अथवा ताम्रपात्र या 'ब्रह्मतीर्थ' (हथेलीमें लेकर चरणामृतकी भाँति मणिबन्धके ऊपर)-से पीये और पीते समय '**यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके। ब्रह्मकूर्चोपवासस्तु दहत्वग्निरिवेन्धनम्॥**' इस मन्त्रका उच्चारण करे। इस प्रकार तीन बार पीनेसे 'ब्रह्मकूर्च'[३] सम्पन्न होता है।

(२३) यतिसांतपन (याज्ञवल्क्य)—उक्त प्रकारसे तैयार किये हुए (गोमूत्र, गोबर, दूध, दही और घी)-के पंचगव्यको

---

१. त्र्यहं पिबेत्तु गोमूत्रं त्र्यहं वै गोमयं पिबेत्।
त्र्यहं दधि त्र्यहं क्षीरं त्र्यहं सर्पिस्ततः शुचिः॥
महासांतपनं चैतत्.....। (यम)

२. एतान्येव यदा पेयादेकैकं तु द्व्यहं द्व्यहम्।
अतिसांतपनं नाम श्वपाकमपि शोधयेत्॥ (यम)

३. एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद् द्विजः।
ब्रह्मकूर्चोपवासस्तु० । (पराशर)

तीन दिनतक पीनेसे 'यतिसांतपन' होता है। जाबालिके मतसे उक्त पंचगव्यको कुशोदकमें मिलाकर सात दिन पीनेसे 'कृच्छ्रसांतपन' होता है।

(२४) पराकव्रत (धर्मशास्त्र)—निरन्तर बारह अहोरात्रका उपवास करने और २, ३ या ५ गोदान अथवा तन्मूल्योपकल्पित द्रव्य देनेसे 'पराकव्रत' सम्पन्न होता है।

(२५) सौम्यकृच्छ्रव्रत (प्रायश्चित्तेन्दुशेखर)—व्रत आरम्भ करके पहले दिन प्राणरक्षाप्रमाण पिण्याक (जितनेसे प्राण रह सके, उतने तिलोंकी खली), दूसरे दिन आचाम (उबाले हुए चावलोंका पानी—माँड़), तीसरे दिन तक्र (छाछ—मठा), चौथे दिन जल और पाँचवें दिन सत्तू पीये। फिर तीन दिन उपवास करे तब 'सौम्यकृच्छ्रव्रत' होता है।

(२६) तुलापुरुषव्रत (धर्मशास्त्र)—उपर्युक्त खली, माँड़, छाछ, जल और सत्तू—इन पाँचोंमेंसे प्रत्येकको ३-३ दिनके क्रमसे १५ दिन पीकर ६ दिन उपवास करनेसे 'तुलापुरुषव्रत' होता है।

(२७) यावकश्रीकृच्छ्र (प्रायश्चित्तेन्दुशेखर)—३ दिन गोमूत्र, ३ दिन गोबर और ३ दिन यावक (जौ उबालकर तैयार किया हुआ जल) पीनेसे 'यावकश्रीकृच्छ्रव्रत' होता है।

(२८) यावककृच्छ्रव्रत (प्रायश्चित्तेन्दुशेखर)—प्रतिदिन नियमित जलमें जौ उबालकर ७ दिन या १५ दिन पीनेसे 'यावककृच्छ्र' होता है। किसीके मतसे १ मास पीनेसे होता है।

(२९) अपरजलकृच्छ्र (प्रायश्चित्तेन्दुशेखर)—बिना कुछ खाये-पीये एक दिनके प्रातःकालसे लेकर दूसरे दिनके प्रातःकालतक गलेतक पहुँचे हुए जलमें खड़े रहनेसे 'जलकृच्छ्रव्रत' सम्पन्न होता है। यह दूसरा 'जलकृच्छ्रव्रत' है।

(३०) वज्रकृच्छ्रव्रत (याज्ञवल्क्यादि)—गोबर और यावक (जौका पूर्वोक्त प्रकारसे निकाला हुआ जल) मिलाकर पीनेसे 'वज्रकृच्छ्रव्रत' होता है।

(३१) सांतपनव्रत (प्रायश्चित्तेन्दुशेखर)—पहले दिन केवल पंचगव्य (गौके गोबर, गोमूत्र, दही, दूध और घी) पीने और दूसरे दिन उपवास करनेसे 'सांतपनव्रत' होता है।

(३२) यतिसांतपन (प्रायश्चित्तेन्दुशेखर)—तीन दिन पंचगव्य पीकर चौथे दिन उपवास और हवन करनेसे 'यतिसांतपनव्रत' होता है।

(३३) षाडाहिक सांतपन (प्रायश्चित्तेन्दुशेखर)—पाँच दिन पंचगव्य पीने और छठे दिन उपवास करनेसे 'षाडाहिक सांतपनव्रत' होता है।

(३४) साप्ताहिक सांतपन (प्रायश्चित्तेन्दुशेखर)—पंचगव्यके पाँच पदार्थोंको एक-एक करके यथाक्रम पाँच दिन पीने और छठे दिन कुशोदक पीकर सातवें दिन उपवास करनेसे 'साप्ताहिक सांतपन' सम्पन्न होता है।

(३५) एकविंशदिनात्मक सांतपन (प्रायश्चित्तेन्दुशेखर) कुशोदक, गोबर, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि और गोघृतमेंसे एक-एकको तीन-तीन दिन पीकर (१८ दिनके बाद) तीन दिन उपवास करनेसे इक्कीस दिनका 'सांतपनव्रत' होता है।

(३६) चान्द्रायणव्रत (मनु-वसिष्ठ-याज्ञवल्क्यादि स्मृति)—यह व्रत चन्द्रकलाकी ह्रास-वृद्धिके अनुसार भक्ष्य-भोज्यकी ग्रास-संख्याको घटा-बढ़ाकर किया जाता है। जिस प्रकार कृष्णप्रतिपदासे चन्द्रमा एक-एक कलासे हीन होकर अमावस्याको पूर्णरूपसे क्षीण हो जाता है और शुक्लप्रतिपदासे एक-एक कलाकी वृद्धि होकर पूर्णिमाको पुनः वह पूर्ण हो जाता है, उसी प्रकार

चान्द्रायणव्रतमें[1] कृष्णप्रतिपदासे एक-एक ग्रास घटाकर अमावस्याको लंघन (उपवास) किया जाता है और शुक्लप्रतिपदासे एक-एक ग्रास बढ़ाकर पूर्णिमाको पूर्ण किया जाता है। इस प्रकार एक मासके तीस दिनोंमें एक चान्द्रायणव्रत सम्पन्न होता है। चान्द्रायणका अर्थ है 'चन्द्रके अयन (ह्रास-वृद्धि)-के समान आहारको घटा-बढ़ाकर किया जानेवाला व्रत।' उपर्युक्त नियमसे करनेमें इसकी ह्रास-वृद्धिके सम्पूर्ण ग्रास दो सौ चालीस होते हैं और इसी व्रतके जो अन्यान्य विधान बतलाये हैं, उन सबमें भी दो सौ चालीस ही ग्रास होते हैं। परंतु 'यवमध्यतनु' और 'पिपीलिकातनु'में (शुक्लपूर्णिमा और कृष्णप्रतिपदाके १५-१५ ग्रास होनेके बदले केवल प्रतिपदाके १४ ग्रास होनेसे) २२५ ही ग्रास होते हैं। इस विषयमें वसिष्ठादिका यही मत है कि पूर्णिमाको १५ और प्रतिपदाको १४ ग्रास भक्षण करे तथा कृष्णपक्षकी समाप्तिमें अमावस्याको उपवास करे। यथा (१) 'यवमध्यतनु' चान्द्रायणमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे प्रारम्भ करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाता हुआ पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भक्षण करे और फिर कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको चौदह ग्रास भक्षण करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास घटाता हुआ कृष्णचतुर्दशीको एक ग्रासका भोजन और अमावस्याको उपवास करे तथा (२) 'पिपीलिकातनु' में कृष्णप्रतिपदाको[2] चौदह ग्राससे आरम्भ करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास घटाता हुआ कृष्णचतुर्दशीको

---

१. तिथिवृद्ध्या चरेत् पिण्डान् शुक्ले शिख्यण्डसम्मितान्।
एकैकं ह्रासयेत् कृष्णे पिण्डं चान्द्रायणं चरेत्॥ (याज्ञवल्क्य)
एकैकं वर्द्धयेत् पिण्डं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्।
इन्दुक्षये न भुंजीत एष चान्द्रायणे विधिः॥ (वसिष्ठ)

२. मासस्य कृष्णपक्षादौ ग्रासानद्याच्चतुर्दश।
ग्रासापचयभोजी सन् यज्ञशेषं समापयेत्॥
तथैव शुक्लपक्षादौ ग्रासं भुंजीत चापरम्॥ (वसिष्ठ)

एक ग्रासका भोजन और अमावस्याको उपवास करे तथा शुक्लप्रतिपदासे एक-एक ग्रास बढ़ाता हुआ पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भक्षण करके पूर्ण करे। इस भाँति दोनों प्रकारका चान्द्रायण सम्पन्न होता है।

व्रतारम्भके विषयमें गौतम ऋषिने यह विशेष बतलाया है कि प्रायश्चित्तके निमित्तसे चान्द्रायणव्रत करना हो तो पहले दिन व्रत रखकर मुण्डन[1] कराये और शुद्ध स्नान करके दूसरे दिन प्रातःस्नानादि नित्यकर्म करे। फिर देवपूजा, पितृपूजा और '**यद्देवा देवहेडनं०**' आदि चार मन्त्रोंसे हवन करके 'यवमध्य' में शुक्लप्रतिपदाका एक अथवा 'पिपीलिकातनु' में कृष्णप्रतिपदाके चौदह ग्रासोंको ढाकके पत्ते आदिके पात्रमें रखकर '**ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐ यशः ॐ श्रीः ॐ ऊर्क् ॐ इट् ॐ ओजः ॐ तेजः ॐ पुरुषः ॐ धर्मः ॐ शिवः**— इन मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करे और फिर जितने ग्रास भक्षण करने हों, प्रत्येक ग्रासके साथ '**मनसे नमः स्वाहा**' कहकर भक्षण करे। इस प्रकार प्रतिदिन करता रहे। भक्ष्य पदार्थोंमें जो कुछ अन्न-पानादि लिये जायँ, वे हविष्य[2] (होम करनेयोग्य) होने चाहिये। यथा—चरु (हुतशेष खीर), भैक्ष्य (भिक्षा प्राप्त अन्न-पानादि), सक्तु (भूने हुए जौका सूखा चून), कण (चावल), यावक (जौकी लप्सी), शाक (मेथी, बथुआ, ककड़ी या पालक आदि), पय (गोदुग्ध), दधि (गायका दही), घृत (गोघृत), मूल (भूगर्भमें उत्पन्न होनेवाले भक्ष्य—कन्द, शकरकन्द आदि), फल (केला, नारंगी, अनार, सीताफल आदि) और उदक (शुद्ध जल)—इनमें जो अभीष्ट हो, उसका भक्षण करे। ग्रास आँवलेके[3] फलके बराबर अथवा जो सुगमतापूर्वक मुँहमें आ

१. कक्षलोमशिखावर्जं श्मश्रुकेशादि वापयेत्॥ (वसिष्ठ)
२. चरुभैक्ष्यसक्तुयावकशाकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि। (गौतम)
३. तथाऽऽमलकसम्मितं यथासुखमुखं चेति। (स्मृतिसंग्रह)

सके, इतना होना चाहिये। मिताक्षराकारने लिखा है कि पत्तोंके छोटे दोनोंमें दुग्ध आदि लेकर उनसे ग्रास-संख्याकी पूर्ति की जाय तो उससे भी चान्द्रायणव्रत सम्पन्न हो सकता है। अस्तु,

(३७) यतिचान्द्रायण (मनुस्मृति)—प्रतिदिन मध्याह्नके समय पूर्वोक्त हविष्यान्नके आठ-आठ ग्रास भक्षण करनेसे तीस दिनमें 'यतिचान्द्रायण'[1] होता है।

(३८) शिशुचान्द्रायण (मनुस्मृति)—चार ग्रास प्रातःकाल और चार ग्रास सूर्यास्तके बाद भक्षण करे। तीस दिन इस प्रकार करनेसे 'शिशुचान्द्रायण'[2] होता है।

(३९) ऋषिचान्द्रायण (मनुस्मृति)—व्रतमें दृढ़ रहनेवाला कोई भी सत्पुरुष प्रतिदिन तीन ग्रास तीस दिनतक भक्षण करनेसे नब्बे ग्रासका 'ऋषिचान्द्रायण'[3] कर सकता है।

(४०) सोमायनव्रत—(मार्कण्डेय)—सात दिन गायके चारों स्तनोंका, सात दिन तीन स्तनोंका, सात दिन दो स्तनोंका और छः दिन एक स्तनका दूध पीये और तीन दिन उपवास करे तो सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला 'सोमायनव्रत'[4] सम्पन्न होता है। सोमायनव्रत धारोष्ण दुग्धपान करनेसे सम्पन्न होता है। यह चान्द्रायणके समान ही माना गया है।

---

१. अष्टावष्टौ समश्नीयात् पिण्डान् मध्यंदिनस्थिते।
नियतात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं चरेत्॥

२. चतुरः प्रातरश्नीयात् पिण्डान् विप्रः समाहितः।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं चरेत्॥

३. त्रींस्त्रीन् पिण्डान् समश्नीयान्नियतात्मा दृढव्रतः।
हविष्यान्नस्य वै मासमृषिचान्द्रायणं स्मृतम्॥

४. गोक्षीरं सप्तरात्रं तु पिबेत् स्तनचतुष्टयात्।
स्तनत्रयात् सप्तरात्रं सप्तरात्रं स्तनद्वयात्॥
स्तनेनैकेन षड्रात्रं त्रिरात्रं वायुभुग्भवेत्।
एतत् सोमायनं नाम व्रतं कल्मषनाशनम्॥ (मार्कण्डेय)

(४१) विलोमसोमायन (हारीतस्मृति)—कृष्णपक्षकी चतुर्थीसे प्रारम्भ करके तीन दिन चार स्तनोंका, तीन दिन तीन स्तनोंका, तीन दिन दो स्तनोंका और तीन दिन एक स्तनका दूध पीये। फिर तीन दिन एक स्तनका, तीन दिन दो स्तनोंका, तीन दिन तीन स्तनोंका और तीन दिन चार स्तनोंका दूध पीये। इस प्रकार कृष्णचतुर्थीसे शुक्लद्वादशीपर्यन्त चौबीस दिनमें इस व्रतको पूर्ण करे। यह अशक्त मनुष्योंके करनेका 'सोमायन' है। इससे सोमलोककी प्राप्ति होती है। अस्तु,

व्रतारम्भकी व्यवस्था—यद्यपि उपर्युक्त व्रत पाप-नाशके निमित्तसे किये जाते हैं, तथापि यदि इनका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया जाय तो इनके प्रभावसे जीवनमें अपूर्व परिवर्तन दिखायी देता है। वर्षोंसे दुःख भोगनेवाले मनुष्यको भी इन व्रतोंके आचरणसे ऐसे साधन मिल जाते हैं, जिनके प्रभावसे उसके सम्पूर्ण दुःख-दारिद्र्य स्वप्नकी भाँति विलीन हो जाते हैं और उसे मनोवांछित सुखोंकी प्राप्ति होने लगती है। व्रत करनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह व्रतारम्भके पहले दिन मुण्डन कराये; फिर भस्म, गोमय, मृत्तिका, जल और पंचगव्यसे स्नान करके अन्तमें शुद्ध स्नान करे। तत्पश्चात् सायंकालमें जब तारे दिखायी देने लगें, तब व्रतकी दीक्षा ले और अपने किये हुए पापोंके लिये सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करते हुए उनको जनताके सामने स्पष्टरूपसे प्रकट करे। फिर दूसरे दिन प्रातःस्नान आदिके बाद देवपूजा, पितृपूजा, घृतहोम और गायत्री-जप करके मौनावलम्बनपूर्वक मन, वाणी और क्रियाके द्वारा व्रतमें संलग्न हो जाय तथा उसे सावधानीके साथ पूर्ण करे। यहाँ प्रसंगवश कुछ ऐसे पाप, जो प्रमादवश सहज ही हो जाते हैं और उनके कुछ ऐसे प्रायश्चित्त, जो सुगमतापूर्वक किये जा सकते हैं, बतलाये जा रहे हैं।

फल और फूल देनेवाले वृक्ष, लता या गुल्म आदिके छेदनका पाप वेदकी सौ ऋचाओंका जप करनेसे दूर होता है।[१] वानर, गधा, कुत्ता, ऊँट और कौआ काट ले तो जलमें प्राणायाम करके घी खानेसे शुद्धि होती है।[२] ब्राह्मणको कुत्ता काट खाय तो वह समुद्रगामिनी नदीमें स्नान करके सौ प्राणायाम करने तथा घृतपान करनेसे शुद्ध होता है।[३] ब्राह्मणीको कुत्ता, सियार या भेड़िया काट ले तो वह तारा देखनेसे शुद्ध होती है।[४] यदि रजस्वला स्त्रीको कुत्ता, सियार या गधा काट ले तो पाँच रात्रि पंचगव्य पीनेसे उसकी शुद्धि होती है।[५] यदि ब्राह्मणके शरीरमें घाव होकर रुधिर और पीब निकले तथा उसमें कीड़े पड़ जायँ तो दो गव्य—गोबर एवं गोमूत्रका प्राशन करनेसे वह शुद्ध होता है।[६] यदि गृहस्थ पुरुष कामवश वीर्यको भूमिपर डाले तो तीन प्राणायाम करके एक हजार गायत्रीजप करनेसे वह शुद्ध होता है।[७] स्वप्नमें ब्रह्मचारी द्विजका अकामसे

---

१. फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्।
गुल्मवल्लीलतानां तु पुष्पितानां च वीरुधाम्॥ (या० स्मृ०)

२. ·······वानरखरैर्दष्टः श्वोष्ट्रादिवायसैः।
प्राणायामं जले कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति॥ (या० स्मृ०)

३. ब्राह्मणस्तु शुना दष्टो नदीं गत्वा समुद्रगाम्।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति॥ (वसिष्ठ)

४. ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जम्बुकेन वृकेण च।
उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत्॥ (पराशर)

५. रजस्वला यदा दष्टा शुना जम्बुकरासभैः।
पंचरात्रनिराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति॥ (पुलस्त्य)

६. ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसम्भवे।
कृमिरुत्पद्यते यस्य युग्मगव्येन शुद्ध्यति॥ (मनु)

७. गृहस्थः काम्यतः कुर्याद् रेतसः स्कन्दनं भुवि।
सहस्रं तु जपेद् देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह॥ (मनु)

भी वीर्य गिर जाय तो वह स्नान करके तीन बार सूर्यको प्रणाम करे और '**पुनर्मामेत्विन्द्रियम्०**' इस ऋचाको जपे, तभी उसकी शुद्धि होती है।[१] यदि कोई यज्ञोपवीतधारी द्विज बिना यज्ञोपवीतके भोजन कर ले या मल-मूत्रका त्याग करे तो वह प्राणायामपूर्वक आठ हजार गायत्रीका जप करनेसे पवित्र होता है।[२] स्त्री बेचनेसे बड़ा पाप होता है, उसकी चान्द्रायणव्रतसे शुद्धि होती है।[३] बाग, बगीचे, तालाब, तलाई और कुआँ, प्याऊ—इनके बेचनेसे तथा सुकृत और पुत्रका विक्रय करनेसे भी पाप होता है। उससे छूटनेके लिये त्रिकाल स्नान करके पृथ्वीपर शयन करे और एक दिन उपवास करके दूसरे दिन अन्न ग्रहण करे।[४] सर्प और नेवले, बकरे और बिल्ली, चूहे और ऊँट, मेढक और स्त्रीके बीचमें होकर निकलनेका पाप स्नान, दान, जप या व्रतरूप तात्कालिक प्रायश्चित्त करनेसे दूर होता है।[५] किसी प्रकारका असत् दान ग्रहण कर लिया जाय तो तीन हजार गायत्री जपनेसे शुद्धि होती है[६]। भेड़का, गर्भिणी तथा बिना बछड़ेवाली गौका और वनके मृग, सूअर

---

१. स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत्॥ (मनु)

२. ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते विण्मूत्रं कुरुतेऽथवा।
गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति॥ (मरीचि)

३. नारीणां विक्रयं कृत्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम्। (चतुर्विंशति मतसंग्रह)

४. आरामतडागोदपानपुष्करिणीसुकृतसुतविक्रयेति० (पैठीनसि)

५. सर्पस्य नकुलस्याथ अजमार्जारयोस्तथा।
मूषकस्य तथोष्ट्रस्य मण्डूकस्य च योषितः।
अन्तरागमने सद्यः प्रायश्चित्तेन शुद्ध्यति॥ (यम)

६. जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः।
.... मुच्यतेऽसत्परिग्रहात्॥ (मनु)

एवं नीलगाय आदिका दुग्ध पान करनेपर उपवास करनेसे शुद्धि होती है। महिषीके दूधका शास्त्रोंमें निषेध नहीं है।[१] आपत्तिकालमें ब्राह्मण यदि शूद्रके घरमें भोजन कर ले तो मानसिक पश्चात्तापपूर्वक '**द्रुपदादिव०**' मन्त्रका सौ बार जप करनेसे शुद्ध हो जाता है।[२] दीपक जलानेसे बचा हुआ तैल, लगानेसे बचा हुआ उबटन और गलीमें होकर लाया हुआ भोजन काममें लिया जाय तो नक्तव्रत करनेसे शुद्धि होती है[३]। यदि अनजानमें चाण्डालके कुएँ अथवा बर्तनका जल पी लिया गया हो तो तीन दिनका उपवास करनेसे पवित्रता होती है[४]। जो वाणीसे दूषित किया गया हो, जिसमें किसीकी दूषित भावना हो गयी हो तथा जो भावदूषित पात्रमें रखा गया हो, उस अन्नकोयदि ब्राह्मण खा ले तो वह तीन रात्रिके व्रतसे शुद्ध होता है[५]। यदि सींग, हाड़, दाँत, शंख, सीप और कौड़ीसे बनाये हुए पात्रमें भरकर नवीन जल (वर्षाका तात्कालिक जल) पीया गया हो तो पंचगव्य पीनेसे शुद्धि होती है[६]। बिना मौसिमकी वर्षाका जल दस दिनोंतक नहीं पीना चाहिये। मौसिममें भी

---

१. आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः।
अरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां महिषीं विना॥ (मनु)

२. आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि।
मनस्तापेन शुद्ध्येत्तु द्रुपदानां शतं जपेत्॥ (पराशर)

३. दीपोच्छिष्टं तु यत्तैलं रात्रौ रथ्याहृतं तु यत्।
अभ्यंगाच्चैव यच्छिष्टं भुक्त्वा नक्तेन शुद्ध्यति॥ (षट्त्रिंशत्)

४. चाण्डालकूपभाण्डस्य अज्ञानादुदकं पिबेत्।
स तु त्र्यहेण शुद्ध्येत शूद्रस्त्वेकेन शुद्ध्यति॥ (आपस्तम्ब)

५. वाग्दुष्टं भावदुष्टं च भाजने भावदूषिते।
भुक्त्वान्नं ब्राह्मणः पश्चात् त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति॥

६. शृंगास्थिदन्तजैः पात्रैः शंखशुक्तिकपर्दकैः।
पीत्वा नवोदकं चैव पंचगव्येन शुद्ध्यति॥ (बृहद्याज्ञवल्क्य)

बरसा हुआ शुद्ध नवीन जल तीन दिनोंतक नहीं ग्रहण करे। यदि इसके विपरीत पी ले तो उपवाससे शुद्धि होती है[१]। धान (चावल), दही और सत्तू—इनको लक्ष्मीकी कामनावाला पुरुष रातमें न खाय। यदि खा ले तो उपवाससे ही उसकी शुद्धि होती है।[२] प्राणायाम एक ऐसा उत्कृष्ट साधन है, जिसकी सौ आवृत्तियाँ करनेसे पाप और उपपाप सब नष्ट हो जाते हैं[३]। वट, आक (मदार), पीपल, कुम्भी (तरबूज), तिन्दुक (तेंदू), कदम्ब और कचनारके पत्तोंमें भोजन नहीं करना चाहिये; क्योंकि उनमें भोजन करनेसे जो दोष होता है, उसकी चान्द्रायणव्रतसे ही शुद्धि होती है।[४] मधु, गुड़की बनी हुई वस्तु, शाक, गोरस, नमक और घीको हाथसे उठाकर नहीं परोसना चाहिये। जो हाथसे उठाकर दी हुई उपर्युक्त वस्तुओंको खाता है, वह एक दिन उपवास करनेसे शुद्ध होता है।[५] यदि कोई आसनपर उँकड़ू बैठकर अथवा आधी धोती ओढ़कर भोजन करे या अधिक गर्म अन्न लेकर उसे फूँक-फूँककर खाय तो वह कृच्छ्रसांतपन व्रतसे शुद्ध होता है।[६] ब्राह्मण यदि अनजानमें मृताशौच अथवा

---

१. काले नवोदकं शुद्धं न पिबेच्च त्र्यहं हि तत्।
अकाले तु दशाहं स्यात् पीत्वा नाद्यादहर्निशम्॥ (स्मृत्यन्तर)

२. धानां दधि च सक्तुं च श्रीकामो वर्जयेन्निशि। (बृहच्छातातप)

३. प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापापनुत्तये।
उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि॥ (मनु)

४. वटार्काश्वत्थपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकपत्रयोः।
कोविदारकदम्बेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ (स्मृत्यन्तर)

५. माक्षिकं फाणितं शाकं गोरसं लवणं घृतम्।
हस्तदत्तानि भुक्त्वा तु दिनमेकमभोजनम्॥ (पाराशर)

६. आसनारूढपादो वा वस्त्रार्धप्रावृतोऽपि वा।
मुखेन धमितं भुक्त्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत्॥ (क्रतु)

जननाशौचवालेके यहाँ भोजन कर ले तो सौ प्राणायाम करनेसे शुद्ध होता है[१]। सदाचारहीन एवं निन्दित आचरणवाले विप्रका भी अन्न खानेसे ब्राह्मणको एक दिनका उपवास करना चाहिये।[२] यदि कोई स्वेच्छासे ऊँट या गधेपर बैठे तो उसे वस्त्रोंसहित जलमें प्रवेश करके प्राणायाम करना चाहिये; तभी उसकी शुद्धि होती है[३]। यदि कोई इन्द्रधनुष अथवा पलासकी आग दूसरेको दिखाये तो वह एक दिन और एक रात उपवास करके ब्राह्मणको दक्षिणा दे; यही उसके लिये प्रायश्चित्त है[४]। अपाङ्क्तेय (पंक्तिमें न बैठनेयोग्य) पुरुषके साथ एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेवाला उत्तम द्विज दिन-रातका उपवास करके पंचगव्य पान करनेसे शुद्ध होता है।[५] कम्बल और रेशमी कपड़ोंमें नीलका रंग होना दोषकी बात नहीं है; क्योंकि ये स्वतः शुद्ध होते हैं[६]। यदि किसीके द्वारा कुत्ते, बिल्ली, नेवले, मेढक, साँप, छुछूँदर और चूहे आदि जीवोंकी हत्या हो जाय तो वह बारह दिनका कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होता है[७]। फल, फूल और अन्नके रससे उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी हत्याका प्रायश्चित्त है केवल

---

१. अज्ञानाद् भोजने विप्राः सूतके मृतकेऽपि वा।
प्राणायामशतं कृत्वा शुद्ध्येयुः.... ॥ (छागल)

२. निराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च।
अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद् दिनमेकमभोजनम्॥ (षट्त्रिंशत्)

३. उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः।
सवासा जलमाप्लुत्य प्राणायामेन शुद्ध्यति॥ (मनु)

४. इन्द्रचापं पलाशाग्निं यद्यन्यस्य प्रदर्शयेत्।
प्रायश्चित्तमहोरात्रं धनुर्दण्डश्च दक्षिणा॥ (ऋष्यशृंग)

५. अपाङ्क्तेयस्य यः कश्चित् पङ्क्तौ भुङ्क्ते द्विजोत्तमः।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति॥ (मार्कण्डेय)

६. कम्बले पट्टसूत्रे च नीलीरागो न दुष्यति। (स्मृतिसंग्रह)

७. श्वमार्जारनकुलमण्डूकसर्पदहरमूषकादीन् हत्वा कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत्। (वसिष्ठ)

घी खाकर व्रत रहना। यदि शूद्र ब्राह्मणका अन्न और ब्राह्मण शूद्रका अन्न लेकर दानमें दे अथवा ब्राह्मण शूद्रके हाथसे भोजन कर ले तथा जल पी ले तो वह एक दिन-रात उपवास करके[१] पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है। नवश्राद्ध, मासिक श्राद्ध, सार्धमासिक श्राद्ध, षाण्मासिक श्राद्ध और वार्षिक श्राद्धमें भोजन करनेवाला ब्राह्मण यथाक्रम चान्द्रायण, पराक, अतिकृच्छ्र, कृच्छ्र, पादकृच्छ्र और एकाहव्रतसे शुद्ध होता है[२]। यदि कुआँ आदिमें किसी मरे हुए जीवकी लाश गल जाय और उसका जल पी लिया जाय तो तीन दिन केवल जल पीकर रहनेसे शुद्धि होती है। यदि मृत जीव मनुष्य हो तो छः दिनतक जल पीकर रहनेसे शुद्धि होती है[३]। थोड़े जलवाले ताल, तलाई और कुण्ड आदिमें यदि कोई अपद्रव्य पड़ जाय तो कुएँ आदिकी शुद्धिके समान ही उनकी भी शुद्धि होनी चाहिये[४]। बड़े-बड़े जलाशयोंका जल अशुद्ध नहीं होता। पोखरी या कुण्डमें घुटनेसे ऊपर पानी हो, तभी वह शुद्ध—ग्रहण करनेयोग्य होता है। घुटनेसे नीचे हो तो वह अपवित्र है[५]। ऊन, रेशम, सन और आरक्तवस्त्र—

---

१. ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो ददत्। (वृ० या०)
शूद्रहस्तेन यो भुङ्क्ते पानीयं वा पिबेत् क्वचित्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति॥ (क्रतु)

२. चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके स्मृतः।
पक्षत्रयेऽतिकृच्छ्रः स्यात् षण्मासे कृच्छ्रमेव तु॥
आब्दिके पादकृच्छ्रः स्यादेकाहः पुनराब्दिके। (शंख)

३. क्लिन्नं भिन्नं शवं चैव कूपस्थं यदि दृश्यते।
पयः पिबेत् त्रिरात्रेण मानुषे द्विगुणं स्मृतम्॥ (देवल)

४. जलाशयेष्वप्यल्पेषु स्थावरेषु महीतले।
कूपवत् कथिता शुद्धिर्महत्सु तु न दूषणम्॥ (विष्णु)

५. ····पुष्करिण्यां ह्रदेऽपि वा।
जानुदघ्नं शुचि ज्ञेयमधस्तादशुचि स्मृतम्॥ (आपस्तम्ब)

ये थोड़ेमें ही शुद्ध हो जाते हैं; इनकी शुद्धिके लिये धूपमें सुखाना और जलके छींटे आदि देना ही पर्याप्त है[1]। गोहत्या, ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णकी चोरी और गुरुपत्नी-गमन—इन पापोंको करनेवाले मनुष्य महापातकी माने गये हैं। उनसे वार्तालाप करने, उनका स्पर्श होने, उनके श्वासकी हवा लगने, उनके साथ एक सवारी या आसनपर बैठने, साथ-साथ भोजन करने, यज्ञ अथवा स्वाध्यायमें उनके साथ सम्मिलित रहने तथा उनके यहाँ पुत्र या पुत्रीका ब्याह करनेसे उनका पाप फैलकर अपने ऊपर आ जाता है। अतः ऐसे पुरुषके संसर्गसे बचना अत्यन्त आवश्यक है[2]। बीमार गौकी चिकित्साके लिये यदि उसे बाँधा जाय अथवा मरे हुए गर्भको निकालनेका प्रयत्न किया जाय और उस समय उस गौकी मृत्यु हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त नहीं होता[3]। इसी प्रकार किसीके प्राण बचानेके लिये यदि उसके शरीरमें कहीं जलाने, काटने या शिराभेदन करने (पस्त खोलने)-की आवश्यकता हो और इस प्रयत्नमें दैवात् वह मृत्युको प्राप्त हो जाय तो उसका भी पाप नहीं लगता[4]। मदिरा मनुष्यका सर्वनाश करनेवाली मानी गयी है। वह कटहल, दाख, महुआ, खजूर, ताड़, ईख, मधु, सीरा,

---

१. ऊर्णकौशेयकुतपपट्टक्षौमदुकूलजाः ।
अल्पशौचा भवन्त्येते शोषणप्रोक्षणादिभिः॥ (देवल)

२. गोब्रह्महा सुरापी च स्वर्णस्तेयी तथैव च।
गुरुपत्न्यभिगामी च महापातकिनो नराः॥ (स्मृत्यन्तर)
संलापस्पर्शनिःश्वाससहयानासनाशनात् ।
यजनाध्ययनाद् यौनात् पापं संक्रमते नृणाम्॥ (देवल)

३. बन्धने गोश्चिकित्सार्थे मूढगर्भविमोचने।
यत्ने कृते विपत्तिश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ (संवर्त)

४. दाहच्छेदशिराभेदप्रयत्नैरुपकुर्वताम् ।
प्राणसंत्राणसिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ (संवर्त)

अरिष्ट, धवईके फूल और नारियलसे बनती है। इस तरह वह ग्यारह प्रकारकी है। पुलस्त्यने इन सबको समानरूपसे मद्य कहा है और बारहवीं सुराको इन सबसे अधम बतलाया है। गौडी (गुड़से बननेवाली), माध्वी (महुआसे बननेवाली) और पैष्टी (जौ आदिसे बननेवाली)—यह तीन तरहकी सुरा जाननी चाहिये। मदिरा कैसी भी क्यों न हो, वह मनुष्यके लिये सर्वथा अग्राह्य और अस्पृश्य है*।

(पापोंसे होनेवाले सब प्रकारके रोग और कष्टोंको दूर करनेवाले व्रत)

(१) उपोद्घात—पापजन्य रोगोंके दूर करनेवाले व्रतोंका परिचय देनेके पहले पापों और तज्जन्य रोगोंका दिग्दर्शन हो जानेसे व्रत-प्रेमी मनुष्योंको अपने इच्छित और यथोचित व्रत करनेमें सुविधा मिलती है—इसी विचारसे यहाँ 'उपोद्घात' लिखा जाता है। किसी जन्ममें अधिक पाप हो जानेसे नारकीय दुःख-भोगके पीछे भी मनुष्ययोनिमें उसका दुःखदायी फल रोगके रूपमें भोगना पड़ता है, परंतु जो मनुष्य पाप नहीं करते, बल्कि पथ्य-भोजन, इन्द्रियरक्षण, सदाचार-पालन, गो-द्विज-देवादिकी भक्ति और स्वधर्ममें निरत रहते हैं, वे चाहे किसी भी वर्ण, आश्रम या अवस्थाके हों, उन्हें रोग नहीं होते; वे सदैव नीरोग रहते हैं। वास्तवमें रोगोंके मूल कारण पाप हैं और पापोंका प्रायश्चित्त करनेसे पाप और रोग दोनों क्षीण हो जाते हैं।

---

* पानसं द्राक्षमाधूकं खार्जूरं तालमैक्षवम्।
मधूत्थं सौरमारिष्टं मैरेयं नालिकेरजम्॥
समानानि विजानीयान्मद्यान्येकादशैव तु।
द्वादशं तु सुरा मद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम्॥ (पुलस्त्य)
गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा। (मनु)

प्रायश्चित्तमें स्नान, दान, व्रत, उपवास, जप, हवन और उपासना आदि मुख्य हैं। किसमें क्या करना चाहिये यह पापानुकूल प्रत्येक व्रतमें बतलाया गया है। 'पाप'—उपपातक, महापातक और अतिपातकरूपसे तीन प्रकारके होते हैं। विशेषता यह है कि 'उपपातक' से यकृत्, प्लीहा, शूल, श्वास, छर्दि, अजीर्ण और विसर्प आदि रोग होते हैं। 'महापातक' से कोढ़, अर्बुद, संग्रहणी और राजयक्ष्मा आदि होते हैं और 'अतिपातक' से जलंधर, भगंदर, नासूर, कृमिपरिवार और जलोदरादि होते हैं। देहधारियोंके शरीरमें वात, पित्त और कफ—ये तीन 'महादोष' हैं। ये जबतक समान रहें तबतक कोई उपद्रव नहीं होता, इनमें विषमता आनेसे दुःखदायी रोग हो जाते हैं। वे चाहे सह्य हों या असह्य, उनसे प्राणिमात्रको क्लेश होता ही है[१]। आयुर्वेदमें स्वाभाविक, आगन्तुक, कायकान्तर और कर्मदोषज[२]—ये चार प्रकारके[३] रोग बतलाये हैं। इनमें भूख-प्यास, निद्रा, बुढ़ापा और मृत्यु—ये 'स्वाभाविक' हैं। काम-क्रोध, लोभ-मोह, भय, लज्जा, अभिमान, ईर्ष्या, दीनता, शोक, अपस्मार, पागलपन, भ्रम, तम, मूर्छा, संन्यास और भूतावेश आदि 'आगन्तुक' हैं। पाण्डुरोग, अन्त्रवृद्धि, जलोदर और प्लीहा आदि 'कायकान्तर' हैं और पूर्वजन्ममें किये हुए पापजन्य सभी रोग 'कर्मदोषज' हैं अथवा जो रोग दीखनेमें सरल-साध्य किंतु बड़े-बड़े उपायोंसे भी छूटें नहीं—बढ़ते ही रहें या बहुत भयंकर अथवा असाध्य होकर भी साधारण-से उपायसे

---

१. रोगास्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोग्यता।
रोगा दुःखस्य दातारो ज्वरप्रभृतयो हि ते॥ (वाग्भट्ट)

२. यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाव्याधि चिकित्सितः।
न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयो कर्मजो बुधैः॥ (भाव)

३. स्वाभाविकागन्तुककायकान्तरा रोगा भवेयुः किल कर्मदोषजाः॥ (शार्ङ्गधरसंहिता)

ही शान्त हो जायँ, वे 'कर्मदोषज' होते हैं। वास्तवमें पूर्वजन्मके पापोंकी जबतक निवृत्ति नहीं होती, तबतक कर्मदोषज कोई भी रोग उपाय करनेपर भी घटते नहीं, बढ़ते ही हैं और जब सदनुष्ठान आदिके द्वारा पापोंकी निवृत्ति हो जाती है, तब वे बढ़ते नहीं, घटते हैं। अतएव पापोंकी निवृत्तिके निमित्तसे 'पापसम्भूत सर्वरोगार्तिहर व्रत' अवश्य ही आरोग्यप्रद और श्रेयस्कर हैं।

(२) पापमूलक रोगोंमें सर्वप्रथम ज्वरकी गणना की जाती है। अन्य रोगोंकी अपेक्षा प्रत्येक प्राणी इससे अधिक पीड़ित होते हैं। ज्वरके आक्रमणको देवता और मनुष्य ही सह सकते हैं। इतर जीव तो इसके आक्रमणसे जीवित ही नहीं रह सकते। पूर्वाचार्योंका कथन[१] है कि क्षय, पाप और मृत्यु ये ज्वरके ही प्रतिरूप हैं और इसकी उत्पत्ति भी दुष्कर्मोंसे ही होती है। तृष्णा, संताप, अरुचि, अंगपीड़ा और हृदयकी वेदना—ये सब ज्वरकी शक्तियाँ हैं। समनस्क (मनसंयुक्त) शरीर ही ज्वरका अधिष्ठान है और शारीरिक तथा मानसिक संताप होना ही ज्वरका लक्षण है। ज्वर होनेके पीछे जिन्हें किसी प्रकारका कष्ट न हो ऐसे प्राणी संसारमें नहीं हैं। प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि या तो रोगादिकी असह्य पीड़ासे ज्वर होता है या ज्वर ही आगे चलकर दुश्चिकित्स्य होकर अन्य रोग उत्पन्न कर देता है। विशेषता यह है कि अन्य रोगोंकी अपेक्षा यह प्रत्येक प्राणीके रोम-रोममें व्याप्त हो जाता है। अतः प्रसंगवश यहाँ ज्वरका परिचय पहले दिया है। शास्त्रकारोंने ज्वरको 'रोगोंका[२]

---

१. रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुःखमामयः।
यक्ष्मातङ्कगदाबाधशब्दाः पर्यायवाचिनः॥ (मुक्तक)

२. देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली।
ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा॥ (माधव)

राजा' कहा है। सुश्रुतने इसको रुद्रकोपकी[1] अग्निसे उत्पन्न और सम्पूर्ण प्राणियोंको तपानेवाला बतलाया है। पुराणोंमें इसको रुद्रसम्भूत[2] 'रौद्री' (उष्णज्वर) और विष्णुसम्भूत 'वैष्णवी' (शीतज्वर) लिखा है। सूर्यारुणादिने[3] इसको यमके समान भयकारी, महाकाय, ऊर्ध्वकेश, ज्वलत्कान्ति, दीर्घरूप और तीन नेत्रोंवाला सूचित किया है। हरिवंशमें इसके तीन मस्तक, छः भुजा, नौ-नौ नेत्र और तीन चरण निर्दिष्ट किये हैं। देवसम्भूत होनेसे विदेहने इसको[4] पूजनीय बतलाया है। वैज्ञानिक दृष्टिसे देखा जाय तो ज्वर होनेपर ऐसी ही परिस्थिति प्रतीत हुआ करती है। इस विषयमें एक कथा भी है। उसमें कहा है कि 'बाणासुरके साथ अनिरुद्धका युद्ध हुआ। उस समय इसी ज्वरने बलरामको पराजित किया और श्रीकृष्णको स्तम्भित बनाया था। इससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्णने इसको सर्वगत होनेका वर दिया था।' वास्तवमें बहुत-से रोगोंका लय और उदय ज्वरसे ही होता है। जन्म-मरण या जीवनमें भी ज्वर रहता है। दूसरे शब्दोंमें यह भी कह सकते हैं कि अधिकांश रोगी और रोग ज्वरसे ही जीते और मरते हैं। ज्वर प्राणिमात्रका प्राणान्तक, देह, इन्द्रिय और मनका संतापक और बल, वर्ण, ज्ञान तथा उत्साहको शिथिल करनेवाला है। पूर्वोक्त कथाके प्रसंगमें ही कहा गया है कि 'श्रीकृष्णने ज्वरको तीन भागोंमें विभाजित

---

१. रुद्रकोपाग्निसम्भूतः सर्वभूतप्रतापनः। (सुश्रुत)
२. प्रोक्तश्चोष्णज्वरो रौद्रः शीतलो वैष्णवज्वरः। (सविता)
३. ज्वरस्त्रिपादभव्यश्च दीर्घरूपो भयानकः।
बृहत्त्रिनेत्रैर्वदनैस्त्रिभिश्च दशनैर्दृढः॥
ऊर्ध्वकेशो महाकायो ज्वलत्कान्तिर्यमोपमः। (सूर्यारुण)
४. ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति। (विदेह जनक)

कर एक भागको चौपायोंमें, दूसरे भागको स्थावरों (पर्वतादि)-में और तीसरे भागको मनुष्योंमें विभक्त किया। विशेषता यह की थी कि मनुष्योंके तीसरे भागका चतुर्थांश ज्वर पक्षियोंमें नियुक्त किया था। वृक्षोंकी[१] जड़ोंमें कीड़ा, पत्तोंमें पीलापन, फलोंमें विकार, कमलमें शीतलता, भूमिमें ऊषरता, जलमें सेंवाल या कुमुदिनी, मोरोंमें कलंगी, पर्वतोंमें गेरू और गोवंश (गाय, बैल एवं भैंस)-में मृगी (या मूर्छा)—ये सब उसी (ज्वर)-के रूप हैं।' इस प्रकार प्रत्येक प्राणी और पदार्थोंमें ज्वरकी प्रवृत्ति होनेसे इसे रोगोंका राजा बतलाया है। अस्तु, शरीरगत वात, पित्त और कफके बिगड़ने, सुधरने या समान रहनेके अनुसार अनेक प्रकारका ज्वर होता है। उसमें जो 'संतत'[२] (सात, दस या बारह दिन निरन्तर बना रहे), 'सतत'[३] (दिन-रात बना रहे), 'अन्येद्युष्क'[४] (दिन-रातमें एक बार हो), 'तृतीयक'[५] (तीसरे दिन हो) और 'चातुर्थिक'[६] (चौथे दिन)

---

१. नाना तिर्यग्योन्यादिषु च बहुविधैः श्रूयते। (माधवी)
पाकलः स तु नागानामभितापश्च वाजिनाम्।
गवामीश्वरसंज्ञश्च मानवानां ज्वरो मतः॥
अजावीनां प्रलापाख्यः करभे चालसो भवेत्।
हरिद्रो माहिषाणां तु मृगरोगो मृगेषु च॥
पक्षिणामभिघातस्तु मत्स्येष्विन्द्रे मदो मतः।
पक्षपातः पतंगानां व्यालेष्वाक्षिकसंज्ञकः॥ (माधवटिप्पणी)

२. संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ।
सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा॥
संतत्या यो विसर्गी स्यात् संततः स निगद्यते।

३. अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते।

४. अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रमेककालं प्रवर्तते।

५. तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि।

६. चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः।

हो, वह 'विषम ज्वर' माना गया है*। माधवने इसको भूतावेश बतलाया है और उसकी शान्तिके लिये पूजा और बलिदान निर्दिष्ट किये हैं। जिन कारणोंसे ज्वर होता है, उनमें अभिघात, अभिशाप, अभिचार, अहिताचरण, अगम्यागमन, मिथ्याहारविहार, अनुपयुक्त पुष्प-गन्ध या औषधगन्ध, अनुक्त औषध, ऋतुविपर्यय, मिथ्याभय, महाशोक, बहुभोजन, विषव्रण, परिश्रम, मृतवत्सप्रसव, क्षय, अजीर्ण और दुग्धपूर्ण स्तन आदि मुख्य हैं। ज्वर और उसके वर्ण-भेद या उपाय आदि आयुर्वेदके मान्यतम ग्रन्थोंमें बहुत कुछ बतलाये गये हैं। अतः यहाँ उनके विषयमें और कुछ लिखनेकी अपेक्षा व्रतोपवासादिके द्वारा ज्वरादि रोगोंसे मुक्त होनेके साधन सूचित किये हैं। उनमें भी सर्वप्रथम ज्वरको ही लिया है।

(३) पापसम्भूत ज्वरहरव्रत (सूर्यारुण ४२)—दीर्घ कालके ज्वरसे आकुल हुए आतुरको चाहिये कि वह 'रौद्री' (उष्णज्वर)-की निवृत्तिके लिये अष्टमी अथवा चतुर्दशीको और 'वैष्णवी' (शीतज्वर)-की निवृत्तिके लिये एकादशी या द्वादशीको अथवा रौद्री, वैष्णवी किसीके लिये भी महापर्वकी किसी भी तिथिको यथासामर्थ्य (यथावत् या मानसिक) प्रातःस्नानादिसे निवृत्त होकर कम्बलादिके शुभासनपर पूर्व या उत्तर मुख होकर बैठे और हाथमें जल, फल, गन्ध, अक्षत और पुष्प लेकर '**मम पापसम्भूतज्वरजनिताद्यनिष्टप्रशमनपूर्वकदीर्घायुष्यबलपुष्टि-नैरुज्यादिसकलशुभफलप्राप्तिकामनया श्रीमहेश्वर वा महाविष्णुप्रीतये च रुद्रविष्णुपूजनपूर्वकज्वरपूजनं तद्व्रतं च करिष्ये।**' इस प्रकार संकल्प करके जितनी सामर्थ्य हो, उतने

---

* केचिद् भूताभिषंगोत्थं वदन्ति विषमज्वरम्। (माधव)

ही सुवर्णका पत्र बनवाकर उसमें उपर्युक्त प्रकारके यमोपम ज्वरका स्वरूप अंकित करावे और 'विष्णुमन्त्र' '**इदं विष्णु०**' या '**सहस्त्रशीर्षा**' आदि १६ मन्त्रोंसे विष्णुका और रुद्र-मन्त्र '**नमः शम्भवाय०**' या '**नमस्ते रुद्र०**' के १६ मन्त्रोंसे रुद्रका पूजन करके उपर्युक्त ज्वर-मूर्तिको उनके समीपमें स्थापित करके उसका '**ॐ नमो महाज्वराय विष्णुरुद्रगणाय भीममूर्त्तये सर्वलोकभयंकराय मम तापं हर हर स्वाहा।**' इस मन्त्रसे पूजन करे। फिर इसी मन्त्रका जितना बन सके जप करके सफेद सरसोंसे उसका दशांश हवन करे। इसके पीछे सत्पात्र ब्राह्मणोंको भोजन कराकर सुवर्णकी दक्षिणा दे और स्वयं एकभुक्त व्रत करे। इस प्रकार एक, तीन या सात बार करनेसे ज्वर शान्त हो जाता है।

(४) सर्वज्वरहरव्रत (सूर्यारुण ४२)—पूर्वोक्त शुभ समयमें यथापूर्व स्नानादि करनेके अनन्तर व्रत धारण करके संकल्प करे और सामर्थ्य हो तो ५० पल (२ सौ तोला या लगभग २½किलो) ताँबेका और सामर्थ्य न हो तो मिट्टीका कलश लेकर उसको लाल वस्त्रसे भूषित करके उसमें घी, चीनी, शहद या गुड़ भरे और यथासामर्थ्य पंचरत्न अथवा उनके प्रतिनिधि अक्षत रखे। उसे रेशमी वस्त्रसे वेष्टित करके चावलोंके पुंजपर स्थापित करे। तदनन्तर विष्णु, रुद्र और ज्वरका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके उनके समीप बैठकर '**ॐ नमो महाज्वराय विष्णुरुद्रगणाय सर्वलोकभयंकराय मम तापं हर हर स्वाहा।**' इस मन्त्रका जप करके इसीसे हवन करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर '**भस्मप्रहरणो रौद्रस्त्रिशिरास्त्रयूर्ध्वलोचनः। दानेनानेन सुप्रीतो ज्वरः पातु सदा मम॥ एकान्तरं संनिपातं तार्तीयकचतुर्थिकौ। पाक्षिकं मासिकं वापि सांवत्सरिकमेव च। नाशयेतां मम क्षिप्रं**

वासुदेवमहेश्वरौ॥' इसका उच्चारण करके ज्वरमूर्तिका दान करे, तो ज्वरजनित सभी उपद्रव शान्त होते हैं।

(५) ज्वरहरबलिदानव्रत (भैषज्यरत्नावली)—चिरकालीन ज्वरकी शान्तिके लिये अष्टमीके अपराह्णमें चावलोंके चूर्णसे मनुष्यकी आकृतिका पुतला बनाकर उसके हलदीका लेप करे। मुख, हृदय, कण्ठ और नाभिमें पीली कौड़ी लगावे, फिर खसके आसनपर विराजमान करके उसके चारों कोणोंमें पीले रंगकी चार पताका लगावे तथा उनके पास हलदीके रससे भरे हुए पीपलके पत्तोंके चार दोने रखे और '**मम चिरकालीनज्वरजनितपाप-तापादिप्रशमनार्थं ज्वरहरबलिदानं करिष्ये।**' यह संकल्प करके पुतलेका पूजन करे। सायंकाल होनेपर ज्वरवाले मनुष्यकी '**ॐ नमो भगवते गरुडासनाय त्र्यम्बकाय स्वस्तिरस्तु स्वस्तिरस्तु स्वाहा। ॐ कं ठं यं सं वैनतेयाय नमः। ॐ ह्रीं क्षः क्षेत्रपालाय नमः। ॐ ठः ठः भो भो ज्वर शृणु शृणु हल हल गर्ज गर्ज नैमित्तिकं मौहूर्त्तिकं एकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं पाक्षिकादिकं च फट् हल हल मुंच मुंच भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा।**' इस मन्त्रसे तीन या सात आरती उतारकर पूर्वोक्त पुतलेको पूजा-सामग्रीसहित किसी वृक्षके मूल, चौराहे या श्मशानमें रख आवे। इस प्रकार तीन दिन करे और तीनों ही दिनोंमें नक्तव्रत (रात्रिमें एक बार भोजन) करे। स्मरण रहे कि पुत्तलपूजन बीमारके दक्षिण भागके स्थानमें करना चाहिये। इससे ज्वरजात व्याधियाँ शीघ्र ही शान्त होती हैं।

(६) ज्वरहरतर्पणव्रत (मन्त्रमहार्णव)—ज्वरवाले मनुष्यको चाहिये कि वह दशमी या सप्तमीके सुप्रभातमें प्रातःस्नानादि करनेके अनन्तर ताम्रपात्रमें जल, तिल, रँगे हुए लाल अक्षत और लाल पुष्प डालकर डाभके आसनपर पूर्वाभिमुख बैठे और

अर्घामें अथवा अंजलिमें जल लेकर 'उष्ण' ज्वर हो तो '**योऽसौ सरस्वतीतीरे कुत्सगोत्रसमुद्भवः। त्रिरात्रज्वरदाहेन मृतो गोविन्दसंज्ञकः॥ ज्वरापनुत्तये तस्मै ददाम्येतत् तिलोदकम्।**'— इस मन्त्रसे जल छोड़े और इस प्रकार १०८ बार तर्पण करे। यदि शीतज्वर या रात्रिज्वर हो तो '**गंगाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः। रात्रौ ज्वरविनाशाय तस्मै दद्यात् तिलोदकम्॥**' इस मन्त्रसे तर्पण करे। ज्वर यदि सामान्य हो तो १०८ बार और यदि विशेष हो अथवा बहुत दिनोंका हो तो ज्वरके अनुसार १०८ या १००१ अथवा १०००१ अंजलि दे। इस प्रकार एक, तीन, पाँच या सात दिन करे और एकभुक्त व्रत रखे।

(७) ज्वरार्तिहरतन्त्रव्रत (भवानीसहस्रनाम)—रविवारके प्रातःकालमें काँसीके पात्रको जलसे भरकर उसमें सात सूई डाले और उनका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके सातोंको एकत्र कर '**ॐ वज्रहस्ता महाकाया वज्रपाणिर्महेश्वरी। हरेत् स्ववज्रतुण्डेन भूमिं गच्छ महाज्वर॥**' इस मन्त्रको उच्चारण करता हुआ सात बार घुमावे और फिर उनमेंसे एक सूई निकालकर भूमिमें गाड़ दे। इस प्रकार दूसरे दिन दूसरी और तीसरे दिन तीसरी आदि निकालकर सात दिनमें सातों सूइयाँ गाड़ दे और एकभुक्त व्रत करे अथवा नागवल्लीदलमें दाड़िमकी लेखनी और कर्पूर, अगरु एवं कस्तूरी मिले हुए केसर-चन्दनसे '**वज्रदंष्ट्रो महाकायो वज्रपाणिर्महेश्वरः। वज्रवत्सर्वदेहस्य भुवं गच्छ महाज्वर॥**' यह मन्त्र लिखकर उसका गन्धादिसे पूजन करे और ज्वरवालेको खिला दे अथवा '**ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥**' '**ॐ आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्। लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥**' इन दोनोंमेंसे किसी एकके १०८ या ज्वरानुसार न्यूनाधिक जप

करे और '**अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥**' इसका उच्चारण कर तीन आचमन करे तो इन उपायोंसे एकान्तरा, तेजरा, चौथिया या नित्य रहनेवाला—सभी ज्वर शान्त हो जाते हैं। इनमें एकभुक्त व्रत करना चाहिये।

(८) अतिसारहरव्रत (अनुष्ठान-प्रकाश)—यह रोग कर्मविपाकके अनुसार जलाशयादि नष्ट करनेके पापसे या आयुर्वेदके[1] अनुसार प्रमाणसे अधिक या गरिष्ठ अथवा अत्यन्त पतला या अत्यन्त स्थूल भोजन करने आदिसे होता है। अतिसारीको चाहिये कि वह शौचादिसे निवृत्त होकर '**सोऽग्निरस्मी०**' मन्त्रका यथाशक्ति जप करके उसी मन्त्रसे दशांश हवन करे और एकभुक्त व्रत करके शक्तिके अनुसार सुवर्णका दान दे।

(९) संग्रहणीशमनव्रत (शिवगीता)—प्रेमपूर्वक[2] सद्वर्ताव करनेवाली श्रेष्ठ स्त्रीका त्याग करने या अतिसारमें कुपथ्य करनेसे उदरगत छटीकला (ग्रहणी)-के नष्ट होनेसे 'संग्रहणी' होती है। इससे मुक्त होनेके लिये किसी पुनीत पर्वमें या शनिप्रदोष हो उस दिन प्रातःस्नानादिसे निवृत्त होकर शिवजीका पूजन करे और वहीं उनके समीपमें 'शिवसंकल्पसूक्त' **(यज्जाग्रतो०, येन कर्माण्य०, यत्प्रज्ञान०, येनेदं भूतं०, यस्मिन्नृचः०, सुखारथि—** इन छः मन्त्रों)-का १०८ जप करके सौंफ, मिर्च, इलायची और मिश्रीको घीमें भिगोकर पलाशकी समिधाओंमें अट्ठाईस आहुतियाँ दे और शहदमें सुवर्ण डालकर उसका दान करके नक्तव्रत करे।

---

१. गुर्वतिस्निग्धतीक्ष्णोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चातिभोजनैः ॥ (माधव)

२. साध्वीं भार्यां च यो मर्त्यः परित्यजति कामतः ।
ग्रहणीरोगसंयुक्तः सदा भवति मानवः ॥ (शिवगीता)

इस प्रकार दस दिन करनेके अनन्तर ग्यारहवें दिन यथाशक्ति अन्नदान करे तो संग्रहणी शमन होती है।

(१०) अर्शहरव्रत (अनुष्ठान-प्रकाश)—जो मनुष्य वेतन[१] लेकर अध्यापन, यजन, हवन या जपादि करते हैं, उनको अर्शरोग होता है। आयुर्वेदमें इसको त्रिदोषजन्य और परम्परासे आनेवाला बतलाया है। इसकी निवृत्तिके लिये चान्द्रायणव्रत करे और उन दिनोंमें प्रतिदिन आठ या अट्ठाईस पाठ आदित्यहृदयके करके शमीकी समिधा और घीसे हवन करे। इस प्रकार करनेसे अर्शरोग दूर होता है। एकभुक्त व्रत करना आवश्यक है।

(११) अजीर्णहरव्रत (ऋग्वेदविधान)—बहुत दिनोंका अजीर्ण[२] भुक्त पदार्थोंके अपाचन, चिन्ता आदि कारणोंसे होता है। इसके लिये '**अग्निरस्मि०**' ऋचाके एक हजार जप और घृतप्लावित त्रिकुटा (सोंठ, मिरच और पीपल)-की एक सौ आहुति देकर उपवास करे और दूसरे दिन वेदज्ञ ब्राह्मणको हविष्यान्नका भोजन कराकर पारण करे।

(१२) मन्दाग्नि-उपशमनव्रत (वृद्धपराशर)—यदि मिल सके तो शुक्लपक्षके सप्तमी पुष्यार्क अथवा दशमी गुरुवारको 'अग्निसूक्त' 'श्रीसूक्त' अथवा '**जातवेदसे**' ऋचाके जप और चाँदीके मेष (मेढा)-का दान करके पलाश (छीला)-की

---

१. वेतनमादाय योऽध्यापयत्यर्चयति जुहोति जपति सोऽर्शो रोगवान् भवति।

२. यस्य भुक्तं न जीर्येत न तिष्ठेद् वा कथंचन।
तस्मादजीर्णरोगोऽयं ………………………………॥ (पराशर)
अत्यम्बुपानाद् विषमाशनाच्च संधारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च।
कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य॥
ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति॥ (माधव)

समिधाओंमें घीसे हवन करे और एकभुक्त (किसी भी एक पदार्थको भक्षण कर) व्रत करे। इस प्रकार करनेसे मन्दाग्नि नष्ट हो जाती है। सूर्यारुणके कथनानुसार अभक्ष्य-भक्षणके दुष्प्रभावसे और आयुर्वेदके मतानुसार कफ-प्रकृतिसे मन्दाग्नि होती है।

(१३) विषूचिकोपशमनव्रत (योगवासिष्ठ)—दुष्ट भोजन,[१] दुष्टारम्भ, दुष्ट संग, दुष्ट स्थिति और दुर्देशवास या अजीर्णकी अवस्थामें उदरके[२] अंदर सूई गड़ने-जैसी पीड़ा होनेसे विषूचिका रोग (हैजा) होता है। इसको रोकनेके लिये मन्त्र-शास्त्री धर्मप्राण साधकको चाहिये कि वह विषूचिकावाले रोगीको प्राण-दान देनेकी कामनासे तत्काल पवित्र होकर रोगीके उदरपर बायाँ हाथ रखे और दाहिने हाथसे '**ॐ ह्लीं ह्रीं रां रां विष्णुशक्तये नमः। ॐ नमो भगवति विष्णुशक्तिमेनाम्। ॐ हर हर नय नय पच पच मथ मथ उत्सादय दूरे कुरु स्वाहा। हिमवन्तं गच्छ जीव सः सः सः चन्द्रमण्डलगतोऽसि स्वाहा।**' इस मन्त्रसे हिमालयके उत्तर पार्श्वमें रहनेवाली कर्कशा कर्कटी राक्षसी (अथवा बीमारके प्लीहा पद्म या नाभिप्रदेशके उत्तर प्रदेशमें सूई गड़ानेके समान असहनीय दर्द करनेवाली विषूचिका राक्षसी)-का मार्जन करे और व्रत रखे। इस प्रकार जबतक वेगहीन न हो तबतक करता रहे। इससे विषूचिकावालेको शान्ति प्राप्त होती है।

(१४) पाण्डुरोगप्रशमनव्रत (धर्मानुसंधान)—देवता[३] और ब्राह्मण—इनके द्रव्यका अपहरण करने या वात, पित्त, कफ—

---

१. दुर्भोजना दुरारम्भा मूर्खा दुःस्थितयश्च ये।
दुर्देशवासिनो दुष्टास्तेषां हिंसां करिष्यति॥ (यो० वा०)

२. सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिलः।
यत्राजीर्णे च सा वैद्यैर्विषूची तु निगद्यते॥ (माधव)

३. देवब्राह्मणद्रव्यापहारी पाण्डुरोगवान्॥ (अ० प्र०)

इन तीनोंसे अथवा संनिपातसे और मृद्भक्षण (मिट्टी खाने)-से पाण्डुरोग होता है। इसके निवारणके निमित्त कृच्छ्रातिकृच्छ्र चान्द्रायणव्रत करके सुवर्णका दान दे और कूष्माण्डी हवन करे।

(१५) रक्तपित्तोपशमनव्रत (धर्मानुसंधान)—पूर्वजन्ममें वैद्यशास्त्रके पूर्णानुभवसे मदान्ध होकर आतुर भेषजमें युक्त औषधकी अपेक्षा अयुक्त प्रयुक्त करने अथवा इस जन्ममें धूपमें घूमने, अधिक श्रम करने, बहुत ज्यादा चलने, अधिक स्त्री-प्रसंग करने, नमक-मिर्च ज्यादा खाने अथवा कोप करने आदिसे रक्त-पित्त होता है। इसकी शान्तिके लिये स्नान करके '**ॐ अग्निं दूतं वृणीमहे०**' आदि मन्त्रोंसे अग्निमें घी और खीरकी १०८ आहुति दे और घृतप्लावित पदार्थोंका एक बार भोजन करके व्रत करे।

(१६) राजयक्ष्मोपशमनव्रत (धर्मशास्त्रपुराणायुर्वेदादि)—राजयक्ष्मा जन्मान्तरमें किये हुए महापापोंका द्योतक है। शातातपने* कहा है 'यह रोग साक्षात् ब्रह्महत्या करने या राजाको मारनेसे होता है।' वास्तवमें अन्य रोगोंकी अपेक्षा राजयक्ष्मासे मनुष्यकी बड़ी दुर्दशा होती है। आयुर्वेदके मान्यतम ग्रन्थोंका मत है कि 'राजयक्ष्माको मिटानेवाली मुख्य औषध मृत्यु है। सद्वैद्य, सदौषध, सदुपचार और नियमपालक रोगी होनेपर भी राजयक्ष्मावाला रोगी अधिक-से-अधिक एक हजार दिन (२ वर्ष ९ महीने १० दिन) जीवित रह सकता है।' इसके अतिरिक्त अन्य रोगी तो चार, छः या आठ मासमें ही मर जाते हैं। विशेषता यह है कि

---

* 'ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्'। (शातातप)
ब्राह्मणं घातयेद् यस्तु पूर्वजन्मनि मानवः।
मोहादकामतः सोऽपि क्षयरोगसमन्वितः॥
राजघातकरः प्रोक्तो यः पूर्वं घातयेन्नृपम्।
राजयक्ष्मान्वितः सोऽत्र तस्मिन् वयसि रोगवान्॥ (सूर्यारुण)

कफ, खाँसी और ज्वरके निरन्तर घर्षणसे मनुष्यका सांगोपांग शरीर शनैः-शनैः क्षय होकर क्षीणप्राय हो जाता है और उसके रक्त, मज्जा, मांस और अस्थिपंजर-पर्यन्त सूख या घिस जाते हैं। आयुर्वेदके मतानुसार[1] वेगरोध (मल-मूत्रादिके आते हुए वेगको रोकने), क्षय (अत्यधिक स्त्री-प्रसंगादिके द्वारा रज और वीर्यका नाश करने), साहस (अपनेसे अधिक बलीके साथ युद्ध-कसरत या वैर करने अथवा बहुत भागने) और विषमाशन (समय-असमय; एक बार, अनेक बार; कभी अल्पाहार, कभी अमिताहार) और कभी क्षुधा, तृषा या निद्राके बहुत दबानेपर भी उनको बलात् रोकने आदि कारणोंसे राजयक्ष्मा[2] होता है। विशेषता यह है कि बहुव्ययसाध्य सर्वोत्कृष्ट औषध या उपचार करनेपर भी यह रोग घटता नहीं, प्रतिक्षण बढ़ता ही रहता है। इसके विपरीत रोगी यह मानता है कि 'मैं अच्छा हो रहा हूँ।' इस विषयमें स्वयं सूर्यनारायणने कहा है कि 'यह रोग[3] केवल औषध-सेवनसे क्षीण नहीं होता। इसके लिये औषध-सेवनके सिवा दान,[4] दया, धर्म, दीनोपकार, गो-द्विज-देवादिका अर्चन, व्रत, जप, हवन और तप करने (अथवा शरीर और

---

१. वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद् विषमाशनात्।
त्रिदोषाज्जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात्॥ (चरक)

२. राजश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः।
तस्मात् तं राजयक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः॥
क्रियाक्षयकरत्वात्तु क्षय इत्युच्यते बुधैः।
संशोषणाद् रसादीनां शोष इत्यभिधीयते॥ (भाव०)

३. निष्कृत्या कर्मजन्मोत्थो दोषजस्त्वौषधेन हि।
उभयाज्जयमानस्तु निष्कृत्यौषधसेवया। (सूर्यारुण)

४. दानैर्दयाभिरतिथिद्विजदेवतागोदेवार्चनप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः।
इत्युक्तपुण्यनिचयैरपचीयमानं प्राक्पापजातमशुभं प्रशमं नयन्ति॥ (सूर्य)

संसारसे निर्मोह होकर ईश्वर-स्मरणमें निरन्तर मन लगाने)-की आवश्यकता है।

(१७) १-यक्ष्मान्तक सुवर्णकदली-दानव्रत (सूर्यारुण)—राजयक्ष्माके रोगीको चाहिये कि वह अपनी सामर्थ्यके अनुसार सुवर्णका कदली-वृक्ष बनवावे। जिसमें फल, पत्ते और मुकुल (फूलकी डोडी) यथावत् हों। यदि सामर्थ्य न हो तो साक्षात् कदली-वृक्ष मँगवावे और शुभ दिनमें शौचादिसे निवृत्त होकर शुभासनपर पूर्वाभिमुख बैठकर '**मम जन्मान्तरीयपापजनित-प्राणान्तकराजयक्ष्मोपशमनकामनया श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थे सुवर्णकदली-(ससुवर्ण-कदली वा-) दानं करिष्ये।**' यह संकल्प करके विनिर्मित या सिंचित कदलीको वस्त्रादिसे भूषित कर पूजन करे और जप, तप, होम तथा व्रत आदि सम्पूर्ण कर्म समाप्त होनेके पीछे आत्माको जाननेवाले धर्मप्राण दयावान् वृतस्थायी और पूजनीय पण्डितको सुपूजित कदलीका दान दे। उस समय '**हिरण्यगर्भ पुरुष परात्पर जगन्मय। रम्भादानेन देवेश क्षयं क्षपय मे प्रभो॥**' का उच्चारण करे। तत्पश्चात् विद्वान् ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन कराकर उनको भोजन करावे और फिर शिष्ट तथा इष्ट मनुष्योंको भोजन कराकर व्रतको समाप्त करे। इस प्रकार करनेसे राजयक्ष्मा शान्त होता है।

(१७) २-यक्ष्मान्तक दानव्रत (सूर्यारुण)—औषधोपचारादिसे यदि यक्ष्मा शान्त न हो तो ज्यौतिषशास्त्रोक्त शुभ दिनमें प्रातःकालीन कृत्यसे निवृत्त होकर अपनी सामर्थ्यके अनुसार गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, मिष्टान्न, वस्त्र, जल, फल, लोह और तिल—इन सबका यथाविधि दान करे। यदि यह न बन सके तो लोहेके घड़ेमें तिल भरकर गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके, उसे सत्पात्र प्रतिग्राहीको दे अथवा—'**आते रौद्रेण०**' सूक्तका जप करके

उसकी प्रत्येक ऋचासे आहुति दे और फिर शिवजीका उपस्थान करके '**त्र्यम्बकं यजामहे०**' का एक मासतक जप करे। इससे भी रोग शान्त होता है।

(१८) यक्ष्मोत्पत्ति (कालिकापुराण)—क्षययक्ष्मा अथवा राजयक्ष्माके विषयमें कालिकापुराणकी कथाके श्रवण करनेसे अपूर्व लाभ होता है। कथा इस प्रकार है—'दक्षप्रजापतिके सत्ताईस कन्याएँ थीं। उनका चन्द्रमाके साथ विवाह हुआ। उनमें एकका नाम रोहिणी था; औरोंकी अपेक्षा चन्द्रदेव उससे अधिक प्रसन्न रहते थे। यह देखकर अन्य पत्नियोंने पितासे प्रार्थना की। तब दक्षने चन्द्रदेवको समझाया कि आप सबके साथ समान स्नेह रखें, किंतु चन्द्रमाने ऐसा नहीं किया। तब दक्षप्रजापति बड़े क्रोधित हुए और उनके क्रोधानलसे राजयक्ष्मा उत्पन्न होकर चन्द्रमाके शरीरमें प्रविष्ट हो गया। फिर क्या था, चन्द्रदेव प्रतिदिन क्षीण होने लगे और उनका विश्वव्यापी सुप्रकाश भी घट गया। चन्द्रमाकी इस क्षीणकाय अवस्थासे संसारकी हानि समझकर ब्रह्माजीने उनके शरीरसे यक्ष्माको निकाल लिया और आज्ञा दी कि 'जो लोग स्त्रीके साथ अधिक सहवास करें उनके शरीरमें तुम सुखसे रहो। वहाँ मृत्युकी पुत्री तृष्णा तुम्हारी आज्ञामें रहेगी। वह तुम्हारे ही समान गुणवाली है। अतः तुम जो चाहोगे वही कर सकेगी। इसके सिवा जो लोग श्वास, कास और कफके रोगी होकर भी स्त्रीके साथ सहवास रखें, उनके शरीरमें भी तुम प्रविष्ट रहो और उनको प्रतिक्षण क्षीण करते रहो। जाओ, तुम यथेच्छ विचरण करो। तुम्हारा यह काम स्थायी रहेगा।' ऐसा ही हुआ और अब अधिक हो रहा है।

(१९) यक्ष्मान्तक सानुष्ठान-व्रत (मुक्तकसंग्रह)—

राजयक्ष्मावाले रोगीको चाहिये कि वह सत्पात्र ब्राह्मणको बुलवाकर उससे त्र्यम्बकमन्त्रका पुरश्चरण करनेकी प्रार्थना करे और उसके स्वीकार करनेपर दृढ़ व्रतके साथ यह आज्ञा करे कि इससे मैं अवश्य आरोग्य लाभ करूँगा। तत्पश्चात् सदनुष्ठानी ब्राह्मण शिवजीके मन्दिरमें बैठे और पार्थिव मूर्तिका निर्माण करे, फिर उसका पंचोपचार पूजन करके त्र्यम्बकमन्त्रका एक हजार जप करे अथवा '**ॐ जूं सः अमुकं पालय पालय सः जूं ॐ**' इस मन्त्रका १० हजार जप करे। जप करते समय शिवमूर्तिके अपलक दर्शन करता रहे और यह प्रार्थना करे कि 'हे मृत्युंजय! जिसके निमित्त मैं जप करता हूँ, उसका राजयक्ष्मासे कोई अनिष्ट न हो।' तत्पश्चात् पूजनके गन्ध-पुष्प और बिल्वपत्र लेकर रोगीके नेत्र, ललाट और हृदयमें लगाकर सिरहाने रख दे। इस प्रकार प्रतिदिन नवीन पत्र सिरहाने रखता रहे और पुराने निकालकर नदी आदिके प्रवाही जलमें डलवाता रहे। इस प्रकार करनेसे शीघ्र आरोग्य होता है।

(२०) श्वास-कास-कफ-रोगशमनव्रत (उमा-महेश्वरसंवाद)—पूर्वजन्मके परमोचित कार्यमें यथोचित अर्थव्ययके कार्योंको कृतघ्नरूपमें करनेसे श्वास-कासादिका कष्ट होता है। इसके लिये 'पिपीलिकातनु' और 'यवमध्य' चान्द्रायणव्रत करने चाहिये और व्रतसमाप्तिमें पचास ब्राह्मणोंको यथेच्छ भोजन करवाना चाहिये। इसके करनेसे श्वास, कास, कफ और उष्णज्वर—ये सब शान्त होते हैं।

(२१) रोगत्रयोपशमनव्रत (महाभारत)—पूर्वोक्त श्वास, कास और कफसे मुक्त होनेके लिये वेदपाठी ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे शिवपूजनपूर्वक रुद्रपाठसहित सहस्रघटाभिषेक करावे और उसके समाप्त होनेपर पचास ब्राह्मणोंको उत्तम पदार्थोंका भोजन

कराकर सबको समान रूपसे लाल[१] वस्त्र और सुवर्ण दे अथवा अच्युत[२], अनन्त और गोविन्द—इन तीनों नामोंके तीस हजार आठ जप करे और सात्त्विक पदार्थोंको भगवान्‌के अर्पण करके नक्तव्रत करे।

(२२) श्लेष्मान्तकव्रत (सूर्यारुण २३३)—जन्मान्तरमें दूसरेके पुत्रोंका हनन अथवा हरण करनेके पापसे मनुष्य कफरोगी होता है। उसकी निवृत्तिके निमित्त लगभग पंद्रह किलो अथवा बारह सौ तोला सीसेका गन्धाक्षतसे पूजन करके डाकसंज्ञक प्रतिग्राहीको दे और आप एकभुक्त व्रत करे। इससे आरोग्य होता है।

(२३) वातव्याध्युपशमनव्रत (वीरसिंहावलोकन)—देव और भूदेवोंके निमित्तकी उपजीविका या उनके धन-वस्त्रादिका अपहरण करने और स्वामीसे वैर रखनेसे वातजनित व्याधियाँ होती हैं। उनके उपशमनार्थ कृच्छ्रातिकृच्छ्र चान्द्रायणव्रत करके '**वात आयातु०**' मन्त्रके दस हजार जप करे।

(२४) धनुर्वातोपशमनव्रत (वीरसिंहावलोकन)—अक्षत योनिमें गमन करने अथवा परस्त्रीपर बलात्कार करनेसे शरीरकी सम्पूर्ण संधियोंमें ज्वर और धनुर्वातकी पीड़ा होती है। उसके लिये सवत्सा काली भैंसका दान करे।

(२५) शूलरोगोपशमनव्रत (मन्त्रमहार्णव)—शान्त, गम्भीर और श्रुतिके अध्यापनमें समर्थ किंतु अकिंचन और याचना करनेवाले ब्राह्मणको बुलाकर भी जो कुछ नहीं देता, वह जठरशूलसे पीड़ित होता है। आयुर्वेदके मतानुसार कसरत करने,

---

१. हिरण्यं रक्तवासांसि पंचाशद्विप्रभोजनम्।
सहस्रकलशस्नानं कुर्याद् रोगस्य शान्तये॥ (व्यास)

२. अच्युतानन्तगोविन्देत्येतन्नामत्रयं द्विज।
अयुतत्रयसंख्याकं जपं कुर्याद्धि शान्तये॥ (शंकरगीता)

बहुत चलने, अधिक जगने, अति मैथुन करने, बहुत शीतल जल पीने, मूँग, अरहर, कोदो या सूखे पदार्थ खाने, भोजन-पर-भोजन करने, भिगोकर उगाये हुए तन्तुयुक्त मूँग, मोठ या चौंले खाने और मल-मूत्र-वीर्य या अपान वायुका वेग रोकने आदि कारणोंसे शूल-रोग होता है। हारीतने इसकी जन्मकथा[1] इस प्रकार कही है कि 'कामदेवका नाश करनेके निमित्तसे शिवजीने त्रिशूल फेंका था। उससे भयभीत होकर कामदेव भगा और विष्णुके शरीरमें प्रविष्ट हो गया। तब विष्णुने हुंकारसे त्रिशूलको गिरा दिया और वह भूमण्डलमें आकर शूल नामसे विख्यात हुआ। पंचभूतात्मक देहधारी कुपथ्यादिवश उसीसे पीड़ित होते हैं। ऐसे त्रिशूलसम[2] शूल-रोगसे मुक्ति पानेकी इच्छावाला मनुष्य यथासामर्थ्य अन्नदान और '**नमस्ते रुद्र मन्यवे०**' का जप करे और दृढ़व्रती रहे।

(२६) गुल्मोपशमनव्रत (अनुष्ठान-प्रकाश)—गुरुके हितकर वाक्योंका अहितकर अर्थ करने अथवा मिथ्याहारविहारादिसे बिगड़े हुए वातादि दोष उदय होकर उदरके अंदर दोनों पसवाड़ोंमें और हृदय, नाभि तथा वस्तिस्थानमें गुल्म उत्पन्न करते हैं। उसके निवारणके निमित्त फाल्गुनके व्रतपरिचयमें बतलाये हुए क्रमके अनुसार एक महीनेका 'पयोव्रत' करे और '**वात आयातु[3] भेषज०**' इस मन्त्रके दस हजार जप और इसी मन्त्रसे घी और

---

१. अनंगनाशाय हरस्त्रिशूलं मुमोच कोपान्मकरध्वजश्च।
तमापतन्तं सहसा निरीक्ष्य भयार्दितो विष्णुतनुं प्रविष्टः॥
स विष्णुहुंकारविमोहितात्मा पपात भूमौ प्रथितः स शूलः।
स पंचभूतानुगतः शरीरं प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः॥ (हारीतसंहिता)

२. शूली परोपतापेन जायते वपुषा तनुः।
सोऽन्नदानं प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेद् बुधः॥ (रुद्रविधान)

३. ॐ वात आयातु भेषजꣳशंभूर्मयो भूर्नो हृदे प्राण आयूꣳषि तारिषत्। (यजुःसंहिता)

खीरका हवन करे। इससे अनिष्टकर गुल्मका कष्ट दूर हो जाता है।

(२७) उदरान्तरीयरोगोपशमनव्रत (मन्त्रमहार्णव)—जो मनुष्य[1] ब्रह्मा, विष्णु और महेशमें भेद मानते हैं, उनके उदरगत व्याधियाँ होती हैं। उनके निवारणके लिये कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र चान्द्रायणव्रत, **'उद्यन्भ्राज०'** के दस हजार जप और शिवजीका सहस्रघटाभिषेक करनेसे सम्पूर्ण व्याधियाँ दूर होती हैं।

(२८) जलोदरहरव्रत[2] (मन्त्रमहार्णव)—मिट्टी या भस्मसे माँजे हुए ताम्रादिके महापात्रको जलसे पूर्ण करके उसका पंचोपचार पूजन करे और उसी जलसे शिवजीका सहस्रघटाभिषेक करे तथा सौ ब्राह्मणोंको भोजन करावे अथवा सोना, चाँदी, ताँबा और जलधेनुका दान करके गुड़, घी और गोधूमके पदार्थोंका एकभुक्त भोजन करे।

(२९) प्लीहोदरहरव्रत (मन्त्रमहोदधि)—भृतकाध्यापक (नौकरी लेकर पढ़ानेवालों)-के या कन्याको दूषित करनेवालोंके 'प्लीहा'—एक प्रकारकी उदरग्रन्थि, जो पेटके पार्श्व भागमें होती है, अत्यन्त छोटी उत्पन्न होकर यथाक्रम बहुत बड़ी हो जाती है। आयुर्वेदके अनुसार विदाही (बहुत दाह करनेवाले) तथा अभिष्यन्दी (उदरगत रक्तछिद्र रोकनेवाले) अन्नादि पदार्थोंके निरन्तर खाते रहनेसे प्लीहा (तिल्ली) होती है और बेर-तुल्यसे बढ़कर तरबूजके तुल्य हो जाती है। इसको घटानेके लिये अति पवित्रताके साथ ब्रह्मचर्यका पालन करके **'यो यो हनूमन्त**

---

१. यो ब्रह्मविष्णुरुद्राणां भेदमुत्तमभावतः।
कुर्यात् स उदरव्याधियुक्तो भवति मानवः॥ (शातातप)

२. सहस्रकलशस्नानं महादेवस्य कारयेत्।
भोजयेच्च शतं विप्रान् मुच्यते किल्बिषात् ततः॥ (मन्त्रमहार्णव)

फलफलित धगधगित आयुराषफुरुडाह'—इस मन्त्रके दस हजार जप करे और फिर प्लीहावाले मनुष्यको सीधा लिटाकर उसके उदरपर नागवल्लीदल (नागरबेलके पत्ते) रखे। पत्तोंके ऊपर आठ तह किया हुआ कपड़ा रखे और कपड़ेके ऊपर सूखे बाँसके पतले-पतले टुकड़े रखे। इसके बाद बेरकी सूखी लकड़ी लेकर उसको जंगली पत्थरसे उत्पन्न की हुई आगसे जलावे और प्लीहावाले मनुष्यके पेटपर रखे हुए वंशशकल (बाँसके टुकड़ों)-को उपर्युक्त हनुमन्मन्त्रके उच्चारणके साथ (उस जलती हुई लकड़ीसे) सात बार ताड़ित करे। इससे उदरगत प्लीहा शान्त होती है। उपर्युक्त विधान सात बार करना चाहिये।

(३०) उदरगुल्महरव्रत (सूर्यारुण २९७)—इक्षुविकार (गुड़, शक्कर, चीनी और मिश्री) आदि चुरानेसे पेटके अंदर अनिष्टकारी* फोड़ा उत्पन्न होता है। इन दिनों उसकी 'ट्यूमर' नामसे प्रसिद्धि है और विशेषज्ञ वैद्य बड़ी सावधानीके साथ अस्त्रक्रियासे उसका निपात करते हैं। किसी स्त्रीके यह हो जाता है तब उसे गर्भस्थलीमें बालक होने-जैसा अभ्यास होता है और वह यथाक्रम उसी प्रकार बढ़ता है। परंतु प्रसव-कालकी पूर्ण अवधि पूरी हो जानेपर भी कुछ न हो, तब उस उपद्रवका स्वरूप मालूम होता है। अस्तु, उदरगुल्मके लिये सूर्यारुणमें लिखा है कि गुड़-धेनुका दान करके **'मुंचामि०'** सूक्तके एक लाख जप और '**वात आयातु**

---

* स्त्रीणामार्तवजो गुल्मो न पुंसामुपजायते।
अन्यस्त्वसृग्भवो गुल्मः स्त्रीणां पुंसां च जायते॥ (छारपाणि)
गुल्मिनामनिलः शान्तिरुपायैः सर्वशो विधिः। (चरक)
कुपितानिलमूलत्वाद् गूढमूलोदयादपि।
गुल्मवद्वा विशालत्वाद् गुल्म इत्यभिधीयते॥ (सुश्रुत)
संचितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः।
कृतमूलः शिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः॥ (माधव)

भेषजं०' से शाल्मली (सेमलवृक्ष)-की समिधाओंमें घी और शक्करकी दस हजार आहुतियाँ देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और स्वयं व्रत करे।

(३१) कृमिलोदरहरव्रत (सूर्यारुण १२२)—जन्मान्तरके अभक्ष्य-भक्षणादि पापोंसे या उड़द, मैदा और गुड़के पदार्थ अथवा चने (छोले) आदिके अर्द्धपक्व शाक खाने आदिसे पेटमें कीड़े पड़ जाते हैं और उनका तत्काल प्रतीकार न हो तो वे दुमुँही सर्पिणीकी तरह बहुत बड़े हो जाते हैं। उनकी पीड़ासे मनुष्यकी भूख-प्यास घट जाती है और वह दुर्बल और अशक्त हो जाता है। ऐसे कीड़ोंको अनुभवी वैद्य तृषावर्द्धक उपचारोंसे निकालते हैं। धर्मशास्त्रोंमें इनकी शान्तिके लिये कार्तिक शुक्ला एकादशीसे पूर्णिमापर्यन्त निराहार भीष्मपंचक-व्रत करना हितकारी बताया है। वास्तवमें यह धर्म और कर्म दोनोंका साधक है।

(पापसम्भूत सर्वरोगार्तिहरव्रत)

(३२) मूत्रकृच्छ्रोपशमनव्रत (मन्त्रमहार्णव)—इस रोगके रोगीको चाहिये कि वह प्रातःस्नानादिसे निवृत्त होनेके अनन्तर शुभासनपर पूर्वाभिमुख बैठकर '**मम मूत्रकृच्छ्रादिप्रशमनपूर्वकमायुरा-रोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थं पुरुषसूक्तस्य सहस्रनामस्तोत्रस्य च यथासंख्यापरिमितपाठानहं करिष्ये।**' यों संकल्प करके उक्त दोनों पुरुषसूक्त और विष्णुसहस्रनामके पृथक्-पृथक् पाठ करे।

(३३) मूत्रकृच्छ्रहरव्रत* (सूर्यारुण २१५)—जो मनुष्य ब्राह्मण-कुलमें जन्म लेकर गौड़ी, माध्वी और यवसम्भूत सुराका पान करते हैं, उनके मूत्रकृच्छ्र होता है अथवा तीक्ष्ण भोजन, रूक्ष

---

* व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसंगनित्यद्रुतपृष्ठमानात् ।
आनूपमांसाद्यशनादजीर्णात् स्युर्मूत्रकृच्छ्र.... ॥ (माधव)

भोजन, सुरापान, घोड़ेकी सवारी, चक्रवाकादिका मांस और भोजन-पर-भोजन करने आदिसे मूत्रकृच्छ्र होता है। इसकी निवृत्तिके निमित्त सुवर्णका अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्यमें महाप्रभु ब्रह्माजीका आवाहनादि षोडशोपचारोंद्वारा पूजन करके सात्त्विक पदार्थोंका एक समय भोजन करे और इस प्रकार प्रत्येक शुक्लपक्षकी द्वितीयाको करता रहे।

(३४) बहुमूत्रहरव्रत (सूर्यारुण ९३७)—लोभवश दुग्धादि पदार्थोंको चुराने या उनको नष्ट-भ्रष्ट करनेसे बहुमूत्र होता है। उसकी निवृत्तिके लिये काश्यपके कथनानुसार 'दुग्धधेनु' का दान और नक्तव्रत (रात्रिमें एक बार भोजन) करना चाहिये।

(३५) अश्मर्युपशमनव्रत (मुक्तकसंग्रह)—पूर्वजन्मके अगम्यागमनादि महापापोंके प्रभावसे अथवा वात, पित्त, कफ और शुक्रके विकृत होनेसे अश्मरीका आक्रमण होता है। उसके प्रतीकारके लिये ज्यौतिषशास्त्रोक्त शुभ मुहूर्तमें प्रातःस्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर '**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥**' इस मन्त्रका दस हजार बार जप करे और पलाश (छीला)-की समिधा तथा घीसे इसी मन्त्रकी एक हजार आहुति दे तथा दूध पीकर रहते हुए ईश्वरका स्मरण करे।

(३६) प्रमेहरोगोपशमनव्रत* (अनु० प्रकाश)—यह रोग अनेक प्रकारका होता है। धर्मशास्त्रोंके अनुसार किसी भी जन्ममें माता, सास, गुरुपत्नी, रानी तथा मित्र-मातामें गमन करनेसे 'मधुमेह', भ्रातृभार्या (भौजाई)-में गमन करनेसे 'जलमेह', भगिनीमें गमन करनेसे 'इक्षु' (रस) मेह, अमा, पूर्णिमा या

---

* आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः····· ॥ (माधव)

ग्रहणमें स्त्री-प्रसंग करने तथा कन्यामें गमन करनेसे 'बालमेह', चाण्डाली या मेहतरी आदिमें गमन करनेसे 'व्याधिकर सर्वप्रमेह' और तिर्यग्योनि-(पशु आदि-) में गमन करनेसे 'शूलप्रयुक्तप्रमेह' होता है। आयुर्वेदके अनुसार सुखकी उपस्थिति, सुखकी निद्रा, सुखप्रद (स्त्री-प्रसंगकारी) स्वप्न और दूध-दही या नवीन अन्न-जल खाने-पीने आदिसे प्रमेह होता है। इसकी निवृत्तिके लिये यथायोग्य—क्षुधा और तृषा (भूख-प्यास) दोनों त्यागकर निराहार तीन उपवास, तीन यवमध्य, तीन चान्द्रायण तथा तीन कृच्छ्रचान्द्रायण, पुरुषसूक्त और सहस्रनामके पाठ करे और अधिक पाप (या पाप और रोग दोनों) हों तो प्रतिदिन '**या ते रुद्र०**' सूक्तसे घीकी एक हजार आहुति, सुवर्ण-धेनुका दान और चालीस ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इससे सब प्रमेह शान्त होते हैं।

(३७) प्रदरोपशमनव्रत (मन्त्रमहार्णव)—रक्त और श्वेत दो प्रकारका प्रदर होता है। रक्तमें स्त्रीकी जननेन्द्रियसे रक्त और श्वेतमें रज (जिसको स्त्रियाँ धौले गिरते मानती हैं) बहता रहता है। पूर्वजन्ममें गर्भस्रावादि या भ्रूणहत्या करने अथवा बालकोंके मारनेसे रक्त या श्वेतप्रदर होता है। इनमें 'रक्तप्रदर' प्राणान्तक और 'श्वेतप्रदर' स्त्रीत्वनाशक होता है। इनके निमित्त जितनी सामर्थ्य हो उतनेभर सुवर्णका यज्ञोपवीत बनवाकर माघ, फाल्गुन या वैशाखकी शुक्ल त्रयोदशीको प्रातःस्नानादिसे निश्चिन्त होकर व्रत धारण करे और पूर्वाभिमुख बैठकर सुवर्णनिर्मित यज्ञोपवीतका पूजन करके उसे दीन एवं सदाचारी ब्राह्मणको दे। अथवा भौम या शुक्रवारके दिन प्रबालभस्म और मुक्ताभस्मको शहदमें मिलाकर '**अग्निर्मूर्धा दिवः०**' और '**अन्नात्परिश्रुतो०**' से घीके साथ १०८ आहुति देकर ब्राह्मणोंको घी तथा खीरका भोजन

करावे और उनको विदा करके पति-पुत्रादिसहित स्वयं भोजन करे।

(३८) प्रदरहरव्रत (मन्त्रमहार्णव)—पूर्वजन्ममें माँ-बाप, भाई या गुरुजनोंके साथ स्पर्धा (डाह) रखने आदि कारणोंसे प्रदर होता है। एतन्निमित्त '**तद्विष्णो०**' इस मन्त्रका प्रतिदिन एक हजार जप और चान्द्रायणव्रत करे तथा घी और शहदयुक्त अन्नका दान करके सात्त्विक पदार्थोंका एक समय भोजन करे।

(३९) श्वयथु (शोथ) रोगहरव्रत (मन्त्रमहार्णव)—पर्वतकी तलहटीमें, नदी आदिके तीरमें या छायाकी जगह (वृक्षादिके मूल) वे मल-मूत्र या खखार आदि त्यागनेके पापसे श्वयथु रोग होता है (इसको कोई-कोई दमा भी मानते हैं)। इसकी शान्तिके लिये '**सर्वँ्इदं वो विश्वतः शरीरं०**' का ३०११८ बार जप करे और '**आपो हि ष्ठा मयोभुवः०**' आदिसे चरु (खीर) और घीकी एक हजार आहुति दे तथा उपवास करे।

(४०) वृषणव्याधिविघातकव्रत (विष्णुधर्मोत्तर)—भगिनीमें अज्ञानवश गमन करे तो उसको तीन चान्द्रायणव्रत करने चाहिये और यदि ज्ञानपूर्वक करे तो कृच्छ्रचान्द्रायण करना चाहिये तथा ज्ञानपूर्वक भी बहुत दिनोंतक करे तो उसे अपना देह त्याग देना चाहिये। [उपर्युक्त पापोंसे ही वृषण-व्याधि होती है।]

(४१) गण्डमालाशमनव्रत* (अनु० प्रकाश)—गुरुसे द्वेष रखने और दूसरोंका चित्त दुखानेसे या मेद और कफके कारणसे गण्डमाल (काँख, कंधा, गला या सन्धि-प्रदेशादिमें बेर या आमलेके समान छोटी-बड़ी गंड—गूगड़ी) होती है। इसके निमित्त चान्द्रायणव्रत और पुरुषसूक्तके एक हजार पाठ करे।

---

* कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु।
मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद् गण्डमाला····· ॥ (माधव)

(४२) गलगण्डहरव्रत* (सूर्यारुण २७९)—अध्यापक तथा गुरुके साथ प्रवंचनात्मक व्यवहार करने या गलेमें वात, कफ और मेद होनेसे उसके दोनों ओर गलगण्ड (गलसूंडे) हो जाते हैं। इनकी शान्तिके लिये ताँबाके पात्रमें यथाशक्ति काले तिल भरकर उनके ऊपर मोतियोंकी माला रखे और उसे पंचोपचारोंसे पूजन करके शुद्धहृदय (निष्कपट) सदाचारी तथा धनहीन ब्राह्मणको दान दे और ग्रहशान्ति करे। इससे गलगण्ड शान्त होता है। व्रत करना भी आवश्यक है ही।

(४३) बभ्रुमण्डलहरव्रत (सूर्यारुण २६२)—यह रोग बभ्रुघात (नेवलेकी हत्या) आदि दोषोंसे उत्पन्न होता है। इसमें शरीरपर नेवलेकी आकृतिके चिह्न—चकते या गुल्म हो जाते हैं और उनसे स्वास्थ्य खराब होकर आकृति बिगड़ जाती है। इसके लिये यथाशक्ति सोना लेकर उसका नेवला बनवावे और व्रतपूर्वक उसकी पूजा करके ब्राह्मणको दान कर दे।

(४४) औदुम्बरहरव्रत (सूर्यारुण २३८)—जन्मान्तरमें ताँबाका अपहरण करनेसे शरीरमें औदुम्बरका उदय होता है। रोगीको चाहिये कि वह व्रत करके ताम्रदान करे।

(४५) पादचक्रहरव्रत (सूर्यारुण २५७)—जन्मान्तरमें श्वानकी हत्या करनेसे पादचक्र (पाँवोंमें चक्र-जैसे चिह्न) हो जाते हैं। उनके लिये वेदवेत्ता विद्वान्‌को यथाशक्ति सुवर्ण देकर उसके चरणोदकसे उस चक्र-चिह्नको धोना चाहिये।

(४६) कुष्ठरोगोपशमनव्रत (भगवान् शंकर)—राजयक्ष्मादिके समान यह रोग भी पूर्वजन्ममें किये हुए अगणित जीवोंकी हत्या-जैसे महापापोंका परिणाम है। किसी मनुष्यके शरीरमें इस

---

* वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टो मन्ये समाश्रित्य तथैव मेदः।
कुर्वन्ति गण्डं क्रमशस्त्रलिङ्गैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः॥ (माधव)

रोगका एक छींटा भी दीख जाय तो उसके प्रति जनसमाजकी अश्रद्धा और अरुचि हो जाती है। आयुर्वेदके अनुसार यह रोग अठारह प्रकारका होता है तथा शरीरगत वात, पित्त और कफके कुपित होने एवं रक्त-मांस-त्वचा और जलके बिगड़ जानेसे इसका उदय होता है। उन अठारह भेदोंमेंसे कपाल, उदुम्बर, मण्डल, सिध्म, काकणक, पुण्डरीक और ऋक्ष-जिह्वा—ये सात 'महाकुष्ठ' माने गये हैं और कुष्ठ, गजचर्म, चर्मदल, विचर्चिक, विपादिक, पाषा, कच्छु, विस्फोटक, दद्रु, किट्टिस और अलसक—ये ग्यारह 'क्षुद्रकुष्ठ' हैं। इनमें किस दोषसे कौन-सा कुष्ठ होता तथा किस प्रकार और कैसा कष्ट देता है, यह आयुर्वेदके मान्यतम ग्रन्थोंमें विस्तारके साथ बतलाया गया है तथा वहीं इसको दूर करनेके लिये पृथक्-पृथक् उपाय भी बताये गये हैं। परंतु बहुत-से मनुष्योंकी कोढ़ अनेक उपाय करनेपर भी नहीं मिटती—बढ़ती ही जाती है। इससे जान पड़ता है, उनके पूर्वकृत पापोंकी निवृत्ति नहीं हुई है। कर्मविपाकसंग्रहमें कुष्ठकी उत्पत्तिके मुख्य कारण इस प्रकार बतलाये गये हैं—पूर्वजन्ममें गौ-ब्राह्मणादिकी हत्या करने, घर, खेती या जन्तुओंको जलाने तथा दीन-हीन या अपाहिज (लूले-लँगड़े, अन्धे-बहरे और असमर्थ) आदिका सर्वस्व हरण करने आदि कारणोंसे कुष्ठ होता है। पापकी मात्राके अनुसार ही कुष्ठ-रोगकी भी मात्रा होती है और कोढ़ी मनुष्योंके साथ खाने-पीने, उनके वस्त्रादि धारण करने तथा उनके श्वासोच्छ्वासका स्पर्श होने आदिसे यह रोग एकसे दूसरेमें प्रविष्ट होता है। वास्तवमें इससे बचते रहना ही अच्छा है। यदि इसमें रोगीके साथ आहार-विहारादिका सम्बन्ध रखा जाय तो यह एकसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरेमें फैल जाता है। सूर्यारुणने इसके प्रतीकारका

यह उपाय बतलाया है कि रोगीकी जितनी सामर्थ्य हो उतनी तौलके सुवर्णका वृषभ (नन्दिकेश्वर) बनवाकर उसको रेशमी वस्त्रोंसे सुशोभित करे। फिर गन्ध-पुष्पादिसे चर्चित करके '**मम पूर्वजन्मार्जितसमस्तपापनिरसनपूर्वकं प्रस्तुतकुष्ठोपशमन-कामनया शिवप्रीतये सुवर्णवृषभं वयोवृद्धाय वेदाभ्यासिने सत्पात्रब्राह्मणायाहं दास्ये।**' इस संकल्पके साथ उसका दान करे और रात्रिमें एक समय भोजन करे।

(४७) विभिन्न कुष्ठोपहरव्रत (महाभारत)—जलजन्तु (मच्छी, कछुए, मकर, मगरमच्छ और मुर्गा) आदिके प्राण लेने अथवा वस्त्रादिको लूटने आदिसे 'श्वेत-कुष्ठ' होता है। इसके लिये सांतपनव्रत करे।.....न्यायपूर्वक अपराधका निर्णय किये बिना ही निर्दोषपर दोषारोपण करके उसे अनुचित दण्ड देनेसे मुखमण्डलपर 'कृष्ण-कुष्ठ' होता है। उसके लिये कृच्छ्रातिकृच्छ्र चान्द्रायणव्रत करे। क्षुद्र (छोटे) जीवोंका वध करनेसे 'मुखविवर्णकर-कुष्ठ' (मुखको मधुमक्खियोंके छत्ते-जैसा कुरूप बनानेवाला) होता है। उसके लिये अतिकृच्छ्रचान्द्रायणव्रत करके रजतवृषभ (चाँदीके बैल नन्दिकेश्वर)-का दान करना चाहिये। ब्रह्महत्या करनेसे 'पाण्डु-कुष्ठ' होता है। उसके लिये यथोचित स्नान, दान, जप, तप (उपवास), ईश्वरस्मरण और विष्णुपूजन आदि सत्कर्म करनेके अनन्तर शालग्रामजीकी मूर्तिको काष्ठासनादिमें सुस्थिर करके उनको जलपूर्ण एक सहस्र कलशोंसे स्नान करावे। साथ ही पुरुषसूक्तके पाठ तथा प्रत्येक कलशके साथ विष्णुसहस्रनामके एक-एक नामका '**ॐ विष्णवे नमः**' इत्यादिरूपसे उच्चारण करता रहे और अभिषेक समाप्त होनेपर पचास ब्राह्मणोंको उत्तम पदार्थोंका भोजन करवाकर स्वयं एक समय भोजन करे। पूर्वजन्ममें गौ-ब्राह्मणोंका घात करनेके महापापसे मनुष्यके

शरीरमें 'गलितकुष्ठ' होता है, जिसमेंसे रक्त, जल और चेप सदैव झरते रहते हैं। हाथ, पाँव, अंगुली, अँगूठे, भौंह, पीठ और कटि आदि सम्पूर्ण अंगोंमें घात, क्षत या फूटे हुए फोड़े-जैसे चिह्न हो जाते हैं और उनमेंसे दुर्गन्ध निकलती रहती है। यह कोढ़ आमरण रहता है। बल्कि संसर्गदोषवश उसकी मृत्युके पश्चात् बेटे-पोतेतकके शरीरमें भी उसका उदय होता है। इसकी पीड़ासे मुक्त होने या शान्ति-लाभ करनेके लिये यथासामर्थ्य सोना या चाँदीका कालपुरुष बनवावे। उसके चक्राकार गोलवृत्तमें बहुत-सी किरणें भी हों और देखनेमें ग्रह, तारा या सूर्य-जैसा मालूम हो। तदनन्तर उसको वस्त्रसे ढकी हुई चौकीपर विराजमानकर गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और वेदज्ञ, विधिज्ञ एवं बहुज्ञ ब्राह्मणको भोजन कराकर उसका यथाविधि दान करे। इसी तरह अधिक मात्रामें चाँदीकी अनेक बार चोरी करनेमें 'चित्रकुष्ठ' होता है। उसमें मनुष्यके शरीरमें सर्वत्र ही चित्र-विचित्र सफेद धब्बे हो जाते हैं, जिनसे उसका स्वरूप बिगड़ जाता है। उक्त पापका परिहार करनेके लिये कुरुक्षेत्रमें जाकर तीन प्राजापत्यव्रत करे और व्रतके दिनोंमें अपनी शक्तिके अनुसार तीन पल (लगभग १५० ग्राम) सुवर्णमेंसे प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा असमर्थ मनुष्योंको दान दे।

(४८) अर्बुदहरव्रत (हिंदीविश्वकोश)—यह रोग किसी अंशमें कुष्ठके ही समान है; यह फोड़ेके रूपमें प्रकट होता है और चमड़ेके नीचे मांस, नस, नाड़ी या हड्डी आदिमें उत्पन्न होकर स्वतन्त्ररूपसे बढ़ता है। यदि यह साधारण हो तो उचित उपायसे रुक जाता है और यदि रक्तमें जा पहुँचे या उसके होनेके बाद रक्तमें कोई दोष आ जाय तो फिर यह किसी सामान्य उपायसे नहीं मिटता। अर्बुदका उदय प्रायः कान, नाक, जीभ,

मस्तिष्क, यकृत् (जिगर), वक्षःस्थल, मूत्राशय, गर्भाशय, अण्डाधार अथवा योनिके अंदर और जेरके समीपमें होता है। स्त्रियोंके भीतर यह रोग गर्भगत बालकके समान क्रमशः बढ़ता है और समय पूरा होनेपर पुत्रप्रसवके बदले प्राणान्तकारी हो जाता है। इस रोगकी शान्तिके लिये नियमपूर्वक चार प्राजापत्यव्रत करे और यथाशक्ति सप्तधान्योंका दान दे।

(४९) वर्वरांगत्वहरव्रत (सूर्यारुण २३८)—लोहादिके हरणसे वर्वरांग होता है। इसकी निवृत्तिके लिये प्राजापत्यव्रत करके सौ पल (लगभग पाँच कि०ग्रा०) लोहेका दान और निराहार उपवास करे। इससे एक या तीन बारमें शरीरकी शुद्धि हो जाती है।

(५०) कण्डूरोगोपशमनव्रत (सूर्यारुण १८१)—कुत्सित पापोंके कारण कण्डु (खाज-खुजली या धरड़दाद) होता है। इसके लिये सुवर्णके लक्ष्मीनारायण और गणेशजी बनवावे और उनका षोडशोपचारसे पूजन करके यथाविधि दान और व्रत करे।

(५१) गजचर्महरव्रत (सूर्यारुण २४०)—जन्मान्तरमें गजाधिपति होकर गजको मरवा डालनेसे गजचर्मका रोग होता है। यह भी कोढ़की ही श्रेणीमें है। इसमें चर्मके ऊपर खाज और उसके नीचे अनेक चींटियोंके काटने-जैसा दर्द होता है। इसकी निवृत्तिके लिये यथाशक्ति सुवर्णके गणेशजी बनवाकर पूजन करे और उन्हींके सम्मुख बैठकर **'ॐ वक्रतुण्डाय हुं'** इस मन्त्रका प्रतिदिन दस हजार जप और एक हजार आहुति दे तथा एक ब्राह्मणको प्रतिदिन मोदक (लड्डू आदि) भोजन करवाकर स्वयं एकभुक्तव्रत करे। इस प्रकार इक्कीस दिन करके उस सुवर्णप्रतिमाका दान करे तो उससे गजचर्म मिट जाता है।

(५२) दद्रुहरव्रत (सूर्यारुण २९६)—गौ, ब्राह्मण और देवता

आदिके स्थानमें, सर्वसाधारणके बैठने-उठनेके स्थानोंमें, नद, नदी, तालाब या किसी भी जलाशयमें अथवा पुण्य करनेके स्थान, मकान या तीर्थोंमें मल-मूत्रादिका त्याग करनेसे 'दद्रु' (दाद) रोग होता है। इसकी निवृत्तिके लिये सुवर्णमय चतुर्भुज शिवजी, द्विभुज पार्वतीजी और चाँदीका नन्दिकेश्वर (नाँदिया) तथा घण्टा बनवाकर वेदपाठी ब्राह्मणसे पूजन करावे और '**सर्वेश्वराय विद्महे शूलहस्ताय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।**' अथवा '**त्र्यम्बकं यजामहे०**' या '**ॐ नमः शिवाय**' के जप और इनके दशांश हवन करके दारिद्र्यग्रस्त, धर्मज्ञ एवं परिवारयुक्त ब्राह्मणको उपर्युक्त शिव-पार्वती, नाँदिया और घण्टाका अन्य सामग्रियोंसहित दान करे। दान देते समय यह प्रार्थना करे कि '**कैलाशवासी भगवानुमया सहितः परः। त्रिनेत्रश्च हरो दद्रुरोगमाशु व्यपोहतु॥**' इसके बाद दान लेनेवालेको विदा करे।

(५३) लूताजनितरोगहरव्रत (सूर्यारुण ५७०)—अज्ञानवश सगोत्रीका वध करनेसे लूता (मकड़ी)-के विषसे उत्पन्न फोड़ा-फुंसी एवं खाज होती है। उसके उपशमनार्थ तीर्थस्थानमें जाकर स्नान-ध्यान और जप करना चाहिये।

(५४) कृष्णगुल्मोपशमनव्रत (सूर्यारुण ९४२)—पूर्वजन्मके किये हुए महिषी-वधादि पापोंसे पीड़ाकारक कृष्णगुल्म (काली गूमडी)-का रोग होता है। यदि पापाधिक्य हो तो इसकी भीषणता बहुत बढ़ जाती है और इससे प्राणान्त हो जाता है। इसकी शान्तिके लिये विधिपूर्वक भैंसका दान करे और दो कम्बल भी ब्राह्मणको दे।

(५५) अन्त्रवृद्धिविरोधकव्रत (सूर्यारुण ७७५)—यह रोग गुह्यस्थान (या उदर) आदिके अन्दर उत्पन्न होता है। इसके लिये कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत करके सौ ब्राह्मणोंको भोजन करावे, महिषी

(भैंस)-का दान करे, **'उद्यन्ति०'** मन्त्रका जप और उसके दशांशका हवन एवं उपवास करे। इसके करनेसे अन्त्रवृद्धि रुक जाती है।

(५६) मेदहरव्रत (सूर्यारुण ९४१)—पूर्वजन्ममें दधि-दुग्धादिके अपहरण करनेसे मेद (मांसग्रन्थि)-का रोग होता है। यह समूचे शरीरमें किसी भी जगह अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे उत्पन्न होकर पीछे बहुत बड़ा हो जाता है और नाभि, नेत्र, मस्तक या गले आदिमें कटहलकी भाँति बढ़कर बड़ा संताप देता है। उसके निवारणके लिये व्रत करके दुग्ध-धेनुका दान करे।

(५७) श्लीपदहरव्रत (सूर्यारुण ८७)—यह रोग पाँवोंमें होता है। इससे हाथी-जैसे पाँव हो जाते हैं। एतन्निमित्त चान्द्रायण या अतिकृच्छ्र चान्द्रायण करना चाहिये।

(५८) शीर्षरोगोपशमनव्रत (अनु० प्रकाश)—गुरुजनोंके साथ विरोध या विवाद करने आदिसे शिरोरोग होते हैं। उनके लिये **'उद्यन्नद्ये०'** ऋचाका जप और कूष्माण्डीका हवन करके उपवास करे अथवा सुवर्णमय यज्ञोपवीतका दान दे।

(५९) खल्वाटत्वहरव्रत (सूर्यारुण)—स्त्री हो या पुरुष; परनिन्दा करनेसे मस्तकके बाल उड़ जाते हैं। इस पापकी निवृत्तिके लिये धेनु और कम्बल दान करे।

(६०) नेत्ररोगोपशमनव्रत (मन्त्रमहार्णव)—दूसरेकी दृष्टिका नाश करने, कामान्ध होकर परस्त्रियोंको देखने और झूठे ही (बिना वैद्यक पढ़े) वैद्य बन जाने आदिसे अथवा गर्मीसे संतप्त* होकर जलस्नान करने, दूरकी वस्तु देखने, दिनमें सोकर रातमें जागने, नेत्रोंमें बाफ या पसीना गिरने, धूल पड़ने या धुआँ लगने

---

* उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद् दूरेक्षणात् स्वप्नविपर्ययाच्च।
स्वेदाद् रजोधूमनिषेवणाच्चेति, (माधव)

आदि कारणोंसे नेत्ररोग होते हैं। उन्हें दूर करनेके लिये चान्द्रायण और पराकव्रत करके '**ॐ वर्चोदा असि वर्चो मे देहि।**' इस मन्त्रका जप करे और घीमें कुछ सुवर्ण डालकर अग्निमें घीकी आहुति दे तथा सुवर्ण सत्पात्रको दे दे; फिर लाल शर्करा, गोधूम तथा घीके बने हुए पदार्थका एक बार भोजन करे अथवा 'सूर्यारुण ९३३' के अनुसार कुरुक्षेत्र-जैसे तीर्थमें जाकर घृत-धेनुका दान करे।

(६१) रात्र्यन्धत्वहरव्रत (सूर्यारुण १२८)—जन्मान्तरमें दूसरेका उच्छिष्ट भोजन करने अथवा विडालादिका खाया हुआ खानेसे रात्र्यन्धत्व (रतौंधी) होता है। इसकी निवृत्तिके लिये यथारुचि गोमूत्र पीये और ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इस प्रकार एक-दो या तीन बार करे। यदि स्त्रीके रतौंधी हो तो उसको भी गोमूत्र-पान करना चाहिये।

(६२) नेत्रपूयहरव्रत (कर्मविपाकसंग्रह)—मैथुननिरत मिथुनके निरीक्षणसे नेत्रोंमें पूयरोग हो जाता है। उससे आँखोंमें चेप, पानी या गीड़ आता रहता है और उनके कोये फूल जाते हैं। इनके लिये यथाशक्ति जप, होम और व्रत करके सुवर्णमयी सूर्यप्रतिमाको त्रिपादी (तिपायी)-पर सुस्थिर करके रखे तथा गन्धाक्षत-पुष्प और दूध डाले हुए शुद्ध जलसे ताँबाका कलश भरकर सूर्यमूर्तिको स्नान करावे। इस प्रकार एक हजार कलश चढ़ावे और प्रति कलशके साथ '**ज्योतिःप्रदाय सूर्याय नमः**' बोलता रहे अथवा आदित्यहृदयका पाठ करता रहे। इस प्रकार सहस्र कलशोंद्वारा अभिषेक करनेके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करावे।

(६३) नेत्रगतसर्वरोगोपशमनव्रत (चाक्षुषी विद्या)—नेत्रज्योति कम हो जाने, दृष्टिमें दोष आ जाने, फूला, चौंधिया या आधाशीशी आदिसे नेत्रोंमें खराबी आ जाने आदिकी निवृत्तिके

लिये '**नेत्रोपनिषद्**'* के एक हजार पाठ करवाकर सूर्यनारायणकी उपासना और रविवारका व्रत करना चाहिये।

(६४) नेत्रादिसर्वरोगहरव्रत (शौनकव्याख्या)—ताँबेके पात्रको जलसे पूर्ण करके उसमें लाल चन्दन और लाल पुष्प तथा लाल अक्षत डाले और उस जलसे अर्घा अथवा दोनों हाथोंकी अंजलि भरकर '**ॐ उद्यन्नद्य मित्रसह सूर्यं तर्पयामि १**' यह मन्त्र बोलकर सूर्यके सम्मुख छोड़ दे। इसी प्रकार '**ॐ आरोहन्नुत्तरां दिशं सूर्यं तर्पयामि २, ॐ हृद्रोगं मम सूर्य सूर्यं तर्पयामि ३, ॐ हरिमाणं च नाशय सूर्यं तर्पयामि ४, ॐ शुकेषु हरिमाणं सूर्यं तर्पयामि ५, रोपणाकासु दध्मसि सूर्यं तर्पयामि ६, अथो हारिद्रवेषुवे सूर्यं तर्पयामि ७, ॐ हरिमाणं निदध्मास सूर्यं तर्पयामि ८, ॐ उदगादयमादित्यः सूर्यं तर्पयामि ९, ॐ विश्वेन सहसा सह सूर्यं तर्पयामि १०, ॐ द्विषन्तं मह्यं रंधयन् सूर्यं तर्पयामि ११, ओमोमहं द्विषतेरधं सूर्यं तर्पयामि १२।**'

---

* 'नेत्रोपनिषद्' अथातश्चाक्षुषीं पठितसिद्धविद्यां चक्षूरोगहरां व्याख्यास्यामो यया चक्षूरोगाः सर्वतो नश्यन्ति। चक्षुषो दीप्तिर्भवति। अस्याश्चाक्षुषविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, सविता देवता, चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः। ॐ चक्षुश्चक्षुश्चक्षुस्तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथाहमन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय। कल्याणं कुरु कुरु। यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय। ॐ नमश्चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय। ॐ नमः करुणाकरायामृताय। ॐ नमः सूर्याय। ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय। उष्णो भगवान् शुचिरूपः। हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः। य इमां चाक्षुष्मतीं विद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुलेऽन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति। ॐ विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतीरूपं तपन्तं। सहस्त्ररश्मिभिः शतधा वर्तमानः पुरःप्रजानामुदयत्येष सूर्यः। 'ॐ नमो भगवते आदित्याय अवाग्वादिने स्वाहा।' इति। (कृ० य० चाक्षुषोप०)

इनके उच्चारणसे सूर्यके सम्मुख जल छोड़े। इसके पीछे उपर्युक्त '**उद्यन्नद्य**[१] **मित्रसह आरोहन्नुत्तरां दिशं सूर्यं तर्पयामि।**' कहकर सूर्यके सम्मुख जल छोड़े। इस प्रकार दो-दोके उच्चारणसे दूसरी बार और फिर उक्त '**उद्यन्नद्य०**' आदि चार-चार पदके एक-एक करके '**सूर्यं तर्पयामि**' कहते हुए तीसरी बार जल छोड़े। इसमें पहलेमें बारह, दूसरेमें छः और तीसरेमें तीन जलांजलि दी जाती है। ये सम्पूर्ण तीन ऋचा हैं। जिनके बारह पदोंसे बारह, दो-दोके युगलसे छः और चार-चारके पूरे मन्त्रसे तीन जलांजलियाँ दी जाती हैं। इस तर्पणसे नेत्रसम्बन्धी सर्वरोगोंका शमन तो होता ही है, श्रद्धाके साथ पाद-ऋचाओंसे बारह बार, अर्धऋचाओंसे दस बार, सर्वऋचाओंसे तीन बार, सार्धऋचासे दो बार और तीनों ऋचाओंसे एक बारकी कुल चौबीस जलांजलि देकर तर्पण करनेसे नेत्ररोग, ज्वररोग, विस्फोटक और सर्पविषतक दूर हो जाते हैं। परंतु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सामान्य या कठिन—जैसा रोग अथवा विष हो उसीके अनुसार[२] अट्ठाईस या एक सौ आठ बार तर्पण करे।

(६५) एकाक्षिगतनेत्ररोगोपशमनव्रत (मुक्तकसंग्रह) एक नेत्रके दृष्टिदोषकी शान्तिके लिये रजतमय शुक्रमूर्तिका गन्धाक्षतादिसे पूजन करके तत्समीपमें बैठकर '**शुक्रज्योतिश्च०**' इस ऋचाका एक सहस्र बार जप करके इसी मन्त्रसे पलाशकी समिधाओंको गायके घीमें डुबोकर उनकी एक सौ आहुति दे और हविष्यान्न (जौ, गेहूँ या चावल)-का एक समय भोजन करे। इस प्रकार

---

१. उद्यन्नद्येति मन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः।
रोगघ्नश्च विषघ्नश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥ (शौनक)

२. 'अस्य सकलस्यापि तर्पणप्रयोगस्य व्याध्यनुसारेणाष्टाविंशतिरष्टोत्तरशतमित्याद्यावृत्तिः कल्पनीया।' (अनु० प्रकाश)

इक्कीस, इक्यावन या सौ व्रत करनेसे एक नेत्रके रोगकी शान्ति होती है।

(६६) कर्णरोगोपशमनव्रत (मन्त्रमहार्णव)—माता, पिता और गुरु तथा गौ, ब्राह्मण और देवता इनकी निन्दा सुननेसे कर्णरोग होता है। उसकी निवृत्तिके लिये चार कृच्छ्रव्रत करके सौरमन्त्र (पूर्वोक्त '**उद्यन्नद्य०**' इन तीनों ऋचा)-के जप और उसके दशांशका हवन करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे तथा सुवर्णसहित लाल वस्त्रोंका दान करे।

(६७) बधिरत्वहरव्रत (सूर्यारुण ३२१, १६६३)—पूर्वजन्ममें अपनी पत्नीकी माता (सास)-को मारनेसे दूसरे जन्ममें बधिरत्व (बहरापन) प्राप्त होता है। उसके लिये चान्द्रायणव्रत करके सुवर्णसहित पुस्तकका दान करनेसे बधिरत्व दूर होता है।

(६८) नासारोगहरव्रत (मन्त्रमहार्णव)—लवणादिका अपहरण करनेके पापसे नाकके रोग होते हैं; उनके उपशमनार्थ '**उद्यन्नद्यादि०**' तीनों ऋचाओंका एक सौ आठ आहुति देकर ब्राह्मणको भोजन करावे और स्वयं गोदान करे।

(६९) मुखरोगहरव्रत (महार्णव)—झूठी गवाही देनेसे मुखमें रोग होते हैं। इनकी शान्तिके लिये कृच्छ्रातिकृच्छ्र चान्द्रायणव्रत करके गायत्रीके अयुत (दस हजार) जप और कूष्माण्डीका हवन करे तथा चावलोंका दान करके भात खाकर एकभुक्त व्रत करे।

(७०) मूकत्वहरव्रत (सूर्यारुण २०१)—पूर्वजन्ममें भाईकी हत्या और विद्वानोंसे विवाद करनेके पापसे मनुष्य मूक (गूँगा) होता है। इसके निमित्त माघशुक्ला पंचमी या पूर्णिमाको प्रात:स्नानादिके पश्चात् चौकीपर अष्टदल कमल लिखे और उसके ऊपर षट्शास्त्रोंसहित ऋगादि चारों वेदोंकी स्थापना करके उनका पंचोपचारसे पूजन करावे। फिर चार या छः अथवा दस

ब्राह्मणोंको मीठे पकवान भोजन कराकर उन्हें यथायोग्य पूजित पुस्तकें अर्पण करे। इस व्रतमें पूजाके प्रारम्भका संकल्प तथा मन्त्रोंका उच्चारण मूकके पिता या आचार्यको करना चाहिये।

(७१) कण्ठगतरोगहरव्रत (सूर्यारुण ११६)—लोगोंको लोभवश ठगने या जलाशयके समीपमें बैठे हुए बगुलोंको मारनेसे उत्पन्न हुए कण्ठरोगकी शान्तिके लिये सफेद रंगकी पयस्विनी गौका दान करना चाहिये; इससे आरोग्य-लाभ होता है।

(७२) दुर्गन्धनाशकव्रत (सूर्यारुण ६९०)—मोहवश माक्षिक मधु (शहद)-का हरण करने या मधुका क्रय-विक्रय करनेसे मुखमें अथवा सर्वांगमें दुर्गन्ध होती है। उसकी शान्तिके लिये अमावस्या, पूर्णिमा या व्यतीपातादिके दिन मधु-धेनुका दान करके उपवास करे।

(७३) अपस्मारहरव्रत (महार्णव)—गुरु तथा मालिकके प्रतिकूल आचरण करने आदिसे अपस्मार (मृगी) रोग होता है। इसकी निवृत्तिके लिये चान्द्रायणव्रत करके '**सदसस्पति०**' मन्त्रसे चरु और घीकी आहुति दे अथवा '**कया नश्चित्र०**' मन्त्रसे दस हजार बार आहुति और एक सौ जलांजलि (तर्पण) करे।

(७४) भगन्दररोगोपशमनव्रत (पद्मपुराण)—जो मनुष्य धर्मकी शपथके साथ लोक-कल्याणकारी कर्मका आरम्भ करके उसमें बाधा उपस्थित होनेके लिये अधर्मकारी काम करे या अपने गोत्रकी स्त्रीके साथ प्रसंग करे, उसको भगन्दर रोग होता है। इसके निमित्त मेष (मेंढा)-का विधिपूर्वक दान करके एकभुक्त व्रत करना चाहिये।

(७५) भगन्दरहरदानव्रत (सूर्यारुण ८५)—माघ या वैशाखके शुक्लपक्षमें सप्तमी रविवारको प्रातःस्नानादि करनेके पश्चात् आकके पत्तेके आसनपर बैठकर सूर्याभिमुख हो यथाशक्ति सोना,

चाँदी या ताँबेके पात्रमें गायका घी भरे और उसमें यथासम्भव माणिक्य आदि रत्नोंके कण डालकर गन्धादिसे पूजन करे। पीछे सूर्यादि ग्रहोंके मन्त्रोंसे आठ, अट्ठाईस या एक सौ आठ आहुति देकर उक्त घृतपूर्ण पात्रका दान करे। दान देते समय '**आदित्यादिग्रहाः सर्वे नवरत्नप्रदानतः। विनाशयन्तु मे दोषान् क्षिप्रमेव भगन्दरम्॥**' इस मन्त्रको पढ़े।

(७६) गुदरोगहरव्रत (सूर्यारुण १७५)—रोगीको चाहिये कि वह श्रावण शुक्ल प्रतिपद्‌से भाद्रपदी अमावास्यापर्यन्त या अन्य किसी भी सुअवसरमें एक मासतक विष्णु और शिवका वेदोक्त मन्त्रोंसे षोडशोपचारोंद्वारा पूजन करे, गौका दान दे और प्राजापत्यव्रत करके सुपूजित मूर्ति वेदवेत्ता विद्वान्‌को अर्पण करे। इस प्रकार करनेसे गुदामें या उसके आसपास होनेवाले रोग शान्त हो जाते हैं।

(७७) पंगुत्वहरव्रत (सूर्यारुण ५१८)—पूर्वजन्ममें कुक्कुट (मुर्गा) आदिके मारनेवाले मनुष्य पंगु होते हैं। उनको चाहिये कि वे सुवर्णादिका दान करके पक्षियोंका पालन करें।

(७८) पंगुरोगहरव्रत (सूर्यारुण १३३२)—यदि पूर्वजन्ममें श्रृगाल (गीदड़)-की हत्या की गयी हो तो दूसरे जन्ममें हत्यारे मनुष्यको पंगु होना पड़ता है। उस हत्याके पापसे छुटकारा पानेके लिये सुवर्णयुक्त घोड़ेका दान और व्रत करे।

(७९) कुब्जत्वहरव्रत (सूर्यारुण १६५०)—जन्मान्तरमें किये हुए शश, मृग या मूषकादिके घातजन्य पापसे मनुष्योंको कुब्जत्व प्राप्त होता है। इस दोषको दूर करनेके लिये व्रत करके विधिपूर्वक सोपस्कर (वस्त्राभूषणादिसहित) शय्याका दान करे।

(८०) कुनखत्वहरव्रत (सूर्यारुण २६२)—सुवर्णका अपहरण

करनेसे कुनख रोग होता है। उसकी निवृत्तिके निमित्त कार्तिक मासमें चान्द्रायणव्रत और राममन्त्रके जप करने चाहिये।

(८१) दन्तहीनत्वदोषहरव्रत (सूर्यारुण १८७१—१८७५)— किसी जन्ममें वराहकी हत्या करनेसे मनुष्योंको दन्तहीनत्व दोष प्राप्त होता है। उस पापकी निवृत्तिके लिये घीमें यथाशक्ति सुवर्ण डालकर उसका दान करे या ताँबाके कलशको घृतपूर्ण करके गरीबको दे।

(८२) शीर्षव्रणहरव्रत (सूर्यारुण १९१९)—जन्मान्तरमें नारिकेल (नारियल या श्रीफलों)-के अपहरण करनेसे मुखमण्डलको शोभाहीन बनानेवाला शीर्षव्रण होता है। उसके निवारणके निमित्त शिवजीके मन्दिरमें जाकर उनका यथाविधि पूजन करे और नारियलका फल चढ़ावे। इसी प्रकार पार्वतीजीकी भी यथावत् पूजा करे। फिर हाथ जोड़कर '**यन्मया नारिकेलानि हृत्वा पापमुपार्जितम्। अर्चितो भगवान् रुद्रो भवान्या भयभंजनः॥ यथाशक्ति च दानाद्यैर्भवन्तोऽपि च पूजिताः। कर्मणानेन मे नाशमुपैतु शिरसो व्रणः॥**' इस मन्त्रसे प्रार्थना करके फलाहार करे।

(८३) शेफसव्रणहरव्रत (सूर्यारुण १९२०)—म्लेच्छ-स्त्रियोंमें अभिगमन करनेसे इन्द्रियके अग्रभागपर शूकोत्थ (इन्द्रियको दीर्घ करनेवाला दुष्टव्रण) होता है। इसके होनेसे शुक्र, मूत्र और पुरीषादिके त्यागमें बड़ी असुविधा होती है। भरतने लिखा है कि रेतस्स्रावके समय शेफससंचित जलस्राव हो जाता है। इस अनिष्टकर व्रणको दूर करनेके लिये शुक्लपक्षकी द्वादशीको सूर्योदयसे पहले किसी स्वच्छ जलवाले जलाशयपर जाकर प्रातःस्नानादि करनेके अनन्तर हाथमें जल, फल और गन्धाक्षत लेकर '**मम तिलजीतिप्रसिद्धशूकोत्थशेफसव्रणनिरसनपूर्वकं**

मेढरगतसर्वरोगप्रशान्तये च श्रीवरुणदेवमहं पूजयिष्ये।' इस प्रकार संकल्प करके वरुणका यथाविधि पूजन करे और यजुर्वेदके विद्वान् ब्राह्मणको गौ देकर फलाहारपूर्वक व्रत करे।

(८४) योनिगतव्रणहरव्रत (मन्त्रमहार्णव)—पतिके परलोकवासके पश्चात् जो स्त्रियाँ परपुरुषके साथ सहवास करती हैं, उनके उसी या दूसरे जन्ममें मूत्रद्वारमें ऐसा व्रण होता है जिससे सहवासके अनन्तर उनको बड़ी पीड़ा होती है। इस पापकी शान्तिके लिये नील वृषका दान करके घी, तिल और शर्कराका हवन करे।

(८५) स्त्रीस्तनस्फोटकहरव्रत (ऋग्वेदविधान)—पतिकी उपस्थितिमें परपुरुषसे प्रेम करनेके पापसे परिणाममें उसके स्तनपर फोड़ा और मूत्रद्वारसे रक्तस्राव होता है। उसकी शान्तिके लिये पाँचों लवण (सेंधा, साँभर, विड, संचर और श्याम), हल्दी, धान्य और वस्त्रादिके साथ सुपूजित गौका दान करे।

(८६) वातकृतरक्तस्रावहरव्रत (वृद्धबौधायन)—सवर्णामें गमन करनेसे वातकृतरक्तस्राव होता है। उसके लिये छः वर्षोंतक कृच्छ्रव्रत करना चाहिये।

(८७) गर्भस्रावहरव्रत (शातातप)—पूर्वजन्ममें दूसरी स्त्रियोंके गर्भस्राव कराकर भ्रूणहत्या करानेके पापसे स्त्रियोंके गर्भस्राव होता है। उसके लिये सोनेका यज्ञोपवीत बनवाकर दान दे।

(८८) सुतहीनत्वदोषहरव्रत (सूर्यारुण ९६)—पराये पुत्रोंका प्राणान्त करनेके पापसे पुत्रहीनता प्राप्त होती है। इसकी निवृत्तिके लिये सोनेके पात्रमें सगर्भा स्त्रीका चित्र बनवाकर उसका पूजन करे और '**आर्यामेनां च सौवर्णीं वस्त्राढ्यां विधिदैवताम्। ददेऽहं विप्रमुख्याय पूजिताय विधानतः॥ गर्भपातनजाद्दोषा- त्पूर्वपापविशुद्धये।'** इसका उच्चारण करके सत्पात्रको दे। इसके

अतिरिक्त गायत्री अथवा त्र्यम्बक मन्त्रके पचीस सौ जप और व्रत करनेके अनन्तर हवन और ब्राह्मण-भोजन करावे।

(८९) वन्ध्यात्वहरगौरीव्रत (सूर्यारुण १७४, ३४७, ३८८)— यदि ब्राह्मणी होकर वैश्यके साथ या वैश्या होकर शूद्रके साथ सहवास करे तो वह दूसरे जन्ममें वन्ध्या होती है। इस पापकी शान्तिके लिये मार्गशीर्ष शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे प्रारम्भ करके सोलह दिनतक गौरीपूजनके साथ एकभुक्तव्रत करे तथा '**वन्ध्यत्वहरगौर्यै नमः**' इस मन्त्रका प्रतिदिन सोलह हजार जप करे। तत्पश्चात् समाप्तिके दिन तिल-तैलपूर्ण सोलह दीपक जलाकर गौरीके सम्मुख रख दे और रातमें जागरण करे। फिर दूसरे दिन सोलह दम्पती (ब्राह्मण-ब्राह्मणी)-को भोजन करवाकर सोलह सौभाग्याष्टक दान करे।

(९०) षण्ढत्वहरव्रत (सूर्यारुण २४३)—अविवाहिता षोडशवर्षीया कुमारिकाके साथ बलात्कार करनेसे मनुष्य षण्ढ (हींजड़े) होते हैं। उनको चाहिये कि वे प्रतिदिन बाणलिंग (नर्मदेश्वर)-का पूजन करके व्रत करें।

(९१) उन्मादरोगहरव्रत (सूर्यारुण २२७—२३३)—यदि पुरुष यौवनसे उन्मत्त होकर अबलाओंपर बलात्कार करे या स्त्री स्वच्छन्दरूपमें रहकर सर्वत्र विचरे तो उन्माद रोग (पागलपन) होता है। इसकी निवृत्तिके लिये व्रत करके सुवर्णके ब्रह्माजीका और ताँबेके मृगका पूजन करे। साथ ही गायत्रीका जप तथा हवन करे।

(९२) जालन्धररोगहरछायापात्रविधानव्रत (कर्मकौस्तुभ)— चौंसठ पलके परिमाणवाले कांस्यपात्रको घृतसे पूर्ण करके उसमें सुवर्णके कण डाल दे; फिर उस घीमें अपने सम्पूर्ण शरीरकी छायाको देखकर उसका दान करे। देते समय '**आयुर्बलं यशो**

वर्च आज्यं स्वर्णं तथामृतम्। आधारं तेजसां यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥' इस मन्त्रका उच्चारण करे। इसके बाद व्रत करके यथाशक्ति दुग्धपानकर उपवास करे।

(९३) सर्वव्याधिहरव्रत (शातातपादि)—श्रेष्ठ पात्रमें उत्तम श्रेणीके चावल भरकर उसे वस्त्रसे ढक दे। फिर उसमें हर प्रकारकी व्याधियोंके उपस्थित होनेकी भावना करके उनका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे। साथ ही विद्वान् ब्राह्मणका पूजन करके उस तण्डुलसे भरे हुए पात्रको श्रद्धाके साथ उसे दान दे, उस समय **'ये मां रोगाः प्रबाधन्ते देहस्थाः सततं मम। गृह्णीष्व प्रतिरूपेण तान् रोगान् द्विजसत्तम॥'** इस श्लोकका उच्चारण करे। तदनन्तर प्रतिग्राहीको यथाशक्ति वस्त्राभूषण, भोजन और दक्षिणा आदि देकर विदा करे। इससे सम्पूर्ण रोग शान्त होते हैं।

(९४) प्रसवपीडाहरव्रत (संस्कारप्रकाश)—पलाशपत्रके दोनेमें एक पल (लगभग ४५ ग्राम) तिलका तैल भरकर दूर्वाके इक्कीस पत्रोंद्वारा प्रदक्षिण-क्रमसे उसका आलोडन करे (दूर्वांकुरोंको तैलमें घुमावे)। उस समय प्रत्येक बारके आलोडनमें **'हिमवत्युत्तरे पार्श्वे शबरी नाम यक्षिणी। तस्या नूपुरशब्देन विशल्या स्यात्तु गर्भिणी॥'** इस मन्त्रका उच्चारण करता रहे। इक्कीस बार जप हो जानेपर उसमेंसे थोड़ा-सा तैल गर्भिणीको पिलावे और स्वयं उपवास करके उक्त मन्त्रका जप करे। इससे सुखपूर्वक प्रसव होता है और गर्भावस्थाकी पीड़ा मिट जाती है।

लोकहितकरव्रत

(९५) अनावृष्ट्युपशमनविधानव्रत (शारदातिलक)—किसी भी शुभ दिनमें विद्वान्, सदाचारी और सत्कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले वयोवृद्ध ब्राह्मणोंको बुलाकर उनका षोडशोपचारसे पूजन करे। फिर उनके समक्ष वस्त्राच्छादित वेदीपर अष्टदल

कमलके मध्यभागमें सूर्यकी, उसके पूर्वमें इन्द्रकी और पश्चिममें वरुणकी स्थापना करके उनका षोडशोपचारद्वारा पूजन करे, फिर उपस्थित ब्राह्मणोंसे अनावृष्टिहर और सद्योवृष्टिकर उत्तम अनुष्ठान करनेकी प्रार्थना करे। तब धर्मप्राण यजमानकी प्रार्थनाको सफल करनेकी दृढ़ आशा हृदयमें रखकर सम्पूर्ण अनुष्ठानी ब्राह्मण अपने आसनोंपर बैठकर '**ॐ ध्रुवा सुत्वा स क्षितिषु**[१] **क्षियंतो व्यस्मत्पाशं**[२] **वरुणो मुमोचत्**[३]**। अवोवन् माना आदि**[४] **तेरुपस्थाद्युयं पात**[५] **स्वस्तिभिः सदा नः॥**[६]' इस मन्त्रके अंगन्यासादिपूर्वक एक लाख जप करे। अंगन्यास और करन्यासादिमें उक्त ऋचाके जो छः खण्ड हैं, उन्हींसे क्रमशः १ हृदय, २ सिर, ३ शिखा, ४ दोनों भुजा, ५ दोनों नेत्र और ६ दोनों हाथोंका स्पर्श करे। अन्तिम यानी छठे खण्ड—'**स्वस्तिभिः सदा नः**' का उच्चारण करके '**अस्त्राय फट्**' कहते हुए ताली बजानी चाहिये। यही अंगन्यास है। इसी प्रकार १ अंगुष्ठ, २ तर्जनी, ३ मध्यमा, ४ अनामिका, ५ कनिष्ठा और ६ करतल एवं करपृष्ठोंका स्पर्श करे। यह करन्यास है। इसके अतिरिक्त उक्त '**ध्रुवा सुत्वा०**' मन्त्रके बयालीस वर्णोंमेंसे एक-एक वर्णसे सर्वांगन्यास करके ध्यान करे। ध्यान यह है—'**चन्द्रप्रभं पंकजसंनिषण्णं पाशांकुशाभीतिवरं दधानम्। मुक्ताविभूषांचितसर्वगात्रं ध्यायेत् प्रसन्नं वरुणं विभूत्यै॥**' इस प्रकार ध्यान करनेके पश्चात् पाँच, सात, नौ या तेरह ब्राह्मण एकाग्रचित्त होकर जप करें और एक, पाँच या चौबीस लाख जितना जप करना हो उसका हिसाब लगाकर प्रतिदिन उसी प्रमाणसे जप करते हुए नियत दिनोंतक अनुष्ठान करें। अनुष्ठानके दिनोंमें भूशयन और ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए क्रोधादिका त्याग करें। प्रतिदिन एकभुक्त (किसी एक ही पदार्थका) या एकभुक्त (एक बार) भोजन करें।

(९६) वृष्टिप्रदव्रत (बृहदृग्विधान)—उस मनुष्यको धन्य कहना चाहिये जिसके धन-रत्नादिसे भरे हुए सौ ऊँट, सौ ऊँटनी, पुत्र, पत्नी और पुत्रवधू आदि सभी एक-एक करके बाढ़में बह गये तो भी उसने वर्षाके विषयमें यही कहा कि '*वर्षा तो बरषी भली, होनी हो सो होय।*' वास्तवमें संसारके जितने भी पदार्थ और प्राणी हैं, वे रातभरकी वर्षासे ही सस्ते, सुलभ और सुखी हो जाते हैं तथा अवसरपर वर्षा न होनेसे ही सब महँगे, दुर्लभ और दुःखी हो जाते हैं। अतः वृष्टिके निमित्त नियमपालनपूर्वक व्रत-विधानादिका करना-कराना नितान्त आवश्यक है। व्रतीको चाहिये कि वह जलद अथवा वारुणयोगमें प्रातःस्नानादि करके गीले वस्त्र धारण किये सूर्यके सम्मुख शुभासनपर बैठे। काम-क्रोधादिका त्याग करे तथा ब्रह्मचर्यका पालन और भूशयन करते हुए निराहार रहे। यथोचित वर्षाके अतिशीघ्र होनेकी आशा, विश्वास और अनुरागको अपने अन्तःकरणमें सुस्थिर करके हाथमें जल, फल, गन्धाक्षत और पुष्प लेकर '**मम समस्तलोकोपकारकामनासिद्ध्यर्थं वृष्टिप्राप्तये ऋग्वेदीय 'अच्छावदेति०' सूक्तस्यानुष्ठानमहं करिष्ये।**' यह संकल्प करके १ '**अच्छावदत०**', २ '**विवृक्षान्हन्ति०**', ३ '**रथीव कशया०**', ४ '**प्रवाता वान्ति०**', ५ '**यस्य व्रते०**', ६ '**दिवो नो वृष्टिं०**', ७ '**अभिक्रन्दस्तनय०**', ८ '**महान्तं कोश०**', ९ '**यत्पर्जन्य कनिक्रदत्०**' और १० '**अवर्षीर्वर्ष०**' इस सूक्तसे अथवा इसकी प्रत्येक ऋचासे अयुतवेतसी (आम्लवेत जिसको कुछ लोग जलबेत कहते हैं)-की दस हजार समिधाओंको, जिनकी लम्बाई एक बित्तेसे कम न हो, घी और दूधमें प्लावित करके सूक्त अथवा ऋचाके साथ-साथ '**पर्जन्याय स्वाहा**' कहकर हवन करे। इस प्रकार भूख-प्यास और जागरणका कष्ट सहन करते हुए

अथक परिश्रम और उत्साहसे युक्त होकर (अधिक-से-अधिक) पाँच राततक जप और हवन करे। यदि हो सके तो आप अकेले ही सारी रात जागकर अनुष्ठान करें, न हो सके तो तीन अन्य व्यक्तियोंको सहायक बना ले। एक-एक आदमी एक-एक प्रहर अनुष्ठानमें लगे रहें। इस प्रकार पाँच राततक अखण्ड अनुष्ठान चालू रखे। ऐसा करनेसे निश्चय ही भारी वृष्टि होती है। (उपर्युक्त सूक्त अथवा इसकी दस ऋचाएँ तथा पहले भी जो मन्त्र अथवा ऋचाएँ आयी हैं उनको विस्तारभयसे यहाँ संकेतरूपमें लिखा गया है। यदि किसीको इस समय इन मन्त्रोंकी आवश्यकता हो तो वे ऋग्वेद, यजुर्वेद, अनुष्ठानप्रकाश और वीरसिंहावलोकनमें, जो बंबई वेंकटेश्वरप्रेस आदिमें मिल सकते हैं, इनका अवलोकन करें।)

(९७) महामारीशमनविधानव्रत (ब्रह्मवैवर्त)—राजाओंके किये हुए महापापोंके प्रभावसे प्रजामें महामारी-जैसे दारुण और असहनीय उपद्रव हुआ करते हैं, उनके उपशमनार्थ स्वयं राजा या सम्पूर्ण प्रजा अथवा कोई भी धर्मप्राण महापुरुष अकेला या सामूहिक रूपसे अनुष्ठान करे। ऐसा अनुष्ठान नगर, ग्राम या बस्तीके मध्यभागमें होना चाहिये अथवा सद्गृहस्थ पुरुष अपने-अपने घरोंमें ही अनुष्ठान कर सकते हैं। इसके लिये नृसिंह-पुराणके अनुसार 'नृसिंहमन्त्र' के जप, अनुष्ठानप्रकाशादिके अनुसार महामृत्युंजयजप; सौ हजार या दस हजार दुर्गापाठ; रुद्र, अतिरुद्र और महारुद्रादिके विधान; भैरव-भैरवी आदिकी उपासना; चौराहोंमें तिल, घी, चीनी और अमृता आदि विषघ्न ओषधियोंका एक लक्ष हवन, नौ दिनोंतक श्रीराम-नाम-कीर्तन, यथाशक्ति दान, धर्म और ब्राह्मण-भोजन आदि उपाय बतलाये गये हैं। इनके अनुष्ठानसे महामारी या महोग्रज्वर आदिके उपद्रव शान्त

होते हैं। इस विषयमें 'सुश्रुत' का सिद्धान्त सर्वोत्तम प्रतीत होता है। उसने कहा है कि '**देशत्यागाज्जपाद्धोमान्महामारी प्रशाम्यति**'[१] इसी प्रकार प्लेगके विषयमें देवीभागवतके प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ आचार्यने लिखा है कि—'**मूषकं पतितोत्थं च मृतं दृष्ट्वा च यद् गृहे। तद् गृहं तत्क्षणं त्यक्त्वा सकुटुम्बो वनं व्रजेत्॥**'[२] इन सबमें नियमानुसार रहना और ईश्वरका स्मरण करना सर्वोत्कृष्ट है।

(९८) सर्वरोगनाशक धर्मराजव्रत (मन्त्रमहोदधि)—कोई भी रोग किसी भी औषधोपचारसे शान्त न हुआ हो तो प्रातःस्नानादिके पश्चात् पवित्रावस्थामें रहकर '**ॐ क्रौं ह्रीं आं वैवस्वताय धर्मराजाय भक्तानुग्रहकृते नमः**' इस मन्त्रका पूर्णतया अभ्यास करके मन-ही-मन अखण्ड जप करता रहे; इससे सम्पूर्ण पाप, ताप और रोग दूर होते हैं।

(९९) सर्वरोगहर चित्रगुप्तव्रत (मन्त्रमहोदधि)—'**ॐ नमो विचित्राय धर्मलेखकाय यमवाहिकाधिकारिणे मृत्युं जन्म संपत्प्रलयं कथय कथय स्वाहा।**' इस मन्त्रका दस हजारसे अधिक जप करनेपर हर प्रकारके रोग-दोषादि शान्त होते हैं।

(१००) कलिमलहर श्रीकृष्णव्रत (सूर्यारुण ३०९)—जिस वर्षमें भाद्रपदकी कृष्णाष्टमी अर्धरात्रव्यापिनी हो और उसके साथ बुधवार, रोहिणी-नक्षत्र तथा शुभ योग हो, उस वर्षके उस पावन पर्वके दिन प्रातःकाल तीर्थादिके जलसे या कुएँके तुरंत निकाले हुए पानीसे स्नान करके संध्या-वन्दनादि

१- जहाँ महामारी फैली हो उस स्थान या गाँवको छोड़कर हट जाने और जप तथा हवन करनेसे महामारी शान्त हो जाती है।

२- जिस घरमें चूहेको गिरकर—उछलकर प्राण-त्याग करते देखा जाय, उसे छोड़कर कुटुम्बसहित वनमें (शून्य स्थानमें) चले जाना चाहिये।

नित्यकर्म करनेके पश्चात् उपवास करके '**ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः।**' इस मन्त्रका दिनभर मानस जप करता रहे और सायंकालमें श्रीकृष्णका उत्साहपूर्वक उत्सव करके गायन, वादन और नर्तन करके जागरण करे। फिर दूसरे दिन व्रतका विसर्जन करके पारणा करे तो इस व्रतके प्रभावसे भवसागरसम्भूत सम्पूर्ण बाधाएँ और पापसम्भूत सम्पूर्ण रोग-दोष शान्त होकर अपूर्व सुख-सौभाग्यादिकी प्राप्ति होती है।

पापसम्भूतसर्वरोगार्तिहरव्रत समाप्त

पाँच पुत्रप्रद व्रत

(१) गो-पूजन—किसी सौभाग्यवतीको पुत्र न होता हो तो वह कार्तिक, मार्गशीर्ष या वैशाखके शुक्ल पक्षमें पहले गुरुवारको गो-पूजन प्रारम्भ करे। प्रातःकाल नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर अपनी या परायी किसी भी गौको मकानके प्रांगणमें पूर्वाभिमुख खड़ी करके स्वयं उत्तराभिमुख होकर शुद्ध जलसे उसका पादप्रक्षालन करे। फिर उसके ललाटको धोकर मध्यमें रोलीका टीका लगावे और अक्षत चढ़ावे। फिर कुछ भोजन, लड्डू, पेड़ा, बतासा या गुड़ खिलाकर मुँह धो देवे। फिर करबद्ध नतमस्तक होकर प्रार्थना करे कि 'हे मातः! मुझे पुत्र प्रदान कर।' इस प्रकार वर्षभर करना चाहिये।

(२) अभिलाषाष्टक* (स्कन्दपुराण, काशीखण्ड पूर्वार्द्ध, अध्याय १०)—ऋषिवर विश्वानरकी धर्मपत्नी शुचिष्मतीने अपने पतिसे प्रार्थना की कि मेरे 'शिव-समान पुत्र हो।' यह सुनकर विश्वानर क्षणभर तो चुप रहे, फिर बोले 'एवमस्तु' और उन्होंने स्वयं ही १२ महीनेतक फलाहार, जलाहार और वाय्वाहारके आधारपर घोर तप किया। फिर काशी जाकर विकरादेवी तथा सिद्धि-विनायकके समीप चन्द्रकूपमें स्नान करके वहीं वीरेश्वरके समीप अभिलाषाष्टकके आठ मन्त्रोंसे बड़ी श्रद्धापूर्वक स्तुति की। इससे भगवान् शंकर

---

* एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किंचित्।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम्॥ १॥
एकः कर्ता त्वं हि विश्वस्य शम्भो नाना रूपेष्वेकरूपोऽस्यरूपः।
यद्वत्प्रत्यस्वर्क एकोऽप्यनेकस्तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये॥ २॥
रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रूप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ।
यद्वत्तद्वद्विश्वगेष प्रपंचो यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम्॥ ३॥
तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः।
पुष्पे गन्धो दुग्धमध्ये च सर्पिर्यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये॥ ४॥

प्रसन्न हो गये और कुछ ही दिन बाद विश्वानरकी पत्नी शुचिष्मतीको गर्भ रह गया। समय आनेपर उसने शिवसदृश पुत्र गृहपति (अग्नि)-को जन्म दिया। अतः संतानकी कामनावाले पति या पत्नीको चाहिये, प्रातः शौच-स्नानादिसे निवृत्त हो शिवजीका पूजन करे और इस स्तोत्रका आठ या अट्ठाईस बार पाठ करे। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त पाठ करते रहनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है।

(३) पापघट-दान—किसी पातक, उपपातक या महापातकके प्रभावसे पुत्र नहीं हुआ हो तो दम्पतिको चाहिये कि वे किसी तीर्थपर जाकर किसी शुभ दिनमें पापघट-दान करें। यथासामर्थ्य सोने, चाँदी या ताँबेका ६४ पलका कलश रखकर उसपर अग्न्युत्तारणकर पंचगव्यादिसे शुद्ध करें। साथ ही किसी ऐसे दूरस्थ ब्राह्मणको बुलावें जो दान लेकर चले जानेपर फिर कभी देखनेमें न आवे। इसके पूर्व दिन दोनों स्त्री-पुरुष एक बार भोजनकर ब्रह्मचर्य पालन करें। फिर दूसरे दिन शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर शुद्ध स्थानमें पूर्वाभिमुख बैठें। सामने किसी चौकी या वेदीपर लाल वस्त्र बिछाकर उसपर अक्षतसे अष्टदल कमल बनावें। फिर उसपर यथाविधि कलश स्थापनकर उसमें घी या शक्कर भरकर आम्रपल्लव अथवा अशोकादि पत्रोंसे सुशोभित कर ऊपर पूर्णपात्र स्थापित करें। उसके मध्यभागमें

शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रेरघ्राणस्त्वं व्यंघ्रिरायासि दूरात्।
व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग् वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये॥ ५॥
नो वेदस्त्वामीश साक्षाद्धि वेद नो वा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य।
नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये॥ ६॥
नो ते गोत्रं नेश जन्मापि नाख्या नो वा रूपं नैव शीलं न देशः।
इत्थं भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः सर्वान् कामान् पूरयेस्तद्भजे त्वाम्॥ ७॥
त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः।
त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत्किं यत्त्वं नास्यतस्त्वां नतोऽस्मि॥ ८॥
(स्कं० काशी० १०। १२६—१३३)

सुवर्णनिर्मित विष्णुमूर्ति और उसके समीप ही फणाकृति नागमूर्ति स्थापित करें। प्रांगणके मध्यभागमें स्थण्डिलके ऊपर पंचभू-संस्कारपूर्वक अग्नि-स्थापन करें। गणपतिपूजन, नान्दीश्राद्ध, पुण्याहवाचन एवं ग्रहस्थापनकर सबोंका पूजन करें। फिर भगवान् विष्णुकी षोडशोपचारपूजाकर नागकी पंचोपचारसे पूजा करे। फिर कुशकण्डिका करके विष्णुमन्त्रसे घीकी १००८ या १०८ आहुतियाँ दें और पूर्वोक्त ब्राह्मणका पूजनकर उसे भोजन करावें। इसी समय '**मनसा दुर्विनीतेन***' आदि मन्त्रोंको पढ़ते हुए प्रति मन्त्र अक्षत या दूब कलशपर चढ़ाता जाय। मन्त्र समाप्त हो जानेपर हाथमें जल, फल, चन्दन, अक्षत-पुष्पादि लेकर देश-कालादिका कीर्तनकर '**अमुकोऽहं मत्कर्तृकानेकजन्मार्जितज्ञाताज्ञातवाङ्मनःकायकृतमहापातकोपपातकादिपूरितमिमं घटं गन्धपुष्पाद्यर्चितं तुभ्यं सम्प्रददे।**' इस प्रकार संकल्पकर ब्राह्मणके हाथमें संकल्प छोड़ दे। साथ ही थोड़ा सुवर्ण देकर उस कलशको दोनों हाथोंसे उठाकर ब्राह्मणको दे और हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—

महीसुर! द्विजश्रेष्ठ! जगतस्तापहारक।
त्राहि मां दुःखसंतप्तं त्रिभिस्तापैः सदार्दितम्॥
संसारकूपतस्त्वं मां समुद्धर नमोऽस्तु ते।
त्वदन्यो नास्ति मां देव समुद्धर्तुं क्षमः क्षितौ॥

इस प्रकार प्रार्थनाकर विसर्जन करे। फिर आचार्यको दक्षिणा देकर भोजन कराये। तदनन्तर दम्पति स्वयं भोजन करें।

---

* मनसा दुर्विनीतेन यन्मया पातकं कृतम्।
तत्तिष्ठतु घटे चास्मिन् गुरुदेवप्रसादतः॥ १॥
व्रजता तिष्ठता वापि कर्मणा यदुपार्जितम्। तत्तिष्ठतु०॥ २॥
परस्वहरणेनापि पातकं यदुपार्जितम्। तत्तिष्ठतु०॥ ३॥
सुवर्णस्तेयजं पापं मनोवाक्कायकर्मजम्। तत्तिष्ठतु०॥ ४॥
रसविक्रयतः पापं ब्रह्मजन्मनि संचितम्। तत्तिष्ठतु०॥ ५॥

(४) कृष्णव्रत—प्रौढावस्थामें भी पुत्र न हो तो यज्ञोपवीत धारण करके श्रीकृष्ण या गणेशके मन्दिरमें अथवा गोशाला या पीपल, गूलर या कदम्ब-वृक्षके नीचे बैठकर कमल, कदम्ब या तुलसीकी मालापर—'**देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥**' इस मन्त्रका प्रतिदिन पाँच हजार, ढाई हजार या एक सहस्र जप करे। इस प्रकार एक लाख पूरा हो जानेपर दशांश हवन, तर्पण, मार्जनकर ब्राह्मणोंको खीर, मालपूआ, पूड़ीका भोजन करावे। ऐसा करनेसे श्रीकृष्णकी कृपासे पुत्र प्राप्त होता है।

(५) गायत्रीपुरश्चरण—किसी निश्चित शुभ मुहूर्तमें प्रारम्भ करे। इसके एक दिन पूर्व उपवासपूर्वक क्षौराचरणकर दशविधस्नान करे। दूसरे दिन देवमन्दिर या बिल्ववृक्षके नीचे भगवान् सूर्यके स्वरूपका चिन्तन करता हुआ रुद्राक्षकी मालासे प्रतिदिन पाँच सहस्र या एक सहस्र गायत्रीका जप करे। साथ ही गोघृतसे दशांश हवन भी करता जाय। जपके बाद प्रतिदिन जौकी रोटी और मूँगकी दाल बनाकर भोजन करे। अन्न स्वकीय ही होना चाहिये। चौबीस लाख जप पूरा हो जानेपर पुरश्चरण सम्पूर्ण होता है। यह पुरश्चरण यदि निर्विघ्न समाप्त हो जाय; तो व्रतकर्ताको धन, धान्य, प्रतिष्ठा, पुत्रादिकी प्राप्ति होती है।

क्षात्रधर्मविहीनेन क्षात्रजन्मनि यत्कृतम् । तत्तिष्ठतु० ॥ ६ ॥
वैश्यजन्मन्यपि मया तथा यत्पातकं कृतम् । तत्तिष्ठतु० ॥ ७ ॥
शूद्रजन्मनि यत्पापं सततं समुपार्जितम् । तत्तिष्ठतु० ॥ ८ ॥
गुरुदाराभिगमनात् पातकं यन्मयार्जितम् । तत्तिष्ठतु० ॥ ९ ॥
अपेयपानसम्भूतं पातकं यन्मयार्जितम् । तत्तिष्ठतु० ॥ १० ॥
वापीकूपतडागानां भेदनेन कृतं च यत् । तत्तिष्ठतु० ॥ ११ ॥
अभक्ष्यभक्षणेनैव संचितं यत्त पातकम् । तत्तिष्ठतु० ॥ १२ ॥
ज्ञाताज्ञातैरनेकैश्च घटोऽयं सम्भृतो मया ।
पूर्वजन्मान्तरोत्पन्नैरेतज्जन्मकृतैरपि ॥ १३ ॥

वटसावित्रीव्रत-कथा

सनत्कुमार उवाच

कुलस्त्रीणां व्रतं ब्रूहि महाभाग्यं तथैव च।
अवैधव्यकरं स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रदायकम्॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा ज्ञानी परमधार्मिकः।
नाम्ना चाश्वपतिर्वीरो वेदवेदांगपारगः॥ २ ॥
अनपत्यो महाबाहुः सर्वैश्वर्यसमन्वितः।
सपत्नीकस्तपस्तेपे समाराधयते नृपः॥ ३ ॥
सावित्रीं च प्रसावित्रीं जपन्नास्ते महामनाः।
जुहोति चैव सावित्रीं भक्त्या परमया युतः॥ ४ ॥
ततस्तुष्टा तु सावित्री सा देवी द्विजसत्तम।
सविग्रहवती देवी तस्य दर्शनमागता॥ ५ ॥
भूर्भुवः स्वरवन्त्येषा साक्षसूत्रकमण्डलुः।
तां तु दृष्ट्वा जगद्वन्द्यां सावित्रीं च द्विजोत्तम॥ ६ ॥
प्रणिपत्य नृपो भक्त्या प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ तुष्टा देवी जगाद ह॥ ७ ॥

सावित्र्युवाच

तुष्टाहं तव राजेन्द्र वरं वरय सुव्रत।
एवमुक्तस्तया राजा प्रसन्नां तामुवाच ह॥ ८ ॥

राजोवाच

अनपत्यो ह्यहं देवि पुत्रमिच्छामि शोभनम्।
नान्यं वृणोमि सावित्रि पुत्रमेव जगन्मये॥ ९ ॥

अन्यदस्ति समग्रं मे क्षितौ यच्चापि दुर्लभम्।
प्रसादात् तव देवेशि तत् सर्वं विद्यते गृहे॥ १०॥
एवमुक्ता तु सा देवी प्रत्युवाच नराधिपम्।

सावित्र्युवाच

पुत्रस्ते नास्ति राजेन्द्र कन्यैका ते भविष्यति॥ ११॥
कुलद्वयं तु सा राजन्नुद्धरिष्यति भामिनी।
मन्नाम्ना राजशार्दूल तस्या नाम भविष्यति॥ १२॥
इत्युक्त्वा तं मुनिश्रेष्ठ राजानं ब्रह्मणः प्रिया।
अन्तर्धानं गता देवी संतुष्टोऽसौ महीपतिः॥ १३॥
ततः कतिपयाहोभिस्तस्य राज्ञी महीभुजः।
ससत्त्वा समजायेत पूर्णे काले सुषाव ह॥ १४॥
सावित्र्या तुष्टया दत्ता सावित्र्या जप्तया तथा।
सावित्री तेन वरदा तस्या नाम बभूव ह॥ १५॥
राजते देवगर्भाभा कन्या कमललोचना।
ववृधे सा मुनिश्रेष्ठ चन्द्रलेखेव चाम्बरे॥ १६॥
सावित्री ब्रह्मणो वै सा श्रीरिवायतलोचना।
तां दृष्ट्वा हेमगर्भाभां राजा चिन्तामुपेयिवान्॥ १७॥
आयाच्यमानां च वरै रूपेणाप्रतिमां भुवि।
तस्या रूपेण ते सर्वे संनिरुद्धा महीभुजः॥ १८॥
ततश्च राजा आहूय उवाच कमलेक्षणाम्।
पुत्रि प्रदानकालस्ते न च याचन्ति केचन॥ १९॥
स्वयं वरय हृद्यं ते पतिं गुणसमन्वितम्।
मनःप्रह्लादनकरं शीलेनाभिजनेन च॥ २०॥
इत्युक्त्वा तां च राजेन्द्रो वृद्धामात्यैः सहैव च।
वस्त्रालंकारसहितां धनरत्नैः समन्विताम्॥ २१॥
विसृज्य च क्षणं तत्र यावत् तिष्ठति भूमिपः।
तावत् तत्र समागच्छन्नारदो भगवानृषिः॥ २२॥

अपूजयत् ततो राजा अर्घ्यपाद्येन तं मुनिम्।
आसने च सुखासीनः पूजितस्तेन भूभुजा॥ २३॥
पूजयित्वा मुनिं राजा प्रोवाचेदं द्विजोत्तमम्।
पावितोऽहं त्वया विप्र दर्शनेनाद्य नारद॥ २४॥
यावदेवं वदेद् राजा तावत् सा कमलेक्षणा।
आश्रमादागता देवी वृद्धामात्यैः समन्विता॥ २५॥
अभिवन्द्य पितुः पादौ ववन्दे सा मुनिं ततः।
नारदेन तु दृष्टा सा स तु प्रोवाच भूमिपम्॥ २६॥

नारद उवाच

कन्यां च देवगर्भाभां किमर्थं न प्रयच्छसि।
वराय त्वं महाबाहो वरयोग्यां हि सुन्दरीम्॥ २७॥
एवमुक्तस्तदा तेन मुनिना नृपसत्तमः।
उवाच तं मुनिं वाक्यमनेनार्थेन प्रेषिता॥ २८॥
आगतेयं विशालाक्षी मया सम्प्रेषिता सती।
अनया च वृतो भर्ता पृच्छ त्वं मुनिसत्तम॥ २९॥
सा पृष्टा तेन मुनिना तस्मै चाचष्ट भामिनी।

सावित्र्युवाच

आश्रमे सत्यवान् नाम द्युमत्सेनसुतो मुने।
भर्तृत्वेन मया विप्र वृतोऽसौ राजनन्दनः॥ ३०॥

नारद उवाच

कष्टं कृतं महाराज दुहित्रा तव सुव्रत।
अजानन्त्या वृतो भर्ता गुणवानिति विश्रुतः॥ ३१॥
सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते।
स्वयं सत्यं प्रभाषेत सत्यवानिति तेन सः॥ ३२॥
तथा चाश्वाः प्रियास्तस्य अश्वैः क्रीडति मृण्मयैः।
चित्रेऽपि विलिखत्यश्वांश्चित्राश्वस्तेन चोच्यते॥ ३३॥

रूपवान् गुणवांश्चैव सर्वशास्त्रविशारदः।
न तस्य सदृशो लोके विद्यते चेह मानवः॥ ३४॥
सर्वैर्गुणैश्च सम्पन्नो रत्नैरिव महार्णवः॥ ३५॥
एको दोषो महानस्य गुणानावृत्य तिष्ठति।
संवत्सरेण क्षीणायुर्देहत्यागं करिष्यति॥ ३६॥

अश्वपतिरुवाच

अन्यं वरय भद्रं ते वरं सावित्रि गम्यताम्।
विवाहस्य तु कालोऽयं वर्तते शुभलक्षणे॥ ३७॥

सावित्र्युवाच

नान्यमिच्छाम्यहं तात मनसापि वरं प्रभो।
यो मया च वृतो भर्ता स मे नान्यो भविष्यति॥ ३८॥
विचिन्त्य मनसा पूर्वं वाचा पश्चात् समुच्चरेत्।
क्रियते च ततः पश्चाच्छुभं वा यदि वाशुभम्॥ ३९॥
तस्मात् पुमांसं मनसा कथं चान्यं वृणोम्यहम्।
सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।
सकृत् कन्या प्रदीयेत त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥ ४०॥
इति मत्वा न मे बुद्धिर्विचलेच्च कथंचन।
सगुणो निर्गुणो वापि मूर्खः पण्डित एव च॥ ४१॥
दीर्घायुरथवाल्पायुः स वै भर्ता मम प्रभो।
नान्यं वृणोमि भर्तारं यदि वा स्याच्छचीपतिः॥ ४२॥
इति मत्वा त्वया तात यत् कर्तव्यं वदस्व तत्।

नारद उवाच

स्थिरा बुद्धिश्च राजेन्द्र सावित्र्याः सत्यवान् प्रति॥ ४३॥
त्वरयस्व विवाहाय भर्त्रा सह कुरु त्विमाम्।

ईश्वर उवाच

निश्चितां तु मतिं ज्ञात्वा स्थिरां बुद्धिं च निश्चलाम्॥ ४४॥

सावित्र्याश्च महाराजः प्रतस्थेऽसौ वनं प्रति।
गृहीत्वा तु धनं राजा द्युमत्सेनस्य संनिधौ॥ ४५॥
स्वल्पानुगो महाराजो वृद्धामात्यैः समन्वितः।
नारदस्तु ततः खे वै तत्रैवान्तरधीयत॥ ४६॥
स गत्वा राजशार्दूलो द्युमत्सेनेन संगतः।
वृद्धश्चान्धश्च राजासौ वृक्षमूलमुपाश्रितः॥ ४७॥
सावित्र्यश्वपती राजा पादौ जग्राह वीर्यवान्।
स्वनाम च समुच्चार्य तस्थौ तस्य समीपतः॥ ४८॥
उवाच राजा तं भूपं किमागमनकारणम्।
पूजयित्वार्घ्यदानेन वन्यमूलफलैश्च सः॥ ४९॥
ततः पप्रच्छ कुशलं स राजा मुनिसत्तम।

अश्वपतिरुवाच

कुशलं दर्शनेनाद्य तव राजन् ममाद्य वै॥ ५०॥
दुहिता मम सावित्री तव पुत्रमभीप्सति।
भर्तारं राजशार्दूल प्राप्नोत्वियमनिन्दिता॥ ५१॥
मनसा कांक्षितं पूर्वं भर्तारमनया विभो।
आवयोश्चैव सम्बन्धो भवत्वद्य ममेप्सितः॥ ५२॥

द्युमत्सेन उवाच

वृद्धश्चान्धश्च राजेन्द्र फलमूलाशनोऽस्म्यहम्।
राज्याच्च्युतश्च मे पुत्रो वन्येनाद्य स जीवति॥ ५३॥
सा कथं सहते दुःखं दुहिता तव कानने।
अनभिज्ञा च दुःखानामित्यहं नाभिकांक्षये॥ ५४॥

अश्वपतिरुवाच

अनया च वृतो भर्ता जानन्त्या राजसत्तम।
अनेन सहवासस्तु तव पुत्रेण मानद॥ ५५॥
स्वर्गतुल्यो महाराज भविष्यति न संशयः॥ ५६॥

एवमुक्तस्तदा तेन राज्ञा राजर्षिसत्तमः।
तथेति स प्रतिज्ञाय चकारोद्वाहमुत्तमम्॥ ५७॥
कृत्वा विवाहं राजेन्द्रं सम्पूज्य विविधैर्धनैः।
अभिवाद्य द्युमत्सेनं जगाम नगरीं प्रति॥ ५८॥
सावित्री तु पतिं लब्ध्वा इन्द्रं प्राप्य शची यथा।
सत्यवानपि ब्रह्मर्षे तथा पत्न्याभिनन्दितः॥ ५९॥
क्रीडते तद्वनोद्देशे पौलोम्या मघवानिव।
नारदस्य च तद् वाक्यं हृदयेन मनस्विनी॥ ६०॥
वहन्ती नियमं चक्रे व्रतस्यास्य च भामिनी।
गणयन्ती दिनान्येव न लेभे तोषमुत्तमम्॥ ६१॥
ज्ञात्वा तद् दिवसं विप्र भर्तुर्मरणकारणम्।
व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रं स्थिराभवत्॥ ६२॥
ततस्त्रिरात्रं निर्वृत्य संतर्प्य पितृदेवताः।
श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ ववन्दे चारुहासिनी॥ ६३॥
कुठारं परिगृह्याथ कठिनं चैव सुव्रत।
प्रतस्थे स वनायैव सावित्री वाक्यमब्रवीत्॥ ६४॥

सावित्र्युवाच

न गन्तव्यं वनं त्वद्य मम वाक्येन मानद।
अथवा गम्यते साधो मया सह वनं व्रज॥ ६५॥
संवत्सरं भवेत् पूर्णमाश्रमेऽस्मिन् मम प्रभो।
तद् वनं द्रष्टुमिच्छामि प्रसादं कुरु मे विभो॥ ६६॥

सत्यवानुवाच

नाहं स्वतन्त्रः सुश्रोणि पृच्छस्व पितरौ मम।
ताभ्यां प्रस्थापिता गच्छ मया सह शुचिस्मिते॥ ६७॥
एवमुक्ता तदा तेन भर्त्रा सा कमलेक्षणा।
श्वश्रूश्वशुरयोः पादावभिवाद्येदमब्रवीत्॥ ६८॥

वनं द्रष्टुमभीच्छेयमाज्ञां मह्यं प्रदीयताम्।
भर्त्रा सह वनं गन्तुमेतत् त्वरयते मनः॥ ६९॥
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा द्युमत्सेनो ब्रवीदिदम्।
व्रतं कृतं त्वया भद्रे पारणं कुरु सुव्रते॥ ७०॥
पारणान्ते ततो भीरु वनं गन्तुं त्वमर्हसि॥ ७१॥

सावित्र्युवाच

नियमश्च कृतोऽस्माभी रात्रौ चन्द्रोदये सति।
जाते मया प्रकर्तव्यं भोजनं तात मे शृणु॥ ७२॥
वनदर्शनकामोऽस्ति भर्त्रा सह ममाद्य वै।
न मे तत्र भवेद् ग्लानिर्भर्त्रा सह नराधिप॥ ७३॥
इत्युक्तस्तु तया राजा द्युमत्सेनो महीपतिः।
यत् तेऽभिलषितं पुत्रि तत् कुरुष्व सुमध्यमे॥ ७४॥
नमस्कृत्वा तु सावित्री श्वश्रूं च श्वशुरं तथा।
सहिता सा जगामाथ तेन सत्यव्रता मुने॥ ७५॥
विलोकयन्ती भर्तारं प्राप्तकालं मनस्विनी।
वनं च फलितं दृष्ट्वा पुष्पितद्रुमसंकुलम्॥ ७६॥
द्रुमाणां चैव नामानि मृगाणां चैव भामिनी।
पश्यन्ती मृगयूथानि हृदयेन प्रवेपती॥ ७७॥
तत्र गत्वा सत्यवान् वै फलान्यादाय सत्वरम्।
काष्ठानि च समादाय बबन्ध भारकं तदा।
कठिनं पूरयामास कृत्वा वृक्षावलम्बनम्॥ ७८॥
वटवृक्षस्य सा साध्वी उपविष्टा महासती।
काष्ठं पाटयतस्तस्य जाता शिरसि वेदना॥ ७९॥
ग्लानिश्च महती जाता गात्राणां वेपथुस्तदा।
आदाय वृक्षसामीप्यं सावित्रीमिदमब्रवीत्॥ ८०॥
मम गात्रेऽतिकम्पश्च जाता शिरसि वेदना।
कण्टकैर्भिद्यते भद्रे शिरो मे शूलसम्मितैः॥ ८१॥

उत्संगे तव सुश्रोणि स्वप्तुमिच्छामि सुव्रते।
अभिज्ञा सा विशालाक्षी तस्य मृत्योर्मनस्विनी॥ ८२॥
प्राप्तं कालं मन्यमाना तस्थौ तत्रैव भामिनी।
सत्यवानपि सुप्तस्तु कृत्वोत्संगे शिरस्तदा॥ ८३॥
तावत् तत्र समागच्छत् पुरुषः कृष्णपिंगलः।
जाज्वल्यमानो वपुषा ददर्शामुं च भामिनी॥ ८४॥
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञा कस्त्वं लोकभयंकरः।
नाहं धर्षयितुं शक्या पुरुषेणापि केनचित्॥ ८५॥
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं यमो लोकभयंकरः।
क्षीणायुस्तु वरारोहे तव भर्ता मनस्विनि॥ ८६॥
नेष्याम्येनमहं बद्ध्वा विद्ध्येतन्मे चिकीर्षितम्॥ ८७॥

सावित्र्युवाच

श्रूयते भगवन् दूतास्तवागच्छन्ति मानवान्।
नेतुं किल भवान् कस्मादागतोऽसि स्वयं प्रभो॥ ८८॥
इत्युक्तः पितृराजस्तां भगवान् स्वचिकीर्षितम्।
यथावत् सर्वमाख्यातुं तत् प्रियार्थं प्रचक्रमे॥ ८९॥
अयं च धर्मसंयुक्तो रूपवान् गुणसागरः।
नार्हो मत्पुरुषैर्नेतुमतोऽस्मि स्वयमागतः॥ ९०॥
ततः सत्यवतः कायात् पाशबद्धं वशं गतम्।
अंगुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्॥ ९१॥
निर्विचेष्टं शरीरं तद् बभूवाप्रियदर्शनम्।
यमस्तु तं ततो बद्ध्वा प्रयातो दक्षिणामुखः॥ ९२॥
सावित्री चापि दुःखार्ता यममेवान्वगच्छत।
नियमव्रतसंसिद्धा महाभागा पतिव्रता॥ ९३॥

यम उवाच

निवर्त गच्छ सावित्रि कुरुष्वास्यौर्ध्वदेहिकम्।
कृतं भर्तुस्त्वयानृण्यं यावद् गम्यं गतं त्वया॥ ९४॥

सावित्र्युवाच

यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति।
मयापि तत्र गन्तव्यमेष धर्मः सनातनः॥ ९५ ॥
तपसा गुरुभक्त्या च भर्तुः स्नेहाद् व्रतेन च।
तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः॥ ९६ ॥
प्राहुः साप्तपदं मैत्रं बुधास्तत्त्वार्थदर्शिनः।
मित्रतां च पुरस्कृत्य किंचिद् वक्ष्यामि तच्छृणु॥ ९७ ॥
नानात्मवन्तस्तु वने चरन्ति
धर्मं च वासं च परिश्रमं च।
विज्ञानतो धर्ममुदाहरन्ति
तस्मात्सन्तो धर्ममाहुः प्रधानम्॥ ९८ ॥
एकस्य धर्मेण सतां मतेन
सर्वे स्म तं मार्गमनुप्रपन्नाः।
मा वै द्वितीयं मा तृतीयं च वाञ्छे
तस्मात्सन्तो धर्ममाहुः प्रधानम्॥ ९९ ॥

यम उवाच

निवर्त तुष्टोऽस्मि त्वयानया गिरा
स्वराक्षरव्यंजनहेतुयुक्तया।
वरं वृणीष्वेह विनास्य जीवितं
ददामि ते सर्वमनिन्दिते वरम्॥ १००॥

सावित्र्युवाच

च्युतः स्वराज्याद् वनवासमाश्रितो
विनष्टचक्षुः श्वशुरो ममाश्रमे।
स लब्धचक्षुर्बलवान् भवेन्नृप-
स्तव प्रसादाज्ज्वलनार्कसंनिभः॥ १०१॥

यम उवाच

ददानि तेऽहं तमनिन्दिते वरं
यथा त्वयोक्तं भविता च तत् तथा।

तवाध्वना ग्लानिमिवोपलक्षये
निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत्॥ १०२॥

सावित्र्युवाच

कुतः श्रमो भर्तृसमीपतो हि मे
यतो हि भर्ता मम सा गतिर्ध्रुवा।
यतः पतिं नेष्यसि तत्र मे गतिः
सुरेश भूयश्च वचो निबोध मे॥ १०३॥
सतां सकृत् संगतमीप्सितं परं
ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते।
न चाफलं सत्पुरुषेण संगतं
ततः सतां संनिवसेत् समागमे॥ १०४॥

यम उवाच

मनोऽनुकूलं बुधबुद्धिवर्धनं
त्वया यदुक्तं वचनं हिताश्रयम्।
विना पुनः सत्यवतो हि जीवितं
वरं द्वितीयं वरयस्व भामिनि॥ १०५॥

सावित्र्युवाच

हृतं पुरा मे श्वशुरस्य धीमतः
स्वमेव राज्यं लभतां स पार्थिवः।
जह्यात् स्वधर्मान्न च मे गुरुर्यथा
द्वितीयमेतद् वरयामि ते वरम्॥ १०६॥

यम उवाच

स्वमेव राज्यं प्रतिपत्स्यतेऽचिरा-
न्न च स्वधर्मात् परिहास्यते नृपः।
कृतेन कामेन मया नृपात्मजे
निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत्॥ १०७॥

सावित्र्युवाच

प्रजास्त्वयैता नियमेन संयता
नियम्य चैता नयसे निकामया।
ततो यमत्वं तव देव विश्रुतं
निबोध चेमां गिरमीरितां मया॥ १०८॥
अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥ १०९॥
एवं प्रायश्च लोकोऽयं मनुष्याःशक्तिपेशलाः।
सन्तस्त्वेवाप्यमित्रेषु दयां प्राप्तेषु कुर्वते॥ ११०॥

यम उवाच

पिपासितस्येव भवेद् यथा पय-
स्तथा त्वया वाक्यमिदं समीरितम्।
विना पुनः सत्यवतोऽस्य जीवितं
वरं वृणीष्वेह शुभे यदिच्छसि॥ १११॥

सावित्र्युवाच

ममानपत्यः पृथिवीपतिः पिता
भवेत् पितुः पुत्रशतं तथौरसम्।
कुलस्य संतानकरं च यद् भवेत्
तृतीयमेतद् वरयामि ते वरम्॥ ११२॥

यम उवाच

कुलस्य संतानकरं सुवर्चसं
शतं सुतानां पितुरस्तु ते शुभे।
कृतेन कामेन नराधिपात्मजे
निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता॥ ११३॥

सावित्र्युवाच

न दूरमेतन्मम भर्तृसंनिधौ
मनो हि मे दूरतरं प्रधावति।

अथ व्रजन्नेव गिरं समुद्यतां
मयोच्यमानां शृणु भूय एव च॥ ११४॥
विवस्वतस्त्वं तनयः प्रतापवां-
स्ततो हि वैवस्वत उच्यसे बुधैः।
समेन धर्मेण चरन्ति ताः प्रजा-
स्ततस्तवेहेश्वर धर्मराजता॥ ११५॥
आत्मन्यपि न विश्वासस्तथा भवति सत्सु यः।
तस्मात् सत्सु विशेषेण सर्वः प्रणयमिच्छति॥ ११६॥
सौहृदात् सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते।
तस्मात् सत्सु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः॥ ११७॥

यम उवाच

उदाहृतं ते वचनं यदंगने
शुभं न तादृक् त्वदृते श्रुतं मया।
अनेन तुष्टोऽस्मि विनास्य जीवितं
वरं चतुर्थं वरयस्व गच्छ च॥ ११८॥

सावित्र्युवाच

ममात्मजं सत्यवतस्तथौरसं
भवेदुभाभ्यामिह यत् कुलोद्भवम्।
शतं सुतानां बलवीर्यशालिना-
मिमं चतुर्थं वरयामि ते वरम्॥ ११९॥

यम उवाच

शतं सुतानां बलवीर्यशालिनां
भविष्यति प्रीतिकरं तवाबले।
परिश्रमस्ते न भवेन्नृपात्मजे
निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता॥ १२०॥

सावित्र्युवाच

सतां सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः
सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति।

सतां सद्भिर्नाफलः संगमोऽस्ति
सद्भ्यो भयं नानुवर्तन्ति सन्तः॥ १२१॥
सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्यं
सन्तो भूमिं तपसा धारयन्ति।
सन्तो गतिर्भूतभव्यस्य राजन्
सतां मध्ये नावसीदन्ति सन्तः॥ १२२॥
आर्यजुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम्।
सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ते परस्परम्॥ १२३॥
न च प्रसादः सत्पुरुषेषु मोघो
न चाप्यर्थो नश्यति नापि मानः।
यस्मादेतन्नियतं सत्सु नित्यं
तस्मात् सन्तो रक्षितारो भवन्ति॥ १२४॥

यम उवाच

यथा यथा भाषसि धर्मसंहितं
मनोऽनुकूलं सुपदं महार्थवत्।
तथा तथा मे त्वयि भक्तिरुत्तमा
वरं वृणीष्वाप्रतिमं पतिव्रते॥ १२५॥

सावित्र्युवाच

न तेऽपवर्गः सुकृताद् विना कृत-
स्तथा यथान्येषु वरेषु मानद।
वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं
यथा मृता ह्येवमहं पतिं विना॥ १२६॥
न कामये भर्तृविनाकृता सुखं
न कामये भर्तृविनाकृता दिवम्।
न कामये भर्तृविनाकृता श्रियं
न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम्॥ १२७॥
वरातिसर्गः शतपुत्रता मम
त्वयैव दत्तो ह्रियते च मे पतिः।

वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं
तवैव सत्यं वचनं भविष्यति॥ १२८॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वा तु तं पाशं मुक्त्वा वैवस्वतो यमः।
धर्मराजः प्रहृष्टात्मा सावित्रीमिदमब्रवीत्॥ १२९॥
एष भद्रे मया मुक्तो भर्ता ते कुलनन्दिनि।
अरोगस्तव नेयश्च सिद्धार्थः स भविष्यति॥ १३०॥
चतुर्वर्षशतायुश्च त्वया सार्धमवाप्स्यति॥ १३१॥
सा गता वटसामीप्यं कृत्वोत्संगे शिरस्ततः।
प्रबुद्धस्तु ततो ब्रह्मन् सत्यवानिदमब्रवीत्॥ १३२॥
मया स्वप्नो वरारोहे दृष्टोऽद्यैव च भामिनि।
तत् सर्वं कथितं तस्या यद् वृत्तं सर्वमेव तत्॥ १३३॥
तया च कथितः सर्वः संवादश्च यमेन हि।
अस्तंगते ततः सूर्ये द्युमत्सेनो महीपतिः॥ १३४॥
पुत्रस्यागमनाकांक्षी इतश्चेतश्च धावति।
आश्रमादाश्रमं गच्छन् पुत्रदर्शनकांक्षया॥ १३५॥
आवयोरन्धयोर्यष्टिः क्व गतोऽसि विनावयोः।
एवं स विविधं क्रोशन् सपत्नीको महीपतिः॥ १३६॥
चकार दुःखसंतप्तः पुत्रपुत्रेति चासकृत्।
अकस्मादेव राजेन्द्रो लब्धचक्षुर्बभूव ह॥ १३७॥
तद् दृष्ट्वा परमाश्चर्यं चक्षुःप्राप्तिं द्विजोत्तमाः।
सान्त्वपूर्वं तदा वाक्यमूचुस्ते तापसा भृशम्॥ १३८॥
चक्षुःप्राप्त्या महाराज सूचितं ते महीपते।
पुत्रेण च समं योगं प्राप्स्यसे नृपसत्तम॥ १३९॥

ईश्वर उवाच

यावदेवं वदन्त्येते तापसा द्विजसत्तमाः।
सावित्रीसहितः प्राप्तः सत्यवान् द्विजसत्तम॥ १४०॥

नमस्कृत्य द्विजान् सर्वान् मातरं पितरं तथा।
सावित्री च ततो ब्रह्मन् ववन्दे चरणौ मुदा॥ १४१॥
श्वश्रूश्वशुरयोस्तां तु पप्रच्छुर्मुनयस्तदा।

मुनय ऊचुः

वद सावित्रि जानासि कारणं वरवर्णिनि।
वृद्धस्य चक्षुषः प्राप्तेः श्वशुरस्य शुभानने॥ १४२॥

सावित्र्युवाच

न जानामि मुनिश्रेष्ठाश्चक्षुषः प्राप्तिकारणम्।
चिरं सुप्तस्तु मे भर्ता तेन कालव्यतिक्रमः॥ १४३॥

सत्यवानुवाच

अस्याः प्रभावात् संजातं दृश्यते कारणं न च।
तत् सर्वं विद्यते विप्राः सावित्र्यास्तपसः फलम्॥ १४४॥
व्रतस्यैव तु माहात्म्यं दृष्टमेतन्मयाधुना॥ १४५॥

ईश्वर उवाच

एवं तु वदतस्तस्य तदा सत्यवतो मुने।
पौराः समागतास्तस्य ह्याचख्युर्नृपतेर्हितम्॥ १४६॥

पौरा ऊचुः

येन राज्यं बलाद् राजन् हृतं क्रूरेण मन्त्रिणा।
अमात्येन हतः सोऽपि इतीव वयमागताः॥ १४७॥
उत्तिष्ठ राजशार्दूल स्वं राज्यं पालय प्रभो।
अभिषिच्यस्व राजेन्द्र पुरे मन्त्रिपुरोहितैः॥ १४८॥

ईश्वर उवाच

तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलः स्वपुरं जनसंवृतः।
पितृपैतामहं राज्यं सम्प्राप्य मुदमन्वभूत्॥ १४९॥
सावित्री सत्यवांश्चैव परां मुदमवापतुः।
जनयामास पुत्राणां शतं सा बाहुशालिनाम्॥ १५०॥
व्रतस्यैव तु माहात्म्यात् तस्याः पितुरजायत।
पुत्राणां च शतं ब्रह्मन् प्रसन्नाच्च यमात् तथा॥ १५१॥

एतत् ते कथितं सर्वं व्रतमाहात्म्यमुत्तमम्।
क्षीणायुर्जीवते भर्ता व्रतस्यास्य प्रभावतः॥ १५२॥
कर्त्तव्यं सर्वनारीभिरवैधव्यफलप्रदम्।

सनत्कुमार उवाच

विधानं ब्रूहि देवेश व्रतस्यास्य च त्र्यम्बक।
क्रियते विधिना केन स्त्रीभिस्त्रिपुरसूदन॥ १५३॥

ईश्वर उवाच

वर्षैकं नियमं कृत्वा एकभक्तेन मानद।
नक्ताहारेण वा विप्र भुक्तिं त्यक्त्वा द्विजर्षभ॥ १५४॥
त्रिदिनं लंघयित्वा च चतुर्थे दिवसे शुभे।
चन्द्रायार्घ्यं प्रदत्त्वा च पूजयित्वा सुवासिनीम्॥ १५५॥
सावित्रीं च प्रसावित्रीं गन्धपुष्पैः प्रपूज्य च।
मिथुनानि यथाशक्त्या भोजयित्वा यथासुखम्॥ १५६॥
भोक्ष्येऽहं तु जगद्धात्रि निर्विघ्नं कुरु मे शुभे।
दिनं दिनं प्रतिश्रेष्ठं कुर्यान्न्यग्रोधसेचनम्॥ १५७॥
कृत्वा वंशमये पात्रे वालुकाप्रस्थमेव च।
सप्तधान्यभृतं पात्रं प्रस्थैकेन द्विजोत्तम॥ १५८॥
कारयेन्मुनिशार्दूल वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्॥ १५९॥
तस्योपरि न्यसेद् देवीं सावित्रीं ब्रह्मणा सह।
सावित्री सत्यवांश्चैव कार्यौ स्वर्णमयौ शुभौ॥ १६०॥
पिटकं च कुठारं च कृत्वा रौप्यमयं द्विज।
फलैः कालोद्भवैर्देवीं पूजयेद् ब्रह्मणः प्रियाम्॥ १६१॥
हरिद्रारंजितैश्चैव कण्ठसूत्रैः समर्चयेत्।
सतीनां कण्ठसूत्राणि त्रिदिनं प्रतिदापयेत्॥ १६२॥
पक्वान्नानि च देयानि नित्यमेव द्विजोत्तम।
माहात्म्यं चैव सावित्र्याः श्रोतव्यं मुनिसत्तम॥ १६३॥
पुराणश्रवणं कार्यं सतीनां चरितं तथा।
पूजयेच्च तथा नित्यं मन्त्रेणानेन सुव्रत॥ १६४॥

‘सावित्री च प्रसावित्री सततं ब्रह्मणः प्रिया।
पूज्यसे हूयसे देवि द्विजैर्मुनिगणैः सदा॥ १६५॥
त्रिसन्ध्यं देवि भूतानां वन्दिता त्वं जगन्मये।
मया दत्तामिमां पूजां प्रतिगृह्ण नमोऽस्तु ते॥ १६६॥
सावित्री त्वं प्रसावित्री द्विधा भूतासि शोभने।
जगत्त्रयस्थिता देवि त्रिसन्ध्यं च तथानघे॥ १६७॥
श्रेष्ठे देवि त्रिलोके च त्रेताग्नौ त्वं महेश्वरि।
व्यापितः सकलो लोकश्चातो मां पाहि सर्वदा॥ १६८॥
रूपं देहि यशो देहि सौभाग्यं देहि मे शुभे।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वदा जन्मजन्मसु॥ १६९॥
यथा ते न वियोगोऽस्ति भर्त्रा सह सुरेश्वरि।
तथा मम महाभागे कुरु त्वं जन्मजन्मनि’॥ १७०॥
एवं सम्पूजयेद् देवीं कमलासनसंस्थिताम्।
एवं दिनत्रयं नीत्वा चतुर्थेऽहनि सत्तम॥ १७१॥
मिथुनानि च सम्भोज्य षोडशैव द्विजोत्तम।
पूजयेद् वस्त्रदानैश्च भूषणैश्च द्विजोत्तम॥ १७२॥
अर्चयित्वा तथाऽऽचार्यं सपत्नीकं सुसम्मतम्।
तस्मै संकल्पितं सर्वं हेमसावित्रिसंयुतम्॥ १७३॥
मन्त्रेणानेन दातव्यं द्विजमुख्याय सुव्रत।
सावित्रीं कल्पविदुषे प्रणिपत्य तथा मुने॥ १७४॥
‘सावित्रीं जगतां माता सावित्री जगतः पिता।
मया दत्ता च सावित्री ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम्॥ १७५॥
अवैधव्यं च मे नित्यं भूयाज्जन्मनि जन्मनि’।
मृता च वसते लोके ब्रह्मणः पतिना सह।
तत्रैव च चिरं कालं भुङ्क्ते भोगाननुत्तमान्॥ १७६॥

इति श्रीहेमाद्रिविरचिते चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे स्कन्दमहापुराणे वटसावित्रीव्रतकथा समाप्ता।

मंगलागौरीव्रत-कथा

युधिष्ठिर उवाच

नन्दनन्दन गोविन्द शृण्वतो बहुलाः कथाः।
श्रुती ममोत्के पुत्रायुष्करं श्रोतुं मम व्रतम्॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अवैधव्यकरं वक्ष्ये व्रतं चारिनिषूदन।
शृणु त्वं सावधानः सन् कथां वक्ष्ये पुरातनीम्॥ २ ॥
कुण्डिनं नाम नगरं ख्यातस्तत्र द्विजप्रियः।
आसीद् वणिग् धर्मपालो नाम्ना बहुधनोऽपि सः॥ ३ ॥
सपत्नीको ह्यपुत्रोऽसौ नास्तीति व्याकुलो हृदि।
तस्य गेहे भस्मलिप्तो देहे रुद्राक्षधारकः॥ ४ ॥
जटिलो भिक्षुको नित्यमागच्छन् प्रियदर्शनः।
अन्नं नांगीचकारासाविति दृष्ट्वाबलावदत्॥ ५ ॥
स्वामिन्नयं सदायाति भिक्षुको जटिलो गृहे।
न स्वीकरोत्यस्मदन्नमिति दृष्ट्वा ममाधिकम्॥ ६ ॥
दुःखं प्रजायते नित्यं श्रुत्वा भार्यावचोऽब्रवीत्।

धर्मपाल उवाच

प्रिये कदाचिद् गुप्ता त्वं ससुवर्णांगणे भव॥ ७ ॥
यदा भिक्षार्थमायाति भिक्षोर्वस्त्रान्तरे त्वया।
तदा तस्य प्रदेयानि सुवर्णानि प्रियेऽनघे॥ ८ ॥
अनन्तरं तस्य भार्याचीकरत् स्वामिनोदितम्।
जटिलेन तु सा शप्तापत्यं ते न भविष्यति॥ ९ ॥
श्रुत्वा भिक्षोरिदं वाक्यं दुःखिता तमुवाच ह।
स्वामिन् शप्ता त्वया पापा शापादुद्धर सम्प्रति॥ १०॥
इत्युक्त्वा तस्य चरणौ ववन्दे दीनभाषिणी।

जटिल उवाच

भर्तुः समीपे वक्तव्यं त्वया पुत्रि ममाज्ञया॥ ११॥

नीलवस्त्रः समारुह्य नीलाश्वं गच्छ काननम्।
खननं तत्र कर्त्तव्यं यत्राश्वस्ते स्खलिष्यति॥ १२॥
रम्यं पक्षिभिरायुक्तं मृगसंघद्रुमाकुलम्।
सुवर्णरचितं रत्नमाणिक्यादिविभूषितम्॥ १३॥
नानापुष्पैः समायुक्तं दृश्यं देवालयं ततः।
वर्तते तत्रभवती भवानी भक्तवत्सला॥ १४॥
आराधय त्वं मनसा यथाविध्युद्धरिष्यति।
त्वां भवानीति वचनं श्रुत्वा भिक्षोः सुखप्रदम्॥ १५॥
ववन्दे तस्य चरणौ पुनः पुनरिंदम।
तदैव काले जटिलस्त्वन्तर्भूतो बभूव सः॥ १६॥
सावदत् पतिमत्रेहि शृणु भिक्षूक्तमादरात्।
यथोक्तमवदद् भर्ता तच्छ्रुत्वा वाक्यमादरात्॥ १७॥
नीलवस्त्रः समारुह्य नीलाश्वं प्रस्थितो वनम्।
गच्छन् नानाविधान् वृक्षान् पथि पश्यन् भयाकुलः॥ १८॥
मृगान् सिंहान् दन्दशूकान् पथि पश्यन् भयाकुलः।
ददर्शासौ तडागं च बाहुल्येन विराजितम्॥ १९॥
रक्तनीलोत्पलैश्चक्रवाकद्वन्द्वैश्च राजितम्।
स्नानं चकार तत्रासौ तर्पणाद्यपि भूरिशः॥ २०॥
पुनरश्वं समारुह्य जगाम गहनं वनम्।
स्खलितं वाजिनं पश्यन्नश्वादुत्तीर्य तत् क्षणम्॥ २१॥
चखान पृथिवीं तत्र यावद् देवालयं मुदा।
ददर्श च महास्थूलं देवालयमसौ युतम्॥ २२॥
रत्नैर्मुक्ताफलैश्चैव माणिक्यैश्चापि सर्वतः।
पूजयामास जटिलवाक्यं स्मृत्वातिविस्मितः॥ २३॥
सुवर्णयुक्तवस्त्राणि चन्दनान्यक्षताञ्छुभान्।
चम्पकादीनि पुष्पाणि धूपं दीपं विशेषतः॥ २४॥
नानापक्वान्नसंयुक्तं रसैः षड्भिः समन्वितम्।
नानाशाकैः समायुक्तं सदुग्धघृतशर्करम्॥ २५॥

नैवेद्यं करशुद्ध्यर्थं चन्दनं मलयाद्रिजम्।
सम्पाद्य तुष्टहृदयः फलताम्बूलदक्षिणाः॥ २६ ॥
श्रद्धया पूजयामास धर्मपालो महाधनः।
जजाप मन्त्रान् गुप्तोऽसौ सगुणध्यानपूर्वकम्॥ २७ ॥
देवी भक्तं समागत्य लोभयामास सादरम्।
प्रसन्नावददत्रेयं पूजा सम्पादिता कथम्॥ २८ ॥
येन सम्पादिता तस्मै ददामि वरमद्भुतम्।
इति श्रुत्वा धर्मपालो देव्यग्रे प्रांजलिः स्थितः॥ २९ ॥

भगवत्युवाच

धर्मपाल त्वया सम्यक् पूजा सम्पादितानघ।
वरं याचय मद्भक्त ददामि बहुलं धनम्॥ ३० ॥

धर्मपाल उवाच

बहुला धनसम्पत्तिर्वर्तते त्वत्प्रसादतः।
अपत्यं प्राप्तुमिच्छामि पितॄणां तारकं शुभम्॥ ३१ ॥
आयाति भिक्षुको गेहे गृह्णाति न मदन्नकम्।
तेन मे बहुलं दुःखं सभार्यस्योपजायते॥ ३२ ॥
इति दीनवचः श्रुत्वा देवी वचनमब्रवीत्।

देव्युवाच

धर्मपालक तेऽदृष्टेऽपत्यं नास्ति सुखप्रदम्॥ ३३ ॥
तथापि किं याचयसि कन्यां विगतभर्तृकाम्।
पुत्रमल्पायुषं वाथाप्यन्धं दीर्घायुषं सुतम्॥ ३४ ॥

धर्मपाल उवाच

पुत्रमल्पायुषं देहि तावता कृतकृत्यताम्।
प्राप्नोमि चोद्धरिष्यामि पितॄंश्च मम घोरगान्॥ ३५ ॥

देव्युवाच

मत्पार्श्वे वर्तमानस्य नाभावारुह्य शुण्डिनः।
तत्पार्श्ववर्तिचूतस्य गृहीत्वा फलमद्भुतम्॥ ३६ ॥

पत्न्यै देयं ततः पुत्रो भविष्यति न संशयः ॥ ३७ ॥
इति देवीवचः श्रुत्वा गत्वा तत्पार्श्व एव च।
नाभिं गजमुखस्याथारुह्य जग्राह मोहतः ॥ ३८ ॥
फलान्युत्तीर्य च ततः फलमेकं ददर्श सः।
एवं पुनः पुनः कुर्वन् फलमेकं ददर्श सः ॥ ३९ ॥
क्षुब्धो गणपतिश्चाथ धर्मपालाय शप्तवान्।
षोडशे वत्सरे प्राप्ते तेऽहिः पुत्रं दंशिष्यति ॥ ४० ॥
धर्मपालः फलं सम्यग् वस्त्रे बद्ध्वागमद् गृहम्।
फलं पत्न्यै ददौ सापि भक्षयित्वा पतिव्रता ॥ ४१ ॥
गर्भं सा धारयामास पत्या सह सुसंगता।
सम्पूर्णे नवमे मासे प्रासूत सुतमुत्तमम् ॥ ४२ ॥
जातकर्म चकारास्य पिता संतुष्टमानसः।
षष्ठीपूजां चकारास्य षष्ठे तु दिवसे ततः ॥ ४३ ॥
द्वादशेऽहनि सम्प्राप्ते शिवनाम्नाऽऽजुहाव तम्।
षष्ठे मासि चकारासावन्नप्राशनमद्भुतम् ॥ ४४ ॥
तृतीये वत्सरे चूडामष्टमेऽब्दे ह्यनुत्तमम्।
कृत्वोपनयनं पार्थ विप्रोऽभूत् तुष्टमानसः ॥ ४५ ॥
दशमे वत्सरे प्राप्तेऽब्रवीद् भार्या पतिव्रता।

भार्योवाच

बालकस्य विवाहोऽपि कर्तव्यः सुमुहूर्तके ॥ ४६ ॥

धर्मपाल उवाच

मया संकल्पितं काश्यां गमनं बालकस्य तत्।
कृत्वा समायातु ततो विवाहोऽस्य भविष्यति ॥ ४७ ॥
पुत्रोऽसौ प्रेषितस्तेन श्यालकेन समन्वितः।
वाराणस्यां प्रस्थितोऽसौ गृहीत्वा बहुलं धनम् ॥ ४८ ॥
कुर्वन्तौ पथि सद्धर्मं प्रतिष्ठापुरमीयतुः।
क्रीडन्त्यः कन्यका दृष्टास्तत्र देशे मनोरमे ॥ ४९ ॥

तासां समाजे गौरांगी सुशीला नाम कन्यका।
तया सह सखी काचिच्चकार कलहं भृशम्॥ ५० ॥
गालनं च ददौ तस्यै रण्डेऽभाग्ये मुहुर्मुहुः।

सुशीलोवाच

सखि त्वया गालनं मे व्यर्थं दत्तं शुभानने॥ ५१ ॥
जनन्या मे मानवत्याश्चास्ति गौरीव्रतं शुभम्।
तस्य प्रसादात् सकलाः सम्बन्धिन्यः प्रियाः स्त्रियः॥ ५२ ॥
आजन्माविधवा जाताः किं पुनः कन्यका ध्रुवम्।
वक्ष्ये तस्य प्रभावं किं व्रतराजस्य भामिनि॥ ५३ ॥
पूजने धूपगन्धोऽयं यत्र तत्र सुखं भवेत्।
इति श्रुत्वा ततो वाक्यं विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥ ५४ ॥
मातुलश्चिन्तयामास बालकस्य प्रियं ततः।
शतजीवी भवेदेष एतद्धस्ताक्षता यदि॥ ५५ ॥
पतन्त्यमुष्य शिरसि विभाव्येति पुनः पुनः।
सुशीलामेव पश्यन् स विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥ ५६ ॥
सुशीला प्रस्थिता गेहे तदनुप्रस्थितावुभौ।
स्वगृहं प्राप गौरांगी निकटे तद्गृहस्य तौ॥ ५७ ॥
सत्तडागे रम्यदेशे वासं चक्रतुरादरात्।
विवाहकाले सम्प्राप्ते सुशीलाजनको हरिः॥ ५८ ॥
विवाहोद्योगवान् जातो निश्चिकाय हरं वरम्।
असमर्थं हरं दृष्ट्वा तन्मातापितरावुभौ॥ ५९ ॥
ययाचतुः शिवं बद्ध्वांजली विनययुक्तकौ।

वरपितरावूचतुः

उपस्थितो विवाहो नौ पुत्रस्य शुभया हरेः॥ ६० ॥
सुशीलया कन्ययायमसमर्थश्च दृश्यते।
अतो देयः शिवः श्रीमाँल्लग्नकाले त्वया विभो॥ ६१ ॥
लग्नं भविष्यति ततो देयोऽस्माभिः शिवस्तव।

मातुल उवाच

अवश्यं लग्नकालेऽसौ शिवो ग्राह्यः प्रियंवद:॥ ६२॥
ततो मुहूर्ते सम्प्राप्ते विवाहमकरोच्छिव:।
तत्रैव शयनं चक्रे ससुशीलः प्रियंवद:॥ ६३॥
स्वप्ने सा मंगलागौरी मातृरूपेण भास्वता।
सुशीलामवदत् साध्वी हितं वचनमेव च॥ ६४॥

गौर्युवाच

सुशीले तव गौरांगि भर्तुर्दंशार्थमागत:॥ ६५॥
महान् भुजंग उत्तिष्ठ दुग्धं स्थापय तत्पुर:।
घटं च स्थापयाशु त्वं तन्मध्ये स गमिष्यति॥ ६६॥
कूर्पासमंगान्निष्कास्य बन्धनीयस्त्वया घट:।
प्रातरुत्थाय देहि त्वं मात्रे वायनकं शुभम्॥ ६७॥
इति गौरीवचः श्रुत्वा सुशीला क्षणमुत्थिता।
ददर्शाग्रे निःश्वसन्तं कृष्णसर्पं महाभयम्॥ ६८॥
ततश्चकार गौर्युक्तं प्रवृत्ता निद्रितुं ततः।
उवाच वर आसन्नः क्षुल्लग्ना महती मम॥ ६९॥
भक्षणायाशु देहि त्वं लड्डुकादिकमुत्तमम्।
श्रुत्वेति वाक्यं पात्रे सा ददौ लड्डुकमुत्तमम्॥ ७०॥
भक्षयित्वा शिवो हैमे तस्मिन् पात्रेऽङ्गुलीयकम्।
दत्त्वा तत् स्थापयामास स्थले गुप्ते शुभाननः॥ ७१॥
सुखेन शयनं चक्रे पृथिव्यां सर्वकोविद:।
ततः प्रभातसमये शिव आगाद् गृहं स्वकम्॥ ७२॥
स्नानशुद्धा सुशीला सा मात्रे वायनकं ददौ।
माता ददर्श तन्मध्ये मुक्ताहारमनुत्तमम्॥ ७३॥
ददौ प्रियायै कन्यायै सहसा तुष्टमानसा।
क्रीडाकाले तु सम्प्राप्ते हर आगात् तु मण्डपे॥ ७४॥
आदेशयत् सुशीलां तां क्रीडार्थं जननी ततः।

सुशीलोवाच

नायं वरो मे जननि येन पाणिग्रहः कृतः।
अनेन सह नास्तीह क्रीडनेच्छा तथा न मे॥ ७५ ॥
इति श्रुत्वा समाक्रान्तौ चिन्तया पितरौ ततः।
अन्नदानमुपायं च कन्यापतिविशोधने॥ ७६ ॥
तदारभ्य चक्रतुस्तौ पुराणोक्तविधानतः।
सुशीला पादयोश्चक्रे क्षालनं मुद्रिकान्विता॥ ७७ ॥
जलधारां ददौ माता चन्दनं पुत्रको हरेः।
हरिर्ददौ च ताम्बूलं बुभुजुस्तत्र मानवाः॥ ७८ ॥
इति रीत्यान्नदानं तत् प्रवृत्तं भिक्षुसौख्यदम्।
तावुभौ प्रस्थितौ काश्यां प्राप्तौ काशीं सुखप्रदाम्॥ ७९ ॥
निर्मलाम्भसि गंगायाः स्नानं चक्रतुरादरात्।
स्वर्गद्वारं प्रस्थितौ तौ कुर्वन्तौ धर्ममुत्तमम्॥ ८० ॥
पीताम्बराणि ददतुर्भिक्षुकाणां गृहे गृहे।
आशिषश्च ददुस्तस्मै चिरंजीवी भवेति ते॥ ८१ ॥
विश्वेश्वरं समायातौ नत्वा स्तुत्वा पुनः पुनः।
स्वयं गृहं प्रस्थितौ तौ शिवो मार्गे ततोऽवदत्॥ ८२ ॥

शिव उवाच

काये मे किंचिदस्वास्थ्यं मातुल प्रतिभाति हि।
ततः प्राणोत्क्रमे तस्य यमदूता उपस्थिताः॥ ८३ ॥
मंगलागौरिका चापि तेषां युद्धमभून्महत्।
जित्वा तान् मंगलान् प्राणान् ददौ तस्मै शिवाय च॥ ८४ ॥
शिवोऽकस्मादुत्थितोऽसौ मातुलं प्रत्युवाच ह।
स्वप्ने युद्धं मया दृष्टं मंगलायमभृत्ययोः॥ ८५ ॥
जितास्ते मंगलागौर्या ततोऽहं शयनच्युतः।

मातुल उवाच

यज्जातं शिव तज्जातं न स्मर्तव्यं त्वया पुनः॥ ८६ ॥

गच्छाव आवां नगरे पितरौ द्रष्टुमुत्सुकौ।
प्रस्थितौ तौ ततस्तस्मात् प्रतिष्ठापुरमापतुः॥ ८७॥
रम्ये तडागे तत्रैतौ पाकारम्भं विचक्रतुः।
दृष्टौ तौ हरिदासीभिर्धैर्योदारधरौ शुभौ॥ ८८॥

दास्य ऊचुः

अन्नदानं हरेर्गेहे प्रवृत्तं तत्र गम्यताम्।
भो दास्यो यात्रिकावावां गच्छावो न क्वचिद् गृहे॥ ८९॥

उभाऊचतुः

इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं दास्यो जग्मुः स्वकं गृहम्।
स्वस्वामिनिकटे वाक्यमवदन् सादरं तदा॥ ९०॥
सर्वं दासीवचः श्रुत्वा तदर्थं प्रभुरादरात्।
प्रेषयामास हस्त्यादिरत्नवस्त्राणि भूरिशः॥ ९१॥
तद् दृष्ट्वा विस्मितौ तौ च जग्मतुश्च हरेर्गृहम्।
हरिर्मातुलमभ्यर्च्य शिवं पूजितुमागतः॥ ९२॥
क्षालयन्ती च सा कन्या चरणौ तस्य सत्रपा।
अभूद् वरो मेऽयमिति जननीं प्रत्युवाच ह॥ ९३॥
हरिः पप्रच्छ साश्चर्यं शिवं मंगलदर्शनम्।

हरिरुवाच

किंचिच्चिह्नं तवास्त्यत्र ब्रूहि मे शिव दर्शय॥ ९४॥
हरेस्तु तद् वचः श्रुत्वा शिवः संतुष्टमानसः।
ममेदं चिह्नमस्तीहेत्युक्त्वा तद्गृहमागतः॥ ९५॥
तत आनीय तत् पात्रं दर्शयामास सादरम्।
तत् पात्रं च हरिर्दृष्ट्वा कन्यादानं चकार सः॥ ९६॥
ददौ रत्नानि वस्त्राणि सुवर्णानि बहून्यपि।
तामादाय प्रस्थितौ तौ ददतो बहुलं धनम्॥ ९७॥
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते व्रतं भौमे चकार सा।
भुक्त्वा सर्वे प्रस्थितास्ते योजनं जग्मुरुत्तमाः॥ ९८॥

सुशीलोवाच

गौरीविसर्जनं चापि दीपमानं तथैव च।
कृत्वा गन्तव्यमस्माभिः पितरौ द्रष्टुमादरात्॥ ९९ ॥
इत्युक्त्वा आगता यत्र गौर्या आवाहनं कृतम्।
ददृशुस्तत्र सौवर्णं देवालयमनुत्तमम्॥ १०० ॥
गौरीविसर्जनं दीपमानं सा च व्यचीकरत्।
ततः सर्वे प्रस्थितास्ते पितरौ द्रष्टुमुत्सुकाः॥ १०१ ॥
कुण्डिनासन्नदेशे तान् दृष्ट्वा विस्मयिनो जनाः।
अब्रुवंस्ते धर्मपालं सोत्कण्ठं प्रियदर्शनाः॥ १०२ ॥

जना ऊचुः

धर्मपालाद्य ते पुत्रः सभार्यः श्यालकस्तथा।
समायातो वयं दृष्ट्वा अधुनैव समागताः॥ १०३ ॥
यावज्जना वदन्त्येवं तावत् सोऽपि समागतः।
नमस्कारांश्चकारासौ पितृभ्यां पितृवल्लभः॥ १०४ ॥
मातुलोऽपि नतिं चक्रे भगिनीधर्मपालयोः।
सुशीला श्वशुरं चापि श्वश्रूं नत्वा स्थिता तदा॥ १०५ ॥

श्वश्रूरुवाच

सुशीले तद् व्रतं ब्रूहि यद्व्रतस्य प्रभावतः।
आयुर्वृद्धिः शिशोर्मेऽपि जाता कमललोचने॥ १०६ ॥

सुशीलोवाच

न जानेऽहं व्रतं श्वश्रूर्जाने मानवतीहरौ।
श्वशुरं धर्मपालं च श्वश्रूं च भवतीं तथा॥ १०७ ॥
मंगलां देवतां चैव वरं तु युवयोः सुतम्।
इत्युक्त्वा च सुशीला सा बुभुजे स्वान्तहर्षिता॥ १०८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

तस्माद् व्रतमिदं धर्मं स्त्रीभिः कार्यं सदैव तु।

युधिष्ठिर उवाच

फलमस्य श्रुतं कृष्ण विधानं ब्रूहि केशव॥ १०९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

विवाहात् प्रथमं वर्षमारभ्य पंचवत्सरम्।
श्रावणे मासि भौमेषु चतुर्षु व्रतमाचरेत्॥ ११०॥
प्रथमे वत्सरे मातुर्गेहे कर्तव्यमेव च।
ततो भर्तृगृहे कार्यमवश्यं स्त्रीभिरादरात्॥ १११॥
तत्र तु प्रथमे वर्षे संकल्प्य व्रतमुत्तमम्।
रम्ये पीठे च संस्थाप्य मंगलां च तदग्रतः॥ ११२॥
गोधूमपिष्टरचितमुपलं दृषदं तथा।
महान्तमेकं दीपं च घृतेन परिपूरितम्॥ ११३॥
वर्त्या षोडशभिः सूत्रैः कृतया सहितं न्यसेत्।
उपचारैः षोडशभिर्गन्धपुष्पादिभिस्तथा॥ ११४॥
पत्रैः पुष्पैः षोडशभिर्नानाधान्यैश्च जीरकैः।
धान्याकैस्तण्डुलैश्चैव स्वच्छै षोडशसंख्यकैः॥ ११५॥
अपामार्गस्य पत्रैश्च दूर्वाधत्तूरपत्रकैः।
सर्वैः षोडशसंख्याकैर्बिल्वपत्रैश्च पंचभिः॥ ११६॥
पूजयेन्मंगलां गौरीमंगपूजां ततश्चरेत्।
धूपादिकं निवेद्याथ वायनं तु समर्पयेत्॥ ११७॥
ब्राह्मणाय तथा मात्रेऽन्याभ्यश्चैव यत्नतः।
लड्डुकंचुकिसंयुक्तं सवस्त्रफलदक्षिणम्॥ ११८॥
नीराजनं ततः कुर्याद् दीपैः षोडशसंख्यकैः।
भोक्तव्या दीपकाश्चैव* अन्नं लवणवर्जितम्॥ ११९॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः स्नात्वा समाहिता।
विसर्जनं मंगलाया दीपमानं क्रमाच्चरेत्॥ १२०॥
पंचसंवत्सरेष्वेवं कर्तव्यं पतिमिच्छुभिः।

इति श्रीभविष्यपुराणे मंगलागौरीव्रतं विधिसहितं सम्पूर्णम्।

---

* जठराग्निको बढ़ानेवाले भोज्यपदार्थ।

हरितालिकाव्रत-कथा

मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालाकृतशेखराय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥ १ ॥
कैलासशिखरे रम्ये गौरी पृच्छति शंकरम्।
गुह्याद् गुह्यतरं गुह्यं कथयस्व महेश्वर॥ २ ॥
सर्वेषां धर्मसर्वस्वमल्पायासं महत् फलम्।
प्रसन्नोऽसि यदा नाथ तथ्यं ब्रूहि ममाग्रतः॥ ३ ॥
केन त्वं हि मया प्राप्तस्तपोदानव्रतादिना।
अनादिमध्यनिधनो भर्ता चैव जगत्प्रभुः॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तवाग्रे व्रतमुत्तमम्।
यद् गोप्यं मम सर्वस्वं कथयामि तव प्रिये॥ ५ ॥
यथा चोडुगणे चन्द्रो ग्रहाणां भानुरेव च।
वर्णानां च यथा विप्रो देवानां विष्णुरुत्तमः॥ ६ ॥
नदीषु च यथा गंगा पुराणानां तु भारतम्।
वेदानां च यथा साम इन्द्रियाणां मनो यथा॥ ७ ॥
पुराणवेदसर्वस्वमागमेन यथोदितम्।
एकाग्रेण शृणुष्वैतद् यथादृष्टं पुरातनम्॥ ८ ॥
येन पुण्यप्रभावेण प्राप्तमर्द्धासनं मम।
सर्वं तत् कथयिष्येऽहं त्वं मम प्रेयसी यतः॥ ९ ॥
भाद्रे मासि सिते पक्षे तृतीया हस्तसंयुता।
तदनुष्ठानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १० ॥
शृणु देवि त्वया पूर्वं यद् व्रतं चरितं महत्।
तत् सर्वं कथयिष्यामि यथावृत्तं हिमाचले॥ ११ ॥

पार्वत्युवाच

कथं कृतं मया नाथ व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्सकाशान्महेश्वर॥ १२ ॥

ईश्वर उवाच

अस्ति तत्र महानेको हिमवान् नग उत्तमः।
नानाभूतिसमाकीर्णो नानाद्रुमसमाकुलः॥ १३॥
नानापक्षिसमायुक्तो नानामृगविचित्रितः।
तत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धचारणगुह्यकाः॥ १४॥
विचरन्ति सदा हृष्टा गन्धर्वा गीततत्पराः।
स्फाटिकैः कांचनैः शृङ्गैर्मणिवैदूर्यभूषितैः॥ १५॥
भुजैर्लिखन्निवाकाशं सुहृदो मन्दिरं यथा।
हिमेन पूरितो नित्यं गंगाध्वनिनिनादितः॥ १६॥
पार्वति त्वं यथा बाल्ये परमाचरती तपः।
अब्दद्वादशकं देवि धूम्रपानमधोमुखी॥ १७॥
संवत्सरचतुःषष्टिं पक्वपर्णाशनं कृतम्।
माघमासे जले मग्ना वैशाखे चाग्निसेविनी॥ १८॥
श्रावणे च बहिर्वासा अन्नपानविवर्जिता।
दृष्ट्वा तातेन तत् कष्टं चिन्तया दुःखितोऽभवत्॥ १९॥
कस्मै देया मया कन्या एवं चिन्तातुरोऽभवत्।
तदैवाम्बरतः प्राप्तो ब्रह्मपुत्रस्तु धर्मवित्॥ २०॥
नारदो मुनिशार्दूलः शैलपुत्रीदिदृक्षया।
दत्त्वाऽर्घ्यं विष्टरं पाद्यं नारदं प्रोक्तवान् गिरिः॥ २१॥

हिमवानुवाच

किमर्थमागतः स्वामिन् वदस्व मुनिसत्तम।
महाभाग्येन सम्प्राप्तं त्वदागमनमुत्तमम्॥ २२॥

नारद उवाच

शृणु शैलेन्द्र मद्वाक्यं विष्णुना प्रेषितोऽस्म्यहम्।
योग्यं योग्याय दातव्यं कन्यारत्नमिदं त्वया॥ २३॥
वासुदेवसमो नास्ति ब्रह्मविष्णुशिवादिषु।
तस्मै देया त्वया कन्या अत्रार्थे सम्मतं मम॥ २४॥

हिमवानुवाच

वासुदेवः स्वयं देवः कन्यां प्रार्थयते यदि।
तदा मया प्रदातव्या त्वदागमनगौरवात्॥ २५॥
इत्येवं गदितं श्रुत्वा नभस्यन्तर्दधे मुनिः।
ययौ पीताम्बरधरं शंखचक्रगदाधरम्॥ २६॥
कृतांजलिपुटो भूत्वा मुनीन्द्रस्तमभाषत।
शृणु देव भवत्कार्यं विवाहो निश्चितस्तव॥ २७॥
हिमवांस्तु तदा गौरीमुवाच वचनं मुदा।
दत्तासि त्वं मया पुत्रि देवाय गरुडध्वजे*॥ २८॥
श्रुत्वा वाक्यं पितुर्देवी गता सा सखिमन्दिरम्।
भूमौ पतित्वा सा तत्र विललापातिदुःखिता॥ २९॥
विलपन्तीं तदा दृष्ट्वा सखी वचनमब्रवीत्।
किमर्थं दुःखिता देवि कथयस्व ममाग्रतः॥ ३०॥
यद् भवत्याभिलषितं करिष्येऽहं न संशयः।

पार्वत्युवाच

सखि शृणु मम प्रीत्या मनोऽभिलषितं मम।
महादेवं च भर्तारं करिष्येऽहं न संशयः॥ ३१॥
एतन्मे चिन्तितं कार्यं तातेन कृतमन्यथा॥ ३२॥
तस्माद् देहपरित्यागं करिष्येऽहं न संशयः।
पार्वत्या वचनं श्रुत्वा सखी वचनमब्रवीत्॥ ३३॥

सख्युवाच

पिता यत्र न जानाति गमिष्यावो हि तद् वनम्।
इत्येवं सम्मतं कृत्वा नीतासि त्वं महद् वनम्॥ ३४॥
पिता निरीक्षयामास हिमवांस्तु गृहे गृहे।
केन नीतासि मे पुत्री देवदानवकिन्नरैः॥ ३५॥

* छान्दस प्रयोग।

नारदाग्रे कृतं सत्यं किं दास्ये गरुडध्वजे।
इत्येवं चिन्तयाऽऽविष्टो मूर्च्छितो निपपात ह॥ ३६॥
हा हा कृत्वा प्रधावन्ति लोकास्ते गिरिपुंगवम्।
ऊचुर्गिरिवरं सर्वे मूर्च्छाहेतुं गिरे वद॥ ३७॥

गिरिरुवाच

दुःखस्य हेतुं शृणुत कन्यारत्नं हृतं मम।
दष्टा वा कालसर्पेण सिंहव्याघ्रेण वा हता॥ ३८॥
न जाने क्व गता पुत्री केन दुष्टेन वा हृता।
चकम्पे शोकसंतप्तो वातेनेव महातरुः॥ ३९॥
गिरिर्वनाद् वनं यातस्त्वदालोकनकारणात्।
सिंहव्याघ्रैश्च भल्लैश्च रोहिभिश्च महाघनम्॥ ४०॥
त्वं चापि विपिने घोरे व्रजन्ती सखिभिः सह।
तत्र दृष्ट्वा नदीं रम्यां तत्तीरे च महागुहाम्॥ ४१॥
तां प्रविश्य सखीसार्द्धमन्नभोगविवर्जिता।
संस्थाप्य बालुकालिंगं पार्वत्या सहितं मम॥ ४२॥
भाद्रशुक्लतृतीयायामर्चयन्ती तु हस्तभे।
तत्र वाद्येन गीतेन रात्रौ जागरणं कृतम्॥ ४३॥
व्रतराजप्रभावेण आसनं चलितं मम।
सम्प्राप्तोऽहं तदा तत्र यत्र त्वं सखिभिः सह॥ ४४॥
प्रसन्नोऽस्मि मया प्रोक्तं वरं ब्रूहि वरानने।

पार्वत्युवाच

यदि देव प्रसन्नोऽसि भर्ता भव महेश्वर॥ ४५॥
तथेत्युक्त्वा तु सम्प्राप्तः कैलासं पुनरेव च।
ततः प्रभाते सम्प्राप्ते नद्यां कृत्वा विसर्जनम्॥ ४६॥
पारणं तु कृतं तत्र सख्या सार्द्धं त्वया शुभे।
हिमवानपि तं देशमाजगाम घनं वनम्॥ ४७॥

चतुराशा निरीक्षंस्तु विह्वलः पतितो भुवि।
दृष्ट्वा तत्र नदीतीरे प्रसुप्तं कन्यकाद्वयम्॥ ४८ ॥
उत्थाप्योत्संगमारोप्य रोदनं कृतवान् गिरिः।
सिंहव्याघ्राहिभल्लूकैर्वने दुष्टे कुतः स्थिता॥ ४९ ॥

पार्वत्युवाच

शृणु तात मया ज्ञातं त्वं दास्यसीश्वराय माम्।
तदन्यथाकृतं तात तेनाहं वनमागता॥ ५० ॥
ददासि तात यदि मामीश्वराय तदा गृहम्।
आगमिष्यामि नैवं चेदिह स्थास्यामि निश्चितम्॥ ५१ ॥
तथेत्युक्त्वा हिमवता नीतासि त्वं गृहं प्रति।
पश्चाद् दत्ता त्वमस्माकं कृत्वा वैवाहिकीं क्रियाम्॥ ५२ ॥
तेन व्रतप्रभावेण सौभाग्यं साधितं त्वया।
अद्यापि व्रतराजस्तु न कस्यापि निवेदितः॥ ५३ ॥
नामास्य व्रतराजस्य शृणु देवि यथाभवत्।
आलिभिर्हरिता यस्मात् तस्मात् सा हरितालिका॥ ५४ ॥

देव्युवाच

नामेदं कथितं देव विधिं वद मम प्रभो।
किं पुण्यं किं फलं चास्य केन च क्रियते व्रतम्॥ ५५ ॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि विधिं वक्ष्ये नारीसौभाग्यहेतुकम्।
करिष्यति प्रयत्नेन यदि सौभाग्यमिच्छति॥ ५६ ॥
तोरणादि प्रकर्तव्यं कदलीस्तम्भमण्डितम्।
आच्छाद्य पट्टवस्त्रैस्तु नानावर्णविचित्रितैः॥ ५७ ॥
चन्दनेन सुगन्धेन लेपयेद् गृहमण्डितम्।
शंखभेरीमृदङ्गैस्तु कारयेद् बहुनिःस्वनान्॥ ५८ ॥
नाना मंगलगीतं च कर्त्तव्यं मम सद्मनि।
स्थापयेद् बालुकालिंगं पार्वत्या सहितं मम॥ ५९ ॥

पूजयेद् बहुपुष्पैश्च गन्धधूपादिभिर्नवैः।
नानाप्रकारैर्नैवेद्यैः पूजयेज्जागरं चरेत्॥ ६०॥
नालिकेरैः पूगफलैर्जम्बीरैर्बकुलैस्तथा।
बीजपूरैः सनारङ्गैः फलैश्चान्यैश्च भूरिशः॥ ६१॥
ऋतुकालोद्भवैर्भूरिप्रकारैः कन्दमूलकैः।
'ॐ नमः शिवाय शान्ताय पंचवक्त्राय शूलिने॥ ६२॥
नन्दिभृङ्गिमहाकालगणयुक्ताय शम्भवे।
शिवायै हरकान्तायै प्रकृत्यै सृष्टिहेतवे॥ ६३॥
शिवायै सर्वमांगल्यै शिवरूपे जगन्मये।
शिवे कल्याणदे नित्यं शिवरूपे नमोऽस्तु ते॥ ६४॥
शिवरूपे नमस्तुभ्यं शिवायै सततं नमः।
नमस्ते ब्रह्मचारिण्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः'॥ ६५॥
संसारभयसंतापात् त्राहि मां सिंहवाहिनि।
येन कामेन देवि त्वं पूजितासि महेश्वरि॥ ६६॥
राज्यं सौभाग्यसम्पत्तिं देहि मामम्ब पार्वति।
मन्त्रेणानेन देवि त्वां पूजयित्वा मया सह॥ ६७॥
कथां श्रुत्वा विधानेन दद्यादन्नं च भूरिशः।
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति देया वस्त्रहिरण्यगाः॥ ६८॥
अन्येषां भूयसी देया स्त्रीणां वै भूषणादिकम्।
भर्त्रा सह कथां श्रुत्वा भक्तियुक्तेन चेतसा॥ ६९॥
कृत्वा व्रतेश्वरं देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते।
सप्तजन्म भवेद् राज्यं सौभाग्यं चापि वर्द्धते॥ ७०॥
तृतीयायां तु या नारी आहारं कुरुते यदि।
सप्तजन्म भवेद् बन्ध्या वैधव्यं जन्मजन्मनि॥ ७१॥
दारिद्र्यं पुत्रशोकं च कर्कशा दुःखभागिनी।
पच्यते नरके घोरे नोपवासं करोति या॥ ७२॥

राजते कांचने ताम्रे वैणवे वाथ मृण्मये।
भाजने विन्यसेदन्नं सवस्त्रफलदक्षिणम्।
दानं च द्विजवर्याय दद्यादन्ते च पारणा॥ ७३॥
एवंविधा या कुरुते च नारी
त्वया समाना रमते च भर्त्रा।
भोगाननेकान् भुवि भुज्यमाना
सायुज्यमन्ते लभते हरेण॥ ७४॥
अश्वमेधसहस्त्राणि वाजपेयशतानि च।
कथाश्रवणमात्रेण तत् फलं प्राप्यते नरैः॥ ७५॥
एतत् ते कथितं देवि तवाग्रे व्रतमुत्तमम्।
कोटियज्ञकृतं पुण्यमस्यानुष्ठानमात्रतः॥ ७६॥

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे हरगौरीसंवादे हरितालिकाव्रतकथा सम्पूर्णा।

(भाद्रपद-कृष्ण) संकष्टचतुर्थीव्रत-कथा

ऋषय ऊचुः

दारिद्र्यशोककष्टाद्यैः पीडितानां च वैरिभिः।
राज्यभ्रष्टैर्नृपैः सर्वैः क्रियते किं शुभार्थिभिः॥ १ ॥
धनहीनैर्नरैः स्कन्द सर्वोपद्रवपीडितैः।
विद्यापुत्रगृहभ्रष्टै रोगयुक्तैः शुभार्थिभिः॥ २ ॥
कर्त्तव्यं किं वदोपायं पुनः क्षेमार्थसिद्धये।

स्कन्द उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे व्रतानामुत्तमं व्रतम्॥ ३ ॥
संकष्टतरणं नामामुत्रेह सुखदायकम्।
येनोपायेन संकष्टं तरन्ति भुवि देहिनः॥ ४ ॥
यद् व्रतं देवकीपुत्रः कृष्णो धर्माय दत्तवान्।
अरण्ये क्लिश्यमानाय पुनः क्षेमार्थसिद्धये॥ ५ ॥

यथा कथितवान् पूर्वं गणेशो मातरं प्रति।
तथा कथितवाञ्छ्रीशो द्वापरे पाण्डवान् प्रति॥ ६ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं कथितवानम्बां पार्वतीं श्रीगणेश्वरः।
तथा पृच्छन्ति मुनयो लोकानुग्रहकाङ्क्षिणः॥ ७ ॥

स्कन्द उवाच

पुरा कृतयुगे पुण्ये हिमाचलसुता सती।
तपस्तप्तवती भूरि तेनालब्धः शिवः पतिः॥ ८ ॥
तदास्मरत् सा हेरम्बं गणेशं पूर्वजं सुतम्।
तत्क्षणादागतं दृष्ट्वा गणेशं परिपृच्छति॥ ९ ॥

पार्वत्युवाच

तपस्तप्तं मया घोरं दुश्चरं लोमहर्षणम्।
न प्राप्तः स मया कान्तो गिरीशो मम वल्लभः॥ १० ॥
संकष्टतरणं दिव्यं व्रतं नारद उक्तवान्।
त्वदीयं यद् व्रतं तावत् कथयस्व पुरातनम्॥ ११ ॥
तच्छ्रुत्वा पार्वतीवाक्यं संकष्टतरणं व्रतम्।
प्रीत्या कथितवान् देवो गणेशो ज्ञानसिद्धिदः॥ १२ ॥

गणेश उवाच

श्रावणे बहुले पक्षे चतुर्थ्यां तु विधूदये।
गणेशं पूजयित्वा तु चन्द्रायार्घ्यं प्रदापयेत्॥ १३ ॥

पार्वत्युवाच

क्रियते केन विधिना किं कार्यं किं च पूजनम्।
उद्यापनं कदा कार्यं मन्त्राः के स्युस्तु पूजने॥ १४ ॥
किं ध्यानं श्रीगणेशस्य गणेश वद विस्तरात्।

गणेश उवाच

चतुर्थ्यां प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम्॥ १५ ॥
ग्राह्यं व्रतमिदं पुण्यं संकष्टतरणं शुभम्।
कर्त्तव्यमिति संकल्प्य व्रतेऽस्मिन् गणपं स्मरेत्॥ १६ ॥

(स्वीकारमन्त्रः) निराहारोऽस्मि देवेश यावच्चन्द्रोदयो भवेत्।
भोक्ष्यामि पूजयित्वाहं संकष्टात् तारयस्व माम्॥ १७॥
एवं संकल्प्य राजेन्द्र स्नात्वा कृष्णतिलैः शुभे।
आह्निकं तु विधायैवं पश्चात् पूज्यो गणाधिपः॥ १८॥
त्रिभिर्माषैस्तदर्धेन तृतीयांशेन वा पुनः।
यथाशक्त्या तु वा हैमी प्रतिमा क्रियते शुभा॥ १९॥
हेमाभावे तु रौप्यस्य ताम्रस्यापि यथासुखम्।
सर्वथैव दरिद्रेण क्रियते मृण्मयी शुभा॥ २०॥
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कृते कार्यं विनश्यति।
जलपूर्णं वस्त्रयुतं कुम्भं तदुपरि विन्यसेत्॥ २१॥
पूर्णपात्रं तत्र पद्मं लिखेदष्टदलं शुभम्।
देवतां तत्र संस्थाप्य गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत्॥ २२॥
एवं व्रतं प्रकर्तव्यं प्रतिमासं त्वयाद्रिजे।
यावज्जीवं तु वा वर्षाण्येकविंशतिमेव वा॥ २३॥
अशक्तोऽप्येकवर्षं वा प्रतिवर्षमथापि वा।
उद्यापनं तु कर्तव्यं चतुर्थ्यां श्रावणेऽसिते॥ २४॥
स्वीकारश्च तथा कार्यः संकष्टहरणे तिथौ।
गाणपत्यं तथाऽऽचार्यं सर्वशास्त्रविशारदम्॥ २५॥
श्रद्धया प्रार्थयेदादौ तेनोक्तं विधिमाचरेत्।
एकविंशतिविप्रांश्च वस्त्रालंकारभूषणैः॥ २६॥
पूजयेद् गोहिरण्याद्यैर्हुत्वाग्नौ विधिपूर्वकम्।
होमद्रव्यं मोदकाश्च तिलयुक्ता घृतप्लुताः॥ २७॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा नो चेदष्टोत्तरं शतम्।
अष्टाविंशतिसंख्याकान् मोदकान् वा सशर्करान्॥ २८॥
अशक्तोऽष्टौ शुभान् स्थूलांजुहुयाज्जातवेदसि।
वैदिकेन च मन्त्रेण आगमोक्तेन वा तथा॥ २९॥

अथवा नाममन्त्रेण होमं कुर्याद् यथाविधि।
पुष्पमण्डपिका कार्या गणेशाह्लादकारिणी॥ ३०॥
पूजयेत् तत्र गणपं भक्तसंकष्टनाशनम्।
गीतवादित्रनिनदैर्भक्तिभावपुरस्कृतैः॥ ३१॥
पुराणवेदनिर्घोषैस्तोषयेच्च गणेश्वरम्।
एवं जागरणं कार्यं शक्त्या दानादिकं तथा॥ ३२॥
सपत्नीकमथाचार्यं तोषयेद् वस्त्रभूषणैः।
उपानच्छत्रगोदानकमण्डलुफलादिभिः॥ ३३॥
शय्यावाहनभूदानधनधान्यगृहादिभिः।
यथाशक्त्या प्रकर्तव्यं दारिद्र्याभावमिच्छता॥ ३४॥
एकविंशतिविप्रांश्च भोजयेन्नामभिर्मम।
गजास्यो विघ्नराजश्च लम्बोदरशिवात्मजौ॥ ३५॥
वक्रतुण्डः शूर्पकर्णः कुब्जश्चैव विनायकः।
विघ्ननाशो हि विकटो वामनः सर्वदैवतः॥ ३६॥
सर्वार्तिनाशी भगवान् विघ्नहर्ता च धूमकः।
सर्वदेवाधिदेवश्च सर्वे षोडश वै स्मृताः॥ ३७॥
एकदन्तः कृष्णपिंगो भालचन्द्रो गणेश्वरः।
गणपश्चैकविंशश्च सर्व एते गणेश्वराः॥ ३८॥
दुर्गोपेन्द्रश्च रुद्रश्च कुलदेव्याधिकं भवेत्।
विशेषेणाष्टसंख्याकैर्मोदकैर्हवनं स्मृतम्॥ ३९॥

श्रीकृष्ण उवाच

एवं तु कथितं सर्वं गणेशेन स्वयं नृप।
पार्वत्या तत् कृतं राजन् व्रतं संकष्टनाशनम्॥ ४०॥
व्रतेनानेन सा प्राप महादेवं पतिं स्वकम्।
तत् कुरुष्व महाराज व्रतं संकष्टनाशनम्॥ ४१॥

चतुर्थी संकटा नाम स्कन्देन कथिता ऋषीन्।
ऋषिभिर्लोककामैस्तैर्लोके ततमिदं व्रतम्॥ ४२॥

सूत उवाच

कृतं युधिष्ठिरेणैतद् राज्यकामेन वै द्विज।
तेन शत्रून् निहत्याजौ स्वराज्यं प्राप्तवान् स्वयम्॥ ४३॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन व्रतं कार्यं विचक्षणैः।
येन धर्मार्थकामाश्च मोक्षश्चापि भवेत् किल॥ ४४॥
यः करोति व्रतं विप्राः सर्वकामार्थसिद्धिदम्।
स वाञ्छितफलं प्राप्य पश्चाद् गणपतां व्रजेत्॥ ४५॥
यदा यदा परं विप्रा नरः प्राप्नोति संकटम्।
तदा तदा प्रकर्त्तव्यं व्रतं संकष्टनाशनम्॥ ४६॥
त्रिपुरं हन्तुकामेन कृतं देवेन शूलिना।
त्रैलोक्यभूतिकामेन महेन्द्रेण तथा कृतम्॥ ४७॥
रावणेन कृतं पूर्वं वालिबन्धनसंकटे।
स्वकीयं प्राप्तवान् राज्यं गणेशस्य प्रसादतः॥ ४८॥
सीतान्वेषणकामेन कृतं वायुसुतेन च।
संकल्प्य दृष्टवान् सोऽयं सीतां रामप्रियां पुरा॥ ४९॥
दमयन्त्या कृतं पूर्वं नलान्वेषणकारणात्।
सा पतिं नैषधं लेभे पुण्यश्लोकं द्विजोत्तमाः॥ ५०॥
अहल्यापि पतिं लेभे गौतमं प्राणवल्लभम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी धनमाप्नुयात्॥ ५१॥
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति रोगी रोगात् प्रमुच्यते॥ ५२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणोक्तं संकष्टचतुर्थीव्रतम्।

ऋषिपंचमीव्रत-कथा

सिताश्व उवाच

श्रुतानि देवदेवेश व्रतानि सुबहूनि च।
साम्प्रतं मे समाचक्ष्व व्रतं पापप्रणाशनम्॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
ऋषिपंचमीति विख्यातं सर्वपापहरं परम्॥ २ ॥
येन चीर्णेन राजेन्द्र नरकं नैव पश्यति।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्॥ ३ ॥
वैदर्भे च द्विजवरो उत्तंको नाम नामतः।
तस्य भार्या सुशीलेति पतिव्रतपरायणा॥ ४ ॥
तस्या अपत्ययुगलं पुत्रो हि सुविभूषणः।
अधीतवान् सुतस्तस्य वेदान् सांगपदक्रमान्॥ ५ ॥
समाने च कुले तेन सुता चापि विवाहिता।
विवाहितैव सा दैवाद् वैधव्यं प्राप सत्तम॥ ६ ॥
सतीत्वं पालयन्ती सा आस्ते निजपितुर्गृहे।
तस्या दुःखेन संतप्तः सुतं संस्थाप्य वेश्मनि॥ ७ ॥
गंगातीरवनं प्राप्तः सकलत्रस्तया सह।
स तत्राध्यापयामास शिष्यान् वेदं द्विजोत्तमः॥ ८ ॥
सुता च कुरुते तस्य पितुः शुश्रूषणं परम्।
पितुः शुश्रूषणं कृत्वा परिश्रान्ता कदाचन॥ ९ ॥
निशीथे किल संसुप्ता कृमिराशिरजायत।
तथाविधां च तां दृष्ट्वा विवस्त्रां प्रस्तरस्थिताम्॥ १० ॥
शिष्या निवेदयामासुस्तन्मातुः करुणान्विताः।
न जानीमो वयं किंचिद् देवीं साध्वीं तथाविधाम्॥ ११ ॥
कृमिराशिमयी जाता मातः सम्प्रति दृश्यते।
वज्रपातसदृशं तच्छ्रुत्वा शिष्यैरुदीरितम्॥ १२ ॥

सा भ्रान्तमानसा शीघ्रं तत्समीपमुपागमत्।
सा तां तथाविधां दृष्ट्वा विललाप सुदुःखिता॥ १३॥
उरश्च ताडयामास सुतरां मोहमाप सा।
क्षणेन प्राप्तचैतन्यां तामुत्थाप्य प्रमृज्य च॥ १४॥
समालम्ब्य च बाहुभ्यां निन्ये तत्पितुरन्तिकम्।
स्वामिन् कथय मे साध्वी केन दुष्कृतकर्मणा॥ १५॥
निशीथे सम्प्रसुप्तेयं जायते कृमिसंकुला।
एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यमृषिर्ध्यानपरायणः॥ १६॥
ज्ञात्वा निवेदयामास तस्याः प्राग्जन्मचेष्टितम्।

ऋषिरुवाच

प्रागियं सप्तमेऽतीते जन्मनि ब्राह्मणी ह्यभूत्॥ १७॥
रजस्वला च संजाता भाण्डादीन्यस्पृशत् तदा।
अस्यास्तु पाप्मना तेन जायते कृमिवद् वपुः॥ १८॥
रजस्वलायाः पापेन युक्ता भवति सानघे।
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी॥ १९॥
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति।
तदा तया सखीसंगाद् व्रतं दृष्ट्वावमानितम्॥ २०॥
दृष्टव्रतप्रभावेण जाता द्विजकुलेऽमले।
अवमानाद् व्रतस्यास्य कृमिराशिमयीऽधुना*॥ २१॥
एतत् ते कथितं सर्वं कारणं दुष्कृतस्य च।

सुशीलोवाच

दर्शनादपि यस्यास्य विप्राणां निर्मले कुले॥ २२॥
जन्म युष्मद्विधानां हि जायते ब्रह्मतेजसाम्।
अवज्ञया प्रजायन्ते निशीथे कृमिराशयः॥ २३॥
महाश्चर्यकरं नाथ तद् व्रतं कथयस्व मे।

ऋषिरुवाच

सुशीले शृणु तत् सम्यग् व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
येन चीर्णेन सहसा पापादस्मात् प्रमुच्यते॥ २४॥

---

* अलोप आर्षः।

दुःखत्रयाच्च मुच्येत नारी सौभाग्यमाप्नुयात्।
कल्याणानि विवर्धन्ते सम्पदश्च निरापदः॥ २५॥
नभस्ये शुक्लपक्षे तु यदा भवति पंचमी।
नद्यादिषु तदा स्नात्वा कृत्वा नियममेव च॥ २६॥
विधाय नित्यकर्माणि गत्वा द्वारवतीमृषीन्* ।
स्नापयेद् विधिवद् भक्त्या पंचामृतरसैः शुभैः॥ २७॥
चन्दनागुरुकर्पूरैर्विलिप्य च सुगन्धिभिः।
पूजयेद् विविधैः पुष्पैर्गन्धधूपादिदीपकैः॥ २८॥
समाच्छाद्य शुभैर्वस्त्रैः सोपवीतैर्यथाविधि।
ततो नैवेद्यसम्पन्नमर्घ्यं दद्याच्छुभैः फलैः॥ २९॥
कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रस्तु गौतमः।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः॥ ३०॥
गृह्णन्त्वर्घ्यं मया दत्तं तुष्टा भवत मे सदा।
श्रोतव्यमिदमाख्यानं शाकाहारं प्रकल्पयेत्॥ ३१॥
स्थातव्यं ब्रह्मचर्येण ऋषिध्यानपरायणैः।
अनेन विधिना सम्यग् व्रतमेतत् समाचरेत्॥ ३२॥
तस्य तज्जायते पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत् फलम्।
सर्वदानेषु यत् पुण्यं तदस्य व्रतचारणात्॥ ३३॥
कुरुते या व्रतं चैतत् सा नारी सुखभागिनी।
रूपलावण्यसंयुक्ता पुत्रपौत्रादिसंयुता॥ ३४॥
इह लोके सदैव स्यात् परत्राप्यक्षया गतिः।
व्रतस्यास्य प्रभावेण जातिं स्मरति पौर्विकीम्॥ ३५॥

इति श्रीहेमाद्रिरचिते चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे ब्रह्माण्डपुराणोक्ता ऋषिपंचमीव्रत-कथा समाप्ता।

---

* गृहमित्यर्थः।

अनन्तव्रत-कथा

सूत उवाच

अरण्ये वर्तमानास्ते पाण्डवा दुःखकर्शिताः।
कृष्णं दृष्ट्वा महात्मानं प्रणिपत्य तमब्रुवन्॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अहं दुःखीह संजातो भ्रातृभिः परिवारितः।
कथं मुक्तिर्वदास्माकमनन्ताद् दुःखसागरात्॥ २ ॥
कं देवं पूजयित्वा वै राज्यं प्राप्स्याम्यनुत्तमम्।
अथवा किं व्रतं कुर्यां त्वत्प्रसादाद् भवेद्धितम्॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अनन्तव्रतमस्त्येकं सर्वपापहरं शुभम्।
सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणां चैव युधिष्ठिर॥ ४ ॥
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे भवेत्।
तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वपापं व्यपोहति॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कृष्ण कोऽयमनन्तेति प्रोच्यते यस्त्वया विभो।
किं शेषनाग आहोस्विदनन्तस्तक्षकः स्मृतः॥ ६ ॥
परमात्माथवानन्त उताहो ब्रह्म गीयते।
क एषोऽनन्तसंज्ञो वै तथ्यं मे ब्रूहि केशव॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अनन्त इत्यहं पार्थ मम रूपं निबोध तत्।
आदित्यप्रचचारेण यः काल इति पठ्यते॥ ८ ॥
कलाकाष्ठामुहूर्तादिदिनरात्रिशरीरवान्।
पक्षमासर्तुवर्षादियुगकालव्यवस्थया॥ ९ ॥
योऽयं कालो मयाऽऽख्यातः सोऽनन्त इति कीर्त्यते।
सोऽहं कृष्णोऽवतीर्णोऽत्र भूभारोत्तारणाय च॥ १० ॥

दानवानां वधार्थाय वसुदेवकुलोद्भवम्।
अनन्तं विद्धि मां पार्थ कृष्णं विष्णुं हरिं शिवम्॥ ११॥
अनादिमध्यनिधनं सर्वव्यापिनमीश्वरम्।
विश्वरूपं महाकालं सृष्टिसंहारकारकम्॥ १२॥
प्रत्ययार्थं मया रूपं फाल्गुनाय प्रदर्शितम्।
पूर्वमेव महाबाहो योगिध्येयमनुत्तमम्॥ १३॥
विश्वरूपमनन्तं च यस्मिन्निन्द्राश्चतुर्दश।
वसवो द्वादशादित्या रुद्रा एकादश स्मृताः॥ १४॥
सप्तर्षयः समुद्राश्च पर्वताः सरितो द्रुमाः।
नक्षत्राणि दिशो भूमिः पातालं भूर्भुवादिकम्।
मा कुरुष्वात्र संदेहं सोऽहं पार्थ न संशयः॥ १५॥

युधिष्ठिर उवाच

अनन्तव्रतमाहात्म्यं विधिं वद विदां वर।
किं पुण्यं किं फलं चास्य किं दानं कस्य पूजनम्॥ १६॥
केन चादौ पुरा चीर्णं मर्त्ये केन प्रकाशितम्।
एवं सविस्तरं सर्वं ब्रूह्यनन्तव्रतं मम॥ १७॥

श्रीकृष्ण उवाच

आसीत् पुरा कृतयुगे सुमन्तुर्नाम वै द्विजः।
वसिष्ठगोत्रसम्भूतः सुरूपां स भृगोः सुताम्॥ १८॥
दीक्षानाम्नीं चोपयेमे वेदोक्तविधिना नृप।
तस्याः कालेन संजाता दुहितानन्तलक्षणा॥ १९॥
शीलानाम्नी सुशीला सा वर्द्धते पितृवेश्मनि।
माता च तस्याः कालेन ज्वरदाहेन पीडिता॥ २०॥
विनष्टा सा नदीतीरे ययौ स्वर्गं पतिव्रता।
सुमन्तुस्तु ततोऽन्यां च धर्मपुंसः सुतां पुनः॥ २१॥
उपयेमे विधानेन दुश्शीलां नाम नामतः।
दुश्शीलां कर्कशां चण्डीं नित्यं कलहकारिणीम्॥ २२॥

सापि शीला पितुर्गेहे गृहार्चनपरा बभौ।
कुड्यस्तम्भबहिर्द्वारदेहलीतोरणादिषु ॥ २३ ॥
वर्णकैश्चित्रमकरोन्नीलपीतसितासितैः ।
स्वस्तिकैः शंखपद्मैश्च अर्चयन्ति पुनः पुनः ॥ २४ ॥
एवं सा वर्द्धते शीला पितृवेश्मनि मंगला।
ततः काले बहुतिथे कौमारवशवर्तिनी ॥ २५ ॥
पित्रा दृष्टा तदा तेन स्त्रीचिह्ना यौवने स्थिता।
तां दृष्ट्वा चिन्तयामास नराननुगुणान् भुवि ॥ २६ ॥
कस्मै देया मया कन्या विचार्य्येति सुदुःखितः।
एतस्मिन्नेव काले तु मुनिर्वेदविदां वरः ॥ २७ ॥
कन्यार्थी चागतः श्रीमान् कौण्डिन्यो मुनिसत्तमः।
उवाच रूपसम्पन्नां त्वदीयां तनयां वृणे।
पिता ददौ द्विजेन्द्राय कौण्डिन्याय शुभे दिने ॥ २८ ॥
गृह्योक्तविधिना पार्थ विवाहमकरोत् तदा।
निवर्त्यौद्वाहिकं सर्वं प्रोक्तवान् कर्कशां द्विजः ॥ २९ ॥
किंचिद्दायादिकं देयं जामातृपारितोषिकम्।
तच्छ्रुत्वा कर्कशा क्रुद्धा प्रोत्सार्य गृहमण्डनम् ॥ ३० ॥
पेटायां सुस्थिरं बद्ध्वा पितृवेश्मनि सा ययौ।
कौण्डिन्योऽपि विवाह्यैनां पथि गच्छञ्छनैः शनैः ॥ ३१ ॥
शीलां सुशीलामादाय नवोढां गोरथेन हि।
ददर्श यमुनां पुण्यां तामुत्तीर्य तटे रथम् ॥ ३२ ॥
संस्थाप्यावश्यकं कर्त्तुं गतः शिष्यान् नियुज्य वै।
मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य सरित्तटे ॥ ३३ ॥
ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम्।
चतुर्दश्यामर्चयन्तं भक्त्या देवं जनार्दनम् ॥ ३४ ॥
उपगम्य शनैः शीला पप्रच्छ स्त्रीकदम्बकम्।
आर्याः किमेतन्मे ब्रूत किं नाम व्रतमीदृशम् ॥ ३५ ॥

ता ऊचुर्योषितस्तां तु शीलां शीलविभूषणाम्।
अनन्तव्रतमेतद्धि व्रतेऽनन्तः प्रपूज्यते॥ ३६ ॥
साब्रवीदहमप्येतत् करिष्ये व्रतमुत्तमम्।
विधानं कीदृशं तत्र किं दानं कश्च पूज्यते॥ ३७ ॥

स्त्रिय ऊचुः

शीले सदन्नप्रस्थस्य पुन्नाम्ना संस्कृतस्य च।
अर्द्धं विप्राय दातव्यमर्द्धमात्मनि भोजनम्॥ ३८ ॥
शक्त्या च दक्षिणां दद्याद् वित्तशाठ्यविवर्जितः।
कर्त्तव्यं सत्सरित्तीरे विधिनानेन मानिनी॥ ३९ ॥
शेषं कुशमयं कृत्वा वंशपात्रे निधाय च।
स्नात्वानन्तं समभ्यर्च्य मण्डले धूपदीपकैः॥ ४० ॥
गन्धैः पुष्पैः सनैवेद्यैर्नानापक्वान्नसंयुतैः।
तस्याग्रतो दृढं न्यस्य कुंकुमाक्तं सुदोरकम्॥ ४१ ॥
चतुर्दशग्रन्थियुतं गन्धाद्यैरर्चयेच्छुभैः।
ततस्तु दक्षिणे पुंसां स्त्रीणां वामे करे न्यसेत्॥ ४२ ॥
'अनन्तसंसारमहासमुद्रमग्नं समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व अनन्तरूपाय नमो नमस्ते'॥ ४३ ॥
अनेन दोरकं बद्ध्वा कथां श्रुत्वा हरेरिमाम्।
ध्यात्वा नारायणं देवमनन्तं विश्वरूपिणम्॥ ४४ ॥
भुक्त्वा चान्ते व्रजेद् वेश्म भद्रे प्रोक्तं व्रतं तव॥ ४५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

एवमाकर्ण्य राजेन्द्र प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
सापि चक्रे व्रतं शीला करे बद्ध्वा सुदोरकम्॥ ४६ ॥
पाथेयमर्धं विप्राय दत्त्वा भुक्त्वा स्वयं ततः।
पुनर्जगाम संहृष्टा गोरथेन स्वकं गृहम्॥ ४७ ॥
भर्त्रा सहैव शनकैः प्रत्ययस्तत्क्षणादभूत्।
तेनानन्तव्रतेनास्या बभौ गोधनसंकुलम्॥ ४८ ॥

गृहाश्रमं श्रिया जुष्टं धनधान्यसमन्वितम्।
आकुलं व्याकुलं रम्यं सर्वदातिथिपूजनैः॥ ४९॥
सापि माणिक्यकांचीभिर्मुक्ताहारविभूषिता।
देवांगनेव सम्पन्ना सावित्रीप्रतिमाभवत्॥ ५०॥
कदाचिदुपविष्टाया दृष्टो बद्धः सुदोरकः।
शीलाया हस्तमूले तु भर्त्रा तेन द्विजन्मना॥ ५१॥
किमिदं दोरकं शीले मम वश्याय कल्पितम्।
धृतं सुदोरकं त्वेतत् किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः॥ ५२॥

शीलोवाच

यस्य प्रसादात् सकला धनधान्यादिसम्पदः।
लभ्यन्ते मानवैश्चापि सोऽनन्तोऽयं मया धृतः॥ ५३॥
शीलायास्तद् वचः श्रुत्वा भर्त्रा तेन द्विजन्मना।
श्रीमदान्धेन कौरव्य साक्षेपं त्रोटितस्तदा॥ ५४॥
कोऽनन्त इति मूढेन जल्पता पापकारिणा।
क्षिप्तो ज्वालाकुले वह्नौ हा हा कृत्वा प्रधावती॥ ५५॥
शीला गृहीत्वा तत् सूत्रं क्षीरमध्ये समाक्षिपत्।
तेन कर्मविपाकेन तस्य श्रीर्विलयं गता॥ ५६॥
गोधनं तस्करैर्नीतं गृहं दग्धं धनं गतम्।
यद् यथैवागतं गेहे तत् तथैव पुनर्गतम्॥ ५७॥
स्वजनैः कलहो नित्यं बन्धुभिस्तर्जनं तथा।
न कश्चिद् वदते लोकस्तेन सार्द्धं युधिष्ठिर॥ ५८॥
शरीरेणातिसंतप्तो मनसाप्यत्यन्तदुःखितः।
निर्वेदं परमं प्राप्तः कौण्डिन्यः प्राह तां मुनिः॥ ५९॥

कौण्डिन्य उवाच

शीले ममेदमुत्पन्नं सहसा शोककारणम्।
येनातिदुःखमस्माकं जातः सर्वधनक्षयः॥ ६०॥

स्वजनैः कलहो गेहे न कश्चिन्मां प्रभाषते।
शरीरे नित्यसंतापः खेदश्चेतसि दारुणः॥ ६१॥
जानासि दुर्नयः कोऽत्र किं कृत्वा सुकृतं भवेत्।
प्रत्युवाचाथ तं शीला सुशीला शीलमण्डना॥ ६२॥

शीलोवाच

प्रायोऽनन्तकृताक्षेपपापसम्भवजं फलम्।
भविष्यति महाभाग तदर्थं यत्नमाचर॥ ६३॥
एवमुक्तः स विप्रर्षिर्जगाम मनसा हरिम्।
निर्वेदं निर्जगामाथ कौण्डिन्यः प्रयतो वनम्॥ ६४॥
तपसे कृतसंकल्पो वायुभक्षी द्विजोत्तमः।
मनसा ध्याय चानन्तं क्व द्रक्ष्यामि च तं विभुम्॥ ६५॥
यस्य प्रसादात् सम्प्राप्तमाक्षेपान्निधनं गतम्।
धनादिकं ममातीव सुखदुःखप्रदायकम्॥ ६६॥
एवं संचिन्तयन् सोऽथ बभ्राम विजने वने।
तत्रापश्यन्महाचूतं पुष्पितं फलितं यथा॥ ६७॥
वर्जितं पक्षिसंघातैः कीटकोटिवृतं तथा।
तमपृच्छत् त्वयानन्तः क्वचिद् दृष्टो महातरो॥ ६८॥
ब्रूहि सौम्य ममातीव दुःखं चेतसि वर्तते।
सोऽब्रवीद् भद्र नानन्तं क्वचित् पश्यामि वा द्विज॥ ६९॥
एवं निराकृतस्तेन स जगामाथ दुःखितः।
क्व द्रक्ष्यामीति गच्छन् स गामपश्यत् सवत्सकाम्॥ ७०॥
तृणमध्ये च धावन्तीमितश्चेतश्च पाण्डव।
अब्रवीद् धेनुके ब्रूहि यद्यनन्तस्त्वयेक्षितः॥ ७१॥
सा चोवाचाथ कौण्डिन्यं नानन्तं वेद्म्यहं द्विज।
ततो व्रजन् ददर्शाग्रे गोवृषं शाद्वले स्थितम्।
दृष्ट्वा पप्रच्छ गोस्वामिन्ननन्तो वीक्षितस्त्वया॥ ७२॥

गोवृषस्तमुवाचेदं नानन्तो वीक्षितो मया।
ततो व्रजन् ददर्शाग्रे रम्यं पुष्करिणीद्वयम्॥ ७३॥
अन्योन्यजलकल्लोलैर्वीचिपर्यन्तसंगतम्।
छन्नकिंजल्ककह्लारकमलोत्पलमण्डितम्॥ ७४॥
सेवितं भ्रमरैर्हंसैश्चक्रैः कारण्डवैर्बकैः।
ते चापृच्छद् द्विजोऽनन्तो भवद्भ्यां नोपलक्षितः॥ ७५॥
ऊचतुस्ते पुष्करिण्यौ नानन्तो वीक्षितो द्विज।
ततो व्रजन् ददर्शाग्रे गर्दभं कुंजरं तथा॥ ७६॥
तावप्युक्तौ द्विजेनेत्थं नेति ताभ्यां निवेदितम्।
एवं सम्पृच्छ्य नष्टाशस्तत्रैव निषसाद ह॥ ७७॥
कौण्डिन्यो विह्वलीभूतो निराशो जीवने नृप।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य पपात भुवि भारत॥ ७८॥
प्राप्य संज्ञामनन्तेति जल्पन्नुत्थाय स द्विजः।
नूनं त्यक्ष्याम्यहं प्राणानिति संकल्प्य चेतसि॥ ७९॥
उत्थायोद्बुध्य वृक्षेऽस्मिंस्तावद् भरतसत्तम।
कृपयानन्तदेवोऽपि प्रत्यक्षः समजायत॥ ८०॥
वृद्धब्राह्मणरूपेण इत एहीत्युवाच तम्।
प्रगृह्य दक्षिणे पाणौ गुहायां प्रविवेश्य तम्॥ ८१॥
स्वां पुरीं दर्शयामास दिव्यनारीनरैर्युताम्।
तस्यां विविधमात्मानं दिव्यसिंहासने शुभे॥ ८२॥
पार्श्वस्थे शंखचक्रं च गदागरुडशोभितम्।
दर्शयामास विप्राय स्वीयं रूपमनन्तकम्॥ ८३॥
विभूतिभेदैश्चानन्तैरनन्तममितौजसम्।
तं दृष्ट्वा तादृशं रूपमनन्तमपराजितम्॥ ८४॥
वेद्यमाने जगादोच्चैर्जयशब्दपुरस्सरम्।
पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः॥ ८५॥

त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव।
तच्छ्रुत्वानन्तदेवेशः प्राह सुस्निग्धया गिरा॥ ८६॥
मा भैस्त्वं ब्रूहि विप्रेन्द्र यत् ते मनसि वर्तते।

कौण्डिन्य उवाच

मया भूत्यावलिप्तेन त्रोटितोऽनन्तदोरकः।
तेन कर्मविपाकेन भूतिर्मे प्रलयं गता॥ ८७॥
स्वजनैः कलहो गेहे न कश्चिन्मां प्रभाषते।
तस्य पापस्य मे शान्तिं कारुण्याद् वक्तुमर्हसि॥ ८८॥

श्रीकृष्ण उवाच

तच्छ्रुत्वानन्तदेवस्तमुवाच द्विजसत्तमम्।

श्रीअनन्त उवाच

स्वगृहं गच्छ कौण्डिन्य मा विलम्बं कुरु द्विज।
चरानन्तव्रतं भक्त्या नव वर्षाणि पंच च॥ ८९॥
सर्वपापविशुद्धात्मा प्राप्स्यसे सिद्धिमुत्तमाम्।
पुत्रान् पौत्रान् समुत्पाद्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्॥ ९०॥
अन्ते मत्स्मरणं प्राप्य मामुपैष्यस्यसंशयम्।
अन्यच्च ते वरं दद्मि सर्वलोकोपकारकम्॥ ९१॥
इदमाख्यानकवरं शीलानन्तव्रतादिकम्।
पठिष्यति नरो यस्तु प्राप्स्यति परमां गतिम्॥ ९२॥
गच्छ विप्र गृहं शीघ्रं यथा येनागतो ह्यसि॥ ९३॥

कौण्डिन्य उवाच

स्वामिन् पृच्छामि मे ब्रूहि किंचित् कौतूहलं मया।
अरण्ये भ्रमता दृष्टं न तद् वेद्मि जगद्गुरो॥ ९४॥
स चूतवृक्षः कस्तत्र का गौः को वृषभस्तथा।
कमलोत्पलकह्लारैः शोभितं सुमनोहरम्॥ ९५॥
मया दृष्टं महारण्ये तत् किं पुष्करिणीद्वयम्।
कः खरः कुंजरः कोऽसौ कोऽसौ वृद्धो द्विजोत्तमः॥ ९६॥

श्रीअनन्त उवाच

स चूतवृक्षो विप्रोऽसौ विद्यावेदविशारदः।
सोऽर्थितोऽपि न च प्रादाच्छिष्येभ्यस्तरुतां गतः॥ ९७ ॥
सा गौर्वसुन्धरा दृष्टा सफला या त्वया द्विज।
वृषो धर्मस्त्वया दृष्टः शाद्वलं सत्यमास्थितः॥ ९८ ॥
धर्माधर्मव्यवस्थानं तच्च पुष्करिणीद्वयम्।
ब्राह्मण्यौ केचिदप्यास्तां भगिन्यौ ते परस्परम्॥ ९९ ॥
धर्माधर्मादि यत् किंचित् तन्निवेदयतो मिथः।
विप्राय न क्वचिद् दत्तमतिथौ दुर्बलेऽपि वा॥ १०० ॥
भिक्षा दत्ता न वार्थिभ्यस्तेन पापेन कर्मणा।
वीचिकल्लोलमालाभिर्गच्छतस्ते परस्परम्॥ १०१ ॥
खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुंजरो मद उच्यते।
ब्राह्मणोऽसावनन्तोऽहं गुहासंसारगह्वरम्॥ १०२ ॥
इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत।
स्वप्नप्रायं स तद् दृष्ट्वा ततः स्वगृहमागतः॥ १०३ ॥
कृत्वानन्तव्रतं सम्यङ् नव वर्षाणि पंच च।
भुक्त्वा सर्वमनन्तेन यथोक्तं पाण्डुनन्दन॥ १०४ ॥
अन्ते वै मरणं प्राप्य गतोऽनन्तपुरं द्विजः॥ १०५ ॥
तथा त्वमपि राजर्षे कथां शृण्वन् व्रतं कुरु।
प्राप्स्यसे चिन्तितं सर्वमनन्तस्य वचो यथा॥ १०६ ॥
यद्वच्चतुर्दशे वर्षे फलं प्राप्तं द्विजन्मना।
वर्षैकेन तदाप्नोति कृत्वोपाख्यानकं व्रतम्॥ १०७ ॥
एतत् ते कथितं भूप व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
यत् कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ १०८ ॥
येऽपि शृण्वन्ति सततं पठ्यमानं पठन्ति च।
तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः प्राप्स्यन्ति च हरेः पुरम्॥ १०९ ॥

संसारगह्वरगुहासु सुखं विहर्तुं
वाञ्छन्ति ये कुरुकुलोद्भव शुद्धसत्त्वाः।
सम्पूज्य च त्रिभुवनेशमनन्तदेवं
बध्नन्ति दक्षिणकरे वरदोरकं ते॥ ११०॥

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे अनन्तव्रतकथा समाप्ता।

(माघकृष्ण) संकष्टचतुर्थीव्रत-कथा

सूत उवाच

अरण्ये वर्तमानं तं पाण्डुपुत्रं युधिष्ठिरम्।
सबान्धवं सुखासीनं प्रययौ व्यास आदरात्॥ १ ॥
तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलं व्यासं प्रत्याययौ नृपः।
मधुपर्कंच सार्घ्यं स दत्त्वा तस्मै उवाच तम्॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म भवताऽऽगमने कृते।
यत् संकष्टं हि संजातं वने मम निवासिनः॥ ३ ॥
तत् सर्वं विलयं जातं भवतो दर्शनेन हि।
आत्मानं साधु मन्येऽहं राज्यतृष्णापराङ्मुखम्॥ ४ ॥
दुःखितं मां पुनः स्वामिन् राज्यभ्रष्टं वने स्थितम्।
एते भीमादयः सर्वे बान्धवा व्यथयन्ति भोः॥ ५ ॥
दुराधर्षाः सुवीर्या हि मच्छासनविधौ रताः।
इयं तु द्रौपदी साध्वी राजपुत्री पतिव्रता॥ ६ ॥
राज्योपभोग्ययोग्या साप्यथ दुःखोपभोगिनी।
मया च किं कृतं व्यास पूर्वं कष्टानुजीविना॥ ७ ॥
दायादैर्लुण्ठितं राज्यं द्यूतछद्मरतैस्तथा।
पराजिता वयं ब्रह्मन् सुहृद्भिर्बन्धुभिस्तथा॥ ८ ॥

वनं प्रस्थापिता दूतैरिदमूचुस्तथैव च।
कुर्वन्तु गमनं शीघ्रं वनाय भवदादयः॥ ९ ॥
इत्थं निराकृताः स्वामिन् यदा तद् वनमागताः।
अहं तदा प्रभृत्यहीन् न द्रक्ष्यामि भवादृशान्॥ १० ॥
यद्यस्ति व्रतमेकं हि सर्वसंकष्टनाशनम्।
तद् व्रतं कथय ब्रह्मन्ननुग्राह्योऽस्मि सुव्रत॥ ११ ॥
इत्युक्तवन्तं राजानं सर्वसंकष्टनाशनम्।
उवाच प्रीणयन् व्यासो धर्मजं व्रतमुत्तमम्॥ १२ ॥

व्यास उवाच

नास्ति भूमण्डले राजंस्त्वत्समो धर्मतत्परः।
कथयामि व्रतं तेऽद्य व्रतानामुत्तमोत्तमम्॥ १३ ॥
संकष्टनाशनं नित्यं शुभदं फलदं भुवि।
यत्कर्तुः सर्वकार्याणां निष्पत्तिर्जायते ध्रुवम्॥ १४ ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।
प्रोषिता या पुरन्ध्री च करोति व्रतमुत्तमम्॥ १५ ॥
ईप्सितं लभते सर्वं पतिना सह मोदते।
संकष्टेऽपि यदाक्षिप्तो मानवो ग्रहपीडितः॥ १६ ॥
साम्राज्ये दीक्षितो नित्यं मन्त्रिभिः परिवारितः।
सुहृद्भिर्बन्धुभिश्चैव तथा पुत्रैः समन्वितः॥ १७ ॥
तस्य तु प्रियकर्त्री च पत्नी गुणवती प्रिया।
नाम्ना रत्नावलीत्यासीत् पतिव्रतपरायणा॥ १८ ॥
तयोः परस्परं प्रीतिरभवच्च गुणाश्रय।
कदाचिद् दैवयोगेन हृतं राज्यं च वैरिभिः॥ १९ ॥
कोशो बलं चापहृतं विध्वस्तो बन्धुभिः सह।
रत्नावल्या तया साध्व्या निर्गतो भूमिवल्लभः॥ २० ॥
वने क्षुधार्तः कृशितो ह्येकवासास्तृषार्दितः।
इतस्ततश्चरन् राजन्नातपेनातिपीडितः॥ २१ ॥

एकाकी वनमासाद्य पत्न्या सार्द्धं युधिष्ठिर।
सूर्ये चास्ताचलं याते अरण्ये च शिवार्दिते॥ २२॥
व्याघ्राश्च चुक्रुशुस्तत्र पर्जन्योऽपि ववर्ष ह।
कण्टकैः क्लेशिता राज्ञी दुःखादाक्रन्दपीडिता॥ २३॥
तां विलोक्य नृपश्रेष्ठो दुःखेनैव तु पीडितः।
ततः प्रभातसमये मार्कण्डेयं महामुनिम्॥ २४॥
ददर्श राजा तत्रैव विस्मयाविष्टमानसः।
उपगम्य शनैस्तं तु दण्डवत् पतितो भुवि॥ २५॥
अब्रवीद् वचनं राजा मार्कण्डेयं महामुनिम्।
किं कृतं हि मया स्वामिन् दुष्कृतं कथयस्व तत्॥ २६॥
केन कर्मविपाकेन राज्यलक्ष्मीः पराङ्मुखी।

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यत् कृतं पूर्वजन्मनि॥ २७॥
पूर्वं हि लुब्धकश्चासीर्गतोऽसि गहनं वनम्।
मृगशार्दूलशशकान् विनिघ्नन् परितो वने॥ २८॥
तस्मिन् रात्रौ भ्रमन् राजंश्चतुर्थ्यां माघकृष्णके।
दृष्टं शुभं च कृष्णायास्तटाकं पृथुनिर्मलम्॥ २९॥
तत्तीरे नागकन्यानां समूहं रक्तवाससाम्।
गणेशं पूजयन्तीनां दृष्टवान् निरतं व्रते॥ ३०॥
उपगम्य शनैस्तत्र पृष्टास्तास्तु त्वया विभो।
आर्याः किमेतन्मे सर्वं कथयध्वं हि तत्त्वतः॥ ३१॥

नागकन्या ऊचुः

पूजयामो गणपतिं व्रतं सिद्धिप्रदायकम्।
शान्तिदं पुष्टिदं नित्यं सर्वव्याधिविनाशनम्॥ ३२॥
पुनः पृष्टं त्वया तत्र किं दानं पूज्यतेऽत्र कः।

स्त्रिय ऊचुः

यदा चोत्पद्यते भक्तिर्माघे मासि गणाधिपम्॥ ३३॥

कृष्णायां च चतुर्थ्यां वै रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत्।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैरन्यैर्भक्तिसमाहृतैः ॥ ३४ ॥
विधिवन्मोदकान् कृत्वा पूरिका घृतपाचिताः।
नैवेद्यं षड्रसं सर्वं गणेशाय निवेदयेत्॥ ३५ ॥
ततो गृहीत्वा राजेन्द्र त्वया संकष्टनाशनम्।
व्रतं कृतं भक्तिपूर्वं सांगं तस्य प्रभावतः ॥ ३६ ॥
अभवद् धनधान्यं ते पुत्रपौत्रसमन्वितम्।
कस्मिंश्चित् समये राजन् धनमत्तेन सिद्धिदम्॥ ३७ ॥
विस्मृतं तद् व्रतं नैव कृतं यत्नेन भूतिदम्।
ततः प्राप्तं हि पंचत्वमायुषोऽन्ते त्वया विभो ॥ ३८ ॥
तत्प्रभावाद् राजकुले विशाले प्राप्तमुत्तमम्।
त्वया जन्म नृपश्रेष्ठ राज्यं प्राप्तं तथा विभो ॥ ३९ ॥
सुहृन्मित्रप्रियायुक्तः प्राप्तोऽसि विपुलं वसु।
कृतावज्ञा व्रतस्यान्तस्तत् प्राप्तं फलमीदृशम्॥ ४० ॥

राजोवाच

अधुना क्रियते स्वामिन् कथ्यतां मम सुव्रतम्।
यत् कृत्वा सकलं राज्यं प्राप्यते च मया पुनः ॥ ४१ ॥

ऋषिरुवाच

व्रतसंकल्पमाशु त्वं कुरु चादौ नृपोत्तम।
प्राप्स्यसि त्वं हि राज्यं च संदेहं मा कुरु प्रभो ॥ ४२ ॥
इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठो ह्यन्तर्धानमगात् ततः।
मुनेस्तद् वचनं श्रुत्वा व्रतसंकल्पमातनोत्॥ ४३ ॥
राजाकरोन्मुनिप्रोक्तं सकलं तद् व्रतं शुभम्।
आयाताः सकलास्तस्य मन्त्रिभृत्याश्च सैनिकाः ॥ ४४ ॥
समाययौ नृपश्रेष्ठस्तत्क्षणात् स्वयमेव हि।
लब्ध्वा स्वकीयं राज्यं च गणेशस्य प्रसादतः ॥ ४५ ॥

बुभुजे मेदिनीं राजा पुत्रपौत्रसमन्वितः।
तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र कुरु संकष्टनाशनम्॥ ४६॥
व्रतं सिद्धिप्रदं नृणां स्त्रीणां चैव विशेषतः।

युधिष्ठिर उवाच

सविस्तरं व्रतं ब्रूहि कृपया कष्टनाशनम्॥ ४७॥

व्यास उवाच

यदा संक्लेशितो राजन् दुःखैः संकष्टदारुणैः।
पुमान् कृष्णचतुर्थ्यां तु तदा पूज्यो गणाधिपः॥ ४८॥
श्रावणे बहुले पक्षे चतुर्थी स्याद् विधूदये।
तस्मिन् दिने व्रतं ग्राह्यं संकष्टाख्यं युधिष्ठिर॥ ४९॥
माघे वा कृष्णपक्षे तु चतुर्थी स्याद् विधूदये।
तस्मिन् दिने व्रतं ग्राह्यं संकष्टाख्यं युधिष्ठिर॥ ५०॥
प्रातः शुचिर्भवेत् सम्यग् दन्तधावनपूर्वकम्।
निराहारोऽद्य देवेश यावच्चन्द्रोदयो भवेत्॥ ५१॥
भोक्ष्यामि पूजयित्वाहं गणेशं शरणं गतः।
कृत्वैवमादौ संकल्पं स्नात्वा शुक्लतिलैः शुभैः॥ ५२॥
आह्निकं तु विधायैवं पूजां च कुरु सुव्रत।
यथाशक्त्या तु सौवर्णीं प्रतिमां च विधाय च॥ ५३॥
सौवर्णे राजते ताम्रे मृण्मये वाथ शक्तितः।
कुम्भे पुष्पैः फलैः पूर्णे देवं तत्रैव विन्यसेत्॥ ५४॥
शुभे देशे न्यसेत् कुम्भं वस्त्रं तत्र निधाय च।
पद्ममष्टदलं कृत्वा गन्धाद्यैः पूजयेत् ततः॥ ५५॥
रक्तपुष्पैश्च धूपैश्च एभिर्नामपदैः पृथक्।
आवाहनं गणेशाय आसनं विघ्ननाशिने॥ ५६॥
पाद्यं लम्बोदरायेति अर्घ्यं चन्द्रार्धधारिणे।
विश्वप्रियायाचमनं स्नानं च ब्रह्मचारिणे॥ ५७॥

वक्रतुण्डायोपवीतं वस्त्रं सर्वप्रदाय च।
चन्दनं रुद्रपुत्राय पुष्पं च गुणशालिने॥ ५८॥
भवानीप्रियकर्त्रे च धूपं दद्याद् यथाविधि।
दीपं रुद्रप्रियायेति नैवेद्यं विघ्ननाशिने॥ ५९॥
ताम्बूलं सिद्धिदायेति फलं संकष्टनाशिने।
इति नामपदैः पूजां कृत्वा मासयमाञ्छृणु॥ ६०॥
श्रावणे सप्तलड्डूकान् नभस्ये दधिभक्षणम्।
आश्विने चोपवासं च कार्तिके दुग्धपानकम्॥ ६१॥
मार्गशीर्षे निराहारं पौषे गोमूत्रपानकम्।
तिलांश्च भक्षयेन्माघे फाल्गुने घृतशर्कराम्॥ ६२॥
चैत्रे मासि पंचगव्यं दूर्वारसं तु माधवे।
ज्येष्ठे घृतं पलं भोज्यमाषाढे मधुभक्षणम्॥ ६३॥
इति मासयमान् कृत्वा नरो मुच्येत संकटात्।
भुंजीयाद् वा तथा सप्तग्रासान् वा स्वेच्छया सुखम्॥ ६४॥
अशक्तश्चेत् ततः सिद्धिर्भविष्यति न संशयः।
एवं पूजा प्रकर्त्तव्या षोडशैरुपचारकैः॥ ६५॥
नाना भक्ष्यादिसंयुक्तमुपहारं प्रकल्पयेत्।
मोदकान् कारयेद् राजंस्तिलजान् दशसंख्यकान्॥ ६६॥
देवाग्रे स्थापयेत् पंच पंच विप्राय दापयेत्।
पूजयित्वा तु तं विप्रं भक्तिभावेन देववत्॥ ६७॥
दक्षिणां च यथाशक्त्या दत्त्वा पंचैव मोदकान्।
सांजलिः श्रद्धया राजन्निमं स्तोत्रमुदीरयेत्॥ ६८॥
'संसारपीडाव्यथितं हि मां सदा
संकष्टभूतं सुमुख प्रसीद।
त्वं त्राहि मां नाशय कष्टसंघान्
नमो नमः कष्टविनाशनाय'॥ ६९॥

इति सम्प्रार्थ्य देवेशं चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत्।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद् गणेशप्रीतये सदा ॥ ७० ॥
स्वयं भुंजीत पंचैव मोदकान् बन्धुभिः सह।
अशक्तौ त्वेकमन्नं वा भुंजीयाद् दधिना* सह ॥ ७१ ॥
अथवा भोजनं कार्यमेकवारं हि पाण्डव।
भूमिशायी जितक्रोधो लोभदम्भविवर्जितः ॥ ७२ ॥
अनेनैव तु मन्त्रेण व्रती सम्यग् विधानतः।
सोपस्करां च प्रतिमामाचार्याय निवेदयेत् ॥ ७३ ॥
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वरः।
व्रतेनानेन सुप्रीतो यथोक्तफलदो भव ॥ ७४ ॥
उद्यापनं प्रकर्तव्यं चतुर्थ्यां माघकृष्णके।
गाणपत्यं सदाचारं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ७५ ॥
आचार्यं वरयेदादौ यथोक्तविधिनार्चयेत्।
एकविंशतिविप्रान् वै वस्त्रालंकारभूषणैः ॥ ७६ ॥
पूजयेद् गोहिरण्याद्यैर्मोदकैश्चैव होमयेत्।
अष्टोत्तरसहस्रं तु शतं चाष्टाधिकं तथा ॥ ७७ ॥
अष्टाविंशतिरष्टौ वा वेदोक्तैस्तिलसर्पिषा।
सपत्नीकं सुवर्णाद्यैर्गोभूवस्त्रादिभूषणैः ॥ ७८ ॥
छत्रं चोपानहौ दद्यात् कमण्डलुगृहादिभिः।
आचार्यं पूजयेद् राजन् गणेशस्य तु तुष्टये ॥ ७९ ॥
एवं कृत्वा विधानेन प्रसन्नो नात्र संशयः।
प्रतिमासं तु यः कुर्यात् त्रीण्यब्दान्येकमेव वा ॥ ८० ॥
अथवा जन्मपर्यन्तं तस्य दुःखं कदा च न।
दारिद्र्यं न भवेत् तस्य संकष्टं न भवेदिह ॥ ८१ ॥

* आर्षप्रयोग।

वत्सरान्ते द्वादश वै ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः।
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्॥ ८२॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं सौभाग्यं च सुवासिनी।
राज्यार्थी लभते राज्यं सुखार्थी लभते सुखम्॥ ८३॥
शृण्वन्ति ये व्रतमिदं शुभमीदृशं हि
ते वै सुखेन भुवि पूर्णमनोरथाः स्युः।
नित्यं भवन्ति सुखिनो ललनाः पुमांसः
सत्पुत्रपौत्रधनधान्ययुताः पृथिव्याम्॥ ८४॥
एवमुक्त्वा ततो व्यासस्तत्रैवान्तरधीयत।
युधिष्ठिरस्तु तत् सर्वमकरोद् राजसत्तमः॥ ८५॥
तेन व्रतप्रभावेण स्वराज्यं प्राप्तवान् नृपः।
हत्वा रिपून कुरुक्षेत्रे स्वराज्यमलभन्नृपः॥ ८६॥

इति श्रीनारदमहापुराणे माघकृष्णचतुर्थीसंकष्टहरगणपतिव्रतकथा समाप्ता।

श्रीशिवरात्रिव्रत-कथा

लोमश उवाच

आसीत् पुरा महारौद्रश्चण्डो नाम दुरात्मवान्।
क्रूरसंगो निष्कृतिको भूतानां भयवाहकः॥ १ ॥
जालेन मत्स्यान् दुष्टात्मा घातयत्यनिशं खलु।
भल्लैर्मृगाञ्छ्वापदांश्च कृष्णसारांश्च सल्लकान्॥ २ ॥
खड्गांश्चैव च दुष्टात्मा दृष्ट्वा कांश्चिच्च पापवान्।
पक्षिणोऽघातयत् क्रुद्धो ब्राह्मणांश्च विशेषतः॥ ३ ॥
लुब्धको हि महापापो दुष्टो दुष्टजनप्रियः।
भार्या तथाविधा तस्य पुष्कसस्य महाभया॥ ४ ॥
एवं विहरतस्तस्य बहुकालोऽत्यवर्तत।
गते बहुतिथे काले पापौघनिरतस्य च॥ ५ ॥
निषंगे जलमादाय क्षुत्पिपासार्द्दितो भृशम्।
एकदा निशि पापीयाञ्छ्रीवृक्षोपरि संस्थितः॥ ६ ॥
कोलं हन्तुं धनुष्पाणिर्जाग्रच्चानिमिषेण हि।
माघमासेऽसितायां वै चतुर्दश्यामथाग्रतः॥ ७ ॥
मृगमार्गावलोकार्थी बिल्वपत्राण्यपातयत्॥ ८ ॥
श्रीवृक्षपर्णानि बहूनि तत्र
स छेदयामास रुषान्वितोऽपि।
श्रीवृक्षमूले परिवर्त्तमानो
लिंगं च तस्योपरि दुष्टभावः॥ ९ ॥
ववर्ष गण्डूषजलं दुरात्मा
यदृच्छया तानि शिवे पतन्ति।
श्रीवृक्षपर्णानि च दैवयोगा-
ज्जातं च सर्वं शिवपूजनं तत्॥ १० ॥
गण्डूषवारिणा तेन स्नपनं च कृतं महत्।
बिल्वपत्रैरसंख्यातैरर्चनं च महत् कृतम्॥ ११ ॥

अज्ञानेनापि भो विप्राः पुष्कसेन दुरात्मना।
माघमासेऽसिते पक्षे चतुर्दश्यां विधूदये॥ १२॥
पुष्कसोऽथ दुराचारो वृक्षादवततार सः।
आगत्य जलसंकाशं मत्स्यान् हन्तुं प्रचक्रमे॥ १३॥
लुब्धकस्यापि भार्याभून्नाम्ना चैव घनोदरी।
दुष्टा सा पापनिरता परद्रव्यापहारिणी॥ १४॥
गृहान्निर्गत्य सायाह्ने पुरद्वारबहिःस्थिता।
वनमार्गं प्रपश्यन्ती पत्युरागमनेच्छया॥ १५॥
चिराद् भर्तरि नायाते चिन्तयामास लुब्धकी।
अद्य सायाह्नवेलायामागताः सर्वलुब्धकाः॥ १६॥
तमःस्तोमेन संच्छन्नाश्चतस्रो विदिशो दिशः।
रात्रौ यामद्वयं यातं किं मतंगः समागतः॥ १७॥
किं वा केसरलोभेन* सिंहेनैव विदारितः।
किं भुजंगफणारत्नहारी सर्पविषार्दितः॥ १८॥
किं वा वराहद्रंष्ट्राग्रघातैः पंचत्वमागतः।
मधुलोभेन वृक्षाग्रात् स वै प्रपतितो भुवि॥ १९॥
क्वान्वेषयामि पृच्छामि क्व गच्छामि च कं प्रति।
एवं विलप्य बहुधा निवृत्ता स्वं गृहं प्रति॥ २०॥
नैवान्नं नो जलं किंचिन्न भुक्तं तद्दिने तया।
चिन्तयन्ती पतिं चापि लुब्धकी त्वनयन्निशाम्॥ २१॥
अथ प्रभाते विमले पुष्कसी वनमाययौ।
अशनार्थं च तस्यान्नमादाय त्वरिता सती॥ २२॥
भ्रममाणा वने तस्मिन् ददर्श महतीं नदीम्।
तस्यास्तीरे समासीनं स्वपतिं प्रेक्ष्य हर्षिता॥ २३॥
तदन्नं कूलतः स्थाप्य नदीं तर्तुं प्रचक्रमे।
निरीक्ष्य चाथ मत्स्यान् स जालप्रोतान् समानयत्॥ २४॥

* 'सिंहस्कन्धकेश' इति हेमचन्द्रः।

तावत् तयोक्तश्चण्डोऽसावेहि शीघ्रं च भक्षय।
अन्नं त्वदर्थमानीतमुपोष्य दिवसं मया॥ २५॥
कृतं किमद्य रे मन्द गतेऽहनि च किं कृतम्।
नाशितं च त्वया मूढ लङ्घितेनाद्य पापिना॥ २६॥
नद्यां स्नातौ तथा तौ च दम्पती च शुचिव्रतौ।
यावद् गतश्च भोक्तुं स तावच्छ्वा स्वयमागतः॥ २७॥
तेन सर्वं भक्षितं च तदन्नं स्वयमेव हि।
चण्डी प्रकुपिता चैव श्वानं हन्तुमुपस्थिता॥ २८॥
आवयोर्भक्षितं चान्नमनेनैव च पापिना।
किं च भक्षयसे मूढ भविताद्य बुभुक्षितः॥ २९॥
एवं तयोक्तश्चण्डोऽसौ बभाषे तां शिवप्रियः।
यच्छुना भक्षितं चान्नं तेनाहं परितोषितः॥ ३०॥
किमनेन शरीरेण नश्वरेण गतायुषा।
शरीरं दुर्लभं लोके पूज्यते क्षणभंगुरम्॥ ३१॥
ये पुष्णन्ति निजं देहं सर्वभावेन चाहताः।
मूढास्ते पापिनो ज्ञेया लोकद्वयबहिष्कृताः॥ ३२॥
तस्मान्मानं परित्यज्य क्रोधं च दुरवग्रहम्।
स्वस्था भव विमर्शेन तत्त्वबुद्ध्या स्थिरा भव॥ ३३॥
बोधिता तेन चण्डी सा पुष्कसेन तदा भृशम्।
जागरादि च सम्प्राप्तः पुष्कसोऽपि चतुर्दशीम्॥ ३४॥
शिवरात्रिप्रसंगाच्च जायते यद्ध्यसंशयम्।
तज्ज्ञानं परमं प्राप्तः शिवरात्रिप्रसंगतः॥ ३५॥
यामद्वयं च संजातममावस्यां तु तत्र वै।
आगताश्च गणास्तत्र बहवः शिवनोदिताः॥ ३६॥
विमानानि बहून्यत्र आगतानि तदन्तिकम्।
दृष्टानि तेन तान्येव विमानानि गणास्तथा॥ ३७॥
उवाच परया भक्त्या पुष्कसोऽपि च तान् प्रति।
कस्मात् समागता यूयं सर्वे रुद्राक्षधारिणः॥ ३८॥

विमानस्थाश्च केचिच्च वृषारूढाश्च केचन।
सर्वे स्फटिकसंकाशाः सर्वे चन्द्रार्धशेखराः॥ ३९॥
कपर्दिनश्चर्मपरीतवाससो
भुजंगभोगैः कृतहारभूषणाः।
श्रियान्विता रुद्रसमानवीर्या
यथातथं भो वदतात्मनोचितम्॥ ४०॥
पुष्कसेन तदा पृष्टा ऊचुः सर्वे च पार्षदाः।
रुद्रस्य देवदेवस्य संनम्राः कमलेक्षणाः॥ ४१॥

गणा ऊचुः

प्रेषिताःस्मो वयं चण्ड शिवेन परमेष्ठिना।
आगच्छ त्वरितो भूत्वा सस्त्रीको यानमारुह॥ ४२॥
लिंगार्चनं कृतं यच्च त्वया रात्रौ शिवस्य च।
तेन कर्मविपाकेन प्राप्तोऽसि शिवसंनिधिम्॥ ४३॥
तथोक्तो वीरभद्रेण उवाच प्रहसन्निव।
पुष्कसोऽपि स्वया बुद्ध्या प्रस्तावसदृशं वचः॥ ४४॥

पुष्कस उवाच

किं मया कृतमद्यैव पापिना हिंसकेन च।
मृगयारसिकेनैव पुष्कसेन दुरात्मना॥ ४५॥
पापाचारो ह्यहं नित्यं कथं स्वर्गं व्रजाम्यहम्।
कथं लिंगार्चनमिदं कृतमस्ति तदुच्यताम्॥ ४६॥
परं कौतुकमापन्नः पृच्छामि त्वां यथातथम्।
कथयस्व महाभाग सर्वं चैव यथाविधि॥ ४७॥

वीरभद्र उवाच

देवदेवो महादेवो देवानां पतिरीश्वरः।
परितुष्टोऽद्य हे चण्ड स महेश उमापतिः॥ ४८॥
प्रासंगिकतया माघे कृतं लिंगार्चनं त्वया।
शिवतुष्टिकरं चाद्य पूतोऽसि त्वं न संशयः॥ ४९॥

शिवरात्र्यां प्रसंगेन कृतमर्चनमेव च।
कोलं निरीक्षमाणेन बिल्वपत्राणि चैव हि॥ ५० ॥
छेदितानि त्वया चण्ड पतितानि तदैव हि।
लिंगस्य मस्तके तानि तेन त्वं सुकृती प्रभो॥ ५१ ॥
ततश्च जागरो जातो महान् वृक्षोपरि ध्रुवम्।
तेनैव जागरेणैव तुतोष जगदीश्वरः॥ ५२ ॥
छलेनैव महाभाग कोलसंदर्शनेन हि।
शिवरात्रिदिने चात्र स्वप्नस्ते न च योषितः॥ ५३ ॥
तेनोपवासेन च जागरेण
तुष्टो ह्यसौ देववरो महात्मा।
तव प्रसादाय महानुभावो
ददाति सर्वान् वरदो महांश्च॥ ५४ ॥
एवमुक्तस्तदा तेन वीरभद्रेण धीमता।
पुष्कसोऽपि विमानाग्र्यमारुरोह च पश्यताम्॥ ५५ ॥
गणानां देवतानां च सर्वेषां प्राणिनामपि।
तदा दुन्दुभयो नेदुर्भेर्यस्तूर्याण्यनेकशः॥ ५६ ॥
वीणावेणुमृदंगानि तस्य चाग्रे गतानि च।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ५७ ॥
शिवसांनिध्यमगमच्चण्डोऽसौ तेन कर्मणा।
शिवरात्र्युपवासेन परं स्थानमुपागमत्॥ ५८ ॥
पुष्कसोऽपि तथा प्राप्तः प्रसंगेन सदाशिवम्।
किं पुनः श्रद्धया युक्ताः शिवाय परमात्मने॥ ५९ ॥
पुष्पादिकं फलं गन्धं ताम्बूलं भक्ष्यमृद्धिमत्।
ये प्रयच्छन्ति लोकेऽस्मिन् रुद्रास्ते नात्र संशयः॥ ६० ॥

ऋषय ऊचुः

किं फलं तस्य चोद्देशः केनैव च पुरा कृतम्।
कस्माद् व्रतमिदं जातं कृतं केन पुरा विभो॥ ६१ ॥

लोमश उवाच

यदा सृष्टं जगत् सर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
कालचक्रं तदा जातं पुरा राशिसमन्वितम्॥ ६२॥
द्वादश राशयस्तत्र नक्षत्राणि तथैव च।
सप्तविंशतिसंख्यानि मुख्यानि कार्यसिद्धये॥ ६३॥
एभिः सर्वं प्रचण्डं च राशिभिरुडुभिस्तथा।
कालचक्रान्वितः कालः क्रीडयन् सृजते जगत्॥ ६४॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सृजत्यवति हन्ति च।
निबद्धमस्ति तेनैव कालेनैकेन भो द्विजाः॥ ६५॥
कालो हि बलवाँल्लोके एक एव न चापरः।
तस्मात् कालात्मकं सर्वमिदं नास्त्यत्र संशयः॥ ६६॥
आदौ कालः कालनाच्च लोकनायकनायकः।
ततो लोका हि संजाताः सृष्टिश्च तदनन्तरम्॥ ६७॥
सृष्टेर्लवो हि संजातो लवाच्च क्षणमेव च।
क्षणाच्च निमिषं जातं प्राणिनां हि निरन्तरम्॥ ६८॥
निमिषाणां च षष्ट्या वै पल इत्यभिधीयते।
पलैस्तु षष्टिभिश्चैव घटिकैकाभिजायते॥ ६९॥
घटिकानां हि षष्ट्या वै अहोरात्रेति कथ्यते।
पंचदश्या अहोरात्रैः पक्ष इत्यभिधीयते॥ ७०॥
पक्षाभ्यां मास एव स्यान्मासा द्वादश वत्सरः।
तं कालं ज्ञातुकामेन कार्यं ज्ञानं विचक्षणैः॥ ७१॥
प्रतिपद्दिनमारभ्य पौर्णमास्यन्तमेव च।
पक्षः पूर्णो हि यस्माच्च पूर्णिमेत्यभिधीयते॥ ७२॥
नष्टस्तु चन्द्रो यस्यां वै अमा सा कथिता बुधैः।
अग्निष्वात्तादिपितॄणां प्रियातीव बभूव ह॥ ७३॥
त्रिंशद्दिनानि ह्येतानि पुण्यकालयुतानि च।
तेषां मध्ये विशेषो यस्तं शृणुध्वं द्विजोत्तमाः॥ ७४॥

योगानां वा व्यतीपात उडूनां श्रवणस्तथा।
अमावस्या तिथीनां च पूर्णिमा वै तथैव च॥ ७५॥
संक्रान्तयस्तथा ज्ञेयाः पवित्रा दानकर्मणि।
तथाष्टमी प्रिया शम्भोर्गणेशस्य चतुर्थिका॥ ७६॥
पंचमी नागराजस्य कुमारस्य च षष्ठिका।
भानोश्च सप्तमी ज्ञेया नवमी चण्डिकाप्रिया॥ ७७॥
ब्रह्मणो दशमी ज्ञेया रुद्रस्यैकादशी तथा।
विष्णुप्रिया द्वादशी च अन्तकस्य त्रयोदशी॥ ७८॥
चतुर्दशी तथा शम्भोः प्रिया नास्त्यत्र संशयः।
निशीथसंयुता या तु कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥ ७९॥
उपोष्या सा तिथिः श्रेष्ठा शिवसायुज्यकारिणी।
शिवरात्रीति विख्याता सर्वपापप्रणाशिनी॥ ८०॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
ब्राह्मणी विधवा काचित् पुरा ह्यासीच्च चंचला॥ ८१॥
श्वपचाभिरता सा च कामुकी कामहेतुतः।
तस्यां तस्य सुतो जातः श्वपचस्य दुरात्मनः॥ ८२॥
दुःसहो दुष्टनामात्मा सर्वधर्मबहिष्कृतः।
कितवश्च सुरापायी स्तेयी च गुरुतल्पगः॥ ८३॥
मृगयुश्च दुरात्मासौ कर्मचाण्डाल एव सः।
अधर्मिष्ठो ह्यसद्वृत्तः कदाचिच्च शिवालयम्॥ ८४॥
शिवरात्र्यां च सम्प्राप्तो ह्युषितः शिवसंनिधौ।
श्रवणं शैवशास्त्रस्य यदृच्छाजातमन्तिके॥ ८५॥
तेन कर्मविपाकेन पुण्यां योनिमवाप्तवान्।
भुक्त्वा पुण्यतमाँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः॥ ८६॥
चित्रांगदस्य पुत्रोऽभूद् भूपालेश्वरलक्षणः।
नाम्ना विचित्रवीर्योऽसौ सुभगः सुन्दरीप्रियः॥ ८७॥
राज्यं महत्तरं प्राप्य निःस्तम्भो हि महानभूत्।
शिवे भक्तिं प्रकुर्वाणः शिवकर्मपरोऽभवत्॥ ८८॥

शैवशास्त्रं पुरस्कृत्य शिवपूजनतत्परः।
रात्रौ जागरणं यत्नात् करोति शिवसंनिधौ॥ ८९ ॥
शिवस्य गाथां गायंस्तु आनन्दाश्रुकणान् मुहुः।
प्रमुञ्चंश्चैव नेत्राभ्यां रोमांचपुलकावृतः॥ ९० ॥
आयुष्यं च गतं तस्य शिवध्यानपरस्य च।
शिवो हि सुलभो लोके पशूनां ज्ञानिनामपि॥ ९१ ॥
संसेवितुं सुखप्राप्त्यै ह्येक एव सदाशिवः।
शिवरात्र्युपवासेन प्राप्तो ज्ञानमनुत्तमम्॥ ९२ ॥
ज्ञानात् सर्वमनुप्राप्तं भूतसाम्यं निरन्तरम्।
विना शिवेन यत् किंचिन्नास्ति वस्त्वत्र न क्वचित्॥ ९३ ॥
प्राप्तज्ञानस्तदा राजा जातो हि शिववल्लभः।
मुक्तिं सायुज्यतां प्राप्तः शिवरात्रेरुपोषणात्॥ ९४ ॥
तेन लब्धं शिवाज्जन्म पुरा यत् कथितं मया।
दाक्षायणी वियोगाच्च जटाजूटेन विस्तरात्॥ ९५ ॥
वीरभद्रेति विख्यातो दक्षयज्ञविनाशनः।
य उत्पन्नो मस्तकाच्च शिवस्य परमात्मनः॥ ९६ ॥
शिवरात्रिव्रतेनैव तारिता बहवः पुरा।
प्राप्ताः सिद्धिं पुरा विप्रा भरताद्याश्च देहिनः॥ ९७ ॥
मान्धाता धुन्धुमारश्च हरिश्चन्द्रादयो नृपाः।
प्राप्ताः सिद्धिमनेनैव व्रतेन परमेण हि॥ ९८ ॥
शिवरात्रिसमं नास्ति व्रतं पापक्षयावहम्।
यत् कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ९९ ॥
उपवासं करिष्यन्ति जागरेण समन्वितम्।
यथोक्तशास्त्रमार्गेण तेषां मोक्षो न संशयः॥ १०० ॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
प्राप्नोति तत् फलं सर्वं नात्र कार्या विचारणा॥ १०१ ॥

इति श्रीस्कन्दमहापुराणे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे
शिवरात्रिव्रतकथा समाप्ता।

॥ श्रीहरिः ॥

नित्यपाठ साधन-भजन एव कर्मकाण्ड-हेतु

कोड	पुस्तक
592	**नित्यकर्म-पूजाप्रकाश** [गुजराती, तेलुगु भी]
1593	**अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश**
1895	**जीवच्छ्राद्ध-पद्धति**
1809	**गया श्राद्ध-पद्धति**
1928	**त्रिपिण्डी श्राद्ध-पद्धति**
1416	**गरुडपुराण-सारोद्धार** (सानुवाद)
1627	**रुद्राष्टाध्यायी**-सानुवाद
1417	**शिवस्तोत्ररत्नाकर**
1774	**देवीस्तोत्ररत्नाकर**
1623	**ललितासहस्रनामस्तोत्रम्**- [तेलुगु भी]
610	**व्रत-परिचय**
1162	**एकादशी-व्रतका माहात्म्य**— मोटा टाइप [गुजराती भी]
1136	**वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य**
1588	**माघमासका माहात्म्य**
1899	**श्रावणमासका माहात्म्य**
1367	**श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा**
052	**स्तोत्ररत्नावली**—सानुवाद [तेलुगु, बँगला भी]
1629	,, ,, सजिल्द
1567	**दुर्गासप्तशती**— मूल, मोटा (बेड़िया)
876	,, मूल गुटका
1727	,, मूल, लघु आकार
1346	,, सानुवाद मोटा टाइप
118	,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी]
489	,, सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी]

कोड	पुस्तक
1281	**दुर्गासप्तशती** (विशिष्ट सं०)
866	,, केवल हिन्दी
1161	,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द
819	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**-शांकरभाष्य
206	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**—सटीक
226	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**—मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड, तमिल, गुजराती भी]
1872	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्** -लघु
509	**सूक्ति-सुधाकर**
1801	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्** (हिन्दी-अनुवादसहित)
207	**रामस्तवराज**—(सटीक)
211	**आदित्यहृदयस्तोत्रम्**— हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी]
224	**श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र** [तेलुगु, ओड़िआ भी]
231	**रामरक्षास्तोत्रम्**— [तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
1594	**सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह**
1850	**शतनामस्तोत्रसंग्रह**
715	**महामन्त्रराजस्तोत्रम्**

नामावलिसहितम्

कोड	पुस्तक
1599	**श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्** (गुजराती भी)
1600	**श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्**
1601	**श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्**
1663	**श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्**
1664	**श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्**
1665	**श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्**

कोड	पुस्तक
1706	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्**
1704	**श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्**
1705	**श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्**
1707	**श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्**
1708	**श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्**
1709	**श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम्**
1862	**श्रीगोपाल स०**–सटीक
1748	**संतान-गोपालस्तोत्र**
563	**शिवमहिम्नःस्तोत्र** [तेलुगु भी]
230	**अमोघ शिवकवच**
495	**दत्तात्रेय-वज्रकवच** सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]
229	**श्रीनारायणकवच** [ओड़िआ, तेलुगु भी]
1885	**वैदिक-सूक्त-संग्रह**
054	**भजन-संग्रह**
1849	**भजन-सुधा**
140	**श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली**
144	**भजनामृत**
142	**चेतावनी-पद-संग्रह**
1355	**सचित्र-स्तुति-संग्रह**
1800	**पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह**
1214	**मानस-स्तुति-संग्रह**
1092	**भागवत-स्तुति-संग्रह**
1344	**सचित्र-आरती-संग्रह**
1591	**आरती-संग्रह**—मोटा टाइप
153	**आरती-संग्रह**
1845	**प्रमुख आरतियाँ**–पॉकेट
208	**सीतारामभजन**
221	**हरेरामभजन**— दो माला (गुटका)
222	**हरेरामभजन**—१४ माला
225	**गजेन्द्रमोक्ष**–सानुवाद, [तेलुगु, कन्नड़, ओड़िआ भी]

कोड	पुस्तक
385	**नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र,** सानुवाद [बँगला, तमिल भी]
1505	**भीष्मस्तवराज**
699	**गङ्गालहरी**
1094	**हनुमानचालीसा**— हिन्दी भावार्थसहित
1917	,, मूल (रंगीन) वि०सं०
227	,, (पॉकेट साइज) [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]
695	**हनुमानचालीसा**—(लघु आकार) [गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी]
1525	**हनुमानचालीसा**—अति लघु आकार [गुजराती भी]
228	**शिवचालीसा**—असमिया भी
1185	**शिवचालीसा**–लघु आकार
851	**दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा**
1033	,, लघु आकार
232	**श्रीरामगीता**
383	**भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी....**
203	**अपरोक्षानुभूति**
139	**नित्यकर्म-प्रयोग**
524	**ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री**
236	**साधक-दैनन्दिनी**
1471	**संध्या, संध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य**
210	**सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण-बलिवैश्वदेवविधि**— मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी]
614	**सन्ध्या**

गीताप्रेस, गोरखपुर

व्रत–परिचय

610

‘गीताप्रेस’ गोरखपुरकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

डाकद्वारा एवं विदेशोंमें पुस्तकें भेजनेकी व्यवस्था केवल गोरखपुरमें है।

gitapressbookshop.in से गीताप्रेस प्रकाशन online खरीदें।

इन्दौर-452001	जी० 5, श्रीवर्धन, 4 आर. एन. टी. मार्ग	(0731) 2526516, 2511977
ऋषिकेश-249304	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम	(0135) 2430122, 2432792
कटक-753009	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी	(0671) 2335481
कानपुर-208001	24/55, बिरहाना रोड	फोन/फैक्स (0512) 2352351
कोयम्बटूर-641018	गीताप्रेस मेंशन, 8/1 एम, रेसकोर्स	(0422) 3202521
कोलकाता-700007	गोबिन्दभवन; 151, महात्मा गाँधी रोड	(033) 40605293, 22680251
गोरखपुर-273005	गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस	(0551) 2334721, 2331250, फैक्स 2336997
चेन्नई-600010	इलेक्ट्रो हाउस, रामनाथन स्ट्रीट किलपौक	(044) 26615959 ; फैक्स 26615909
जलगाँव-425001	7, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास	(0257) 2226393 ; फैक्स 2220320
दिल्ली-110006	2609, नयी सड़क	(011) 23269678; फैक्स 23259140
नागपुर-440002	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, 851, न्यू इतवारी रोड	(0712) 2734354
पटना-800004	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने	(0612) 2300325
बेंगलुरु-560027	7/3, सेकेण्ड क्रास, लालबाग रोड	(080) 65636566
भीलवाड़ा-311001	जी 7, आकार टावर, सी ब्लाक, गान्धीनगर	(01482) 248330
मुम्बई-400002	282, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट)	(022) 22030717
राँची-834001	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर	(0651) 2210685
रायपुर-492009	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक (छत्तीसगढ़)	(0771) 4034430
वाराणसी-221001	59/9, नीचीबाग	(0542) 2413551
सूरत-395001	2016 वैभव एपार्टमेन्ट, भटार रोड	(0261) 2237362, 2238065
हरिद्वार-249401	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार	(01334) 222657
हैदराबाद-500095	41, 4-4-1, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार	(040) 24758311, 66758311
काठमाडौं (नेपाल)	पसल नं० 6,7,8, माधवराज सुमार्गी स्मृति भवन, वनकाली, पशुपति क्षेत्र। e-mail : gitapress.nepal@gmail.com	मोबाइल : 9823490038

स्टेशन-स्टाल— **दिल्ली** (प्लेटफार्म नं० 5-6); **नयी दिल्ली** (नं० 14-15); **हजरत निजामुद्दीन** [दिल्ली] (नं० 4-5); **कोटा** [राजस्थान] (नं० 1); **बीकानेर** (नं० 1); **गोरखपुर** (नं० 1); **गोण्डा** (नं० 1); **लखनऊ** [एन० ई० रेलवे]; **कानपुर** (नं० 1); **वाराणसी** (नं० 4-5); **मुगलसराय** (नं० 3-4); **हरिद्वार** (नं० 1); **पटना** (मुख्य प्रवेशद्वार); **राँची** (नं० 1); **धनबाद** (नं० 2-3); **मुजफ्फरपुर** (नं० 1); **समस्तीपुर** (नं० 2); **छपरा** (नं० 1); **सीवान** (नं० 1); **हावड़ा** (नं० 5 तथा 18 दोनोंपर); **कोलकाता** (नं० 1); **सियालदा मेन** (नं० 8); **आसनसोल** (नं० 5); **कटक** (नं० 1); **भुवनेश्वर** (नं० 1); **अहमदाबाद** (नं० 2-3); **राजकोट** (नं० 1); **जामनगर** (नं० 1); **भरुच** (नं० 4-5); **वडोदरा** (नं० 4-5); **इन्दौर** (नं० 5); **जबलपुर** (नं० 6); **औरंगाबाद** [महाराष्ट्र] (नं० 1); **गोंदिया** [महाराष्ट्र] (नं० 1); **सिकन्दराबाद** [आं० प्र०] (नं० 1); **विजयवाड़ा** (नं० 6); **गुवाहाटी** (नं० 1); **खड़गपुर** (नं० 1-2); **रायपुर** [छत्तीसगढ़] (नं० 1); **बेंगलुरु** (नं० 1); **यशवन्तपुर** (नं० 6); **हुबली** (नं० 1-2); **श्री सत्यसाईं प्रशान्ति निलयम्** [दक्षिण-मध्य रेलवे] (नं० 1)।

फुटकर पुस्तक-दूकानें— **चूरू**-ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क, **ऋषिकेश**-मुनिकी रेती; **बेरहामपुर**-म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, के० एन० रोड, **नडियाड** (गुजरात) संतराम मन्दिर; **चेन्नई**- 12, अभिरामी माल, पुरासावलकम, निकट किलपौक/वेपेरी।

Code 610